एम.एस.डब्ल्यू. पूर्वार्द्ध

प्रथम प्रश्नपत्र

सामाजिक कार्य का इतिहास एवं विकास

(HISTORY AND DEVELOPMENT OF SOCIAL WORK)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Aarti Shrivastava
   Professor
   Govt. Sarojni Naidu (PG) College, Bhopal

2. Dr. Sadhana Singh Bisen
   Former Assistant Professor,
   BSS College, Bhopal (MP)

3. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (MP)

4. Dr. Aarti Shrivastava
   Professor
   Govt. Sarojni Naidu (PG) College, Bhopal

5. Dr. Sadhana Singh Bisen
   Former Assistant Professor,
   BSS College, Bhopal (MP)

6. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr. Vinod Singh Tomar, Academic Director, Gyanveer Institute of Management and Science, Sagar (M.P.)
Rakesh Choudhary, Asststant Professor, Aditi Mahavidyalaya, University of Delhi

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामाजिक कार्य का इतिहास एवं विकास

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 प्रस्तावना : मूल्यांकन और विकास भारत के सन्दर्भ में– इंग्लैंड में सामाजिक कार्य का इतिहास, संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक कार्य का इतिहास भारत में सामाजिक कार्य व्यवसाय : मूल्यांकन एवं विकास– प्राचीन, मध्य एवं ब्रिटिश काल में सामाजिक कार्य, स्वतंत्रता पश्चात् सामाजिक कार्य सामाजिक कार्य : भविष्य प्रवृत्तियां	**इकाई 1** : इंग्लैंड, अमेरिका और भारत में सामाजिक कार्य **(पृष्ठ 3–40)**
इकाई–2 सामाजिक सुधार आंदोलन : प्रस्तावना; सामाजिक सुधार के दार्शनिक आधार सामाजिक सुधार एवं समाजवाद; भारत में सामाजिक सुधार– सामाजिक सुधार आंदोलनों के प्रमुख क्षेत्र, जाति समस्या के दो आयाम, पारसी और मुस्लिम सामाजिक सुधार, सुधार की गतिविधि सामग्री; सामाजिक सुधार एवं समाज कार्य	**इकाई 2** : सामाजिक सुधार आंदोलन **(पृष्ठ 41–101)**
इकाई–3 महात्मा गांधी : भारत में आधुनिक सामाजिक कार्य के गुरु; सर्वोदय और समाजकार्य– गांधी जी के समाज कार्य की विशेषताएँ, सर्वोदय कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण; ग्रामदान का प्रभाव	**इकाई 3** : गांधीवादी दर्शन और सामाजिक कार्य **(पृष्ठ 103–142)**
इकाई–4 समाज कार्य की प्रकृति– समाज कार्य का वैज्ञानिक आधार, समाज कार्य का क्षेत्र, भारत में समाज कार्य : व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य, 21वीं शताब्दी में समाज कार्य, व्यावसायिक–समाज कार्य : भविष्य के दृष्टिकोण, कार्य व चुनौतियां, समाज कार्य विभाग/समाज कार्य विद्यालयों के समक्ष समाज कार्य शिक्षा से संबंधित चुनौतियां भारत में सामाजिक कार्य का दर्शन– समाज कार्य : अवधारणा एवं स्वरूप, सामाजिक कार्य के अंतर्गत दर्शनशास्त्र, समाज कार्य के सिद्धांत, समाज कार्य के कौशल समाज कार्य के प्रकार्य– सामाजिक कार्य के प्रकार्यों की कल्याणकारी पृष्ठभूमि, समाज कार्य के नये एवं उभरते क्षेत्र	**इकाई 4** : व्यवसाय के रूप में सामाजिक कार्य **(पृष्ठ 143–226)**
इकाई–5 मानव अधिकार : अर्थवत्ता एवं ऐतिहासिकता– मानवीय अधिकार के सिद्धांत या मत, मानव अधिकारों का घोषणा पत्र (गाथा), मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, पश्चिम बनाम तीसरी दुनिया, मानव अधिकारों की अविभाज्यता और अन्योन्याश्रयता, भारत में मानवाधिकार : कुछ मुद्दे स्वैच्छिक संगठन एवं समाजकार्य– स्वैच्छिक संगठनों की अवधारणा, गैर–सरकारी संगठनों की क्षमता, चुनौतियां, पारंपरिकता एवं विशिष्टता, भारत में स्वैच्छिक सेवाओं का प्रचलन, गैर–सरकारी संगठन	**इकाई 5** : मानव अधिकार और समाज कार्य **(पृष्ठ 227–302)**

विषय–सूची

परिचय 1–2

इकाई 1 इंग्लैंड, अमेरिका और भारत में सामाजिक कार्य **3–40**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना : मूल्यांकन और विकास भारत के सन्दर्भ में
  1.2.1 इंग्लैंड में सामाजिक कार्य का इतिहास
  1.2.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक कार्य का इतिहास
1.3 भारत में सामाजिक कार्य व्यवसाय : मूल्यांकन एवं विकास
  1.3.1 प्राचीन, मध्य एवं ब्रिटिश काल में सामाजिक कार्य
  1.3.2 स्वतंत्रता पश्चात् सामाजिक कार्य
1.4 सामाजिक कार्य : भविष्य प्रवृत्तियां
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 सामाजिक सुधार आंदोलन **41–101**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक सुधार आंदोलन : प्रस्तावना
2.3 सामाजिक सुधार के दार्शनिक आधार
2.4 सामाजिक सुधार एवं समाजवाद
2.5 भारत में सामाजिक सुधार
  2.5.1 सामाजिक सुधार आंदोलनों के प्रमुख क्षेत्र
  2.5.2 जाति समस्या के दो आयाम
  2.5.3 पारसी और मुस्लिम सामाजिक सुधार
  2.5.4 सुधार की गतिविधि सामग्री
2.6 सामाजिक सुधार एवं समाज कार्य
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 गांधीवादी दर्शन और सामाजिक कार्य **103–142**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 महात्मा गांधी : भारत में आधुनिक सामाजिक कार्य के गुरु
3.3 सर्वोदय और समाजकार्य
  3.3.1 गांधी जी के समाज कार्य की विशेषताएँ
  3.3.2 सर्वोदय कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण

3.4 ग्रामदान का प्रभाव
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 व्यवसाय के रूप में सामाजिक कार्य 143–226

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 समाज कार्य की प्रकृति
4.2.1 समाज कार्य का वैज्ञानिक आधार
4.2.2 समाज कार्य का क्षेत्र
4.2.3 भारत में समाज कार्य : व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य
4.2.4 21वीं शताब्दी में समाज कार्य
4.2.5 व्यावसायिक–समाज कार्य : भविष्य के दृष्टिकोण, कार्य व चुनौतियां
4.2.6 समाज कार्य विभाग/समाज कार्य विद्यालयों के समक्ष समाज कार्य शिक्षा से संबंधित चुनौतियां
4.3 भारत में सामाजिक कार्य का दर्शन
4.3.1 समाज कार्य : अवधारणा एवं स्वरूप
4.3.2 सामाजिक कार्य के अंतर्गत दर्शनशास्त्र
4.3.3 समाज कार्य के सिद्धांत
4.3.4 समाज कार्य के कौशल
4.4 समाज कार्य के प्रकार्य
4.4.1 सामाजिक कार्य के प्रकार्यों की कल्याणकारी पृष्ठभूमि
4.4.2 समाज कार्य के नये एवं उभरते क्षेत्र
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 मानव अधिकार और समाज कार्य 227–302

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मानव अधिकार : अर्थवत्ता एवं ऐतिहासिकता
5.2.1 मानवीय अधिकार के सिद्धांत या मत
5.2.2 मानव अधिकारों का घोषणा पत्र (गाथा)
5.2.3 मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा
5.2.4 पश्चिम बनाम तीसरी दुनिया
5.2.5 मानव अधिकारों की अविभाज्यता और अन्योन्याश्रयता
5.2.6 भारत में मानवाधिकार : कुछ मुद्दे
5.3 स्वैच्छिक संगठन एवं समाज कार्य
5.3.1 स्वैच्छिक संगठनों की अवधारणा
5.3.2 गैर–सरकारी संगठनों की क्षमता, चुनौतियां, पारंपरिकता एवं विशिष्टता
5.3.3 भारत में स्वैच्छिक सेवाओं का प्रचलन
5.3.4 गैर–सरकारी संगठन
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'सामाजिक कार्य का इतिहास एवं विकास' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.एस.डब्ल्यू. (पूर्वार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

सामाजिक कार्य के इतिहास एवं विकास का अध्ययन एक जटिल कार्य है। राजाराम शास्त्री, मजूमदार, गोरे एवं मेहता जैसे अनेक दिग्गजों ने भारत के संदर्भ में सामाजिक कार्य के ऐतिहासिक विकास का विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। विशेषतः राजा राममोहन राय के समय में यानी 19वीं शताब्दी में भारतीय साहित्य में सामाजिक सुधारों और उसके उपरांत सामाजिक कार्यों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही मराठा काल और मुस्लिम काल के दौरान रचे गए साहित्य में भी कई स्थानों पर समाज कल्याण से संबंधित उल्लेख मिलते हैं। पुराने समय के विभिन्न ग्रंथों का अवलोकन करने पर उस समय की सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक कार्यों की सुस्पष्ट झलक दिखाई देती है।

इस पुस्तक के अंतर्गत सामाजिक कार्यों के इतिहास एवं विकास से जुड़े सभी विषयों पर विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय के विश्लेषण से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में भारत, इंग्लैंड तथा अमेरिका के सामाजिक कार्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। साथ ही भारत में सामाजिक कार्य व्यवसाय तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत के सामाजिक कार्यों का भी उल्लेख किया गया है।

दूसरी इकाई सामाजिक सुधार आंदोलन पर आधारित है। इसमें समाज सुधार के दार्शनिक आधारों तथा सामाजिक आंदोलनों के प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है।

तीसरी इकाई महात्मा गांधी के दर्शन तथा उनके सामाजिक कार्यों पर आधारित है। इस इकाई में सर्वोदय कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण तथा ग्रामदान के प्रभाव आदि का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

चौथी इकाई पेशे यानी व्यवसाय के रूप में किए जाने वाले सामाजिक कार्यों पर आधारित है। इसमें 21वीं शताब्दी के सामाजिक कार्यों का समावेश किया गया है तथा भारत में सामाजिक कार्यों के दर्शन का विश्लेषण किया गया है।

पांचवीं इकाई में मानव अधिकारों तथा सामाजिक कार्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में स्वैच्छिक संगठनों से जुड़े सामाजिक कार्यों को भी सम्मिलित किया गया है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक के अंतर्गत विषय से संबंधित विभिन्न पहलुओं का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक की इकाइयों के अध्ययन से छात्र विषय के विभिन्न पक्षों से अवगत हो पाएंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनके ज्ञानवर्द्धन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 इंग्लैंड, अमेरिका और भारत में सामाजिक कार्य

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना : मूल्यांकन और विकास भारत के सन्दर्भ में
 1.2.1 इंग्लैंड में सामाजिक कार्य का इतिहास
 1.2.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक कार्य का इतिहास
1.3 भारत में सामाजिक कार्य व्यवसाय : मूल्यांकन एवं विकास
 1.3.1 प्राचीन, मध्य एवं ब्रिटिश काल में सामाजिक कार्य
 1.3.2 स्वतंत्रता पश्चात् सामाजिक कार्य
1.4 सामाजिक कार्य : भविष्य प्रवृत्तियां
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

भारत में सामाजिक कार्य के अर्थ के विषय में ही आज तक भ्रम बना हुआ है। कभी यह परोपकार का कार्य समझा जाता है। कभी इसे दान के रूप में देखा जाता है। कभी इसे चरित्र निर्माण, निःस्वार्थ सेवा श्रमदान अथवा आपातकालीन सेवा के रूप में समझा जाता है। ऐच्छिक शारीरिक श्रम को भी सामाजिक कार्य की श्रेणी में माना जाता है। इसी प्रकार सामाजिक कार्यकर्ता के अर्थ के विषय में भ्रम है। समाज सुधारक, दानी, परोपकारी, स्वैच्छिक कार्यकर्ता तथा नेता सभी को सामाजिक कार्यकर्ता कहा जाता है तथा वे अपने कार्यों को सामाजिक कार्य कहते हैं। परिणामतः आधुनिक सामाजिक कार्य का व्यावसायिक रूप उभरने में कठिनाई हो रही है।

ब्रिटेन को सामाजिक कार्य एवं आदर्श कल्याणकारी राज्य की दिशा में अग्रणी होने का श्रेय प्राप्त है, तथापि अन्य देशों, जिसमें विकासशील देश सम्मिलित हैं, में समाज कल्याण के जन्म, विकास एवं वृद्धि का रोचक वर्णन पाया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में प्राचीन समय से लोक कल्याण की लम्बी परम्परा किसी न किसी रूप में चली आ रही है। दानशीलता, परोपकारिता, दयालुता एवं उदारता की इसकी परम्पराएं सारे संसार को ज्ञात हैं। सेवा भावना अथवा संगी–साथियों की सहायता करना जिस पर आधुनिक सामाजिक कार्य की संरचना आधारित है, भारत में इसका उदय प्राचीन काल से होना सुविदित है।

प्रस्तुत इकाई में इंग्लैंड, अमेरिका तथा भारत के सामाजिक कार्यों का विस्तृत विवेचन किया गया है तथा इनसे जुड़े विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

टिप्पणी

- भारत में होने वाले सामाजिक कार्यों के बारे में जान पाएंगे;
- इंग्लैंड के सामाजिक कार्यों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- अमेरिका के सामाजिक कार्यों को समझ पाएंगे;
- भारत के सामाजिक कार्य व्यवसाय का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- प्राचीन, मध्य एवं ब्रिटिश काल में होने वाले सामाजिक कार्यों की समीक्षा कर पाएंगे।

1.2 प्रस्तावना : मूल्यांकन और विकास भारत के सन्दर्भ में

मजूमदार, मेहता, गोरे, राजाराम शास्त्री इत्यादि अनेक विद्वानों ने भारत में सामाजिक कार्य के ऐतिहासिक विकास का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 19वीं शताब्दी में, विशेष रूप से राजाराम मोहन राय के समय में, भारतीय साहित्य में समाज सुधार तथा बाद में सामाजिक कार्य का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मुस्लिम तथा मराठा काल के साहित्य में भी कहीं–कहीं समाज कल्याण सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। विभिन्न प्राचीनकालीन ग्रंथों का अध्ययन करने पर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों की स्पष्ट झलक मिलती है और इसीलिए यह कहा जाता है कि भारतीय समाज में सामाजिक कार्य की जड़ें बहुत ही पुरानी हैं।

भारत में समाज कल्याण के विकास का वर्णन निम्नलिखित श्रेणियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है–

1. सामुदायिक जीवन काल
2. दान काल (भारतीय सामाजिक मूल्यों में दान काल अच्छा मूल्य समझा जाता था)
3. धार्मिक सुधार काल
4. व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं संगठन काल

1. सामुदायिक जीवन काल

सिंधु घाटी की सभ्यता के मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में प्राप्त अवशेषों से यह पता चलता है कि इस अवधि में नगरीकरण उच्चतम सीमा पर था किंतु दास प्रथा किसी न किसी रूप में विद्यमान थी और इन दासों की आवश्यकताओं की पूर्ति और उनके कल्याण के लिए भी व्यवस्था की जाती थी।

वैदिक काल में तीन प्रकार के सामाजिक कार्य स्पष्ट रूप से सम्पादित किये जाते थे। ये कार्य शासन, सुरक्षा तथा व्यापार से सम्बन्धित थे। इन कार्यों को सम्पादित करने वाले तीन वर्ग विद्यमान थे। इस युग में यज्ञ, हवन एवं दान का प्रचलन था। समाज के सभी सदस्य उत्पादन संबंधी कार्यों में भाग लेते थे और उनके सामूहिक श्रम के फलों

टिप्पणी

को सभी सदस्यों में वितरित किया जाता था। यज्ञ जीवन तथा उत्पत्ति को बनाये रखने के लिए समुदाय की क्रियाओं का संकलन था। हवन सामूहिक प्रयासों के परिणामस्वरूप दिन–प्रतिदिन होने वाले लाभों का व्यक्तिगत सदस्यों में वितरण था। दान प्रसन्नता के अवसरों पर समुदाय के सदस्यों में युद्ध से प्राप्त वस्तुओं का वितरण था। इस व्यवस्था में समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का उत्तरदायित्व अन्य प्रत्येक व्यक्ति पर था।

वैदिक काल में विशेष प्रकार की सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों का उत्तरदायित्व शासकों, धनी व्यक्तियों तथा सामान्य समुदाय के साधारण सदस्यों द्वारा आपस में बांट लिया जाता था। सभी लोग अपने साधनों के अनुसार अपने कार्य का पालन करने में एक–दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयास करते थे। ये कार्य मंदिरों एवं आश्रमों की स्थापना, उन्हें सुचारु रूप से चलाने के लिए किये गए सम्पत्ति के समर्पण, सन्तों एवं महात्माओं के लिए मठों के निर्माण, घुमक्कड़ योगियों तथा मंदिरों एवं आश्रमों में रहने वालों के लिए भोजन, इत्यादि की आपूर्ति के रूप में किया जाता था।

बौद्ध काल में भी लोगों के कल्याण के लिए भगवान बुद्ध ने सड़कें बनवायीं, ऊबड़–खाबड़ मार्गों को बराबर करवाया, बांध बनवाये, पुलों का निर्माण कराया तथा तालाब खुदवाये और समाज में पायी जाने वाली परम्परावादी अनेक प्रकार की कुरीतियों का विरोध किया।

सामाजिक कार्य के अंतर्गत दर्शनशास्त्र :समाज कार्य के दर्शन का तात्पर्य है कि सर्वप्रथम इसके अर्थ एवं ज्ञान का वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुतीकरण किया जाए। इसके पश्चात् इसके आदर्शों और मूल्यों का सही ढंग से निरूपण किया जाए। वास्तव में समाज कार्य एक शैक्षिक एवं व्यावसायिक विधा है जो सदैव सामुदायिक संगठन एवं अन्य विधियों के द्वारा लोगों और समूहों के जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए प्रयासरत रहता है। इसके समांतर दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं की व्याख्या करता है, दर्शन सदैव ही सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्शों को प्रशस्त करता है एवं मानव जीवन को अधिक सुखमय बनाने के लिए प्रकार्यात्मक रूप से संकल्पित रहता है। यही कारण है कि समस्त सामाजिक विशेषज्ञों का एकमत रूप से मानना है कि समाजकार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है। दर्शन का अर्थ किसी भी विषय विशेष के संदर्भ में सत्य और ज्ञान की निरंतर खोज और इस संबंध में प्राप्त तथ्यों के वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुतीकरण से है। समाजकार्य व्यक्तियों अर्थात् व्यक्ति समूह और समुदाय के बीच समानता चाहता है। समाजकार्य का दर्शन हर्वर विस्नो ने दिया है जिसमें से व्यक्ति के प्रकृति, समूह तथा सामाजिक परिवर्तन के संबंध में दिया गया दर्शन बहुत रुचिकर तथा व्यावहारिक है। वस्तुतः यह भी सत्य है कि व्यक्ति के जीवन संबंधी अनेक मतभेदों के कारण समाजकार्य दर्शन के संबंध में भी अनेक मतभेद हैं। क्योंकि अलग–अलग देशों में जीवन की दशाएँ भी अलग–अलग हैं चाहे वे सामाजिक, आर्थिक, भौतिक, स्वास्थ्य अथवा शैक्षिक दशाएँ हों। इन्हीं कारणों से समाकार्य दर्शन पर कोई सर्वसम्मिति नहीं बन सकी है। समाजकार्य दर्शन सामाजिक दर्शन जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं की व्याख्या करता है इसलिए समाजकार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है। समाजकार्य व्यवसाय के अंतर्गत कार्य करने वाला सामाजिक कार्यकर्ता अपने कार्य अनुभव से कुछ आदर्श और मूल्यों

को विकसित करता है। जब इन आदर्शों व मूल्यों को एक तर्कसंगत प्रणाली के तहत स्थापित किया जाता है तो वह समाजकार्य दर्शन बन जाता है। सामाजिक कार्य कं अंतर्गत दर्शनशास्त्र का पुनरावलोकन आचार शास्त्र दर्शक अर्थात् बौद्ध दर्शन से ही माना जाता है। बौद्ध दर्शन में समाजकार्य की महत्ता को भलीभांति वृहद रूप में दिखाया गया है।

भारतीय इतिहास का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि जैसे–जैसे समय गुजरता गया वैसे–वैसे समाज सेवा के कार्य निरंतर रूप से बदलते रहे और चलते रहे। समाज सेवा के कार्यों में गरीबों, असहायों और अपंगों की सहायता करना सदैव व्यक्ति का कर्तव्य माना गया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण में वैदिककाल में सामुदायिक जीवन का किकास हुआ और सामूहिक संपत्ति की परंपरा टूट गई। दूसरी ओर ऋग्वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में पुरोहित को एक कुशल सामाजिक कार्यकर्ता माना गया। सनातन काल में व्यक्ति एवं समुदाय की भौतिक सहायता के अतिरिक्त उन्हें किसी उद्योग में लगाना भी विशेष कर्तव्य माना गया। बौद्ध काल में विद्यार्थियों को जीवन–यापन के लिए स्वयं साधन खोजने पड़ते थे। उस समय विद्यादान पर विशेष बल दिया जाता था। बौद्ध काल में ऐसे नागरिकों का निर्माण किया जाता था, जो समाज हित के लिए कार्य करें और ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता बनें जो समाज कल्याण के लिए कार्य करें, दीन–दुखियों की सेवा करें तथा नारी उत्थान के लिए कार्य करें। इन सभी के पीछे एक उद्देश्य निहित था, जो कि सामाजिक संबंधों में सुधार करने पर आधारित था। महात्मा गांधी ने समाजकार्य के क्षेत्र में 20वीं शताब्दी में उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने जाति प्रथा एवं भेदभाव को समाप्त करने के लिए प्रयास किया। गांधी जी के कार्यों का समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। समाज कार्य मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त लोगों की इस प्रकार सहायता करता है कि वे अपनी सहायता स्वयं कर सकें। इस धारणा ने गांधी जी के नेतृत्व में स्वीकृति प्राप्त की। राष्ट्रपिता ने समाज कार्य के अंतर्गत सदैव मानव प्रतिष्ठा पर बल दिया है। महात्मा गांधी का मानना था कि किसी भी व्यक्ति को अपना विचार अथवा मत प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है किंतु वह अपने विचार या मत को दूसरे पर थोप नहीं सकता।

राष्ट्रपिता सदैव ही अपनी सहायता को सबसे अच्छी सहायता मानते थे। उन्होंने सादा जीवन – उच्च विचार और श्रम की महत्ता को समाजकार्य का दर्शन माना है। उनका प्रयास था कि लोगों में ऐसी चेतना आए कि वे स्वयं अपने परिवर्तन का प्रयास करें एवं आत्मनिर्भर बनें। महात्मा गांधी जी का सत्याग्रह, सर्वोदय और रचनात्मक कार्यक्रम भी समाज कार्य के लिए महत्वपूर्ण दर्शन साबित हुए हैं।

2. दान काल

धार्मिक प्रेरणा से समाज सेवाएं प्रारम्भ हुईं। अनेक प्रकार के सार्वजनिक कल्याणकारी कार्य सम्पादित किये जाने लगे। उदाहरण के लिए, नहरें, तालाब तथा कुएं खुदवाना, पेड़ लगवाना, मंदिर बनवाना, धर्मशाला तथा आश्रम बनवाना, विद्यालय तथा चिकित्सालय स्थापित करना, इत्यादि इन सभी कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य आवागमन से मुक्ति दिलाने वाले मोक्ष तथा सामाजिक स्वीकृति को प्राप्त करना था। अनेक प्रकार की धार्मिक संस्थाओं ने भी सार्वजनिक कल्याण सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ किये। अनेक धनवानों

ने अपनी सम्पत्ति धार्मिक संस्थाओं को सौंप दी या ट्रस्ट बना दिये जिनके माध्यम से अनेक प्रकार के कल्याणकारी आयोजित किये जाने लगे।

मुसलमानों के भारत में आने के बाद उनके द्वारा भारतीय सामाजिक व्यवस्था को इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार चलाने का प्रयास किया गया। इस्लाम की "जकात" एवं "खैरात" की अवधारणाओं को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हुई। भारतीय मुसलमान अपनी आय का 25 प्रतिशत अनिवार्य रूप से निर्धनों एवं आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों को प्रदान करते रहे हैं। इसी प्रकार से वे स्वैच्छिक रूप से अकिंचनों एवं निराश्रितों को खैरात के रूप में भिक्षा प्रदान करते रहे हैं। अनेक मुसलमान शासकों ने आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों के लिए समय–समय पर अनेक प्रकार की समाज सेवाओं का प्रावधान किया। उदाहरण के लिए, रोगियों के उपचार के लिए चिकित्सालय, बच्चों की शिक्षा के लिए शिक्षा संस्थाएं, यात्रियों के लिए बारादरियां एवं मुसाफिरखाने इत्यादि। मस्जिद से सम्बद्ध मदरसों के रूप में कार्य करने वाली शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना मुसलमान समुदाय में अत्यधिक प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त बूढ़ों, बीमारों और अपंगों की सहायता संयुक्त परिवार करते रहे हैं।

अकबर के शासनकाल में अनेक प्रकार के समाज सुधार किये गये। अकबर ने दीन इलाही चलाया। उसने अपने राज्य को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया। दास प्रथा को समाप्त किया और यात्री कर तथा जजिया कर लगाया ताकि कल्याण संबंधी कार्य सम्पादित किये जा सके। अकबर ने सती प्रथा के सम्बन्ध में भी यह आदेश दिया कि यदि कोई विधवा सती न होना चाहे तो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा। उसने द्विपत्नी विवाह पर रोक लगायी तथा विवाह की आयु की सीमा को बढ़ाया।

3. धार्मिक सुधार काल

1780 में बंगाल में सेरामपुर मिशन की स्थापना की गयी और धार्मिक प्रचारकों ने भारतीय जनता में यह प्रचार करना आरम्भ किया कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विविध क्षेत्रों में, विशेष रूप से बाल विवाह, बहुविवाह, बालिकाओं की हत्या, सती प्रथा, विधवा विवाह सम्बन्धी निषेधों जैसे क्षेत्रों में सुधार किये जाने की आवश्यकता है।

चार्टर ऐक्ट, 1813 के अंतर्गत शिक्षा के विकास का प्रावधान किया गया तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जाने वाले कार्य को स्वीकृति प्रदान की गयी। ईसाई मिशनरियों द्वारा पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। अच्छी सेवाओं तथा ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण भारतीयों की मनोवृत्ति में अनेक प्रकार की सामाजिक बुराइयों यथा सती प्रथा, विधवा, पुनर्विवाह पर निषेध, इत्यादि की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। यद्यपि सेरामपुर के मिशनरियों ने सती प्रथा के विरुद्ध कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था फिर भी राजा राम मोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने इस दिशा में आन्दोलन चलाया। राजा राम मोहन राय ने जातीय विभेदों एवं सती प्रथा को समाप्त करने की सलाह दी। एक धार्मिक प्रचारक, शिक्षा शास्त्री एवं सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उन्होंने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया। सती प्रथा के विरोध में उनका पहला लेख 1818 में प्रकाशित हुआ। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि 1829 में लार्ड विलियम बैटिंग द्वारा विनियमन अधिनियम (Regulatory Act) पारित कराते हुए सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया गया। 1815 में राजा राम मोहन राय

टिप्पणी

ने भारतीय समाज की स्थापना की जो बाद में 1828 में ब्रह्म समाज के रूप में हमारे सामने आया। ब्रह्म समाज द्वारा अकाल के शिकार लोगों के कल्याण, बालिकाओं की शिक्षा, विधवाओं की स्थिति में सुधार, जाति बंधनों के उन्मूलन तथा दान एवं संयम को प्रोत्साहित करने के क्षेत्र में अनेक प्रकार के कार्य किये गये। राजा राम मोहन राय के अनुयायियों के रूप में द्वारिकानाथ टैगोर, देवेन्द्र नाथ टैगोर तथा केशव चन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज की गतिविधियों को तीव्रगति से चलाया।

1894 में हिन्दू बालिकाओं के लिए पहली शिक्षा संस्था स्थापित की गयी। 1893 में केशव चन्द्र सेन ने महिलाओं की शिक्षा के कार्य को और आगे बढ़ाया। ईश्वरचन्द विद्यासागर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह सिद्ध करते हुए कि विधवा पुनर्विवाह हिन्दू धर्म ग्रन्थों में दिये गये निर्देशों के विरुद्ध नहीं है, इसके विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया और इन्हीं के अनवरत प्रयासों का, विशेष रूप से 1855 में सरकार से की गयी अपील का परिणाम था कि कट्टरपंथी हिन्दुओं के कठोर विरोध के बावजूद 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। न्यायाधीश रानाडे ने विधवा पुनर्विवाह के लिए घनीभूत प्रयास किये और 1861 में विधवा विवाह समिति (Widow's Marriage Association) की स्थापना की। उन्होंने 1870 में सार्वजनिक सभा की स्थापना में भी सहायता प्रदान की। शशीपदा बनर्जी ने भी महिलाओं की शिक्षा एवं विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित करते हुए उनकी स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया। वे ऐसे व्यक्ति थे जिनकी कथनी एवं करनी में कोई अन्तर नहीं था। उन्होंने दलित वर्ग के उत्थान के लिए उस समय प्रयास किए जबकि यह बात लोगों के मस्तिष्क में भी नहीं थी।

1872 में विवाह अधिनियम पारित किया गया जिसके अधीन पुनर्विवाह तथा अन्तर्जातीय एवं अन्तर्साम्प्रदायिक विवाहों का प्रावधान किया गया तथा एक विवाह और वयस्कता की प्राप्ति होने पर ही विवाह किये जाने पर बल दिया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों के धार्मिक अनुष्ठानों एवं रीति रिवाजों का पालन किये बिना किये गये विवाहों को वैध करार देना था।

1875 में मूलशंकर (स्वामी दयानन्द सरस्वती) द्वारा बम्बई में आये समाज की स्थापना की गयी।

1875 में सर सैयद अहमद खां ने जिनका अंग्रेजी शिक्षा में गहरा विश्वास था, अलीगढ़ में ऐंग्लो मोहम्मडन कालेज की स्थापना की जो अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में आज भी विद्यमान है। उन्होंने अपने विचारों को जनता तक पहुंचाने के लिए मोहम्मडन सोशल रिफार्मर नाम का एक पत्र भी निकाला। उन्होंने 1888 में मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन का प्रारम्भ किया।

1882 में पाण्डिया रमाबाई जो भारत की एक ईसाई मिशनरी थी, ने महिलाओं की स्थिति में सुधार करने के लिए आर्य महिला समाज की स्थापना की।

1881 में मैडम ब्लावात्स्की तथा कर्नल ऑल्कट ने मद्रास में थियासाफिकल सोसायटी की स्थापना की। यह संस्था 1893 तक समाज सुधार एवं समाज सेवा के क्षेत्र में तब तक कोई विशेष कार्य नहीं कर सकी जब तक कि श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने सक्रिय रूप से हिन्दू धर्म सिद्धान्तों को उजागर करना तथा अनुष्ठानों एवं संस्कारों के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करना नहीं प्रारम्भ किया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने बनारस में एक सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना भी की।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनन्य भक्त स्वामी विवेकानन्द ने 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जो अनेक प्रकार की सेवाएं आज भी प्रदान कर रहा है। यह मिशन "आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों की सेवा" के सिद्धान्त का आज भी अनुसरण कर रहा है।

1.2.1 इंग्लैंड में सामाजिक कार्य का इतिहास

आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करने का कार्य मानव समाज की स्थापना से ही होता आ रहा है। आदिकाल से ही धर्म गुरुओं, प्रचारकों तथा अनुयायियों ने दीन दुखियों की सहायता करने का उत्तरदायित्व प्रदान किया। 1520 में जर्मनी में मार्टिन लूथर ने भिक्षावृत्ति को रोकने तथा सभी पेरिसों में दीन दुखियों की सहायता हेतु भोजन, वस्त्र इत्यादि प्रदान करने के लिए दानपेटी की स्थापना किये जाने की अपील की। 1525 में उल्रिच ज्विन्गली (Ulrich Zwingli) ने इसी प्रकार की अपील स्विट्जरलैण्ड में की। 17वीं शताब्दी में फ्रांस में फादर विन्सेन्ट द पाल (Father Vicent de Paul) ने अनेक प्रकार के सुधार किये। चान्सलर बिस्मार्क (Chancellor Bismark) ने 18वीं शताब्दी में जर्मनी में अनेक प्रकार के सुधार संबंधी कार्यक्रम चलाये। इन सभी सुधारों के परिणामस्वरूप सामाजिक कार्य के विकास के लिए उचित भूमि तैयार हुई।

इंग्लैंड में सामाजिक कार्य के इतिहास को 4 श्रेणियों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है– (i) अविवेकपूर्ण दान का युग, (ii) सुपात्र निर्धनों के लिए सहायता एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्तियों की सहायता का युग, (iii) समन्वय एवं नियंत्रण का युग, तथा (iv) आय अनुरक्षण का युग।

(i) **अविवेकपूर्ण दान का युग**– 14वीं शताब्दी तक निर्धनों, अपंगों एवं अपाहिजों को भिक्षा देना एक पुण्य का कार्य समझा जाता था। चर्च का प्रमुख कार्य निर्धनों को दान देना तथा उनकी सहायता करना था। निर्धनों की सहायता सम्बन्धी कार्यों का उत्तरदायित्व मुख्य पादरियों, स्थानीय पादरियों और पादरियों के नीचे के तीसरे स्तर के डेकन्स के नाम से सम्बोधित किये जाने वाले अधिकारियों द्वारा किया जाता था। ईसाई धर्म को राज धर्म का स्तर प्राप्त होने के साथ–साथ मठों में निर्धनों के लिए संस्थाएं स्थापित की गयीं जो अनाथों, वृद्धों, रोगियों और अपंगों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं तथा बेबसों को शरण देती थीं। इससे भिक्षावृत्ति में वृद्धि हुई जिसे राज्य ने अच्छा नहीं समझा। निर्धनों की सहायता के एक ऐतिहासिक उल्लेख के अनुसार 1839 में इंग्लैंड तथा वेल्स की 1,53,57,000 जनसंख्या में निर्धनों पर किया जाने वाला व्यय 44,06,907 पाउण्ड था। निर्धन सहायता पर इतना अधिक व्यय किये जाने के बावजूद इससे कोई लाभ नहीं होता था।

(ii) **सुपात्र निर्धनों के लिए सहायता एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्तियों की सहायता का युग**– 1349 में किंग एडवर्ड III ने यह आदेश दिया कि शारीरिक दृष्टि से हृष्ट–पुष्ट प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई कार्य अवश्य करे तथा वह अपने पैरिस (निवास स्थान) को छोड़े बिना किसी भी ऐसे व्यक्ति के यहां काम करे जो उसे काम देना चाहे। यह पहला प्रयास था जिसके अधीन निर्धनता के लिए स्वयं निर्धन व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया गया तथा शारीरिक दृष्टि से सक्षम व्यक्तियों को दान एवं भिक्षा पर निर्भर रहने के बजाय काम करने के लिए

बाध्य किया गया। 1531 में हेनरी VIII के कानून (Statute of Henry VIII) के अधीन भिखारियों के लिए पंजीकरण आवश्यक कर दिया गया तथा उन्हें एक विशेष क्षेत्र के अंतर्गत भिक्षा मांगने के लिए लाइसेन्स दिये गये। इस कानून के अधीन नगर प्रमुख तथा शान्ति के न्यायाधीशों को यह आदेश दिया गया कि वे कार्य करने में असमर्थ वृद्धों एवं निर्धनों के प्रार्थना पत्र की जांच करें और उनका पंजीकरण करते हुए उन्हें एक निर्धारित क्षेत्र में भिक्षा मांगने के लिए लाइसेन्स दें। स्वस्थ शरीर वाले भिखारियों को कोड़े लगाने तथा उन्हें अपने जन्म स्थान पर जाकर मजदूरी करने की भी व्यवस्था की गयी। हेनरी द्वारा चर्च की सम्पत्ति के जब्त कर लिये जाने के कारण यह आवश्यक हो गया कि निर्धनों की दूसरे तरीकों से सहायता की जाये। 1532 में कारीगरों के कानून (Statute of Artificers) के अधीन मजदूरी और काम करने का समय निश्चित किया गया तथा बेकार घूमने वाले तथा आवारों को कठिन काम करने के लिए बाध्य किया गया। 1536 में ही पहली बार इंग्लैंड की सरकार के तत्वावधान में निर्धनों की सहायता के लिए एक योजना बनायी गयी जिसके अधीन ऐसे निर्धनों के जो 3 वर्ष से काउन्टी में रह रहे हो, उनकी पैरिसों में पंजीकरण की व्यवस्था की गयी। चर्चों द्वारा पैरिस के निवासियों से एकत्रित किये गये स्वेच्छापूर्ण दान से पैरिसों में पाये जाने वाले असमर्थ निर्धनों के पालन–पोषण के लिए धन की व्यवस्था की गयी। हृष्ट–पुष्ट भिक्षुकों को काम करने के लिए बाध्य किया गया और 5 से 14 वर्ष की आयु के बीच के निकम्मे बच्चों को उनके माता–पिता से लेकर प्रशिक्षण के लिए मास्टरों को दिया गया। निर्धनों के निरीक्षकों को नया कानून लागू करने हेतु नियुक्त किया।

इसी दौरान ज्ञातव्य उपयोगों का कानून (Statute of Charitable Uses) बनाया गया जिसके अधीन सभी प्रकार के दानों को एक वर्ग के अन्तर्गत परिभाषित किया गया। इसके अन्तर्गत बन्धकों की मुक्ति, अकिचनों की सहायता, शिक्षा के प्रावधान तथा अनाथों की देखभाल एवं प्रशिक्षण जैसे मसलों को सम्मिलित किया गया।

1576 में सुधारगृह (House of Correction) स्थापित किये गये जिनमें पटसन, पटुआ, लोहा एकत्रित किया जाता था और स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों, विशेष रूप से युवकों को कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता था। निर्धनों के लिए 1601 में एलिजाबेथ का निर्धन कानून (Elizabethen Poor Law) बनाया गया जिसे 43 एलिजाबेथ के नाम से जाना जाता था। इस कानून के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं–

(1) किसी भी ऐसे व्यक्ति का पंजीकरण न किया जाये जिसके सम्बन्धी, पति अथवा पत्नी, पिता अथवा पुत्र सहायता कर सकने की स्थिति में हो।

(2) निर्धन कानून के अन्तर्गत 3 प्रकार के निर्धनों को सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की गयी–

(क) स्वस्थ शरीर वाले निर्धन– स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों एवं भिक्षुओं को सुधारगृहों अथवा कार्यगृहों में काम करने के लिए बाध्य किया गया। नागरिकों को इस बात का आदेश दिया गया कि वे स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों को भिक्षा न दें। दूसरे गांवों से आये हुए निर्धनों को उन्हीं स्थानों पर भेजने की व्यवस्था की गयी जहां वे पिछले एक वर्ष से रह रहे थे। ऐसे स्वस्थ शरीर वाले भिक्षुओं अथवा आवारों को जो सुधारगृह में काम

करने से मना करे, जेल में डाल दिया जाये और उनके गले तथा पैरों में बंधन डाल दिये जाएं।

(ख) **शक्तिहीन निर्धन**– कार्य करने में असमर्थ रोगियों, वृद्धों, अंधों, गूंगों, बहरों, बच्चों और अल्प आयु के शिशुओं वाली माताओं को इस श्रेणी में सम्मिलित किया गया। इनके पास अपना निवास स्थान होने की स्थिति में उन्हें उनके घरों में ही रखकर निर्धनों के ओवरसियरों द्वारा खाना, कपड़ा, ईंधन इत्यादि के रूप में बाह्य सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की गयी। आवास विहीन होने की स्थिति में उन्हें सुधारगृहों में रखे जाने की व्यवस्था की गयी।

(ग) **आश्रित बच्चे**– अनाथ माता–पिता द्वारा परित्यक्त, निर्धन माता–पिता अथवा पितामह के बच्चों को इस श्रेणी के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। इन्हें ऐसे नागरिकों के पास रखे जाने की व्यवस्था की गयी जो सरकार से उनके पालन–पोषण के लिए कम से कम पैसे की मांग करें। 8 वर्ष या इससे अधिक आयु के ऐसे बच्चों को जो कुछ घरेलू अथवा अन्य काम कर सकते थे, उन्हें किसी नागरिक के साथ रख दिया जाता था। ऐसे बच्चे मालिकों का घरेलू व्यवसाय सीखते थे और 24 वर्ष की आयु तक मालिकों के साथ रहते थे। लड़कियों को घर की नौकरानी के रूप में रखा जाता था और उन्हें 21 वर्ष की आयु अथवा विवाह होने तक मालिकों के घर में रहना पड़ता था।

(3) यदि बच्चे अपने निर्धन माता–पिता या सम्बन्धियों के साथ रह सकें तो उन्हें उत्पादन के लिए आवश्यक ऐसी वस्तुएं प्रदान की जाएं जिनसे वे घरेलू उद्योग चला सकें। ऐसा सम्भव न होने की स्थिति में इन बच्चों को निर्धन गृहों में रखा जाये।

(4) निर्धनों के ओवरसियरों को इस कानून को लागू करने तथा इसका प्रशासन करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। इन ओवरसियरों की नियुक्ति शान्ति न्यायाधीशों या मजिस्ट्रेटों द्वारा की जाती थी। ये ओवरसियर निर्धनों से प्रार्थनापत्र लेते थे, उनकी सामाजिक दशाओं का पता लगाते थे और समुचित सहायता प्रदान करने के सम्बन्ध में आवश्यक निर्णय लेते थे।

(5) निर्धन सहायता हेतु वित्तीय व्यवस्था करने के लिए निर्धन कर लगाकर एक कोष स्थापित किया गया था जिसमें निजी दान, कानून का उल्लंघन करने पर किये गये जुर्माने इत्यादि से प्राप्त धनराशि जमा की जाती थी।

इस प्रकार 1601 का यह निर्धन कानून इंग्लैंड में 300 वर्षों तक जन सहायता के क्षेत्र में अपेक्षित मानदण्ड निर्धारित करते हुए निर्धनों को सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा।

देवरिज रिपोर्ट के आधार पर 1944 में अपंग व्यक्ति कानून (Disabled Persons Act) बना जिसके अधीन वाणिज्य तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वे अपंगों को रोजगार दें। 1944 में ही पेंशन एवं राष्ट्रीय बीमा मंत्रालय का गठन किया गया और इसके अधीन एक राष्ट्रीय सहायता परिषद् बनायी गयी जो सहायता प्रदान करने के लिए उत्तरदायी थी। 1945 में परिवार भत्ता कानून

(Family Allowance Act) पास किया गया। 1946 में राष्ट्रीय बीमा कानून (National Insurance Act) बनाया गया जिसके अधीन स्वास्थ्य अपंगता एवं वृद्धावस्था बीमा इत्यादि योजनाएं बनायी गईं। 1946 में कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम (Workmen's Compensation Act) बनाया गया। इसी वर्ष राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा कानून (National Health Service Act) बना। 1948 में राष्ट्रीय सहायता बोर्ड बना जिसका उत्तरदायित्व आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों के लिए जन सहायता का प्रावधान करना था। 1959 में राष्ट्रीय बीमा कानून में संशोधन किया गया। समान कर प्रणाली के स्थान पर सेवायोजक तथा कर्मचारी की अवकाश ग्रहण पेंशन के अंशदान तथा लाभों का एक क्रमिक कार्यक्रम (Graduated Programme) चलाया गया। अक्तूबर, 1966 में क्रमिक अंशदानों एवं लाभों के इसी सिद्धान्त को आय से सम्बन्धित पूरकों को प्रदान करने के लिए भी लागू किया गया और इसके अधीन बेकारी, बीमारी तथा विधवाओं को समान दर पर प्रदान किये जाने वाले लाभ क्रमिक दर पर दिए जाने लगे। अप्रैल 1976 में कर्मचारियों द्वारा दिये जाने वाले अंशदान को उनकी आय से पूर्णरूपेण सम्बद्ध कर दिया गया और अंशदानों की समान एवं क्रमिक दरों को समाप्त कर दिया गया।

1975 में सामाजिक सुरक्षा लाभ अधिनियम (Social Security Benefit Act) बनाया गया जो इंग्लैंड के निवासियों को व्यापक सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हुए समाज कल्याण के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 1986 में सामाजिक सुरक्षा अधिनियम पारित किया गया था। इसके अधीन सम्पूर्ण व्यवस्था में व्यापक सुधार किये गये हैं इनमें राज्य की आय से सम्बन्धित पेंशन योजना (State Earnings Related Pension Scheme) वैयक्तिक एवं व्यावसायिक पेंशन योजनाओं को प्रोत्साहित करने वाली नवीन व्यवस्थाओं तथा पारिवारिक आय पूरक, पूरक लाभ एवं आवास लाभ के स्थान पर आय से संबंधित अनेक प्रकार के लाभों का प्रदान किया जाना उल्लेखनीय है। अप्रैल 1987 में सामाजिक कोष से मातृ एवं दाह संस्कार पर होने वाले व्यय हेतु धनराशि दिये जाने का प्रावधान किया गया।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा वैयक्तिक समाज सेवाएं तथा सामाजिक सुरक्षा इंग्लैंड में पाई जाने वाली समाज कल्याण व्यवस्था के प्रमुख अंग हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अंतर्गत सभी नागरिकों को उनकी आय पर ध्यान दिये बिना व्यापक रूप से चिकित्सकीय सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। स्थानीय प्राधिकरण वैयक्तिक समाजसेवी एवं ऐच्छिक संगठन वृद्धों असमर्थों तथा देखभाल की आवश्यकता रखने वाले बच्चों को सहायता एवं परामर्श प्रदान करते हैं। सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था वित्तीय आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों को एक मूलभूत जीवन स्तर का आश्वासन प्रदान करती है और इसके लिए इस व्यवस्था के अधीन रोजी–रोटी कमाने में असमर्थता की अवधि में आय प्रदान की जाती है तथा परिवारों को सहायता दी जाती है और असमर्थता के कारण होने वाली अतिरिक्त आय का वहन करने के लिए सहायता प्रदान की जाती है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का दायित्व केन्द्र सरकार द्वारा प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किया जाता है। यह सहायता इसके एजेण्टों के रूप में कार्य करने वाले स्वास्थ्य प्राधिकरणों एवं बोर्डों द्वारा दी जाती है। केन्द्र सरकार सामाजिक सुरक्षा के लिए भी प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा प्रदान की जाने वाली वैयक्तिक समाज सेवाओं के क्षेत्र में केन्द्र सरकार अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायित्व वहन करती है।

टिप्पणी

इंग्लैंड में सामाजिक कार्य शिक्षा का विकास

इंग्लैंड में 1950 तक सामाजिक कार्य शिक्षा का शुभारम्भ कहीं भी नहीं हो पाया था। सामाजिक कार्य के क्षेत्र में प्रशिक्षित जनशक्ति बहुत कम थी क्योंकि प्रशिक्षण की सुविधाएं ही उपलब्ध नहीं थीं, किन्तु मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सकीय सामाजिक कार्य बच्चों की देखरेख परिवीक्षा इत्यादि विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते थे।

कार्नेजी की पहली रिपोर्ट (1947) जो सामाजिक कार्यकर्ताओं के सेवायोजन एवं प्रशिक्षण से संबंधित थी, के अंतर्गत इस बात की संस्तुति की गयी कि किसी विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप से चलने वाला सामाजिक कार्य विद्यालय खोला जाये।

संस्तुति के आधार पर एक परिषद का गठन किया गया। 1950 में इस परिषद ने एक और उपसमिति बनायी जिसे एक वर्षीय वैयक्तिक सामाजिक कार्य सम्बन्धी परा प्रमाणपत्र (Post Certificate) के लिए पाठ्यक्रम बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इस समिति ने इस मान्यता के आधार पर एक सामान्य पाठ्यक्रम बनाया कि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले सभी सामाजिक कार्यकर्ताओं को एक सी मूलभूत निपुणताओं की आवश्यकता होती है। सामाजिक कार्यकर्ताओं को मानव व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान सर्वप्रथम प्रदान किया जाना चाहिए क्योंकि वे चाहे जहां कार्य करें उन्हें एक ही प्रकार के व्यक्ति मिलेंगे।

कार्नेजी ट्रस्ट की दूसरी रिपोर्ट 1951 में प्रकाशित हुई। इसके अंतर्गत इस विद्यालय का नाम बदल कर सामाजिक कार्य विद्यालय के स्थान पर व्यावहारिक समाज अध्ययन संस्थान (Institute of Applied Social Studies) कर दिया गया।

1951 में टाविस्टाक क्लीनिक ने मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए एक वर्ष का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाने का निर्णय लिया। 1959 तक 24 समाज विज्ञान विभागों में से 6 में व्यावसायिक समाज, कार्य शिक्षा प्रदान की जाने लगी थी।

पहला द्विवर्षीय स्नातकोत्तर सामाजिक कार्य शिक्षा का कार्यक्रम 1966 में यार्क यूनिवर्सिटी में प्रारम्भ किया गया। ससेक्स विश्वविद्यालय में 14 महीने के शैक्षिक पाठ्यक्रम को दो वर्ष का बना दिया गया। इसी प्रकार नाटिंघम विश्वविद्यालय में भी दो वर्षीय स्नातकोत्तर सामाजिक कार्य पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया। 1970 के अंत तक सामाजिक कार्य की सम्पूर्ण शिक्षा व्यक्ति, समूह तथा समुदाय को आधार मानकर सामान्य रूप से प्रदान की जाती थी। 1975 में इंग्लैंड के 35 विश्वविद्यालयों में सामाजिक प्रशासन तथा सामाजिक कार्य के विभाग थे।

1.2.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक कार्य का इतिहास

अमेरिका में विभिन्न युगों में निर्बल एवं शोषित वर्गों को प्रदान की जाने वाली सहायता की प्रमुख विशेषताओं के आधार पर अमरीकी सामाजिक कार्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. दान काल
2. स्थानीय सहायता काल

3. राज्य सहायता काल
4. अधीक्षण समन्वय एवं प्रशिक्षण काल
5. युवकों के साथ कार्य का काल
6. आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों के साथ कार्य करने एवं रहने का काल
7. सामाजिक सुरक्षा काल
8. निर्धनता उन्मूलन काल

1. **दान काल**– 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही इंग्लैंड से आकर अमेरिका में बसने वाले लोग वहां की प्रथाओं, परम्पराओं एवं कानूनों को भी अपने साथ लाये। वे अपने अतीत के अनुभवों के आधार पर बेकारी, गरीबी तथा कामचोरी से इतना अधिक डरते थे कि वे बेकारी और कामचोरी को एक पाप और अपराध मानते थे, किन्तु हर समाज की तरह अमेरिका में भी ऐसे अनेक वर्ग थे, उदाहरण के लिए– अनाथ बालक, विधवाएं, बीमार, निराश्रित बूढ़े, अशक्त व्यक्ति, इत्यादि जिन्हें सहायता की आवश्यकता थी। इन लोगों की सहायता परम्परागत ढंगों का प्रयोग करते हुए की जाती थी। निर्धनों के लिए चिकित्सालय खोले गये। इन चिकित्सालयों में निर्धनों के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का उपचार किया जाता था।

2. **स्थानीय सहायता काल**– उपनिवेशों द्वारा सिद्धान्ततः एलिजाबेथ के निर्धन कानून को अपना लिया गया और इस प्रकार निर्धनों के भरण–पोषण का उत्तरदायित्व कस्बों को सौंप दिया गया। न्यूयार्क में रेने सेलसेविक में भिक्षुक गृह (Alms House) 1657 में स्थापित किया गया तथा प्लाईमाउथ कालोनी द्वारा स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों के लिए पहली कार्यशाला के निर्माण का आदेश 1658 में दिया गया। कालांतर में ऐसे भिक्षुकगृहों एवं कार्यशालाओं को कुछ उपनिवेशों के बड़े शहरों में स्थापित किया गया और इस प्रकार अकिंचनों के भरण–पोषण का उत्तरदायित्व सामान्यतया या तो कस्बों अथवा काउन्टियों द्वारा ग्रहण किया जाता था। मैसोचुसेट्स के विधान मण्डल में 1699 में कानून बना जिसके अधीन आवारा, भिखारियों एवं अव्यवस्थित लोगों को सुधारगृहों में रखते हुए काम में लगाने का प्रावधान किया गया।

   1823 में न्यूयार्क में जेवीएन येट्स को निर्धन कानूनों की क्रियाविधि से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। येट्स द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रतिवेदन में निर्धनों के दो वर्गों का उल्लेख किया गया–

   (1) ऐसे निर्धन जिन्हें स्थायी सहायता की आवश्यकता हो।

   (2) अस्थायी निर्धन।

   येट्स रिपोर्ट में ये संस्तुतियां की गईं।

   (1) प्रत्येक काउण्टी में एक सेवायोजन गृह की स्थापना की जाये जिसके द्वारा बच्चों की शिक्षा और कृषि कार्य के लिए भूमि प्रदान की जाये।

   (2) सशक्त निर्धनों तथा आवारों के लिए कार्यगृह उपलब्ध कराया जाये जहां पर जबरदस्ती कठिन काम दिया जाये।

(3) निर्धन कल्याण के लिए धनराशि एकत्रित करने के उद्देश्य से शराब बनाने वाले कारखानों पर उत्पादन कर लगाया जाये।

(4) न्यूयार्क की एक काउण्टी में एक वर्ष के निवास के आधार पर वैधानिक बन्दोबस्त करने का नियम बनाया जाये।

(5) निष्कासन आदेशों तथा निर्धन कानूनों से सम्बन्धित मुकदमों में दिये गये फैसलों के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था समाप्त की जाये।

(6) 18 से 50 वर्ष के बीच की आयु तथा स्वस्थ शरीर वाले किसी भी व्यक्ति को अकिचन की श्रेणी में न रखा जाये।

(7) गलियों में भीख मांगने वाले व्यक्तियों तथा राज्य के अन्दर अकिचनों को लाने वाले लोगों को दण्ड दिया जाये।

येट्स रिपोर्ट का अनुसरण करते हुए मैसाचुसेट्स, न्यूयार्क तथा अन्य कई राज्यों में अनाथालयों एवं कार्यगृहों की स्थापना की गयी। इस रिपोर्ट के तुरन्त बाद 1824 में न्यूयार्क ने काउण्टी निर्धन गृह कानून बनाया गया। इसके द्वारा अनाथालयों के प्रबन्ध का कार्य कस्बों से लेकर काउन्टियों को दे दिया गया।

3. **राज्य सहायता काल**– सर्वप्रथम 1675 में मैसाचुसेट्स राज्य ने भिखारियों के आवश्यक व्ययों के भुगतान का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। इस उत्तरदायित्व के अधीन ऐसे व्यक्तियों को सहायता प्रदान की जाती थी जो थोड़े समय पूर्व ही इस राज्य में आये हुए होते थे अथवा जिन्हें बाहर जाने की चेतावनी दी गयी होती थी। बाद में अन्य राज्यों ने भी इस उत्तरदायित्व को ग्रहण किया। कालान्तर में राज्यों ने ऐसी संस्थाओं को वित्तीय सहायता देना बंद कर दिया जो बाधितों की सहायता करती थी क्योंकि इनकी संख्या अत्यधिक बढ़ गयी थी। मानसिक रूप से बीमारों की चिकित्सीय देखभाल की व्यवस्था सर्वप्रथम फिलाडेल्फिया के भिक्षागृह में 1732 में की गयी। तदुपरान्त 1753 में पेन्सिलवैनिया के एक चिकित्सालय में भी यह सुविधा उपलब्ध करायी गयी। वर्जीनिया की विलियन्सबर्ग पूर्वी राज्य ईस्टर्न स्टेट हास्पिटल ऐसी पहली संस्था थी जिसकी स्थापना 1773 में मानसिक रूप से असामान्य व्यक्तियों के लिए की गयी थी। बहरों के लिए पहला सरकारी आवासीय स्कूल 1823 में केन्टकी में डैनविले में खोला गया। 1824 में लेक्सिगटन में ईस्टर्न ल्यूनेटिक असाइलम की स्थापना की गयी। मैसाचुसेट्स के असाइलम फार द ब्लाइण्ड (जिसे बाद में परकिन्स इन्स्टीट्यूट तथा मैसाचुसेट्स स्कूल फार द ब्लाइण्ड के नाम से जाना गया) तथा 1832 में न्यूयार्क इन्स्टीट्यूशन फार द ब्लाइण्ड (जिसे बाद में परकिन्स इस्टीट्यूट तथा मैसाचुसेट्स स्कूल फार द ब्लाइण्ड के नाम से जाना गया) तथा 1832 में न्यूयार्क इन्स्टीट्यूशन फार द ब्लाइण्ड (जिसे बाद में इन्स्टीट्यूशन फार द एजूकेशन ऑफ ब्लाइण्ड के नाम से जाना गया) तथा 1833 में फिलाडेल्फिया ने अन्धों के लिए एक अन्य संस्था के खोले जाने से प्रेरित होकर ओहियो ने सर्वप्रथम 1837 में एक ऐसी जनसंस्था की स्थापना की जिसकी सम्पूर्ण वित्तीय व्यवस्था राज्य द्वारा की गयी। इण्डियाना ऐसा पहला राज्य था जिसने अकिचन अंधों के भरण–पोषण के लिए 1840 में एक विशेष कानून बनाया। बाद में इसी

टिप्पणी

प्रकार के कानून अन्य राज्यों द्वारा भी बनाये गये। मूर्खों एवं मंदबुद्धि युवकों के लिए राज्य द्वारा संचालित स्कूल की सर्वप्रथम स्थापना मैसाचुसेट्स के साउथ बुस्टन में 1848 में की गयी। 1851 में न्यूयार्क में मंदबुद्धि बच्चों के लिए राज्य द्वारा एक विद्यालय की स्थापना की गयी। 1854 में पैन्सिलवैनिया राज्य द्वारा जर्मन टाउन में चल रहे मूर्खों के लिए एक निजी स्कूल को सहायता प्रदान की गयी। 1860 में कैलीफोर्निया में बहरों के साथ अंधों के लिए पहले मिश्रित स्कूल की स्थापना की गयी। 1876 में न्यायालयों द्वारा अपराधों के लिए दोषी ठहराये गये नवयुवकों का सुधारगृह न्यूयार्क के अल्मीरा में स्थापित किया गया तथा महिलाओं की पहली जेल की स्थापना मैसाचुसेट्स के शेरबोर्न में 1879 में की गयी।

4. **अधीक्षण समन्वय एवं प्रशिक्षण काल**– मैसाचुसेट्स ने 1863 में राज्य द्वारा संचालित सभी दान संस्थाओं के अधीक्षण के लिए स्टेट बोर्ड ऑफ चैरिटीज की स्थापना की। दूसरे राज्यों ने भी ऐसा ही किया। अधीक्षण एवं नियंत्रण सम्बन्धी उत्तरदायित्व 1925 में लोक कल्याण विभाग (Department of Public Welfare) को सौंपे गये। इस विभाग का नाम 1927 में बदल कर राज्य कल्याण विभाग (State Department of Welfare) रखा गया।

   1870 और 1873 की मंदियों के परिणामस्वरूप तत्कालीन सहायता व्यवस्था की अनेक कमियां उजागर हुईं। 1870 में बफैलो के रेवरेण्ड एस एच गुर्टीन नाम के पादरी ने न्यूयार्क में बफैलो चेरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी की स्थापना की। इस समिति की मान्यता यह थी कि निर्धन जन सहायता लाभ भोगी के लिए हानिकारक है। 1908 में पिट्सबर्ग में एक काउन्सिल ऑफ सोशल एजेन्सीज स्थापित की गयी जिसका कार्य समाज कल्याण के क्षेत्र में नियोजन एवं समन्वय स्थापित करना था और इसीलिए इसका नाम काउन्सिल ऑफ सोशल एजेन्सीज पड़ा। किन्तु इन काउन्सिलों के लिए धन की व्यवस्था करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयां आईं। इसीलिए 1913 में क्लीवलैण्ड में निजी क्षेत्र के दान सम्बन्धी सभी कार्यों की संयुक्त वित्तीय व्यवस्था करने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। इसके परिणामस्वरूप सामुदायिक तिजूरी (Community Chest) की विचारधारा सामने आयी। इन सामुदायिक चेस्टों का कार्य लोगों से अंशदान लेते हुए एक कोष एकत्रित करने के पश्चात् इसे समाज कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं को वितरित करना था।

5. **युवकों के साथ कार्य का काल**– इंग्लैंड में 1844 में जार्ज विलियम्स द्वारा स्थापित किये गये यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन की सफलता से प्रभावित होकर कैप्टन जे.वी. सलीवान ने अमेरिका में 1851 में बूस्टन में पहली अमरीकी यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन की स्थापना की जिसका कार्य अमरीकी युवकों की अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इसी प्रकार अमेरिका में 1886 में ल्यूक्रीशिया ब्वायड पहली यंग वीमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन की स्थापना बूस्टन में द्वारा की गयी। 1910 में अमेरिकन ब्वाय स्काउट्स का गठन किया। कैम्प फायर गर्ल्स की स्थापना 1911 में की गयी। 1912 में गर्ल्स गाइड को स्थापित किया गया।

6. **आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों के साथ कार्य करने एवं रहने का काल**— प्रारम्भिक काल में अमेरिका पहुंचने वाले अप्रवासियों की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। ये अप्रवासी विभिन्न वंशों एवं पृष्ठभूमियों के थे और विभिन्न प्रकार की भाषाएं बोलते थे। इनमें पारस्परिक मेलजोल नगण्य था। लंदन में निवासियों में पड़ोस की भावना स्थापित करने के उद्देश्य से कैनन सेम्युअल वार्नेट द्वारा स्थापित टवायनवी हाल के अनुभवों से प्रेरित होकर चार्ल्स वी स्टोवर ने नेबरहुड गिल्ड ऑफ न्यूयार्क सिटी की 1887 में स्थापना की। इसे वर्तमान समय में यूनिवर्सिटी सेटिलमेट हाउस के नाम से जाना जाता है। बाद में मिस जेन ऐडम्स ने शिकागो में 1889 में हाल्स्टेड स्ट्रीट में एक हल हाउस की स्थापना की। इसकी सफलता के परिणामस्वरूप न्यूयार्क में कालेज सटिलमेट फॉर वीमेन, बूस्टन में ऐण्डोवर हाउस (जिसे बाद में साउथ एण्ड हाउस का नाम दे दिया गया), शिकागो में शिकागो वीमेन्स, न्यूयार्क में हेन्री स्ट्रीट सेटिलमेट तथा कोआपरेटिव सोशल सेटिलमेट (जिसे बाद में ग्रीनविच हाउस के नाम से सम्बोधित किया गया), शिकागो में द यूनिवर्सिटी शिकागो सेटिलमेट न्यूयार्क में गेलार्ड व्हाइट यूनियन सेटिलमेंट क्लीवलैण्ड में गुडरिच हाउस, पिट्सबर्ग में आईरीन कॉफमैन सेटिलमेट, सैन्फ्रान्सिस्को में टेलीग्राफ हिल नेबरहुड हाउस तथा इण्डियानापॉलिस में प्लेनर हाउस की स्थापना हुई।
7. **सामाजिक सुरक्षा काल**— अमरीकी संविधान में समाज कल्याण के लिए कोई स्थान नहीं था। महान मंदी की स्थिति में बहुत बड़ी संख्या में बेकार व्यक्ति निजी कल्याण संस्थाओं से सहायता की अपेक्षा करने लगे। स्थानीय स्तर पर निजी क्षमता में कार्य करने वाले दातव्य संगठनों ने इन बेकारों की सहायता करने का प्रयास किया किन्तु समस्या इतनी गम्भीर थी कि इन संस्थाओं के सभी वित्तीय संसाधन समाप्त हो गये। इन परिस्थितियों में अमरीकी कांग्रेस ने 1932 में आपातकालीन सहायता एवं निर्माण अधिनियम (Emergency Relief and Construction Act) को पारित किया। इस अधिनियम के अधीन पुनर्निर्माण वित्त निगम (Reconstruction Finance Corporation) को राज्यों, काउन्टियों और शहरों को सहायता कार्य तथा जन कार्य सहायता परियोजनाओं को ऋण देने का अधिकार प्रदान किया गया।
8. **निर्धनता उन्मूलन काल**— 1961 के बाद प्रारम्भ होने वाले इस काल की प्रमुख विशेषता निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम है। अमेरिका के समाज वैज्ञानिकों द्वारा इस बात को उजागर किये जाने के कारण कि अमरीकी समाज में भी निर्धनता है, इस समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और 1960 के पश्चात संघीय सरकार निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों को चलाने के क्षेत्र में आगे आयी। निर्धनता को दूर करने की दृष्टि से समय–समय पर कानून बनाये गये। 1961 में क्षेत्र विकास अधिनियम 1962 में जनशक्ति विकास एवं प्रशिक्षण अधिनियम तथा 1964 में आर्थिक अवसर अधिनियम पारित किये गये। आर्थिक अवसर अधिनियम निर्धनता उन्मूलन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इसके अधीन युवा कार्यक्रम नगरीय एवं ग्रामीण सामुदायिक क्रिया कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता उन्मूलन के विशिष्ट कार्यक्रम, सेवायोजन एवं निवेशों के लिए प्रलोभन कार्यक्रम तथा कार्य अनुभव संबंधी कार्यक्रम चलाये गये।

टिप्पणी

निर्धनता उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों के साथ–साथ काली प्रजाति के लोगों को भी विशेष संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। धनात्मक समर्थन (Positive Affirmation) का कार्यक्रम चलाते हुए काली प्रजाति के लोगों को कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार सेवायोजन में प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वैदिक काल में कितने प्रकार के सामाजिक कार्य स्पष्ट रूप से संपादित किए जाते थे?

   (क) पांच (ख) चार

   (ग) दो (घ) तीन

2. किस शताब्दी तक निर्धनों, अपंगों एवं अपाहिजों को भिक्षा देना पुण्य का कार्य समझा जाता था?

   (क) 16वीं (ख) 15वीं

   (ग) 14वीं (घ) 13वीं

1.3 भारत में सामाजिक कार्य व्यवसाय : मूल्यांकन एवं विकास

सामाजिक कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान एवं मानव सम्बन्धों की निपुणता पर आधारित है। यह व्यक्तियों की अकेले या समूह या समुदाय में सहायता करता है ताकि वे सामाजिक व वैयक्तिक संतुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें। फ्रीडलैण्डर ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि सामाजिक कार्य एक व्यवसाय है। सामान्यतया व्यवसाय के अन्तर्गत औषधि, कानून, प्रौद्योगिकी को सम्मिलित करते हैं और सामाजिक कार्य ने यह रूप किस प्रकार से प्राप्त किया है अथवा उन विशेषताओं को जो इसे व्यवसाय का स्वरूप प्रदान करती है किस प्रकार प्राप्त किया है, यह चर्चा का विषय बन गया है। सामाजिक कार्य का व्यावसायिक रूप उस समय से प्रारम्भ हुआ जब यह अनुभव किया गया कि वर्तमान सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विशेष ज्ञान एवं निपुणताओं की आवश्यकता है। सहानुभूति, सद्भावना, प्रेम आदि गुणों के साथ–साथ विभिन्न निपुणताएं होने पर ही इन समस्याओं से निपटा जा सकता है। इन निपुणताओं तथा ज्ञान का विकास प्रशिक्षण द्वारा ही सम्भव है तथा क्योंकि लोगों की सहायता करना एक आवश्यक सामाजिक कार्य है अतः जो लोग इसमें लगे हैं उन्हें उनकी सेवा के बदले में भुगतान किया जाये।

व्यवसाय का अर्थ (Definition of professoin)

व्यवसाय एक ऐसा कार्य है जिसका उद्देश्य जीविका उपलब्ध कराना है, जिसमें विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता होती है और उस व्यवसाय को करने वाले का व्यवहार दूसरों से भिन्न होता है। जोन्स, ब्राउन तथा ब्रैडशा के अनुसार व्यवसाय एक वृत्ति है जिसमें उच्चतर शैक्षिक योग्यता–एक डिग्री, डिप्लोमा या सर्टिफिकेट की आवश्यकता होती है। प्रोफेसर गोरे के अनुसार व्यवसाय को ज्ञान और निपुणताओं, कार्य करने के क्षेत्र, एक

आचार संहिता तथा कुछ सीमा तक व्यावसायिक सदस्यों के संगठन के रूप में समझा जा सकता है।

टिप्पणी

मिलरसन (Millerson) ने 21 ऐसे लेखों जिनमें व्यवसाय के सम्बन्ध में लिखा गया था, का अध्ययन करने के पश्चात् व्यवसाय की निम्न विशेषताओं का वर्णन किया है–

1. सैद्धान्तिक ज्ञान पर आधारित निपुणताएं।
2. प्रशिक्षण तथा वृत्ति का प्रावधान।
3. सदस्यों की सक्षमता (Competence) का परीक्षण।
4. संगठन।
5. व्यावसायिक आचरण संहिता।
6. परोपकारी सेवा।

फ्रीडलैण्डर ने व्यवसायों की शिक्षा के विकास के 3 चरणों का उल्लेख किया है–

1. अनुभवी अध्यापकों एवं अभ्यासकर्ताओं की देखरेख में प्रशिक्षण।
2. शिक्षा के लिए शिक्षा संस्थानों की स्थापना।
3. विश्वविद्यालयों द्वारा व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं को मान्यता देना और उन्हें अपने शैक्षिक एवं एकैडमिक कार्यक्रम का भाग बनाना।

फ्लेक्सनर (Flexner) ने व्यवसाय के 6 गुणों का उल्लेख किया है–

1. वैयक्तिक उत्तरदायित्व के साथ ज्ञान और विज्ञान का समावेश।
2. व्यवसाय के सदस्यों को इस बात का पूरा ज्ञान हो कि व्यवसाय सम्बन्धी क्या नवीन ज्ञान सामने आ रहा है और इस नवीन ज्ञान को समझने के लिए निरन्तर सम्मेलन आयोजित किये जाएं।
3. व्यवसाय को केवल सैद्धान्तिक ही नहीं होना चाहिए। इसका व्यावहारिक रूप भी हो।
4. व्यवसाय में एक प्राविधिक ज्ञान का परस्पर सम्बन्धित भंडार हो और यह प्राविधिक ज्ञान व्यक्तियों को एक विशिष्ट शैक्षिक पद्धति द्वारा सिखाया जा सकता हो।
5. व्यवसाय को समाज से मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। व्यवसाय से संबंधित व्यक्तियों में सामूहिक भावना का होना आवश्यक है। व्यावसायिक कार्यकर्ताओं को अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को कुशलता से निभाना चाहिए।
6. व्यवसाय का सम्बन्ध साधारण जनता से होना चाहिए, किसी व्यक्ति या समूह विशेष से नहीं। व्यवसाय को सामाजिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति का साधन बनने का प्रयास करना चाहिए।

जान्सन (Johnson) ने व्यवसाय में निम्न विशेषताओं का होना आवश्यक बताया है–

1. बौद्धिक प्रशिक्षण से अर्जित विशेष सक्षमता जो न केवल यान्त्रिक कुशलताएं बल्कि अन्य योग्यताएं भी विकसित करती हो और जिसके लिए स्वतन्त्र एवं दायित्वपूर्ण निर्णय का प्रयोग किया जाना अनिवार्य हो।

टिप्पणी

2. शैक्षिक अभिगम पर आधारित ज्ञान एवं कौशल के प्रयोग के साथ एक व्यवस्थित एवं विशेषीकृत शैक्षणिक विज्ञान के माध्यम से संचारित किये जाने योग्य अलग से पाई जाने वाली प्रविधियां।
3. व्यावसायिक कार्यकर्ता जिन्हें सामान्य बातों का ज्ञान हो और जो उच्च मानकों के विकास तथा सामान्य हितों की रक्षा के लिए एक व्यावसायिक संघ के रूप में संगठित हों।
4. व्यावसायिक संघ एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में व्यवसाय के लिए सेवा मानकों के विकास का ध्यान रखता हो। जनता के हित में प्रयोग में लाए जाने के लिए एक नीतिशास्त्र संहिता, विशिष्ट शिक्षा के प्रावधान और विशेषीकृत ज्ञान एवं निपुणता की व्यवस्था।
5. एक व्यावसायिक व्यक्ति का अपने लिए कुछ निर्धारित मानकों के लिए एक ही क्षेत्र के अन्य लोगों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी तथा जिम्मेदार होना।

सामाजिक कार्य एक व्यवसाय के रूप में (Social work as a profession)

यहां पर उन गुणों का विवेचन किया जा रहा है जो सामाजिक कार्य व्यवसाय में उपलब्ध हैं–

1. क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक ज्ञान (Systematic and Scientific Knowledge)

सामाजिक कार्य वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। यह किसी कल्पना में विश्वास नहीं रखता। यद्यपि इसका अधिकांश ज्ञान अन्य विज्ञानों से लिया गया है परन्तु वह पूरी तरह से परखा हुआ है। सामाजिक कार्य में निम्न प्रमुख क्षेत्रों का ज्ञान कराया जाता है–

(1) मानव व्यवहार तथा सामाजिक पर्यावरण व्यक्तित्व, इसके कारक, सिद्धान्त, सामाजिक पक्ष तथा मनोचिकित्सीय पक्ष, मानव सम्बन्ध समूह, सामाजिक संस्थाएं, समाजीकरण, सामाजिक नियंत्रण, पर्यावरण प्रौद्योगिकी आदि।

(2) सामाजिक कार्य की प्रणालियां तथा प्रविधियां, वैयक्तिक सामाजिक कार्य, सामूहिक सामाजिक कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक क्रिया तथा समाज कार्य शोध।

(3) सामाजिक कार्य के क्षेत्र बाल विकास, महिला सशक्तिकरण, युवा कल्याण, वृद्धों का कल्याण, श्रम कल्याण, ग्राम्य विकास, नगरीय विकास, अनुसूचित एवं जनजातीय कल्याण, परिवार कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, अपराधी सुधार आदि।

(4) सामाजिक समस्याएं, अपराध, बाल अपराध, मद्यपान, मादक द्रव्य व्यसन, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेरोजगारी, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय एकीकरण आदि।

सामाजिक कार्य के विशिष्ट सिद्धान्त हैं– वैयक्तीकरण का सिद्धान्त, स्वीकृति का सिद्धान्त, सेवार्थी के आत्म निश्चय का सिद्धान्त, गोपनीयता का सिद्धान्त, आत्मप्रकटन का सिद्धान्त आदि। व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता को मानव व्यवहार का समुचित ज्ञान होता है। उसमें सुनने तथा अवलोकन करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। उसमें परानुभूति की योग्यता होती है। उसमें सेवार्थी की भावनाओं को समझने की क्षमता होती

टिप्पणी

है। वह सेवार्थी की योग्यता, गरिमा एवं महत्ता को स्वीकार करता है। उसका यह दृढ़ विश्वास होता है कि व्यक्ति में समस्या समाधान की क्षमता होती है, केवल उसे इसके बारे में जागरूक करना होता है।

2. निपुणताएं, प्रविधियां तथा यंत्र (Skills, techniques and tools)

सामाजिक कार्यकर्ता में निपुणताओं का विकास शिक्षण तथा प्रशिक्षण द्वारा किया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ता कार्यक्रम की निपुणता द्वारा ही सेवार्थी के साथ उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है तथा किसी प्रकार्यात्मक समझौते पर पहुंचता है। वह सामाजिक स्थितियों के विश्लेषण में निपुण होता है। उसमें व्यक्तियों एवं समूहों की भावनाओं को समझने तथा उनसे निपटने की क्षमता पायी जाती है। वह सेवार्थी को आत्मनिर्भर बनाने में निपुण होता है। वह समुदाय तथा संस्था के स्रोतों एवं साधनों को समयानुसार उपयोग में लाता है। उसमें सबसे बड़ी निपुणता सम्बन्धों के रचनात्मक उपयोग की होती है। वह आत्मबोधन, प्रत्यक्षीकरण समस्या विश्लेषण, व्यावसायिक सम्बन्धों का प्रयोग तथा निदान व उपचार के तरीकों के उपयोग में दक्ष होता है। कार्यकर्ता वैयक्तिक तथा सामूहिक आत्मा की चेतना के जागरण (Individual and Group Conscientization), संगठन तथा नियोजन, प्रति व्यवस्था (Counter System) निर्माण तथा प्रशासनिक प्रविधियों का प्रयोग करता है। कार्यकर्ता के पास 3 प्रमुख यंत्र होते हैं– (1) स्वयं का प्रयोग, (2) कार्यक्रम नियोजन, (3) सेवार्थी के साथ सम्बन्ध। इन यंत्रों का उपयोग वह समझ बूझ कर करता है।

3. सामाजिक कार्य शिक्षा (Social Work Education)

सामाजिक कार्य की शिक्षा की अलग से व्यवस्था की गई है। इसकी शिक्षा स्नातक, स्नातकोत्तर, पी.एचडी स्तर की दी जाती है। यह शिक्षा विश्वविद्यालयों के विभागों तथा स्वतन्त्र रूप से कार्यरत सामाजिक कार्य विद्यालयों के माध्यम से दी जाती है। सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियों को सामाजिक कार्य अभ्यास के लिए विभिन्न संस्थाओं में भेजा जाता है। उन्हें चिकित्सालयों, श्रम कल्याण केन्द्रों, आवास गृहों, विद्यालयों, मलिन बस्तियों, सामुदायिक विकास केन्द्रों, निर्देशन केन्द्रों आदि में क्षेत्रीय कार्य करने के लिए भेजा जाता है।

4. व्यावसायिक संगठन (Professional Organization)

जैसे–जैसे सामाजिक कार्य का विकास हुआ, वैसे–वैसे इसके व्यावसायिक संगठन भी बनते गये। इन व्यावसायिक संगठनों का कार्य सामाजिक कार्य व्यवसाय के स्तर को ऊंचा उठाना तथा कार्यकर्ताओं में उच्चतर योग्यताओं, क्षमताओं एवं निपुणताओं का विकास करना है। ये संगठन कार्यकर्ताओं के हितों की रक्षा करते हैं तथा व्यावसायिक व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं। अमेरिका में पाए जाने वाले प्रमुख संगठन ये हैं– अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ सोशल वर्कर्स, नेशनल एसोसिएशन ऑफ सोशल वर्कर्स, अमेरिकन हास्पिटल सोशल वर्क्स एसोसिएशन, साइक्याट्रिक सोशल वर्क एसोसिएशन। भारत में प्रमुख व्यावसायिक संगठन है– एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इण्डिया। महाराष्ट्र में राज्य स्तर पर महाराष्ट्र एसोसिएशन ऑफ सोशल वर्क एजूकेटर्स पाया जाता है।

टिप्पणी

5. सामाजिक अनुमोदन (Social approval)

सामाजिक कार्य एक व्यवसाय के रूप में सरकार द्वारा अनुमोदित है। सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार की सामाजिक संस्थाएं सामाजिक कार्य की सेवाएं प्राप्त करती हैं। अधिकांश संस्थाओं में प्रशिक्षित कार्यकर्ता कार्य करते हैं।

6. आचार संहिता (Code of ethics)

अमेरिका में सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए एक निश्चित आचार संहिता है जिसका पालन करना सभी व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए अनिवार्य है। इस आचार संहिता को 5 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) सेवार्थियों से सम्बन्ध

1. सेवार्थी के कल्याण को समुदाय के कल्याण के अनुकूल रखना।
2. वैयक्तिक लक्ष्यों एवं मतों की अपेक्षा व्यावसायिक उत्तरदायित्व को प्रधानता देना।
3. अपने विषय में स्वयं निर्णय लेने के सेवार्थी के अधिकार को स्वीकार करना।
4. सेवार्थी को गोपनीयता का आश्वासन देना।
5. बिना भेदभाव के सेवार्थी की सहायता करना एवं ऐसा करते समय वैयक्तिक भिन्नताओं का आदर करना।

(ब) नियोजक संस्था से सम्बन्ध

1. संस्था के कार्यक्रमों, नीतियों एवं कर्मचारियों के व्यवहार का ज्ञान रखना और उनमें उन्नति करने का प्रयास करना।
2. व्यावसायिक सामाजिक कार्य की आचार संहिता के विरुद्ध नीति एवं कार्यरीति वाली संस्था में कार्य न करना।
3. संस्था के साथ सेवायोजन के लिए किये गये समझौते का पालन करना।
4. संस्था की नीतियों एवं कार्यरीतियों के निर्धारण में कर्मचारियों को भाग लेने के अवसर उपलब्ध कराना।

(स) व्यावसायिक साथियों से सम्बन्ध

1. व्यावसायिक साथियों की स्थिति एवं उनकी योग्यताओं का आदर करना।
2. व्यावसायिक साथियों को अपने ज्ञान एवं अनुभव से लाभान्वित करना।
3. व्यावसायिक साथियों के आपसी मतभेदों का आदर करते हुए उन्हें दूर करने का प्रयास करना।
4. निष्पक्षता एवं विषयात्मक सूचना के आधार पर कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, पदच्युति इत्यादि करना।

(द) समुदाय से सम्बन्ध

1. समुदाय की उन्नति के कार्यक्रमों में ज्ञान एवं निपुणताओं का प्रयोग करना।
2. संस्थाओं एवं व्यक्तियों द्वारा सामाजिक कार्य के अनैतिक प्रयोग से समुदायों को सुरक्षित रखना।

3. व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण अनुभव एवं कुशलता से समुदाय के साथ अपने संबंधों को प्रभावित करना और इनकी व्याख्या करना।
4. अपने कथनों को व्यक्त करते समय तथा व्यवहार करते समय यह स्पष्ट कर देना कि वे एक व्यक्ति के रूप में कहे और किये गये हैं, न किसी समिति या संस्था के प्रतिनिधि के रूप में।

(य) सामाजिक कार्य व्यवसाय से सम्बन्ध

1. व्यवसाय के आदर्शों का समर्थन करना और उनमें सुधार का प्रयास करना।
2. एक उच्च स्तर की सेवा प्रदान करके व्यवसाय में जनता के विश्वास को बनाये रखना और उसे बढ़ाने का प्रयास करना।
3. बाहरी न्यायहीन आक्रमणों और अनुचित प्रतिनिधित्व से व्यवसाय को सुरक्षित रखना।
4. सामाजिक कार्य एवं व्यावसायिक सेवा में विषयात्मक सुधार लाने के उत्तरदायित्व को स्वीकार करना जिससे सामाजिक कार्य को आलोचना से बचाया जा सके।

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक कार्य एक पूर्ण व्यवसाय है क्योंकि उसमें व्यवसाय की सभी विशेषताएं विद्यमान हैं। परन्तु यह विश्वास केवल सिद्धान्त पर आधारित है, वास्तविकता इससे भिन्न है। आज भी अनेक विद्वानों का विचार है कि सामाजिक कार्य व्यवसाय नहीं है क्योंकि यह कोई ऐसा कार्य नहीं करता जो असाधारण हो। कार्यकर्ता का व्यवहार एवं उसकी दक्षता कोई विशिष्ट नहीं होती। प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित कार्यकर्ता में व्यावहारिक अंतर स्पष्ट नहीं होता है। त्याग की भावना ही निपुणता तथा सहायता की इच्छा जाग्रत करती है, प्रशिक्षण का कोई विशेष महत्व नहीं है। कार्यकर्ता आत्मछवि को विकसित करने में असफल रहे हैं। व्यावसायिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा पा रहे हैं तथा सामाजिक कार्य का उपयुक्त वैज्ञानिक ज्ञान नहीं है। इन आलोचनाओं के बावजूद सामाजिक कार्य व्यावसायिक विशेषताओं को धीरे–धीरे विकसित कर रहा है, इसे सभी विद्वान मानते हैं।

1.3.1 प्राचीन, मध्य एवं ब्रिटिश काल में सामाजिक कार्य

भारत का समाज अति प्राचीन समाज है। इस समाज का लगभग 5000 वर्षों का इतिहास लिपिबद्ध किया गया है। भारतीय समाज को हम चार कालों में विभाजित कर सकते हैं–

1. प्राचीन काल (लगभग 3000 ई.पू. से 700 ई. तक)
2. मध्य काल (701 ई. से 1750 ई. तक)
3. आधुनिक काल (1751 ई. 1947 ई. तक)
4. स्वातंत्रोत्तर काल (1947 ई. से आज तक)

प्राचीन काल

प्राचीन काल में पीड़ितों की सेवा और जनहित के लिए अच्छे कार्य की भावना लोगों के विशिष्ट गुण रहे हैं। यद्यपि धर्म में भी दान, भिक्षा देना, अपंगों को भोजन कराना और उनकी देखभाल करना प्रमुख कार्य थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में निर्धनों, वृद्धों,

निराश्रितों एवं असमर्थ लोगों की देखरेख का दायित्व शासक का बताया है। मंदिरों और आश्रमों की स्थापना उनके निर्वाह के लिए धन का अर्पण, संत महात्माओं और आश्रमों के लिए भोजन, कपड़े, तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए उचित संघों के साथ–साथ स्थायी संग्रह स्थानों की स्थापना आदि का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता था। विभिन्न प्राचीन ग्रंथों से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में समाज कल्याण की जड़ें बहुत ही पुरानी हैं।

भारत का समाज सदा से ही एक परम्परात्मक समाज रहा है परन्तु परम्पराएं समय के परिवर्तन के साथ परिवर्तित भी होती रही हैं। यदि हम भारतीय इतिहास के अति प्राचीन काल को देखें तो ज्ञात होगा कि उस समय का समाज एक प्रकार का साम्यवादी समाज था। यह उस समय की बात है जब निजी सम्पत्ति का जन्म नहीं हुआ था और सभी वस्तुएं समाज के सभी सदस्यों की समझी जाती थीं। उस समय प्रतिदिन के सामूहिक परिश्रम से जो वस्तुएं प्राप्त होती थीं उन्हें जब वितरित किया जाता था और जब उनका उपभोग होता था तो उसे हवन कहते थे। इसके अतिरिक्त जब युद्ध में प्राप्त वस्तुओं अथवा अन्य स्थायी वस्तुओं का वितरण होता था तो उसे दान कहते थे। ऋग्वेद में दान शब्द का अर्थ है "विभाजन"। इसका अर्थ भिक्षा या दान न था।

जब निजी सम्पत्ति का जन्म हुआ तो वर्ग एवं राज्य का भी जन्म हुआ और यज्ञ केवल एक क्रिया–पद्धति होकर रह गया और युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति समुदाय की सम्पत्ति न समझी जा कर राजा एवं राज्य करने वाले वर्ग की सम्पत्ति समझी जाने लगी। दान का अब वह अर्थ न रहा जो पहले था। अब दान का ऐच्छिक गुण समझा जाने लगा और अब यह राजाओं या धनवानों पर निर्भर करता था कि वह दान किसे दें और किसे न दें क्योंकि दान देना अब अनिवार्य न था। अब अच्छे और बुरे दान में अन्तर समझा जाने लगा और दान के नैतिक मानदण्ड बना दिये गये। इस प्रकार दान की संस्था जो प्राचीन युग में सामाजिक बीमे का एक रूप थी अब राज्य करने वाले वर्ग का एक अधिकार बन गयी। इसमें सामाजिक सेवा अर्थात् कुंए खुदवाना, तालाब बनवाना आदि कार्य सम्मिलित थे। इस प्रकार धार्मिक अभिप्रेरणा के आधार पर सामाजिक सेवा का आरम्भ हुआ और नहर बनवाने, पेड़ लगवाने, मन्दिर बनवाने, आश्रम बनवाने, विद्यालय, चिकित्सालय आदि स्थापित करने और अन्य सार्वजनिक कल्याण का कार्य होने लगा परन्तु इन सब कार्यों का प्रमुख उद्देश्य आवागमन से मुक्ति प्राप्त करना एवं सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करना था।

मध्य काल

मध्य काल में भारतीय समाज में अनेक कुरीतियां विकसित होने लगीं, जैसे– जाति–पांति, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह इत्यादि। शिक्षा, धर्म केन्द्रों में केन्द्रित हो गई इससे महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आ गई। मध्य काल में भारतीय सामाजिक व्यवस्था को इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार चलाने के प्रयास के कारण भारत सामाजिक संस्थाओं में अत्याधिक परिवर्तन हुआ तथा जनता के लिए परिवार कल्याण, सेवाओं की व्यवस्था में राज्यों ने भी कुछ अंशों में योगदान दिया।

भारत में जब मुसलमान आये तो उन्होंने भी अपने धर्म के आदेशानुसार दान पुण्य पर अधिक धन व्यय किया। इसलाम में जकात एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रति वर्ष अपनी सम्पत्ति, विशेष प्रकार से धन या स्वर्ण का ढाई

टिप्पणी

प्रतिशत भाग जकात के रूप में व्यय करना आवश्यक है। जकात की रकम निर्धन एवं अभावग्रस्त व्यक्तियों पर व्यय की जाती है। इसके अतिरिक्त इस्लाम में एक संस्था खैरात की भी है जिसके अनुसार अभावग्रस्त व्यक्तियों की आर्थिक सहायता व्यक्तिगत रूप से की जाती है इसके लिए कोई दर निश्चित नहीं है और यह इच्छानुसार दी जाती है। इस्लाम में धन के प्रति घृणा का प्रचार किया गया है और अधिक से अधिक धन को अभावग्रस्त व्यक्तियों में वितरित करने पर बल दिया गया है।

दिल्ली के सुल्तानों ने अपने धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार, जो दान पर अधिक बल देता है, निर्धनों एवं अभावग्रस्त व्यक्तियों पर अधिक धन व्यय किया। जकात द्वारा प्राप्त धन के अतिरिक्त जो वैधानिक रूप से दान सम्बन्धी कार्यों के लिए निर्दिष्ट होता था, अन्य साधनों से प्राप्त बड़ी–बड़ी धन राशियाँ निर्धनों पर व्यय की जाती थीं–इस सम्बन्ध में शेरशाह का विश्वसनीय खावास खाँ बहुत प्रसिद्ध है। हजारों नर–नारी उसके बनवाये हुए घरों और खेमों में रहते थे और वह स्वयं उनके लिए भोजन परोसता था। हिन्दुओं को कच्चा भोजन मिलता था। महमूद गवान जो एक राज्य का मालिक था अपना सारा धन निर्धनों पर व्यय कर देता था और स्वयं कृषकों वाला साधारण भोजन लेता था और चटाई बिछाकर जमीन पर सोता था। खानकाहें भी निर्धन सहायता का केन्द्र थीं क्योंकि वहां भोजन निःशुल्क मिलता था और अभावग्रस्तों एवं यात्रियों को ठहरने का स्थान मिलता था। राज्य की ओर से या निजी व्यक्तियों की ओर से जो धन उन्हें मिलता था उसका एक बड़ा भाग शिक्षा, समाज सेवा एवं निर्धन सहायता पर व्यय होता था। यह दान पुण्य इतना विस्तृत था कि इसके कारण व्यावसायिक भिक्षुकों का एक वर्ग उत्पन्न हो गया। इब्ने बूतता ने एक विभाग के विषय में लिखा है जिसमें अभावग्रस्त पुरुषों एवं स्त्रियों की सूची रखी जाती थी और उन्हें अनाज दिया जाता था। विद्वानों को निरीक्षक नियुक्त किया जाता था ताकि तटस्थ रूप से कार्य हो सके। फीरोज शाह ने अपने कोतवाल को आदेश दे रखा था कि वह बेरोजगारों को उसके सामने प्रस्तुत करे–वे उसके सामने प्रस्तुत किये जाते थे और वह उनके लिए रोजगार उपलब्ध करता था। वह सुल्तान गयासुद्दीन का अनुसरण करता था जिसके अनुसार अपराध अभाव का परिणाम था। अतः वह निर्धनों के लिए कोई कार्य या व्यवसाय उपलब्ध करता था। वह उन्हें धन या भूमि अनुदान के रूप में देता था जिससे वे कृषि कर सकें। उसने इस बात का प्रयास किया कि भिक्षावृत्ति उसके राज्य से समाप्त हो जाये और इसके लिए वह भिक्षुओं को किसी लाभदायक व्यवसाय ग्रहण करने के लिए तैयार करता था।

आधुनिक काल (अंग्रेजी शासन काल)

मुगल साम्राज्य के पतन, यूरोपियों के भारत आगमन तथा दक्षिण एवं बंगाल में ब्रिटिश सत्ता के अभ्युदय के साथ अंग्रेजी शासन काल प्रारंभ हुआ। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात सामाजिक कार्य की दृष्टि से भारत में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों की लहर सी आ गई थी। 19वीं शताब्दी भारतीय नवजागरण के काल के रूप में उभर कर सामने आई। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार से भारतीयों के मस्तिष्क से संकीर्णता तथा संकुचितता दूर हुई एवं उनका दृष्टिकोण व्यापक हो गया। राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का जनक कहा जाता है। उन्होंने 1928 में ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य जाति आधारित भेदभाव की समाप्ति, छुआछूत का अंत, बाल–विवाह

टिप्पणी

का प्रचलन एवं अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता को समाप्त करना था। 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित कराने में ईश्वर चन्द विद्या सागर का महत्वपूर्ण योगदान था। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर भारतीयों को 'वेदों की ओर लौट जाओ' का नारा दिया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सेवाग्राम में 'हरिजन सेवक संघ' तथा 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ' की स्थापना हुई।

भारत में एक समय में पारसी लोग भी रहते थे। पारसियों के धर्म में भी दान को बड़ा महत्व दिया गया है। पारसियों ने यहां धर्मशालाएं, तालाब, कुएं, विद्यालय आदि बनवाये। उन्होंने बहुत से न्यास स्थापित किये जिनमें से एक प्रसिद्ध न्यास बाम्बे फारसी पंचायत ट्रस्ट फण्ड से है। इस न्यास के उद्देश्यों में पारसी विधवाओं की सहायता, पारसी बालिकाओं की विवाह सम्बन्धी सहायता, नेत्रहीन पारसियों की सहायता, निर्धन पारसियों की सहायता और धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी सहायता सम्मिलित हैं।

जब अंग्रेज भारत में आये तो क्रिश्चयन मिशनों ने भी यहां अपना कार्य आरम्भ किया। क्रिश्चयन मिशनों ने अपने धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के समाज कल्याण सम्बन्धी कार्य किये।

1780 में बंगाल में सिरामपुर मिशन स्थापित हुआ। इस मिशन में हिन्दू सामाजिक ढांचे में सुधार लाने का प्रयास किया। उदाहरण स्वरूप इसने बाल विवाह, बहुविवाह, बालिका हत्या, सती एवं विधवा विवाह पर निषेध के विरुद्ध आवाज उठाई। इसके अतिरिक्त इस मिशन ने जाति प्रथा के विरुद्ध भी प्रचार किया। अपने इस विचारों को क्रियाशील रूप प्रदान करने हेतु इस मिशन ने अनेक समाज कल्याण संस्थाएं स्थापित कीं जिनके द्वारा अभावग्रस्त एवं पीड़ित लोगों की सहायता की जाती थी। उस समय अधिकतर कल्याणकारी संस्थाएं क्रिश्चयन मिशनों द्वारा स्थापित की गयी थीं। कुछ समय पश्चात् ही लोक हितैषी व्यक्तियों, अन्य धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य ने इस क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ किया। 18वीं शताब्दी के अन्त में क्रिश्चयन मिशनों के प्रचार ने भारत के विचारशील लोगों के लिए एक चुनौती का रूप रखा था। अतः इस चुनौती का सामना करने के लिए अनेक लोग तैयार हुए। इस प्रकार के एक व्यक्ति राजा राममोहन राय थे जिन्होंने भारत की प्रथाओं में सुधार लाने का प्रयास किया। उन्होंने विशेष प्रकार से जाति प्रथा और सती प्रथा का विरोध किया और अनेक शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की। उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका एक उद्देश्य हिन्दुओं को क्रिश्चयन धर्म स्वीकृत करने से सुरक्षित रखना था। ब्रह्म समाज ने अकाल सहायता, बालिका शिक्षा, स्त्रियों के उत्थान और मद्य निषेध एवं दान प्रोत्साहन के कार्य किये। ज्योतिबा फुले ने जाति प्रथा के सुधार का प्रयास किया और अनेक संस्थाएं उदाहरण स्वरूप अनाथालय एवं बालिका विद्यालय आदि स्थापित किये।

18वीं और 19वीं शताब्दी में भारत में समाज सेवा पद्धति के मुख्य उद्देश्य दो थे—

1. भारत के सामाजिक ढांचे को पुनः जीवित करना और उसे विदेशी धर्म एवं संस्कृति से सुरक्षित रखना।
2. समाज सेवी संस्थाएं स्थापित करना जिनसे भारत के निवासियों को क्रिश्चयन मिशनों द्वारा स्थापित सामाजिक सेवाओं के प्रयोग की आवश्यकता न रह जाये। इस प्रकार यहां की समाज सेवा पद्धति को क्रिश्चयन मिशनों द्वारा स्थापित सामाजिक सेवाओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिला।

1897 में स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन स्थापित किया। इस मिशन का संगठन क्रिश्चयन मिशनों के संगठन के नमूने पर हुआ। ब्रह्म समाज और आर्य समाज से भी अधिक रामकृष्ण मिशन ने समाज सेवा के कार्य किये।

अंग्रेजों के भारत में आने से यहां प्रज्ञावाद, प्रजातन्त्र एवं उदारता की विचारधाराओं का प्रवेश हुआ। इन विचारधाराओं ने भारत के विचारशील व्यक्तियों को प्रभावित किया। 20वीं शताब्दी के समाज सुधारकों में गोपालकृष्ण गोखले और बाल गंगाधर तिलक का नाम मुख्य रूप से प्रसिद्ध है। ये दोनों ही व्यक्ति प्रज्ञावादी थे परन्तु तिलक का उद्देश्य समाज सुधार के साथ–साथ देश के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करना भी था। तिलक ने 1905 में सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की। यह भारत में समाज सेवा के क्षेत्र की सर्वप्रथम असाम्प्रदायिक संस्था थी। 20वीं शताब्दी के दूसरे 10 वर्षों में महात्मा गांधी ने भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति को प्रभावित किया। उन्होंने राजनीतिक विद्रोह एवं समाज सुधार के बीच का एक मार्ग बनाया। उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए संग्राम के साथ–साथ यहां के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए भी प्रयास किया। उन्होंने हरिजन सेवक संघ की स्थापना की जिसका उद्देश्य हरिजनों की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं में सुधार करना था। उन्होंने स्वयं हरिजनों के सामाजिक उत्थान के लिए अथक प्रयास किया।

समाज सेवा के लिए प्रशिक्षण

भारत में प्राचीन काल से ही समाज सेवा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता रहा है, परन्तु यह प्रशिक्षण एक नैतिक वातावरण में अनौपचारिक रूप से दिया जाता था। औपचारिक रूप से व्याख्यान एवं व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध प्राचीन समय न था। 20वीं शताब्दी में बम्बई में पहली बार इस प्रकार का प्रयास किया गया जबकि वहां सोशल सर्विस लीव की स्थापना हुई। इस संस्था ने स्वयं सेवों के लिए अल्पावधि वाला पाठ्यक्रम चालू किया। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य स्वयं सेवकों को समाज सेवा के लिए तैयार करना था। भारत में 1936 के पहले सामाजिक कार्य को एक ऐच्छिक क्रिया समझा जाता था। 1936 में पहली बार सामाजिक कार्य की व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक संस्था सर दोराबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क के नाम से स्थापित हुई। इस समय इस बात की स्वीकृति भारत में हो चुकी थी कि सामाजिक कार्य करने के लिए औपचारिक शिक्षा अनिवार्य है। तत्पश्चात् इस विद्यालय का नाम टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स हो गया और अब भी यह इसी नाम से प्रसिद्ध है।

समाज सेवा का सर्वप्रथम क्षेत्र

भारत में 18वीं शताब्दी से समाज सेवा का सर्वप्रथम क्षेत्र शिशु कल्याण रहा है। 18वीं शताब्दी से ही यहां अनाथालय एवं निःशुल्क विद्यालय स्थापित किये गये। 19वीं शताब्दी में धर्मार्थ चिकित्सालय ऐच्छिक क्षेत्र में स्थापित किये गये। इस समय अधिकतर पृथक–पृथक सम्प्रदायों के लिए धर्मार्थ संस्थाओं की स्थापना हुई और 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक इसी प्रकार होता रहा परन्तु 20वीं शताब्दी के दूसरे और तीसरे दस वर्षों में स्त्रियों के कल्याण के लिए सामान्य संस्थाएं स्थापित हुईं।

1930 के उपरान्त विशेष प्रकार से गांधी जी के नेतृत्व में हरिजन कल्याण कार्य आरम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा का भी कार्य आरम्भ हुआ।

20वीं शताब्दी में भारत में ऐच्छिक समाज सेवी संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हुई। अनाथालयों और शिशु सदनों के अतिरिक्त 20वीं शताब्दी के आरम्भ में नेत्रहीनों के लिए विशेष विद्यालय स्थापित हुए परन्तु इस प्रकार का सर्वप्रथम विद्यालय 1887 में ही अमृतसर में ही स्थापित हो चुका था। यह विद्यालय केवल नेत्रहीन बालिकाओं के लिए ही है और अब यह देहरादून में है। 19वीं शताब्दी के अन्त में पालकोटा अन्धविद्यालय और कलकत्ता अन्धविद्यालय की स्थापना हुई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दादर अन्धविद्यालय और विक्टोरिया मेमोरियल अन्धविद्यालय बम्बई में स्थापित हुये। वाराणसी में हनुमान प्रसाद पोद्दार अन्धविद्यालय अन्धे बालकों के लिए शिक्षा एवं आवास की व्यवस्था करता है।

समाज कल्याण में राज्य की भूमिका

राज्य ने सर्वप्रथम स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में समाज सेवा प्रदान करना आरम्भ किया। परन्तु ये सेवाएं बहुत ही सीमित रूप में प्रदान की जाती रहीं। अतः समस्त नागरिक इन सेवाओं से लाभान्वित नहीं हो सके। राज्य की ओर से अनेक स्थानों पर चिकित्सालय एवं विद्यालय स्थापित किये गये परन्तु जनसंख्या को देखते हुए इन चिकित्सालयों एवं विद्यालयों की संख्या बहुत ही कम है। प्रसूति तथा शिशु कल्याण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 20वीं शताब्दी में लेडी डफरिन फन्ड स्थापित किया गया। आरम्भ में इण्डियन रेड क्रास एवं विशिष्ट प्रसूति तथा शिशु कल्याण समितियों ने इस क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया। शनैः–शनैः राज्य सरकार और नगरपालिकाओं ने इन सेवाओं का उत्तरदायित्व स्वीकृत कर लिया।

देहरादून में शिक्षा मंत्री मंडल की ओर से दो संस्थाएं स्थापित की गयी हैं जो नेत्रहीनों की रक्षा और पुनर्वास का कार्य करती हैं। मूक एवं बधिर व्यक्तियों की सहायता के लिए अति न्यून मात्रा में कार्य किये गये हैं। वर्ष 2000 में चित्रकूट में जगतगुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय स्थापित हुआ जो सभी प्रकार के विकलांग विद्यार्थियों के लिए शिक्षा एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था करते हैं। राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा इन संस्थाओं को सहायता मिलती है।

1.3.2 स्वतंत्रता पश्चात सामाजिक कार्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पाकिस्तान से आये विस्थापितों के पुनर्वास का दायित्व राज्य ने अपने हाथों में लेते हुए पुनर्वास मंत्रालय की स्थापना की। भारतीय संविधान भारत को संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है। जिसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म द्वारा उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता प्रदान करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के लोगों के कल्याण हेतु सरकार द्वारा समाज कल्याण को उचित स्थान दिया गया। संविधान निर्माताओं ने लोक कल्याण को उन्नत करने के लिए राज्य की भूमिका का मूल्यांकन करते हुए कल्याणकारी राज्य के आदर्श की प्राप्ति हेतु संविधान में कुछ व्यवस्थाएं सम्मिलित की हैं।

कल्याणकारी राज्य के मौलिक लक्ष्यों का स्पष्ट तौर पर संविधान की प्रस्तावना एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तों वाले भाग चार में पूर्ण संकेत मिलता है। कल्याणकारी

राज्य की अवधारणा को संविधान–निर्माताओं द्वारा दिये गये मौलिक अधिकारों से संबंधित भाग तीन एवं अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों एवं पिछड़े वर्गों के बारे में विशेष व्यवस्थाओं से संबंधित भाग में भी देखा जा सकता है।

टिप्पणी

समाज कल्याण का उद्देश्य ऐसी मूलभूत अवस्थाओं को उत्पन्न करना है, जिससे समुदाय के सभी सदस्य विकास एवं आत्म–पूर्ति हेतु अपनी क्षमता का प्रयोग कर सकें। प्रायः सक्षम व्यक्ति, परिवार या समूह अपनी आवश्यकताओं या समस्याओं का समाधान कर लेते हैं। अतः अक्षम, असमर्थ, कमजोर व्यक्ति, परिवार व समूह की सक्षमता के लिए निःस्वार्थ सेवा भाव से किया गया कार्य समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों का प्रेरणा स्रोत है।

अपने आधुनिक अर्थ में समाज कल्याण जिसके अन्तर्गत सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा की विशिष्टताएं तथा मूलभूत न्यूनतम अधिकारों की गारंटी सम्मिलित है, का प्रारम्भ विकसित देशों यथा ब्रिटेन, जर्मनी, अमेरिका, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में 20वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ।

ब्रिटिश सरकार भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों यथा बाल–विवाह, दहेज प्रथा, महिलाओं को उत्तराधिकार से वंचित रखना, अनुसूचित जातियों के मंदिर में प्रवेश की मनाही आदि से परिचित थी। अतएव इसने समाज को इन कुरीतियों से मुक्त करने के लिए अधिनियम बनाये, जैसे सहमति आयु कानून जिसके द्वारा नवयुवतियों की आयु 10 से 12 वर्ष तक कर दी गई जो बाद में शारदा कानून सन् 1929 तथा अन्य दूसरे कानूनों द्वारा और बढ़ा दी गयी– यह आयु सीमा महिलाओं के उत्तराधिकार, गोद लेना, कानून के सम्मुख विवाह, न्यायिक पृथक्करण एवं विवाह विच्छेद, बालिकाओं का मन्दिर को अर्पण आदि विषयों में भी लागू होती थी।

औद्योगीकरण के आगमन से श्रमिकों के लिए दुर्घटना, मृत्यु, वृद्धायु, बेरोजगारी आदि से जनित अयोग्यता के कारण क्षतिपूर्ति, कार्य समय के नियमन, कार्य करने की संतोषजनक देश औद्योगिक सुरक्षा आदि के रूप में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद श्रमिक संगठनों, मजदूर संघों के नेताओं, समाज सुधारकों, प्रगतिशील नियोक्ताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों ने श्रमिक कल्याण हेतु समुचित सामाजिक सुरक्षा उपाय उठाने के लिए कहा गया। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने श्रम कल्याण हेतु विभिन्न अधिनियम यथा फैक्ट्री कानून 1922, श्रमिक क्षतिपूर्ति कानून 1923, भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926, व्यापार विवाद कानून पारित किये। इसी प्रकार, राज्य सरकारों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व प्रसूति लाभ अधिनियम पारित किये।

ब्रिटिश सरकार ने समाज के अलाभान्वित एवं विशेषाधिकार रहित वर्ग यथा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों एवं पिछड़ी जातियों के लिए समाज कल्याण लाभ देने की दिशा में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया, केवल उनके लिए शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था अपने अंतिम समय 1944 में की। समाज के अन्य वंचित वर्गों और अशक्तों की आर्थिक दशा को सुधारने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

सामाजिक कार्य अभ्यास की प्रणाली के रूप में समाज समूह कार्य को भारत में सामाजिक कार्य शिक्षा के संदर्भ में देखा जा सकता है। समूह कार्य का आरम्भ 1936

टिप्पणी

में प्रथम सामाजिक कार्य विद्यालय की स्थापना सर दोराब जी टाटा स्कूल ऑफ सोशल साइंसेस के नाम से हुई। इसके थोड़े दिन पश्चात दिल्ली और बड़ौदा में सामाजिक कार्य विद्यालयों की स्थापना हुई, सामाजिक कार्य शिक्षा को अकादमिक स्तर प्राप्त हुआ तथा समूह कार्य को इसके एक पाठ्यक्रम के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। भारत में वर्ष 1960 में सबसे पहले 'दि बड़ोदा स्कूल ऑफ सोशल वर्क' ने समूह कार्य अभ्यास का प्रथम रिकार्ड प्रकाशित किया था।

भारत में एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क और टेक्नीकल को आपरेशन ने संयुक्त रूप से समूह कार्य के लिए न्यूनतम मानक निर्धारित किए। इसके पश्चात सम्पूर्ण भारत में सामाजिक कार्य विद्यालयों की स्थापना में अत्यधिक वृद्धि हुई और केस कार्य और समुदाय संगठन के साथ इन सभी विद्यालयों में समूह कार्य को समुचित स्थान प्राप्त हुआ। अकादमिक रूप से सशक्त हो जाने पर समूह कार्य को अभ्यास में भी सशक्तिकरण प्राप्त हुआ। आज विभिन्न सामाजिक कार्य स्थापनाओं में समाज समूह कार्य अभ्यास किया जाता है।

संस्थागत स्थापन में समूह कार्य की विशेषता यह है कि यह विशेष संस्थान के लाभार्थियों को आवश्यकताओं की पूर्ति करता है या उनकी समस्याओं का समाधान निकालता है।

नशाबन्दी केन्द्रों में समूह कार्य

नशा करना एक गंभीर सामाजिक समस्या है जो मानवता को प्रभावित करती है यहां तक कि यह तो पूरे समाज को ही नष्ट कर देती है। व्यसनी के साथ सामाजिक कार्य अन्तःक्षेप को विभिन्न स्तरों पर किया जा सकता है जैसे कि नियन्त्रण, रोकथाम और उपचार। समाज समूह कार्य सामाजिक कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ इस क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाता है।

चिकित्सा समूह इनके उपचार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मादक द्रव्य का उपभोग करने वालों के लिए समूह कार्य का एक उदाहरण गुमनाम शराबी हो सकता है। समान समस्याओं से पीड़ित सदस्य एए समूह का गठन करते हैं, अपने अनुभवों के समान प्रयोग से एक–दूसरे की सहायता करते हैं तथा एक–दूसरे का मार्गदर्शन और उत्साहवर्द्धन करते हैं। सबसे पहले एक व्यसनी को निःविशिकरण की प्रक्रिया में डालना होता है और उसके बाद उसे एए समूह में डालते हैं। व्यक्ति एए समूह में विभिन्न स्तरों के माध्यम से गुजरता है जो कि जागरूकता निर्माण, समस्या की स्वीकृति तथा स्वाग्राही प्रशिक्षण में पहुंचने के बाद उपचार पूर्ण हो जाता है। व्यसनी के परिवार के सदस्यों के लिए समूह क्रियाकलाप किए जा सकते हैं।

इस समूह की गतिविधियों के माध्यम से उनकी समस्या समाधान की क्षमता बढ़ाई जा सकती है और भावनात्मक सहयोग उपलब्ध कराया जा सकता है।

परिवार चिकित्सा समूह कार्य का एक अन्य स्वरूप है, उपचार में कभी–कभी इसका प्रयोग भी किया जाता है। इस तकनीक के अन्तर्गत समूह कार्यकर्ता सम्पूर्ण परिवार से मिलता है और समूह के रूप में एक साथ बैठ कर उनकी समस्या का अध्ययन करता है। समूह कार्य का यह अभ्यास सम्पूर्ण भारत के नशाबन्दी केन्द्रों में देखा जा सकता है।

युवा कल्याण के लिए समूह कार्य

सन् 1947 में राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात भारतीय युवा वर्ग की उन्नति एक निश्चित स्थान पर स्थापित हो गई है। राजनीतिक दल लगातार विद्यार्थी नेतृत्व को महत्व दे रहे हैं। सभी विश्वविद्यालयों और कालेजों में विद्यार्थी विंग स्थापित किए गए थे, ये समूह संगठित प्रयासों के माध्यम से विद्यार्थी समुदाय की सामान्य आवश्यकताओं और समस्याओं पर ध्यान केंद्रित कर उनका समाधान निकालते हैं। स्वतंत्र भारत में कुछ युवा संगठन राष्ट्र निर्माण के लिए युवा शक्ति को संगठित करके उसका उपयोग कर रहे हैं जैसे कि युवा समाज, एन.सी.सी., भारी संख्या में ग्रामीण युवा क्लबों की स्थापना इत्यादि। कुछ गैर–सरकारी युवा और विद्यार्थी संगठनों जैसे कि एम.सी.ए., वाई.डब्ल्यू.सी.ए., स्काउट्स और गाइड्स इत्यादि का उदगम हुआ है।

नेहरू युवा केंद्र की स्थापना 1972 में हुई, यह छठी पंचवर्षीय योजना का एक भाग था जिसका भारत में समूह कार्य के ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में वर्णन किया जा सकता है। इसका मुख्य केंद्र ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जिला स्तर पर रखा गया था। इसके कार्यों में सामुदायिक सेवा, सांस्कृतिक, मनोरंजनात्मक तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केंद्र स्थापित कर युवा नेतृत्व का निर्माण करना था। गैर–सरकारी मंच या मोर्चे पर वर्ष 1969 में विश्व युवक केंद्र खोल कर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। इसका कार्य युवा संगठन तथा युवा सेवाओं को विकसित करने की आवश्यकता को पूरा करने के लिए जागरूकता उत्पन्न करने के लिए युवा नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देना है।

विद्यालयों में समूह कार्य

इन दिनों में विद्यालय सामाजिक कार्य एक महत्वपूर्ण मुकाम पर पहुंच गया है। आज अधिकतर निजी विद्यालयों में विद्यालय सामाजिक कार्यकर्ता कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है तथा इनका बच्चों के व्यक्तित्व विकास के पक्षें पर विशेष बल दिया जा रहा है। अधिकतर विद्यालयों में कार्य प्रधान समूहों का निर्माण होता है। सम्पूर्ण समूह सामान्य लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है और कार्यकलापों को इस तरह से नियोजित किया गया है कि समूह गतिविधियों के माध्यम से समूह लक्ष्य तथा इसी तरह से व्यक्तिगत लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक साथ कार्य करें। इनके कार्य क्षेत्र में मुख्यतः कार्य कैरियर, मार्गदर्शन, प्रोत्साहन, जागरूकता, मूल्य शिक्षा, नेतृत्व निर्माण करना, टीम कार्य इत्यादि हैं। समूह कार्य अभ्यास का उद्देश्य बच्चों को अपने अनुभवों और गलतियों से कार्यशाला के दौरान अवगत कराना है। भारत में कुछ विद्यालयों में समूह कार्य का उपयोग बहुत प्रभावशाली ढंग से हो रहा है, जैसे कि टीआई स्कूल, चेन्नई, चॉइस स्कूल, कोचीन, क्राइस्ट नगर स्कूल, त्रिवेंद्रम इत्यादि।

अस्पतालों में समूह कार्य

चिकित्सकीय और मनोचिकित्सकीय दोनों अस्पतालों में समूह कार्य अभ्यास सामाजिक कार्य अभ्यास का एक अभिन्न अंग है। भारत में सर्वप्रथम चिकित्सा सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति 1930 के दशक में जे.जे. अस्पताल, मुम्बई में हुई थी। अधिकतर अस्पतालों में उपचार समूह उपलब्ध होते हैं। कौशल विकास के लिए संभावित रोगियों के लिए समूह कार्य तकनीकों का प्रयोग मनोचिकित्सकीय स्थापनों में किया जाता है। यह

टिप्पणी

उनके परिवारों को भावनात्मक सहयोग उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है तथा रोगी के प्रति किस प्रकार के दृष्टिकोण को अपनाना तथा उनको किस तरह से सान्त्वना देना या जागरूक करना है और किस प्रकार से सामाजिक कलंक और तनाव से निपटना है, के बारे में उनको जानकारी देना है।

इसी प्रकार समूह कार्य अभ्यास चिकित्सा स्थापन में प्रायः होता रहा है, विशेषकर अत्यन्त गंभीर रोगों की स्थिति में इसका प्रयोग किया जाता है। समूह कार्य के माध्यम से रोगियों और उनके परिवारों के सदस्यों को सहयोगात्मक चिकित्सा उपलब्ध कराई जाती है तथा दुख, चिंतनीय स्थिति, दबाव, एकाकीपन इत्यादि को महसूस करने की स्थिति में उनको कैम्पराइज के लिए अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। समूह कार्य प्रक्रिया, सहज प्रक्रिया तथा चिकित्सा प्रक्रिया में रोगियों को भागीदारी के योग्य बनाते हैं।

आजकल नवजात शिशु प्रसव क्लिनिक्स और मधुमेह क्लिनिक्स में समूह कार्य अभ्यास सामान्य हो गया है। नवजात शिशु क्लिनिक्स में स्वच्छता, पोषण, परिवार नियोजन, नवजात शिशुओं की समुचित देखभाल इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जहां पर मधुमेय क्लिनिक होता है वहां खान–पान नियंत्रण द्वारा परिणामों पर दबाव बनाए रखते हैं। समूह अपने सदस्यों हेतु रोग के अनुरूप ही भोजन की व्यवस्था करेंगे और अपने रोगी को भावनात्मक सहयोग प्रदान करेंगे।

समूह कार्य का क्षेत्र असीमित हो गया है और यह सरकार तथा निजी अस्पताल भी महसूस करने लगे हैं, समूह कार्य का अभ्यास आज अस्पतालों में पहले से बहुत अधिक होते हुए दिखाई दे रहे हैं जैसे हम कुछ अस्पतालों के नामों का उल्लेख कर रहे हैं– जे.जे. अस्पताल–मुम्बई, गवर्नमेंट जनरल होस्पीटल–चेन्नई, विमहंस–बैंगलोर इत्यादि।

गैर–सरकारी संगठनों द्वारा समूह कार्य

भारत में हमेशा ही समाज कल्याण के क्षेत्र में गैर–सरकारी क्षेत्र अत्यन्त शक्तिशाली रहा है। गैर–सरकारी संगठन सस्थानीयकरण की प्रक्रिया और समुदायों के माध्यम से विशेष, लक्ष्य वाले समूहों को सेवा उपलब्ध कराने में हमेशा अत्यधिक सक्रिय रहे हैं। विभिन्न लक्ष्य समूहों को संस्थागत सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं जैसे कि महिलाएं, बच्चे, वृद्ध, मानसिक या शारीरिक विकलांग लोग। इन सभी केंद्रों में, सामाजिक कार्यकर्ता कौशल विकसित करना, आत्मविश्वास पैदा करना और आत्मप्रतिष्ठा, प्रोत्साहन, उपलब्धि का लक्ष्य, जागरूकता निर्माण करना और संक्षेप में सामाजिक कार्य का सम्पूर्ण विकास समूह कार्य दृष्टिकोण को अपनाया जाता है। इस प्रकार के संगठनों के उदाहरण स्पेस्टिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, स्कार्फ, चैन्नई, आशा–होम फार मेंटली चैलेंज्ड चिल्ड्रेन, बेंगलूरू, एम बी फाउंडेशन फॉर स्ट्रीट चिल्ड्रेन, हैदराबाद इत्यादि।

सुधारात्मक संस्थानों में समूह कार्य

सरकारी संस्थान वंचित लोगों और उपेक्षित समूहों में सामाजिक कार्य अन्तःक्षेप के लिए आवश्यकताओं के बारे में अच्छी तरह से जानते हैं। इसके परिणामस्वरूप सभी सरकारी होम में इस प्रकार की श्रेणी के सामाजिक कार्यकर्ताओं की नियुक्तियां की गई हैं। समूह कार्य प्रवृत्ति परिवर्तन, व्यवहार संशोधन या सुधार लक्ष्य निर्धारित करना, समूह परामर्श करना, इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। अन्य सरकारी गृह जैसे कि बच्चों के गृह,

टिप्पणी

महिलाओं के लिए गृह, मानसिक रोग इत्यादि में भी सामाजिक कार्यकर्ताओं की नियुक्तियां की गई हैं। भारत में सरकारी गृहों के प्रमुख के रूप से समूह कार्य अभ्यास अधिक प्रभावकारी नहीं रहा है क्योंकि यहां नौकरशाह के कार्य विपरीत प्रभाव डालते हैं।

कुदुम्बश्री (Kudumbasree)

कुदुम्बश्री सामुदायिक स्थापन में समूह कार्य अभ्यास का एक विशिष्ट और सफल उदाहरण है। वर्ष 1998 में कुदुम्बश्री (परिवार की समृद्धि) की स्थापना के समय केरल सरकार की क्या सोच थी इसकी तो जानकारी उपलब्ध नहीं है किंतु यह सच है कि महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से केरल से प्राथमिक गरीबी निश्चित रूप से नष्ट हो गई है। अब कुदुम्बश्री स्वयं ही देश में विशाल सशक्त परियोजना के रूप में समृद्ध और विकसित हो गई है। वर्ष 2006 में आयलाकुट्टम (पड़ौसी समूहन) 179403 के माध्यम से कुदुम्बश्री के 073769403 परिवार सदस्य बने और इनके द्वारा 826 करोड़ रुपये जमा किए गए। इससे 2075 करोड़ रुपये ऋण उपलब्ध कराने की स्थिति संभव हो सकी। कुदुम्बश्री का लक्ष्य केवल आर्थिक सुधार करना ही नहीं है। उसका इससे श्रेष्ठ उद्देश्य यह है कि गरीबों को इस तरह से मजबूत और शक्तिशाली बनाया जाए कि वे स्वास्थ्य, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों में स्वयं ही अपने प्रयासों में सुधार करें व अपनी स्थिति को उन्नत और विकसित करने में सफल हों। इन दिनों कुदुम्बश्री केरल की नई महिला पीढ़ी के लिए शक्ति का स्रोत और संसाधन है। यह महिला सशक्तिकरण संगठन की स्थापना सरकार द्वारा महिला शक्ति को मजबूत करने तथा उन्हें सही मार्ग प्रदर्शित करने के लिए की गई ताकि वे अपना आत्मविश्वास विकसित कर सकें और स्वतंत्र रूप से अपने जीवन के मार्ग में स्वयं सुधार कर उसे महत्वपूर्ण बना दें। आज इस प्रयास के माध्यम से केरल में महिलाओं का नब्बे प्रतिशत से अधिक वर्ग इस कुदुम्बश्री की सदस्यता प्राप्त करके तथा इसमें सक्रिय भाग लेकर स्व–आत्मविश्वास प्राप्त कर चुका है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. किस कार्य का उद्देश्य जीविका उपलब्ध कराना है?
   (क) आराधना (ख) व्यवसाय
   (ग) टहलना (घ) समाज सेवा
4. किसने अपने अर्थशास्त्र में निर्धनों, वृद्धों, निराश्रितों एवं असमर्थों की देखरेख का दायित्व शासक का बताया है?
   (क) कौटिल्य ने (ख) गांधी जी ने
   (ग) मार्क्स ने (घ) न्यूटन ने

1.4 सामाजिक कार्य : भविष्य प्रवृत्तियां

भारत में व्यावसायिक सामाजिक कार्य का विकास अमेरिका की तरह से ही शुरू हुआ। सन् 1936 में पहली बार समाज के प्रशिक्षण के लिए बम्बई में सर दोराब जी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क खोला गया। तबसे सामाजिक कार्य धीरे–धीरे

व्यावसायिक रूप ग्रहण करता जा रहा है तथा लगभग व्यवसाय की सभी विशेषताओं को प्राप्त कर चुका है। इन विशेषताओं के आधार पर हम यहां भारत में सामाजिक कार्य के व्यावसायिक स्वरूप की विवेचना करेंगे।

टिप्पणी

1. क्रमागत एवं वैज्ञानिक ज्ञान

सामाजिक कार्य ज्ञान में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अनेक सामाजिक कार्य के स्कूलों में शोध की सुविधा पाई जाती है जिनमें ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में खोजें की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त सभी स्कूलों में मानव व्यवहार, पर्यावरण, संस्कृति, प्रौद्योगिकी, सामाजिक विकास आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि हुई है परन्तु भारतीय संदर्भ में सामाजिक कार्य की प्रणालियों एवं विधियों को किस प्रकार लागू किया जाये, हम निश्चित नहीं कर सके हैं। भारतीय परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक कार्य नहीं विकसित हो पा रहा है।

2. व्यावसायिक शिक्षा

भारत में सामाजिक कार्य शिक्षण सन् 1936 से प्रारंभ हुआ है। इस वर्ष बम्बई में सर दोराब जी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क की स्थापना हुई। बाद में इसका नाम टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेस हो गया। सन् 1947 में काशी विद्यापीठ में समाज विज्ञान विद्यालय खुला। इसी वर्ष डेल्ही स्कूल ऑफ सोशल वर्क खुला। सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय में सामाजिक कार्य प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ। 1950 में बड़ौदा विश्वविद्यालय में सामाजिक कार्य संकाय खोला गया। 1952 में मद्रास स्कूल ऑफ सोशल वर्क तथा 1955 में आगरा में सामाजिक कार्य की शिक्षा प्रारम्भ हुई। आज सामाजिक कार्य का प्रशिक्षण बम्बई, आगरा, मद्रास, पटना, लखनऊ, वाराणसी, जमशेदपुर, कलकत्ता, वाल्टेयर, उदयपुर, भागलपुर, बेंगलूरू, मंगलौर, इन्दौर, कोयम्बटूर, कर्नाटक आदि स्थानों पर होता है। वर्तमान समय में 60 से अधिक विद्यालय एवं संस्थाएं सामाजिक कार्य प्रशिक्षण प्रदान कर रही हैं। कुछ संस्थानों में स्नातक, कुछ में स्नातकोत्तर तथा कुछ में दोनों स्तर की शिक्षा दी जाती है। पी.एचडी की उपाधि के लिए भी व्यवस्था है। दो संस्थानों में डीलिट की उपाधि भी दी जाती है। इस दृष्टि से भारत सामाजिक कार्य व्यवसाय के रूप में खरा उतरता है।

3. निपुणताएं एवं प्रणालियां

भारतीय सामाजिक कार्यकर्ता के पास अमेरिका में प्रयोग में लाई जाने वाली निपुणताएं हैं। वे भारतीय परिवेश में प्रासंगिक नहीं सिद्ध हो रही हैं। जिन विशेष प्रविधियों तथा निपुणताओं की आवश्यकता है उनका विकास अभी नहीं हो पाया है। सामाजिक क्रिया की प्रविधि, आत्मा को जागृत करने की प्रविधि, विचारों में क्रान्ति लाने की प्रविधि, संप्रेषण की प्रविधि आदि प्रविधियों के विकसित किए जाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार प्रणालियों को भी भारतीय रूप प्रदान किए जाने की आवश्यकता है।

4. आचार संहिता

भारत में आचार संहिता के विकास का उत्तरदायित्व एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया को 1960 में सौंपा गया था। एसोसिएशन के निम्नलिखित कार्य हैं—

(1) सामाजिक कार्य की व्यावसायिक शिक्षा का स्तर ऊंचा करना।

(2) सामाजिक कार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना।

(3) संकाय के अध्यापकों को आपस में मिलने तथा विचारों के आदान–प्रदान का अवसर देना।

(4) संगोष्ठियों तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) को आयोजित करना।

(5) अनुसंधान को बढ़ावा देना।

(6) सामाजिक कार्य का साहित्य प्रकाशित करना।

(7) राष्ट्रीय फोरम के रूप में कार्य करना।

वर्तमान समय में टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज के प्रयास से एक आचार संहिता का निर्माण हुआ है जिसे अल्यूमनाई एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया ने स्वीकार कर लिया है।

5. सामाजिक मान्यता एवं अनुमोदन

भारत में सामाजिक कार्य को धीरे–धीरे मान्यता प्राप्त हो रही है। कारखाना अधिनियम के अनुसार उन कारखानों में जिनमें श्रमिकों की संख्या 500 से अधिक है, श्रम कल्याण अधिकारी का नियुक्त किया जाना अनिवार्य है। बाल विकास, महिला सशक्तीकरण, परिवार कल्याण, आदि क्षेत्रों में भी सामाजिक कार्य में प्रशिक्षित लोगों को वरीयता दी जाती है। चिकित्सालयों में सामाजिक कार्यकर्ता नियुक्त किये जाते हैं। शोध कार्यों में भी सामाजिक कार्य में प्रशिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन यह मान्यता बहुत निर्बल है। दुर्भाग्य से वर्तमान समय में कोई भी ऐसा पद नहीं है जो पूर्णरूपेण सामाजिक कार्य में प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए आरक्षित हो। आज जहां कहीं भी प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति के अवसर होते हैं वहां पर दूसरे विषयों के लोगों को भी चयनित कर लिया जाता है।

6. व्यावसायिक संगठन

सन् 1951 में इंडियन एसोसिएशन ऑफ अलुमनाई ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क बनाया गया जिसका सन् 1964 में नाम बदल कर इंडियन एसोसिएशन ऑफ ट्रेण्ड सोशल वर्कर्स कर दिया गया। इसकी शाखाएं बम्बई, चंडीगढ़, कोयम्बटूर, दिल्ली, हैदराबाद, इंदौर, जमशेदपुर, मद्रास, नागपुर, त्रिवेन्द्रम, उदयपुर, बनारस, वाल्टेयर तथा लखनऊ में थीं। सन् 1960 में एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया का गठन किया गया जिसका उद्देश्य सामाजिक कार्य शिक्षा को प्रोत्साहन देना है। एसोसिएशन ऑफ मेडिकल एण्ड साइक्यात्रिक सोशल वर्क भी सामाजिक कार्य व्यवसाय की सहायता कर रहा है। इसके अतिरिक्त सामाजिक कार्य के विद्यालयों के स्तर पर भी संगठन बनाए गए हैं जो सामाजिक कार्य के हितों की रक्षा कर रहे हैं।

इस प्रकार भारत में सामाजिक कार्य धीरे–धीरे व्यावसायिक गुणों को अर्जित करता जा रहा है। लेकिन व्यवसायीकरण की गति धीमी है। इसके अनेक कारण हैं और यदि इन कारणों को दूर नहीं किया गया तो सामाजिक कार्य की स्थिति और अधिक बिगड़ जायेगी।

व्यवसाय के रूप में भारत में सामाजिक कार्य आज भी बाल्यावस्था में है। किन्तु इसका व्यावसायिक रूप अभी तक विकसित नहीं हो सका है। कुछ लोगों के मन में

टिप्पणी

यह आशंका है कि क्या सामाजिक कार्य में कोई विशेष सैद्धान्तिक ज्ञान एवं प्रत्यय है जिनके आधार पर इसे एक विद्या विशेष या ज्ञान की शाखा समझा जाये। सामाजिक कार्य का संबंध मानव अन्तकरण से है। सामाजिक कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक कार्यकर्ता अपनी सोच एवं व्यवहार में मानवतावादी तथा प्रजातांत्रिक हो। उसमें परानुभूति की क्षमता हो तथा दूसरों को सहायता प्रदान करने की भावना एवं वचनबद्धता हो। उसमें स्वयं कष्ट उठाकर पीड़ित मानवता को दुखों से छुटकारा दिलाने के त्याग तथा बलिदान करने की इच्छा हो। बाह्य प्रशिक्षण मात्र से सामाजिक कार्य के लिए अपेक्षित गुणों को अर्जित नहीं किया जा सकता है। सामाजिक कार्य का आधुनिक अर्थ सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी भ्रमित किये हुए है। यद्यपि यह सत्य है कि व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता अपनी सेवाओं के लिए पारितोषिक लेता है किन्तु यह भी सत्य है कि वह पूर्ण निष्ठा एवं लगन के साथ अपने सेवार्थी की सहायता करता है।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारत में व्यवसाय के रूप में सामाजिक कार्य का प्रारम्भ ठीक से नहीं हुआ। सामाजिक कार्य का दर्शन सिद्धान्त, प्रणालियां, प्रविधियां इत्यादि उसी रूप में भारत में सामाजिक कार्य के विद्यालयों में स्वीकार कर ली गयी हैं जैसी वे अमेरिका में हैं। अमेरिका पूंजीवादी देश है तथा वहां की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था व्यक्ति केन्द्रित उपागम के अनुकूल है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था उससे भिन्न है। यहां पर बहुसंख्यक समस्याओं की जड़ें सामाजिक संरचना में सन्निहित हैं इसलिए इसमें अपेक्षित परिवर्तन लाने के पश्चात ही इनका समाधान किया जा सकता है। इसके बावजूद भी सामाजिक कार्य स्कूलों में वैयक्तिक उपागम को स्वीकार किया गया है। इसीलिए सामाजिक कार्य का अभ्यास ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा है।

भारतीय संदर्भ में शिक्षण सामग्री का नितान्त अभाव है। जो भी पुस्तकें उपलब्ध हैं वे पश्चिमी देशों की शिक्षा के आधार पर रची गयी हैं। उनका यहां पर औचित्य स्थापित नहीं हो पा रहा है। सिद्धान्त तथा व्यवहार में काफी अन्तर है। कक्षाओं में उन सिद्धान्तों को बताया जाता है जो पश्चिमी देशों के लिए प्रामाणिक हैं लेकिन वे सिद्धान्त भारत में लागू नहीं हो पा रहे हैं। उदाहरण के लिए, अमरीकी पुस्तकें इस मूल मान्यता के आधार पर लिखी गयी हैं कि सेवार्थी स्वयं संस्था में आता है और सेवा प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। लेकिन भारत में यह स्थिति नहीं है। यहां पर विद्यार्थियों को लोगों को, विशेष रूप से निरक्षर एवं अज्ञानियों को, संस्था की सेवा लेने के लिए प्रेरित करना पड़ता है। इन सभी कारणों से विद्यार्थी निराशा का सामना करते हैं और स्वयं में परिपक्व नहीं हो पाते हैं।

सामाजिक कार्य में विशेषीकृत क्षेत्र का अभी भी अभाव है। इस दिशा में कुछ प्रयत्न किये गये हैं लेकिन इनसे यह पता नहीं चलता है कि यह कार्य सामाजिक कार्य व्यवसाय में प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। भारतीय परिस्थिति के अनुकूल कार्य की प्रणालियों का विकास नहीं हो पाया है जिससे प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त सदैव लागू किया जाता है।

सामाजिक कार्य के व्यावसायिक संगठन भी प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर रहे हैं। वे सामाजिक कार्य को व्यावसायिक रूप देने में विशेष रुचि नहीं ले रहे हैं। इन संगठनों का कार्य इतना संकुचित है कि सामाजिक कार्यकर्ता स्वयं इनके अस्तित्व को समझ नहीं पा रहे हैं।

सबसे महत्वपूर्ण कारक सामाजिक कार्यकर्ताओं में लगनशीलता एवं कर्तव्यपरायणता की कमी है। उनमें मानवतावादी दृष्टिकोण नहीं है जिससे वे प्रायः अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में लगे रहते हैं। वे व्यावसायिक आचार संहिता को ताख पर रखकर अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे हुए हैं। परिणामस्वरूप यह खतरा उत्पन्न हो गया है कि कहीं सामाजिक कार्य अपना व्यावसायिक स्वरूप ही न खो दे और सामान्य जनता में इसकी बची–खुची साख भी समाप्त हो जाये। सामाजिक कार्यकर्ताओं को विशेष लगन एवं निष्ठा से कार्य करना होगा तभी सामाजिक कार्य अपना व्यावसायिक रूप ग्रहण कर सकेगा।

अपनी प्रगति जांचिए

5. भारत में व्यावसायिक सामाजिक कार्य का विकास किसकी तरह से शुरू हुआ?
   (क) अमेरिका की (ख) पाकिस्तान की
   (ग) न्यूजीलैंड की (घ) हालैंड की
6. एसोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया का गठन किस वर्ष किया गया?
   (क) 1930 में (ख) 1940 में
   (ग) 1950 में (घ) 1960 में

1.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ग)
3. (ख)
4. (क)
5. (क)
6. (घ)

1.8 सारांश

मजूमदार, मेहता, गोरे, राजाराम शास्त्री इत्यादि अनेक विद्वानों ने भारत में सामाजिक कार्य के ऐतिहासिक विकास का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 19वीं शताब्दी में, विशेष रूप से राजा राममोहन राय के समय में, भारतीय साहित्य में समाज सुधार तथा बाद में सामाजिक कार्य का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मुस्लिम तथा मराठा काल के साहित्य में भी कहीं–कहीं समाज कल्याण सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। विभिन्न प्राचीनकालीन ग्रंथों का अध्ययन करने पर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों की स्पष्ट झलक मिलती है और इसीलिए यह कहा जाता है कि भारतीय समाज में सामाजिक कार्य की जड़ें बहुत ही पुरानी हैं।

इंग्लैंड में सामाजिक कार्य के इतिहास को 4 श्रेणियों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है– (i) अविवेकपूर्ण दान का युग, (ii) सुपात्र निर्धनों के लिए सहायता एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्तियों की सहायता का युग, (iii) समन्वय एवं नियंत्रण का युग, तथा (iv) आय अनुरक्षण का युग।

14वीं शताब्दी तक निर्धनों, अपंगों एवं अपाहिजों को भिक्षा देना एक पुण्य का कार्य समझा जाता था। चर्च का प्रमुख कार्य निर्धनों को दान देना तथा उनकी सहायता करना था। निर्धनों की सहायता सम्बन्धी कार्यों का उत्तरदायित्व मुख्य पादरियों, स्थानीय पादरियों और पादरियों के नीचे के तीसरे स्तर के डेकन्स के नाम से सम्बोधित किये जाने वाले अधिकारियों द्वारा किया जाता था। ईसाई धर्म को राज धर्म का स्तर प्राप्त होने के साथ–साथ मठों में निर्धनों के लिए संस्थाएं स्थापित की गयीं जो अनाथों, वृद्धों, रोगियों और अपंगों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी तथा बेबसों को शरण देती थी। इससे भिक्षावृत्ति में वृद्धि हुई जिस राज्य ने अच्छा नहीं समझा। निर्धनों की सहायता के एक ऐतिहासिक उल्लेख के अनुसार 1839 में इंग्लैंड तथा वेल्स की 1,53,57,000 जनसंख्या में निर्धनों पर किया जाने वाला व्यय 44,06,907 पाउण्ड था। निर्धन सहायता पर इतना अधिक व्यय किये जाने के बावजूद इससे कोई लाभ नहीं होता था।

17वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही इंग्लैंड से आकर अमेरिका में बसने वाले लोग वहां की प्रथाओं, परम्पराओं एवं कानूनों को भी अपने साथ लाये। वे अपने अतीत के अनुभवों के आधार पर बेकारी, गरीबी तथा कामचोरी से इतना अधिक डरते थे कि वे बेकारी और कामचोरी को एक पाप और अपराध मानते थे, किन्तु हर समाज की तरह अमेरिका में भी ऐसे अनेक वर्ग थे, उदाहरण के लिए, अनाथ बालक, विधवाएं, बीमार, निराश्रित बूढ़े, अशक्त व्यक्ति, इत्यादि जिन्हें सहायता की आवश्यकता थी। इन लोगों की सहायता परम्परागत ढंगों का प्रयोग करते हुए की जाती थी। निर्धनों के लिए चिकित्सालय खोले गये। इन चिकित्सालयों में निर्धनों के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का उपचार किया जाता था।

सामाजिक कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान एवं मानव सम्बन्धों की निपुणता पर आधारित है। यह व्यक्तियों की अकेले या समूह या समुदाय में सहायता करता है ताकि वे सामाजिक व वैयक्तिक संतुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें। फ्रीडलैण्डर ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि सामाजिक कार्य एक व्यवसाय है। सामान्यतया व्यवसाय के अन्तर्गत औषधि, कानून, प्रौद्योगिकी को सम्मिलित करते हैं और सामाजिक कार्य ने यह रूप किस प्रकार से प्राप्त किया है अथवा उन विशेषताओं को जो इसे व्यवसाय का स्वरूप प्रदान करती है किस प्रकार प्राप्त किया है। यह चर्चा का विषय बन गया है। सामाजिक कार्य का व्यावसायिक रूप उस समय से प्रारम्भ हुआ जब यह अनुभव किया गया कि वर्तमान सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विशेष ज्ञान एवं निपुणताओं की आवश्यकता है। सहानुभूति, सद्भावना, प्रेम आदि गुणों के साथ–साथ विभिन्न निपुणताएं होने पर ही इन समस्याओं से निबटा जा सकता है। इन निपुणताओं तथा ज्ञान का विकास प्रशिक्षण द्वारा ही सम्भव है तथा क्योंकि लोगों की सहायता करना एक आवश्यक सामाजिक कार्य है अतः जो लोग इसमें लगे हैं उन्हें उनकी सेवा के बदले में भुगतान किया जाये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पाकिस्तान से आये विस्थापितों के पुनर्वास का दायित्व राज्य ने अपने हाथों में लेते हुए पुनर्वास मंत्रालय की स्थापना की। भारतीय संविधान भारत को संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है। जिसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म द्वारा उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता प्रदान करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के लोगों के कल्याण हेतु सरकार द्वारा समाज कल्याण को उचित स्थान दिया गया। संविधान निर्माताओं ने लोक कल्याण को उन्नत करने के लिए राज्य की भूमिका का मूल्यांकन करते हुए कल्याणकारी राज्य के आदर्श की प्राप्ति हेतु संविधान में कुछ व्यवस्थाओं को सम्मिलित किया है।

1.9 मुख्य शब्दावली

- **प्रयास** : प्रयत्न, कोशिश।
- **निषेध** : रोक, पाबंदी।
- **उचित** : सही, उपयुक्त।
- **उत्तरदायित्व** : जिम्मेदारी।
- **सक्षम** : समर्थ।

1.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में समाज कल्याण के विकास का वर्णन किन श्रेणियों में प्रस्तुत किया जा रहा है?
2. कार्नेजी ट्रस्ट की दूसरी रिपोर्ट कब प्रकाशित हुई?
3. व्यवसाय का क्या अर्थ है?
4. समाज कल्याण में राज्य की क्या भूमिका है?
5. विद्यालयों में सामाजिक कार्य की क्या स्थिति है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. इंग्लैंड में सामाजिक कार्य के इतिहास की विवेचना कीजिए।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक कार्य के इतिहास का विश्लेषण कीजिए।
3. प्राचीन, मध्य तथा ब्रिटिश काल में होने वाले सामाजिक कार्यों की व्याख्या कीजिए।
4. स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हुए सामाजिक कार्यों की समीक्षा कीजिए।

टिप्पणी

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: Routledge Falmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 2 सामाजिक सुधार आंदोलन

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक सुधार आंदोलन : प्रस्तावना
2.3 सामाजिक सुधार के दार्शनिक आधार
2.4 सामाजिक सुधार एवं समाजवाद
2.5 भारत में सामाजिक सुधार
 2.5.1 सामाजिक सुधार आंदोलनों के प्रमुख क्षेत्र
 2.5.2 जाति समस्या के दो आयाम
 2.5.3 पारसी और मुस्लिम सामाजिक सुधार
 2.5.4 सुधार की गतिविधि सामग्री
2.6 सामाजिक सुधार एवं समाज कार्य
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

प्रत्येक सामाजिक आंदोलन का जीवन इतिहास होता है तथा वह रूपांतरण की प्रक्रिया से गुजरता है। आंदोलन नित्यक्रियात्मक हो सकता है साथ ही आंदोलन के समर्थन में कमी आ सकती है। आंदोलन के रूपांतरण की यह प्रक्रिया वाकई संदर्भित है तथा नीति एवं आर्थिक विशिष्टता को संवर्धित करती है। जाल्ड ने सामाजिक आंदोलनों के रूपांतरण का तुलनात्मक ढांचे में अध्ययन किया था। उन्होंने पाया कि संयुक्त राष्ट्र एवं पश्चिमी यूरोप में सामाजिक आंदोलनों की रूपांतरण की प्रक्रिया सुधारवादी रुख की है जबकि पूर्वी यूरोप के सामाजिक आंदोलन ने स्वयं को शासन की चुनौतियों में रूपांतरित कर लिया। विकसित समाजों में यह देखा गया कि शासन तथा शक्तिशाली समूहों के प्रचलित विरोध की साझी संस्कृति के अभाव में, जड़ों से जुड़ी संगठनात्मक संरचना की अनुपस्थिति में, अपारंपरिक तरीकों के लिए स्थान के अभाव तथा राज्य द्वारा विरोधियों तथा आलोचकों के संभावित सहयोजन के कारण, सामूहिक लामबंदी लंबे समय तक नहीं रह पाई। यहां अधिकतर सामाजिक आंदोलन संस्थागत प्रकृति के हैं।

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक सुधार आंदोलनों की विस्तृत विवेचना की गई है तथा सुधार आंदोलनों में शिक्षा की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक सुधार आंदोलनों के बारे में जान पाएंगे;

- सुधार आंदोलनों में शिक्षा की भूमिका को समझ पाएंगे;
- सामाजिक सुधार के दार्शनिक आधारों की व्याख्या कर पाएंगे;
- सामाजिक सुधार एवं समाजवाद का विश्लेषण कर पाएंगे;
- भारत में होने वाले सामाजिक सुधारों की समीक्षा कर पाएंगे;
- सामाजिक सुधार तथा सामाजिक कार्यों में अंतर कर पाएंगे।

2.2 सामाजिक सुधार आंदोलन : प्रस्तावना

सामाजिक आंदोलनों को मुख्य रूप से ऐसे 'संगठित' अथवा 'सामूहिक प्रयास' के रूप में समझा गया है जो समाज में विचारों, मान्यताओं, मूल्यों, रवैयों, संबंधों तथा प्रमुख संस्थाओं में परिवर्तन लाते हैं अथवा उपर्युक्त सामाजिक व्यवस्थाओं में होने वाले किसी परिवर्तन का प्रतिरोध करते हैं। ब्लूमर (1951) ने सामाजिक आंदोलनों को "जीवन के नए सामाजिक क्रम को स्थापित करने के रूप में" परिभाषित किया। टॉच (1965) के लिए सामाजिक आंदोलन बड़ी संख्या में व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप से किसी ऐसी समस्या को हल करने का प्रयास है जिसे वे सभी की समस्या के रूप में महसूस करते हैं। हेबरली (1972) के अनुसार, "यह किसी सामाजिक संस्था में परिवर्तन करने के लिए अथवा किसी पूर्णतः नई व्यवस्था को निर्मित करने के लिए सामूहिक प्रयास है।" जे.आर. गसफील्ड (1972) ने सामाजिक आंदोलन को समाज की किसी व्यवस्था में परिवर्तन के लिए सामाजिक भागीदारी वाली मांग माना। विल्सन (1973) के अनुसार सामाजिक आंदोलन या तो परिवर्तन के लिए अथवा परिवर्तन से प्रतिरोध के लिए होते हैं। अतः उनके लिए, सामाजिक आंदोलन गैर संस्थागत साधनों द्वारा सामाजिक व्यवस्था में व्यापक स्तर पर परिवर्तन लाने अथवा उनका प्रतिरोध करने के लिए संगठित उद्यम है।

उपनिवेशवाद से तात्पर्य दो राष्ट्रों के मध्य आधिपत्य और अधीनता के इस संबंध से है जिसके मूल में आर्थिक शोषण करने का भाव निहित होता है। कालांतर में आर्थिक शोषण को स्थायी और मजबूत बनाने के लिए उपनिवेश पर शैक्षणिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पकड़ मजबूत बनाई जाती है तब जाकर उपनिवेशीकरण की यह प्रक्रिया पूर्ण होती है। 18वीं शताब्दी में एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी जिसके परिणामस्वरूप एक जाग्रति के युग का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषणा की भावना ने यूरोपीय समाज को एक गति प्रदान की विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने राजनीतिक, सैनिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी पक्षों को प्रभावित किया और अब यूरोप सभ्यता एक अग्रणी महाद्वीप था। इसके विपरीत भारत एक निश्चल निष्प्राण तथा गिरते हुए समाज का चित्र प्रस्तुत कर रहा था। इस प्रकार अंग्रेजों के रूप में भारत का सामना एक ऐसे समाज से हुआ जो न केवल रंग में श्वेत था बल्कि स्वयं को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ मानता था।

प्रारम्भिक दौर में ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति भारत के सामाजिक–धार्मिक विषयों में अहस्तक्षेप की थी। उस समय कंपनी के औपनिवेशिक शासक तात्कालिक व्यवस्थाओं को जारी रखने की मांग करने वाली व्यावहारिकता के साथ–साथ परम्परागत भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान का एक भाव भी रखते थे जिसकी झलक हमें वारेन हेस्टिंग्ज की प्राच्यवाद की नीति में दिखाई देती है। इस नीति का अर्थ था

संस्कृत और फारसी भाषाओं के अध्ययन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ सिखाने का प्रयास करना तथा शासन संबंधी विषयों में उस ज्ञान का उपयोग करना। इन्हीं नीतियों के परिणामस्वरूप द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल कलकत्ता मदरसा तथा बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। हेस्टिंग्ज की विजित जनता पर उसी के अनुरूप शासन करने और अंग्लीकरण का विरोध करने की नीति प्राच्यवादी वैचारिक प्राथमिकताओं और राजनीतिक व्यावहारिकता को दर्शाती है क्योंकि उस समय स्थानीय सामाजिक रीति–रिवाजों और संहिताओं संबंधी ज्ञान को शासन की स्थायी संस्थाओं के विकास की अनिवार्य शर्त माना जाता था। वारेन हेस्टिंग्ज का कार्यकाल समाप्त होने के बाद भारतीय सामाजिक संस्थाओं में सावधानीपूर्वक हस्तक्षेप करने की नीति प्रारम्भ होती है जिसका प्रमुख कारण उस समय ब्रिटेन में उभर रही अनेक विचारधाराएं थीं। इन विचारधाराओं में उपयोगितावाद (Utilitarianism), इजीलवाद (vangelicalism) और मुक्त व्यापार की सोच प्रमुख थी परन्तु कम्पनी सरकार प्रतिकूल भारतीय प्रतिक्रिया की आशंका के कारण अभी भी हस्तक्षेप के लिए पूर्णरूप से तैयार नहीं थी। इस प्रकार के हस्तक्षेप के लिए उसे भारतीय समाज के ऐसे समूह की आवश्यकता थी जो भारत में व्यापक सामाजिक सुधारों का समर्थन करे। ऐसे ही एक समूह का उदय ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारत में अंग्रेजी शिक्षा के लागू करने के कारण हुआ। इसलिए अंग्रेजी शिक्षा ही भारत में कम्पनी के लिए हस्तक्षेप और प्रवर्तन का पहला और सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया।

भारत में पश्चिमी शिक्षा का वास्तविक आरम्भ 1813 ई. के चार्टर को माना जा सकता है जिसमें ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत आने की अनुमति दी गई और शिक्षा के लिए एक लाख रुपये वार्षिक आवंटन का प्रावधान भी किया गया। यह उस काल के लिए एक अभूतपूर्वक कदम था जब इंग्लैण्ड में भी उस समय शिक्षा के लिए सार्वजनिक धन देने की परम्परा नहीं थी।

ईसाई मिशनरियों और डेविड हेयर जैसे यूरोपीय मूल के व्यक्तियों ने भारत के सभी भागों में विद्यालयों की स्थापना का कार्य आरम्भ किया जहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। उसके बाद कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी और 1819 ई. में कलकत्ता स्कूल सोसायटी की स्थापना की गई जहां देशी भाषा में प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। जब राजा राममोहन राय ने कलकत्ता में संस्कृत महाविद्यालय खोलने के विरोध में गवर्नर जनरल को एक ज्ञापन भेजा तो हवा का रुख निर्णायक रूप से आंग्लवादियों के पक्ष में मुड़ गया। राजा राममोहन राय भारतीयों की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे जिनका यह मानना था कि भारत का आधुनिकीकरण अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य विज्ञान के द्वारा ही संभव होगा। अंततः जब उपयोगितावादी सुधारक विलियम बैंटिक ने 1828 ई. में गवर्नर जनरल का पद संभाला और 1834 ई. में टॉमस बैंबिग्टन मैकाले को विधि सदस्य के रूप में उसकी काउन्सिल में शामिल किया गया तब सरकार की शिक्षा पद्धति का रुझान अंग्रेजी शिक्षा की ओर हो गया। कार्यकारिणी परिषद् का सदस्य होने के अधिकार से 2 फरवरी, 1835 ई. को लार्ड मैकाले ने अपना महत्वपूर्ण स्मरण पत्र (Minute) लिखा और उसे परिषद के समक्ष रख जिसमें अंग्रेजी शिक्षा का पक्ष लिया। लार्ड विलियम बैंटिक ने 7 मार्च, 1835 ई. के प्रस्ताव द्वारा मैकाले का दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया कि भविष्य में कंपनी की सरकार यूरोपीय साहित्य को अंग्रेजी माध्यम द्वारा उन्नत करने का प्रयत्न करे और सभी धन–राशियां इसी निमित्त

दी जानी चाहिए। इस प्रकार जैसा कि सव्यसाची भट्टाचार्य ने कहा कि भारत में एक ऐसी नई शिक्षा व्यवस्था का आरम्भ हुआ, जिसमें ज्ञान के सृजन का काम तो मालिक देश को सौंपा गया जबकि उसके पुनरुत्पादन, दोहराव और प्रसार का कार्य उपनिवेश की जनता को सौंप दिया गया। यह भारत में आधुनिकीकरण की शुरुआत थी।

टिप्पणी

सुधार आन्दोलनों में शिक्षा की भूमिका

भारत में अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ के पीछे कई आशय थे और इन्हीं कारणों से उसके प्रसार को लगातार बढ़ावा दिया गया। ईसाई मिशनरी मानते थे कि शिक्षा से भारतीयों के धर्म परिवर्तन के रास्ते खुलेंगे। उपयोगितावादियों के लिए यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार करने में अत्यंत सहायक थी। अंग्रेजी शिक्षा एक ऐसा माध्यम बन गई जिसके द्वारा निचले स्तर के प्रशासनिक पदों पर नियुक्त भारतीयों को प्रशिक्षित किया जाने लगा। इस प्रकार साम्राज्यवाद की इस शैक्षणिक परियोजना का उद्देश्य भारतीय प्रजा में उपनिवेशी शासन के लिए निष्ठा की भावना उत्पन्न करना था कि वे उसकी प्रभु द्वारा निर्धारित प्रकृति में और उसके सभ्यता–प्रसार के उद्देश्य में यकीन करें। एक नैतिक शिक्षा के रूप में भारत में इसका कार्यकलाप इतना उपयुक्त न था जितना ब्रिटेन में क्योंकि भारत में उदारवादी शिक्षा का भौतिक पुरस्कार समुचित नहीं था। शिक्षित भारतीयों ने इस ज्ञान को चुनिंदा ढंग से अपनाया और स्वयं उपनिवेशी शासन को चुनौती देने के लिए इसका उपायोग किया।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा की ओर आकर्षित होने वाले मुख्यतः मध्य और निम्न आय समूह के हिन्दू स्वर्ण पुरुष थे जो तत्कालीन समय के परिवर्तनों के कारण आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे। इनमें से अधिकांश के लिए शिक्षा की एक कार्यकारी उपयोगिता कठिन समय में जीवन–रक्षा का साधन आर्थिक समृद्धि और शक्ति पाने का साधन थी। यह केवल बौद्धिक ज्ञान का मार्ग भर नहीं थी। बाद में जब भौतिक आशा पूर्ण न हुई तो इन्हीं लोगों का ज्ञान उपनिवेशी राजसत्ता का सामना करने का सबसे अच्छा हथियार बन गया।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रमुख समर्थक जैसे बी.टी. मेककली ने बहुत पहले ही तर्क दिया था कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय युवकों को ऐसे विचारों से सम्पर्क कराया है जो खुलकर ऐसी अनेक बुनियादी मान्यताओं को चुनौती देते थे जिन पर परम्परागत जीवन मूल्यों का आधार टिका हुआ था। इन नये विचारों ने शिक्षित भारतीयों के एक ऐसे बुद्धिवादी वर्ग को जन्म दिया जिन्होंने अपने समाज को एक ऐसी विचारधारा के मूल्यों पर परखना शुरू कर दिया जिसका आधार बुद्धि उपयोगिता, प्रगति और न्याय था। अब भारत में एक ऐसा नागरिक समाज विकसित हो चुका था जो अपनी पहचान को एक भारतीय परम्परा के दायरे में स्थापित करते हुए अपने अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत जागरूक था। भारतीय समाज में सुधार की आवश्यकता पर अब अधिक जोर दिया जाने लगा क्योंकि इसमें प्रचलित सामाजिक रीति–रिवाज में धार्मिक विचार पतन शील सामंती समाज की पहचान लगते थे। इसलिए इस नवचेतना को भारतीय समाज में फैली सभी कुरीतियों और बुराइयों की समाप्ति के लिए आवश्यक माना गया।

यह नवीन पाश्चात्य शिक्षित वर्ग, तर्कवाद, विज्ञानवाद तथा मानववाद से बहुत प्रभावित था। इन्होंने धर्म को तर्क के दण्ड से मापा और प्रयत्न किया कि जो परम्परागत विश्वास हैं या तो उन्हें बदला जाये या फिर उनके लिए कोई तर्कसंगत कारण खोजा

टिप्पणी

जाये। इन नवीन विचारों के विक्षोभ ने भारतीय संस्कृति में एक प्रसार की भावना उत्पन्न की। संस्कृति के अध्ययन प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद और मुद्राणालयों के विस्तार के कारण लोगों के ज्ञान का विस्तार हुआ जिसके कारण भारत में पुनर्जागरण की भावना आई। भारतीय बुद्धिजीवियों ने देश के अतीत को तर्क के आधार पर परखना प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन ने भारत की तात्कालिक जड़ता को समाप्त किया। इसने जहां एक ओर धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वहीं दूसरी ओर भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसम्मान और आत्मगौरव की भावना जगाई।

यह महत्वपूर्ण है कि सामाजिक आंदोलनों की संकल्पना किसी विशेष ऐतिहासिक तथा सामाजिक संदर्भ में की जाती है। उदाहरण के लिए उत्तरी अमरीकी समाज में 1930 के दशक में फासिस्ट तथा कम्युनिस्ट आंदोलनों से उभरते खतरों के विरोध में हेबरले जैसे विद्वानों द्वारा 1951 में ऐसे गैर–संस्थागत सामूहिक राजनीतिक व्यवहार के संभावी खतरनाक प्रकार के रूप में सामाजिक आंदोलनों की संकल्पना की गई जिसे यदि अनदेखा किया जाए तो जीवन के स्थापित तरीकों की स्थिरता को खतरा हो जाता है। सामाजिक आंदोलन, हालांकि, पूरी तरह से विध्वंसक नहीं होता है। एक सामूहिक संस्था के रूप में इसमें अनेक सृजनात्मक संभावनाएं होती हैं। अतः अनेक विद्वानों जैसे ब्लूमर ने अनुकूलनात्मक व्यवहार, समस्याओं के समाधान तथा ज्ञान की ओर अभिमुख होने की संभावनाओं के नए चलनों के विकास पर प्रकाश डाला है। 1950 तथा 1960 के दशक में टर्नर तथा किलियन (1957), पार्सन्स (1969) स्मेल्सर तथा अन्य विद्वानों ने सामाजिक आंदोलन को सामूहिक व्यवहार के परिप्रेक्ष्य से देखा था। इस अभिगम में सामाजिक आंदोलनों को गैर–संस्थागत सामूहिक क्रियाओं के रूप में देखा जाता है, जो विद्यमान सामाजिक चलनों द्वारा निर्देशित नहीं होते हैं, जिन्हें अपरिभाषित अथवा असंरचनात्मक स्थितियों का सामना करने के लिए बनाया जाता है तथा जिन्हें या तो सामाजिक नियंत्रण के अथवा आदर्श समकालन के भागों में संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण विखंडन के संदर्भ में समझा गया है। इसके परिणामस्वरूप होने वाले तनाव, असंतोष, कुंठाएँ तथा इस स्थिति से उत्पन्न आक्रोश से अंततः कोई व्यक्ति गैर–संस्थागत सामूहिक व्यवहार में भागीदारी के लिए उन्मुख होता है। यह भी बताया गया है कि इस व्यवहार पैटर्न का जीवन चक्र होता है, जो स्वायत्त जनसामुदायिक क्रिया से जन तथा सामाजिक आंदोलन के निर्माण की ओर गति करता है (कोहन, 1995 : 671–72; जेमीसन तथा आइरमेन, 1991 : 14)।

पुनः प्रत्येक समाज की सामाजिक आंदोलनों पर अपनी निजी समझ/अनुभूति होती है जो उसकी अपनी सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक परंपरा पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए, यूरोप में विद्वानों ने सामाजिक आंदोलनों की संकल्पना अमेरिकियों से कुछ भिन्न अर्थ में, अपनी सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों तथा बौद्धिक संपदा के आधार पर की। जहां अमेरिका में यह एक अनुभवजन्य, दृश्य घटना है, वहीं यूरोप में यह सैद्धांतिक रूप से संबद्ध घटना के रूप में विकसित हुआ है। यूरोप में मार्क्सियन सैद्धांतिक पक्ष का व्यापक रूप से अनुसरण किया गया जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में वेबेरियन पक्ष का व्यापक रूप से उपयोग हुआ।

यह महत्वपूर्ण है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सत्तावादी शासनों के अतिरिक्त संपूर्ण विश्व भर में "लोकहितकारी राज्य" के दर्शन को व्यापक रूप से अपनाया गया।

टिप्पणी

इस लोकहितकारी राज्य के दर्शन निष्कर्ष के रूप में श्रमिक तथा पूंजीवाद के बीच के संस्थागत विवादों को आधुनिक समाज में वैधानिक सामूहिक सामाजिक व्यवहार के रूप में मान्यता दी गई। आयरमेन तथा जेमीसन (1991) के अनुसार पश्चिमी यूरोप के सभी देशों में प्रबल, संस्थावादी, सुधारवादी सामाजिक प्रजातांत्रिक श्रमिक आंदोलनों के अस्तित्व में होने से उन तरीकों को प्रभावित किया जिनसे सामाजिक आंदोलनों को समाज विज्ञानियों द्वारा समझा गया था। जैसे–जैसे श्रमिक तथा पूंजीवाद के बीच विवाद सामाजिक प्रजातांत्रिक परंपरा में संस्थागत होता गया, श्रमिक आंदोलन को भी आधुनिक समाजों में संगठित सामूहिक व्यवहार के रूप में वैधानिक स्थान प्राप्त हो गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में सामाजिक आंदोलन प्रतिसिद्धांतवादी ही रहा तथा सामाजिक आंदोलन की अभिव्यक्तियों को उसी रूप में संस्थागत नहीं किया गया। अतः, वहां सामाजिक आंदोलन तथा सामाजिक संस्थाओं के बीच अंतर बना रहा; कमोबेश इसी प्रकार का अंतर मूल्यों तथा आदर्शों के बीच भी बन गया। उदाहरण के लिए, स्मेल्सन सामान्य आंदोलन (सामाजिक आदर्शों तथा मूल्यों में लंबी अवधि का परिवर्तन तथा सोच एवं चेतना में परिवर्तन) तथा सामाजिक आंदोलनों (तत्काल दिखाई पड़ने वाला सामूहिक व्यवहार का उद्‌गार, जिसके कारण लंबी अवधि के परिवर्तन होते हैं) के बीच विभेद करते हैं। अतः वे क्रमशः आदर्शों तथा मूल्यों पर आधारित सामाजिक आंदोलनों के बीच अंतर करते हैं और उसी के अनुसार, उनके लिए सामाजिक आंदोलन सामान्य आंदोलन की एक दृश्य अभिव्यक्ति थी (आयरमेन तथा जेमीसन, 1991 : 17–18)।

विकासशील देशों में सामाजिक आंदोलनों की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक संदर्भों में अभिव्यक्ति की गई है। प्रति औपनिवेशिक (anti colonial), श्रमिक तथा कृषक (Peasant) आंदोलन सामूहिक क्रियाओं के प्रभावी पैटर्न थे साथ ही इन आंदोलनों में व्यापक राजनीतिक लक्ष्यार्थ निहित थे। जहां प्रति औपनिवेशिक आंदोलनों का लक्ष्य उपनिवेशी देशों को साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्त कराना था, वहीं श्रमिक तथा कृषक आंदोलन इन देशों के दमनकारी पूंजीवादियों तथा जमींदारों के विरुद्ध किए गए थे। यह महत्वपूर्ण है कि प्रति औपनिवेशिक आंदोलन में जनसाधारण की राष्ट्रवादी भावना सबसे प्रभावी बल थी, वहीं श्रमिक तथा कृषक आंदोलनों का अधिकतर मार्क्सवादी चिंतन के वर्ग संघर्ष के बाद के काल में तब के सोवियत रूस, चीन, वियतनाम तथा क्यूबा के श्रमिक तथा कृषक आंदोलनों की सफलता की कहानियां विकासशील देशों में श्रमिक तथा कृषक आंदोलनों के लिए पथप्रदर्शक बन गईं। विभिन्न प्रकार के सामाजिक आंदोलनों को समाज में राजनीतिक संस्कृति में व्यापक वैधता मिल गई। बढ़ती गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार तथा बढ़ती हुई वर्ग असमानता की अवस्था में जनसंख्या के एक बड़े वर्ग ने विरोध तथा उत्तरजीविता के तरीके के रूप में संगठित सामूहिक क्रिया को स्वीकार कर लिया। हालांकि इन देशों में सामाजिक राजनीतिक संक्रमण/परिवर्तन, भूमंडलीकरण तथा नई आर्थिक व्यवस्था के होने से सामूहिक क्रिया के रूपों में गुणात्मक परिवर्तन हुआ।

1950 के दशक के अंतिम वर्षों तथा 1960 के दशक में यूरोप तथा अमेरिका की स्थापित सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को अश्वेतों के नागरिक अधिकारों, छात्र, महिला, शांति तथा पर्यावरण आंदोलनों के प्रबल विस्फोट से गहरा झटका लगा था। हालांकि, तब तक विद्यमान सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य, इन आंदोलनों की व्याख्या करने में असमर्थ थे जो पूर्व के श्रमिक तथा कार्मिक वर्ग के संगठित आंदोलनों से काफी भिन्न

थे। इन भिन्नताओं को व्यापक रूप से सामाजिक संरचना में मौलिक विस्थापन के कारण नए सामाजिक नेताओं तथा श्रेणियों के विकसित होने तथा पश्च औद्योगिक समाज से भिन्न नायक, भिन्न संघर्ष के बिंदु तथा भिन्न मुद्दे थे। यहां तक कि अनुभूति के स्तर पर भी, इन सामाजिक आंदोलनों ने नई विशिष्टताओं तथा नए विचारों को प्रदर्शित किया। इसलिए, व्याख्या के विद्यमान ढांचे से परे जाने की आवश्यकता थी।

टिप्पणी

टूरेन, (1981, 1983) ने इन परिघटनाओं को नए सामाजिक आंदोलन के रूप में देखा जो नवीन सामाजिक हितों के संभावी वाहक थे। उनके लिए, सह सामूहिक इच्छाशक्ति की प्रक्रिया के द्वारा था सामाजिक आंदोलन स्वयं को ऐतिहासिक परियोजना वाले सामूहिक नायकों के रूप में पहचानने लगे। यूरोपीय परंपरा ने इन क्रियाओं में नए ज्ञान तथा सामूहिक पहचान निर्माण की प्रक्रिया को खोजने का प्रयास किया। यहां सबसे प्रचलित अभिगम सामाजिक आंदोलन को राजनीतिक परियोजनाओं तथा ऐतिहासिक क्रियाओं के वाहक के रूप में विश्लेषित करना है।

अतः यूरोपीय परंपरा में सामाजिक आंदोलन को संरचनाओं तथा लंबी अवधि की प्रक्रियाओं के संदर्भ में देखा गया है। इनमें पुराने सामाजिक आंदोलनों से नए को विभेदित करने के लिए सरोकार है।

यूरोपीय समाजविज्ञानियों के लिए आंदोलन का राजनीतिक अर्थ सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, एल्बर्टो मेलुकी (1988) सामाजिक आंदोलनों को प्राथमिक प्रतीकात्मक संदर्भों तथा पहचान निर्माण में एक प्रकार के नाट्यशास्त्र के रूप में देखते हैं। सामाजिक आंदोलन शक्ति/सत्ता को दृश्य बना देते हैं तथा वे समकालीन दैनिक जीवन के प्रभावी अर्थ तंत्रों अथवा प्रतीकों को चुनौती देते हैं। वे सामाजिक आंदोलनों में पहचान के मुद्दों के बारे में व्यापक रूप से चर्चा करते हैं।

हालांकि अमरीकी समाजविज्ञानियों ने ज्ञान तथा पहचान को गैर–अनुभूति वस्तुओं के रूप में देखा। उनके लिए सामाजिक आंदोलन के ज्ञान का घटक मुद्दों अथवा विचारधाराओं को प्रदान करता है जिसके इर्द–गिर्द आंदोलन संसाधनों को एकत्रित करता अथवा व्यक्तियों का समाजीकरण करता है।

1960 के दशक के बाद से ही सामूहिक व्यवहार अभिगम को संसाधन लामबंदी करने सिद्धांतवादियों द्वारा आंदोलन संगठन की प्रभाविता पर कुठाराघात करने के लिए विरोध किया जाता रहा है (देखें जाल्ड एवं मैककार्थी, 1987)। सामूहिक व्यवहारवाद के विकल्प के रूप में संसाधन लामबंदी का सिद्धांत अमरीकी चलन में ये पता लगाने के लिए उभरा है कि क्यों कुछ आंदोलन अन्य की तुलना में अधिक सफल रहे हैं। उदाहरण के लिए, टिली (1978) सामूहिक क्रिया को समान हित के लक्ष्य के संदर्भ में देखा जाता है, जो सभी सामाजिक आंदोलनों में प्रारूपिक रूप से पाया जाता है। इस अभिगम का मानना है कि सामूहिक क्रियाएं विशेष अवसर पर संरचना से संबंधित हैं। यहां मानव क्रिया की तर्कसंगता/औचित्य को महत्व दिया जाता है, जिसमें सामाजिक आंदोलन के भागीदार अपनी भागीदारी क्रिया की कीमत तथा लाभों की सामूहिक लामबंदी में गणना कर लेते हैं। इस अभिगम में सामाजिक आंदोलनों को या तो उद्यमी के सामाजिक संसाधनों की जोड़–तोड़ अथवा लामबंदी में कुशलता के रूप में अथवा सामाजिक तनावों तथा विवादों को दूर करने के माध्यम के रूप में देखा जाता है। अतः नायकों की प्रेरणा/प्रोत्साहन को उचित आर्थिक क्रिया के रूप में देखा जाता है।

हकीकत में, संसाधन लामबंदी सिद्धान्त सामाजिक आंदोलनों के उन समूहों की व्याख्या करता है जो अमरीकी सामाजिक यथार्थ का प्रबंधकीय संदर्भ में दृश्य भाग है। यह विरोध नीति की नीतिगत समस्या से संलग्न है।

टिप्पणी

विकासशील देशों में सामाजिक आंदोलन पारंपरिक रूप से मार्क्सवादी अथवा क्रियात्मवादी परिप्रेक्ष्य से प्रेरित है। हालांकि, नए सामाजिक आंदोलनों का विस्तार, सामूहिक क्रियाओं की नई प्रकार की अभिव्यक्ति, नए संदर्भों में हिंसा का पुनरुत्थान तथा नए प्रकारों की सामूहिक क्रियाओं के होने से इन समाजों में समाज विज्ञानियों, नीति निर्धारकों तथा सामाजिक आंदोलनकारियों में सामाजिक आंदोलनों के अध्ययन में अत्यधिक दिलचस्पी उत्पन्न की है। हालांकि, इन समाजों के सामाजिक आंदोलनों को निम्नलिखित सैद्धांतिक उपकरणों द्वारा विश्लेषित करने की प्रवृत्ति रही है, जिनका पश्चिमी समाजों में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

सामाजिक आंदोलनों की उत्पत्ति

सामाजिक आंदोलनों की उत्पत्ति पर अनेक विचार पद्धतियां हैं। विचार का क्लासीकल/उत्कृष्ट मॉडल जन समुदाय, सामूहिक व्यवहार, हैसियत/स्टेटस की असंगति, बढ़ती महत्वाकांक्षाओं तथा सापेक्ष अभावों के रूपों द्वारा प्रदर्शित होता है।

(अ) **जनसमुदाय/समाज** : सिद्धांतवादी जैसे कॉर्नहॉसर (1959) का मत है कि मध्यवर्ती संरचना की कमी के कारण जन समाज में आमजन समाज में समाकलित नहीं हो पाते हैं। इसके कारण अलगाव/परायापन, तनाव तथा अंततः सामाजिक विरोध होता है। जन समाज में व्यक्ति एक–दूसरे से विभिन्न समूहों आदि के द्वारा नहीं, बल्कि समान प्राधिकरण यानी राज्य के साथ संबंध के द्वारा जुड़े रहते हैं। जन समाज में, स्वतंत्र समूहों तथा संस्थाओं की अनुपस्थिति में व्यक्तियों में अपनी स्वायत्तता पर संकट को दूर करने के लिए संसाधनों की कमी होती है। उनकी अनुपस्थिति में लोगों के पास अपने व्यवहार तथा साथ ही दूसरों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए संसाधनों की कमी है। सामाजिक कर्णाभवन से परायपन तथा व्यग्रता की भावनाएं जन्म लेती हैं और इसलिए, इन तनावों से बचने के लिए चरम व्यवहार प्रकट होते हैं। यह बताया गया है कि जनसमुदाय को जनता के ऊपर विशिष्ट जनों के शासन द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यह प्रजातांत्रिक शासन को विस्थापित कर देता है। इस समाज में व्यक्तियों को सोद्देश्य विघटित तथा व्यक्तिगत रूप से अलग किया जाता है। इस तंत्र में विशिष्ट जनों द्वारा लामबंदी के लिए व्यक्ति उपलब्ध होते हैं। कॉर्नहॉसर के लिए "परायापन/पृथक्करण जन आंदोलनों की अपील/अनुरोध की प्रतिक्रिया को बढ़ावा देते हैं क्योंकि वे मौजूदा स्थिति के विरुद्ध विरोध को व्यक्त करने के लिए अवसर प्रदान करते हैं साथ ही पूर्णतः परिवर्तित समाज का वादा करते हैं। संक्षेप में, जो व्यक्ति विघटित हो जाते हैं वे आसानी से लामबंद हो जाते हैं।"

(ब) **हैसियत/स्टेटस असंगति का सिद्धांत** : इस सिद्धांत के समर्थक, जैसे ब्रूम (1959) तथा लेंस्की (1954) का मत है कि व्यक्तियों का श्रेणीकरण तथा स्टेटस समाज में व्यक्तिनिष्ठ तनावों को उत्पन्न करती हैं जिनके परिणामस्वरूप बोधगम्य विसंगतियां, असंतोष तथा विरोध प्रकट होते हैं। इन विचारकों के

टिप्पणी

अनुसार, गंभीर स्टेटस असंगतियां व्यक्तिनिष्ठ तनावों तथा विसंगतियों को जन्म देती है। गेशवेन्डर (1947) के अनुसार स्टेटस असंगति परिकल्पना द्वारा वर्णित परिस्थितियों का सेट सापेक्ष स्टेटस आयामों के बीच विसंगति की मात्रा के अनुसार विभिन्न प्रबलताओं में विसंगति तथा विसंगति को घटाने वाले व्यवहार उत्पन्न करती है (मैक एडम, 1973 : 136)।

(स) **संरचनात्मक तनाव का सिद्धांत** : यह सिद्धांत स्मेल्सर, लेंग एवं लेंग, टर्नर एवं किलियन द्वारा प्रस्तुत किया गया था। यह सुझाता है कि कोई भी गंभीर संरचनात्मक तनाव सामाजिक आंदोलनों को अभिव्यक्त करने में सहायक हो सकता है। स्मेल्सर के अनुसार जितना गंभीर तनाव होगा उतनी ही अधिक सामाजिक आंदोलनों की संभावना रहेगी। सामान्य रूप से, ये बहस की जाती है कि सामाजिक आंदोलनों की अभिव्यक्ति के लिए घटनाओं के क्रम होते हैं। ये क्रम समाज में तनाव के कारण संरचनात्मक कमजोरियों से गति करते हैं जिससे मनोवैज्ञानिक विक्षोभ और अंततः सामाजिक आंदोलनों की अभिव्यक्ति होती है। हालांकि संरचनात्मक तनावों के अनेक कारण हैं। व्यक्ति समाज की सामान्य क्रियाशीलता में विघटन के कारण तनाव का अनुभव करते हैं। ये विघटन औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, प्रवास, बेरोजगारी के बढ़ने आदि की प्रक्रिया के कारण उत्पन्न हो सकते हैं। विघटन की मात्रा में बढ़ोत्तरी सामाजिक आंदोलन की अभिव्यक्ति से घनात्मक रूप से संबंधित है। इस परिप्रेक्ष्य में सामाजिक परिवर्तन संरचनात्मक तनाव का स्रोत है। सामाजिक परिवर्तन को तनावपूर्ण के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि यह उस आदर्श क्रम को विघटित करता है जिसमें व्याकुलता, अभिकल्पना तथा शत्रुता की भावनाओं के कारण लोग आदी होते हैं (मैक एडम, 1997)। अतः सामान्य रूप में यह सिद्धांत सामाजिक आंदोलनों को ऐसे तनावों के लिए सामूहिक संबंधों के रूप में देखता है जो गंभीर तनाव पैदा करते हैं। इनके तनाव "चरम" बिंदु पर पहुंच कर सामाजिक आपात स्थितियां उत्पन्न कर देते हैं। यह मॉडल तनाव से व्यक्तियों पर होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर बल देते हैं न कि राजनीतिक उद्देश्य की कामना पर (आइबिड)।

इस संदर्भ में यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि स्मेलसन ने पांच अन्य कारकों के साथ–साथ सामान्यीकृत मान्यताओं के महत्व पर जोर दिया है– संरचनात्मक प्रेरणा, संरचनात्मक तनाव, एक अवक्षेपी कारक, क्रिया के लिए भागीदारों की लामबंदी तथा सामाजिक नियंत्रण की विफलता सामूहिक घटना के लिए आवश्यक शर्तें हैं (स्मेलसन वाल्श, 1978 : 156)।

इस प्रकार क्लासीकल उत्कृष्ट मॉडल ने सामाजिक आंदोलनों को संरचनात्मक तनाव की प्रतिक्रिया के रूप में देखा है, इसका सरोकार तनाव के कारण व्यक्ति पर होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव से है तथा यह कि आंदोलन में सामूहिक भागीदारी अविलंब मनोवैज्ञानिक दबाव द्वारा नियंत्रित होती है, न कि राजनीतिक संरचना को परिवर्तित करने के उद्देश्य से (मैकएडम, डी, 1996 : 135–143)।

(द) **सापेक्ष अभाव का सिद्धांत** : इसे सामाजिक आंदोलन के अध्ययन में प्रमुख स्थान प्राप्त है। मार्क्सवादी विश्लेषण में आर्थिक अभाव को दो विरोधी वर्गों में सम्पन्न तथा विपन्न के बीच सामाजिक संघर्ष का प्रमुख कारण माना गया है।

टिप्पणी

ऐबर्ले (1966) के लिए अभाव के अ–भौतिक आधार भी होते हैं जैसे– स्टेटस/हैसियत, व्यवहार, संपदा आदि। सापेक्ष अभाव, यानी वैधानिक उम्मीदों तथा यथार्थ स्थिति के बीच असंगतता सामाजिक आंदोलन का केंद्र बिंदु है। गुर्र (1970) ने अभाव को उम्मीदों तथा बोधगम्य क्षमताओं के बीच अंतराल के रूप में महसूस किया जिसमें मूल्यों के तीन सामान्यीकृत सेट सम्मिलित हैं– आर्थिक स्थितियां, राजनीतिक शक्ति तथा सामाजिक स्टेटस (राव, 1982)।

(ई) **सांस्कृतिक पुनर्जीवन का सिद्धांत** : वैलेस (1956) द्वारा समर्थित इस मत के अनुसार सामाजिक आंदोलन समाज के सदस्यों की सोद्देश्य संगठित तथा चेतन क्रिया की अभिव्यक्ति होते हैं जो स्वयं के लिए अधिक संतोषजनक संस्कृति निर्मित करने के लिए होती है। उनके लिए पुनर्जीवन आंदोलन प्रगति की चार अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं– सांस्कृतिक स्थिरता से, सांस्कृतिक विरूपण से, व्यक्तिगत तनाव से तथा सांस्कृतिक पुनर्जीवन से।

सामाजिक सुधार की रणनीति

सामाजिक आंदोलन सामाजिक संघर्षों की तरह समांगी परिघटना नहीं होते हैं। हमने ऊपर सुझाया है कि संघर्ष के घटक सामाजिक आंदोलनों के केंद्र में स्थित होते हैं। सामाजिक संघर्षों के प्रकारों के विस्तार तथा भिन्नताएं बद्ध होते हैं जिसके परिणामस्वरूप ये समाज में विभिन्न प्रकार के सामाजिक आंदोलनों को जन्म देते हैं। सामाजिक आंदोलन सामान्यतः कुछ सामूहिक साझीदारी वाले सामाजिक मुद्दों, प्रश्नों तथा चुनौतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप संघर्ष की स्थिति में उभरते हैं। किसी संकुल समाज जैसे भारत में सामाजिक मुद्दों की प्रकृति, क्षेत्रों, जातियों, वर्गों, समुदायों के अनुसार तथा क्षेत्रीय समूहों, जैसे जनजातियों, किसानों तथा शहरी समुदायों के अनुसार परिवर्ती होती है। पाठक आसानी से समझ सकते हैं कि केरल के समुद्रतट के मछुआरों के मुद्दों तथा संघर्षों के प्रकार उत्तराखंड में हिमालयी पहाड़ी व्यक्तियों से पूरी तरह भिन्न हो सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप, समाज में भिन्न प्रकार के आंदोलनों की अभिव्यक्ति होती है। आंदोलनों की बहुरुपी प्रकृति को वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए सुगम बनाने की आवश्यकता है।

जैसा कि पहले बताया गया है परिवर्तन के लिए सिद्धांतवाद, संगठन, नेतृत्व, व्यक्तिवाद, आदर्शवाद अभिविन्यास, सामाजिक आंदोलनों के महत्वपूर्ण घटक हैं तथा निकट रूप से सामूहिक लामबंदी तथा नई पहचान निर्माण की प्रक्रिया से संबद्ध है। इन घटकों के रूप में परिवर्तन सामाजिक आंदोलनों के गुणों में अत्यधिक बदलाव ले आता है और उसी के अनुसार सामाजिक आंदोलनों का श्रेणीकरण किया जा सकता है। पी.एन. मुखर्जी (1979) ने सामाजिक आंदोलन का "क्रांतिकारी आंदोलन" तथा "क्वासी आंदोलन" में श्रेणीकरण किया जो सामूहिक लामबंदी की प्रक्रिया के द्वारा प्रेरित परिवर्तन की प्रकृति तथा दिशा पर आधारित है। उनके अनुसार, जब सामूहिक लामबंदी का उद्देश्य किसी तंत्र में व्यापक तथा दूरगामी परिवर्तनों को करना हो तो उसे क्रांतिकारी आंदोलन कहा जा सकता है और जब उसका उद्देश्य सिर्फ प्रणाली के अंदर परिवर्तन करना हो तो उसे क्वासी आंदोलन कहा जा सकता है। विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के जीवन चक्र का निरीक्षण करने वाले समाजविज्ञानी कहते हैं कि जल्दी अथवा देर से ही सामाजिक आंदोलन नित्यक्रियात्मक हो जाते हैं। अक्सर विरोध

आंदोलन की शुरुआत एक व्यवस्थित विचार पद्धति से होती है लेकिन समय के साथ वह अपनी व्यवस्था विकसित कर लेता है। राव के लिए, जब एक निश्चित विचार पद्धति वाला आंदोलन सुस्थापित राजनीतिक दल बन जाता है, तो उसका आंदोलन होना रुक जाता है। सिंघाराय बताते हैं कि "भारतीय संदर्भ में सामाजिक आंदोलनों को विश्लेषित करने का कोई भी प्रयास पहले के आंदोलनों की गतिकी को परिलक्षित करता है क्योंकि इन आंदोलनों के रूपांतरण पृथक नहीं थे। बल्कि, विचारधारा का पुनर्विन्यास तथा उन आंदोलनों के संगठन सामूहिक लामबंदी के साथ एक अथवा दूसरे रूप में जुड़े रहते हैं। अतः समय के साथ लामबंदी के संस्थागत हो जाने की प्रक्रिया होती है। टी.के. ओमेन बताते हैं कि लामबंदी तथा संस्थागत होने की प्रक्रियाएं साथ–साथ हो सकती हैं तथा संस्थागत होना लामबंदी की नई संभावनाओं को प्रदान करता है। उनके अनुसार, संस्थागत होने तथा लामबंदी की प्रक्रियाओं को अनिवार्य रूप से आंदोलन की दो भिन्न प्रावस्थाओं की तरह देखा जाना चाहिए न कि दो परस्पर विरोधी प्रक्रियाओं की तरह...। अंतिम विश्लेषण के रूप में लामबंदी को संस्थागत होने के द्वारा विस्थापित नहीं किया जा सकता है बल्कि ये दोनों काफी हद तक साथ–साथ चलती हैं तथा अक्सर बाद वाली प्रक्रिया पहले वाली को विशिष्टीकृत करती है।

भारत में सामाजिक आंदोलनों के रूपांतरण के मुद्दों का अध्ययन करते समय बिपिन चन्द्रा द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में किए गए निरीक्षणों का उल्लेख करना उपयुक्त है। उन्होंने प्रकाश डाला कि इस आंदोलन ने अपनी पूरी शक्ति युद्धप्रियता तथा जनता की स्व–बलिदान की भावना से प्राप्त की; जिसमें किसानों तथा छोटे भू–स्वामियों का बड़ा वर्ग भी सम्मिलित है। इस आंदोलन की नीति युद्धविराम–संघर्ष–युद्धविराम को अपनाती है, जिसमें न्यायेतर/विधि बाह्य जन आंदोलनों की प्रावस्थाएं अधिक निष्क्रिय प्रावस्थाओं के साथ संकांतरित होती हैं जो विधि सम्मत सीमाओं में चलता है। चंद्रा के लिए, गांधी की इस नीति में सहयोगी बने बगैर संवैधानिक स्थान का उपयोग करने की तथा जनसमूह के साथ संपर्क बनाए रखने की तथा उनकी सृजनात्मक ऊर्जाओं को अवशोषित करने की क्षमता थी। चंद्रा के अनुसार यह नीति, ग्रैम्स्की द्वारा पेश की गई सत्ता के लिए युद्ध नीति के काफी समान थी। ग्रैम्स्की ने भारत के अंग्रेजों के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष को युद्ध के तीन प्रकारों से युक्त पाया– आंदोलन का युद्ध, सत्ता/पद का युद्ध तथा भूमिगत युद्ध। गांधी का निष्क्रिय प्रतिरोध सत्ता/पद का युद्ध था, जो कुछ आंदोलनों में आंदोलन का युद्ध बन गया तथा अंत में भूमिगत युद्ध बन गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पद/सत्ता के युद्ध की नीति अपनायी, जिसके दो मूल अस्त्र थे। यह प्रभुत्व संबंधी था तथा यह न्यायेतर जन संघर्ष तथा न्यायिक रूप से क्रियाशील युद्धविराम की प्रावस्थाओं के बीच एकांतरित होता रहता था। यह "युद्धविराम–संघर्ष–युद्धविराम" की पूरी प्रक्रिया ऊपर की ओर सर्पित रूप से बढ़ती थी, इसका ये भी मानना था कि स्वतंत्रता संग्राम अनेक अवस्थाओं से गुजरा था जिसका अंत उपनिवेशी शासन द्वारा सत्ता के स्थानांतरण के साथ हुआ।

भारत विभिन्न प्रकार के सामाजिक आंदोलनों, सुधार आंदोलनों, स्वतंत्रता आंदोलन, जनजातीय, कृषक, दलित, शहरी जागरूक वर्ग, महिलाओं का, परिस्थितिकीय तथा पर्यावरणीय, धार्मिक, जातिगत, भाषायी, शांति, युवा एवं छात्र तथा अन्य विविध

टिप्पणी

पहचान के आंदोलनों की उर्वर भूमि है। भारत में इन आंदोलनों के अध्ययन में अनेक महत्वपूर्ण परिदृश्य उभरे हैं। पार्थनाथ मुखर्जी का यह मत है कि सामाजिक आंदोलन तथा सामाजिक परिवर्तन (अथवा परिवर्तन के लिए प्रतिरोध) के बीच संबंध निर्विवाद है, इसको न मानना आंदोलनों के किसी भी विश्लेषण के प्रमुख बिंदु से ध्यान हटाना है। इसके चार मौलिक आधार हैं।

(1) सामाजिक आंदोलन अनिवार्य रूप से सामाजिक परिवर्तन और इसलिए सामाजिक संरचना से संबंधित है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक आंदोलन सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्य शर्त है, सामाजिक परिवर्तन सामाजिक आंदोलनों से मुक्त रूप से अव्यक्तिक बलों तथा कारकों के क्रियान्वयन के द्वारा भी हो सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह परिवर्तन प्रतिरोधी है।

(2) सामाजिक आंदोलन सामाजिक संरचना के उत्पाद हैं और इसलिए सामाजिक संरचना में कुछ स्थितियों के कारण उभरते हैं।

(3) सामाजिक आंदोलनों की स्वयं एक अभिज्ञेय संरचना होती है जिसके संदर्भ में ये अपने लक्ष्यों के सापेक्ष क्रियाशील रहते हैं।

(4) सामाजिक आंदोलन उस सामाजिक संरचना के परिणाम हैं जिसके ये उत्पाद हैं।

इस प्रकार सामाजिक परिवर्तनों को निम्नलिखित संदर्भों में देखना चाहिए–

(1) ऐसे परिवर्तन जो दी गई संरचना (ओं) में होते हैं;

(2) अतिरिक्त संरचना (ओं) के उभरने से होने वाले परिवर्तन;

(3) ऐसे परिवर्तन जो विद्यमान संरचना (ओं) की वैकल्पिक संरचना (ओं) द्वारा विस्थापन के फलस्वरूप होते हैं।

कोई भी क्रिया के लिए सामूहिक लामबंदी स्पष्ट रूप से किसी तंत्र की संरचनाओं के परिवर्तन अथवा रूपांतरण की ओर अभिमुख होती है (अथवा किसी तंत्र में परिवर्तन अथवा रूपांतरण के लिए स्पष्ट खतरा होती है), जिसे उचित रूप से एक सामाजिक आंदोलन के रूप में समझा जा सकता है। जब सामूहिक लामबंदी का उद्देश्य किसी प्रमुख संस्थागत तंत्र में व्यापक तथा दूरगामी परिवर्तन करना होता है जिसमें पूरा समाज निहित होता है, तो हम उसे उचित रूप से क्रांतिकारी आंदोलन कहते हैं। किसी तंत्र के भीतर परिवर्तनों के उद्देश्य से होने वाले सामूहिक आंदोलन क्वासी आंदोलन कहलाते हैं। ऐसे परिवर्तन के लिए दिशा–निर्देश तथा औचित्य आंदोलन की विचारधारा द्वारा प्रदान किया जाता है। अतः भले ही प्रचुर मात्रा में आंदोलन हुए हों लेकिन इनमें सामाजिक आंदोलन अधिक नहीं हैं। अधिकांश क्वासी आंदोलन हैं और बहुत कम ही क्रांतिकारी आंदोलन है। हालांकि क्रांतिकारी आंदोलन को संभवतः क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में परिपक्व होने से पहले क्वासी तथा सामाजिक आंदोलनों की अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है।

देबल सिंघाराय (1992) ने कृषक आंदोलनों के रूपांतरण के अध्ययन के लिए एक विश्लेषणात्मक ढांचा सुझाया है जिसमें कृषक आंदोलनों को उनकी विचारधारा के अभिविन्यास, लामबंदी के प्रकार तथा परिवर्तन के लिए अभिविन्यास के संदर्भ में श्रेणीबद्ध किया गया है। इस ढांचे में कृषक आंदोलन को गरीब किसानों (गुजर बसर करने वाले किसानों तथा छोटे उत्पादकों) तथा कृषि श्रमिक वर्ग (कृषि मजदूरों,

टिप्पणी

काश्तकारों, साझा खेती करने वालों तथा कारीगरों) द्वारा नई सामूहिक पहचान निर्माण की प्रक्रिया द्वारा भूमि के स्वामित्व, नियंत्रण तथा उपयोग के पैटर्न में परिवर्तन लाने, कृषि उत्पादों की मजदूरी में हिस्सेदारी, भूसंपत्ति की जमानत तथा संस्थागत सहायता तंत्र तथा समाज की अन्य सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाएँ जिन्होंने लंबे समय तक उनका दमन किया था, के विरुद्ध एक संगठित प्रयास के रूप में देखा गया है। इन कृषक आंदोलनों को उनकी सक्रियता को विश्लेषित करने के लिए पुनः "मूलज" तथा सुधारवादी के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है। "मूलज" कृषक आंदोलन को एक गैर–संस्थागत व्यापक सामूहिक लामबंदी के रूप में देखा जाता है, जो तीव्र सामाजिक परिवर्तन के लिए मूलज–विचारधारा द्वारा आरंभ तथा निर्देशित होता है। यह भूमिहर समाज में संरचनात्मक परिवर्तन की ओर अभिमुख होता है। व्यापक आर्थिक निरूपण के आधार पर तथा दिए गए सामाजिक आर्थिक संदर्भ में मूलज आंदोलन का जीवनकाल विविध होता है, उनकी क्रिया तथा सामूहिक लामबंदी का काल अल्पजीवी न होकर व्यापक अवधि का होता है। दूसरी तरफ, "सुधारवादी कृषक आंदोलन, वह है जिसमें संस्थागत सामूहिक लामबंदी मान्यता प्राप्त संस्थाओं द्वारा प्रेरणा लेकर समाज की किसी चयनित संस्थागत व्यवस्था में क्रमिक परिवर्तन करती है। सामाजिक परिवर्तन का सुधारवादी रूपांतरित विचारधारा द्वारा निर्देशित सामूहिक लामबंदी के क्रम में ये आंदोलन संस्था, मूल्य, आदर्श तथा चलनों को नए संदर्भ में चयनित रूप से परिष्कृत रूप में पा लेते हैं। हालांकि, कृषक आंदोलन विविक्त रूप से मूलज अथवा सुधारवादी नहीं होते हैं; बल्कि एक समय के साथ परिवर्तित होकर दूसरे में विस्तारित हो सकता है (सिंघाराय 1992 : 27)। इस अध्ययन के क्रम में यह देखा गया है कि इन आंदोलनों की "मूलज" से "सुधारवादी" में रूपांतरण की प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से कृषक की नई सामूहिक पहचान निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

सामाजिक संघर्ष अनिवार्य रूप से एक परस्पर–क्रियात्मक संकल्पना है। यह पहले से ही हो या अधिक व्यक्तियों अथवा समूहों, समुदायों तथा वर्गों के अस्तित्व को कुछ मुद्दों, लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के बारे में विरोधी दावों अथवा संघर्षों की स्थिति में मानती है। विपरीत संकल्पना के रूप में संघर्ष में सदैव कुछ मूल्यों, उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों के लिए एक समूह के संघर्ष, मशक्कत तथा सक्रिय प्रयास दूसरे समूह के दावों को रद्द करने के लिए सम्मिलित रहते हैं। संघर्ष हल्की सी असहमति से लेकर जघन्य हमले अथवा हत्या तक भिन्न हो सकते हैं। यहां पर कुछ बिंदुओं पर महत्व देने की आवश्यकता है। पहला, महज विवादों/संघर्षों का होना सामूहिक क्रिया के अस्तित्व का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है तथा सभी प्रकार की सामूहिक क्रियाओं में संघर्ष सम्मिलित नहीं होता है। दूसरे, आदर्श अभिमुख संस्थागत सामूहिक क्रियाएं जैसे सामूहिक प्रयासों से किसी त्यौहार के अवसर को सफल बनाना अथवा किसी समारोह को सामूहिक रूप से मनाए जाने के उदाहरण अथवा किसी धार्मिक अनुष्ठान को करने में संघर्ष का घटक नहीं होता है।

जैसा कि कोई आसानी से समझ सकता है कि गैर–संस्थागत संघर्षों सामूहिक क्रिया के अध्ययन में, आपको वैयक्तिक प्रकार के संघर्षों को जैसे कि कोई अपने दैनिक जीवन में माता–पिता तथा बच्चे के बीच अथवा पति–पत्नी के बीच देखता है अथवा पड़ोसियों के बीच मतभेदों तथा विवादों को अलग कर देना चाहिए। वैयक्तिक विवाद/संघर्ष हमारे अध्ययन क्षेत्र में नहीं है। लेकिन स्वायत्व रूप से अथवा संगठित

टिप्पणी

तरीके से विरोध तथा एक समूह की दूसरे समूह अथवा संस्था के विरुद्ध हिंसा अथवा किसी सामाजिक परंपरा के विरुद्ध सामूहिक रूप से जनसमूह का नारे लगाना, शोषण के विरुद्ध मोर्चा निकालना अथवा किसी जाति, वर्ग, लिंग अथवा संस्थागत सत्ता द्वारा अनैतिक शक्ति का उपयोग सामूहिक संघर्ष की प्रकृति को विशेषित करते हैं। कुछ उदाहरणों जैसे जमींदारों के संपन्न वर्ग के विरुद्ध गांवों में किसानों के भूमि पर स्वामित्व तथा नियंत्रण के लिए विद्रोह अथवा धरना देना, कारखानों में मजदूरों द्वारा वेतन बढ़ाने, बोनस, बेहतर कार्य स्थितियों, जिनमें पूंजीवादियों के विरुद्ध निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी आदि का उदाहरण आसानी से दिया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किसके अनुसार सामाजिक आंदोलन या तो परिवर्तन के लिए अथवा परिवर्तन से प्रतिरोध के लिए होते हैं?
   (क) विल्सन के (ख) गसफील्ड के
   (ग) हेबरली के (घ) ब्लूमर के
2. किन आंदोलनों की उत्पत्ति पर अनेक विचार पद्धतियां हैं?
   (क) आर्थिक (ख) राजनीतिक
   (ग) शैक्षिक (घ) सामाजिक

2.3 सामाजिक सुधार के दार्शनिक आधार

दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं की व्याख्या करता है। यह सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा व्यक्ति, समाज आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। समाज कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूलाधार ही मानवतावादी है, लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धान्तों तथा तथ्यों पर आधारित है। समाज कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन कल्याण के लिए करता है।

दर्शन क्या है?

लियोनार्ड (Leonard) के अनुसार, "दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्यात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है। आदर्शात्मक रूप के अतिरिक्त यह मनुष्य–मनुष्य के बीच तथा मनुष्य व सम्पूर्ण जगत के बीच सम्बन्धों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है। मानव विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा।"

समाज कार्य मानव जीवन को अधिक सुखमय तथा प्रकार्यात्मक बनाने का संकल्प रखता है। अतः बट्रिम (Butrym) का मत है कि समाज कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है। परन्तु यह संकल्प तभी पूरा हो सकता है जब समाज कार्य उन विश्वासों पर आधारित हो जो सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसी संदर्भ में समाज कार्य दर्शन का वर्णन किया जा रहा जिसमें समाज कार्य के प्रत्ययों, मनोवृत्तियों तथा मूल्यों का निरूपण किया जायेगा।

समाज कार्य के मूल प्रत्यय (Basic concepts of social work)

टिप्पणी

1. व्यक्ति का प्रत्यय (Concept of Individual)

जान्सन का मत है कि समाज कार्य व्यक्ति के अन्तर्निहित महत्व (Inherent Worth), सत्यनिष्ठा (Integnty) तथा गरिमा (Dignity) के प्रति आस्था रखता है। इस प्रत्यय को ध्यान में रखकर कार्यकर्ता सम्बन्ध स्थापित करता है तथा समस्या समाधान करने का प्रयास करता है। कार्यकर्ता यह विश्वास भी रखता है कि व्यक्ति समग्रता में प्रतिक्रिया करता है तथा उसकी बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियां भिन्न–भिन्न होती हैं। अतः उनका व्यवहार भी भिन्न–भिन्न होता है। उसके वैयक्तिक मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं और वह संपूर्ण पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया करता है। उसको अपना निर्णय लेने का अधिकार होता है। समाज कार्य में इन्हीं बिन्दुओं को महत्वपूर्ण माना जाता है तथा ये ही समाज कार्यकर्ताओं द्वारा किए जाने वाले कार्य का मार्ग निर्देशन करते हैं।

2. व्यवहार का प्रत्यय (Concept of behaviour)

व्यवहार का तात्पर्य व्यक्ति के बाह्य पर्यावरण के प्रति किये गये प्रत्युत्तर से है। व्यक्ति पर्यावरण के समायोजन करने के लिए प्रत्युत्तर करता है। प्रत्येक क्षण व्यक्ति को आन्तरिक तथा बाह्य प्रेरक, आवश्यकताएं तथा सामाजिक पर्यावरण प्रभावित करते हैं जिसके कारण उस पर दबाव पड़ता है। फलतः उसे तनाव एवं चिंता की अनुभूति होती है। इस चिंता को कम करने तथा तनाव को हटाने के लिए व्यक्ति जो कार्य करता है उसे उस व्यक्ति का व्यवहार कहा जाता है। इस प्रकार व्यवहार के अन्तर्गत एक समय में व्यक्ति द्वारा किये गये समस्त संवेग, विचार, दृष्टिकोण तथा कार्य आते हैं। मानव व्यवहार अनेक सिद्धान्तों पर आधारित है जिनमें निम्न प्रमुख हैं–

(1) सभी प्रकार का व्यवहार अर्थपूर्ण होता है।

(2) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति उसके व्यवहार को प्रभावित करती है।

(3) अतीत में प्राप्त किए गए अनुभव व्यवहार को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(4) सामाजिक पृष्ठभूमि व्यवहार के ढंग को प्रभावित करती है।

(5) वंश परम्परा की विशेषताओं का व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।

(6) व्यवहार चेतन व अचेतन दोनों प्रकार का होता है।

(7) वर्तमान दशाओं का व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।

(8) भावी आशाओं का भी व्यवहार में महत्वपूर्ण स्थान है।

(9) सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का व्यवहार व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है।

(10) नवीन तथ्यों की जानकारी के पश्चात् व्यवहार बदलता भी रहता है।

समाज कार्यकर्ता व्यवहार के इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही अपनी भूमिका संपादित करता है।

3. समस्या का प्रत्यय (Concept of Problem)

जब एक व्यक्ति पहले से सीखी हुई आदतों, सम्प्रेरणाओं तथा नियमों की सहायता से उद्देश्य पर पहुंच नहीं पाता है, तब समस्या की स्थिति उत्पन्न होती है। समस्या उस

टिप्पणी

समय भी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति एक उद्देश्य तो रखता है, परन्तु यह नहीं जानता है कि उस उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाये। समस्या किसी एक या एक से अधिक आवश्यकता से सम्बन्धित होती है जो व्यक्ति के जीवन में व्यवधान एवं कष्ट उत्पन्न करती है। समस्या किसी दबाव (शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक) के रूप में भी हो सकती है जो सामाजिक भूमिका पूरी करने में बाधा उत्पन्न करती है। समस्या के अनेकानेक रूप होते हैं तथा इसकी प्रकृति गत्यात्मक होती है। यह सदैव शृंखलाबद्ध रूप में प्रतिक्रिया करती है। कोई भी समस्या जिससे व्यक्ति ग्रसित होता है वस्तुगत (बाह्य) तथा विषयगत (आन्तरिक) दोनों प्रकार से महत्वपूर्ण होती है। समस्या के बाह्य तथा आन्तरिक तत्व न केवल एक साथ घटित होते हैं बल्कि इनमें से कोई भी एक–दूसरे का कारण हो सकता है। समस्या की प्रकृति कैसी भी हो लेकिन सेवार्थी की प्रतिक्रियाओं का प्रभाव समस्या समाधान पर अवश्य पड़ता है।

समाज कार्यकर्ता में समस्या समाधान के लिए निम्न योग्यताएं होनी आवश्यक होती हैं–

(1) समस्या के तथ्यों का पूर्ण ज्ञान

(2) समस्या के सभी तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान

(3) तत्वों को व्यवस्थित करने की योग्यता तथा विकास की गति का ज्ञान

(4) परिस्थिति का उचित प्रत्यक्षीकरण

(5) पूर्व अनुभवों का उचित उपयोग

(6) सम्प्रेरणाओं की जटिलता तथा इनके प्रकार का ज्ञान

समाज कार्य का दृढ़ विश्वास है कि समस्या सभी व्यक्तियों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। परन्तु जो व्यक्ति समाधान कर लेता है वह सेवार्थी नहीं बनता। अतः समाधान करने की क्षमता का विकास व्यक्ति में सन्निहित है।

4. सम्बन्ध का प्रत्यय (Concept of Relationship)

सम्बन्ध एक प्रत्यय है जो मौखिक अथवा लिखित वार्तालापों में प्रकट होता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति लघुकालीन, दीर्घकालीन, स्थायी अथवा अस्थायी सामान्य अभिरुचियों एवं भावनाओं के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। सामाजिक एवं सांवेगिक होने के नाते मनुष्य दूसरों के साथ सम्बन्धों, उनकी वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही साथ उसका सम्पूर्ण समायोजन भी इसकी परिधि क्षेत्र में आ जाता है। बीस्टेक (Biestek) ने सम्बन्ध के इन तत्वों का उल्लेख किया है– भावनाओं का उद्देश्यपूर्ण प्रगटन, नियंत्रित सावेगिक भागीकरण (Involvement), स्वीकृति, वैयक्तीकरण, अनिर्णायक मनोवृत्ति, आत्म निश्चयीकरण तथा गोपनीयता।

5. भूमिका का प्रत्यय (Concept of role)

सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में व्यक्ति अपनी आयु लिंग, जाति, प्रजाति एवं व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर जिस स्थिति को प्राप्त करता है उसे उसकी प्रस्थिति (Status) कहा जाता है और प्रस्थिति के संदर्भ में सामाजिक परम्परा, प्रथा, नियम एवं कानून के अनुसार कार्य करने होते हैं, वह उसकी भूमिका (Role) होती है। लिटन का मत है कि प्रत्येक स्थिति का एक क्रियापक्ष होता है, इस क्रियापक्ष को ही भूमिका कहते हैं। अपनी स्थिति का औचित्य सिद्ध करने के लिए व्यक्ति को कुछ करना होता है, उसी को भूमिका कहा जाता है।

जब व्यक्ति की प्रेरणाएं एवं क्षमताएं उसकी अपेक्षित भूमिका के अनुकूल नहीं होती हैं तो उसका अनुकूलन नहीं हो पाता है और उसे बाह्य सहायता की आवश्यकता होती है।

6. अहं का प्रत्यय (Concept of ego)

अहं मस्तिष्क का वह भाग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखता है। व्यक्ति में ऐसी अनेक मूल प्रवृत्तियां होती हैं जो सन्तुष्ट होने के लिए चेतन में आने का प्रयत्न करती हैं, परन्तु अहं ऐसा करने से रोकता है क्योंकि उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है।

अहं की शक्ति (Ego Strength) की असफलता की अवस्था में व्यक्ति अतार्किक एवं अचेतन सुरक्षात्मक उपायों (Defence Mechanisms) का प्रयोग अहं की सुरक्षा के लिए करता है। इस प्रकार की युक्तियों द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को तार्किक बनाता है और समाज द्वारा अस्वीकृत उत्प्रेरकों को सही मानता है। वह अहं की रक्षा के लिए प्रक्षेपण, प्रतिगमन, अस्वीकृति, स्थानापन्न, प्रतिक्रिया निर्माण आदि युक्तियों का प्रयोग सचेतन रूप से करता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी के समाज द्वारा स्वीकृत अनुकूलन के ढंगों तथा अतार्किक सुरक्षात्मक उपायों द्वारा अनुकूलन में अन्तर स्पष्ट करता है। वह सेवार्थी की अहं शक्ति का मूल्यांकन करता है तथा वर्तमान स्थितियों का सेवार्थी की दृष्टि से मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता अहं की कार्य प्रणाली तथा कार्यात्मकता के अध्ययन तथा निदान द्वारा सेवार्थी की शक्ति, विचार पद्धति, प्रत्यक्षीकरण, मनोवृत्ति आदि की जानकारी प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर उसे चिकित्सा प्रक्रिया निश्चित करने में सुविधा होती है।

7. अनुकूलन का प्रत्यय (Concept of adaptation)

व्यक्ति को दो कारणों से तनावपूर्ण स्थिति का अनुभव होता है–

(1) पहले अपनाए गए तथा अभ्यस्त ढंगों के द्वारा परिवर्तित स्थिति की मांगों से सम्बन्धित भूमिकाओं का प्रतिपादन न हो पाना।

(2) व्यक्तिगत सम्प्रेरणाओं एवं क्षमताओं में परिवर्तन होने की स्थिति में पहले की भूमिकाओं को पूरा करने में व्यक्तिगत असन्तुलन होना।

व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति से तीन प्रकार से अनुकूलन करता है–

(1) प्रयोग में लाए गए तथा पूर्व निश्चित ढंगों के उपयोग द्वारा।

(2) कल्पना की उड़ान द्वारा।

(3) उदासीनता, मानसिक उन्मुखता, प्रत्याहार, अगतिमानता अथवा अतिसक्रियता द्वारा।

व्यक्ति सबसे पहले अपनी समस्या का समाधान अपने पहले प्रयोग में लाए गए ढंगों एवं प्रयुक्त प्रविधियों द्वारा करने का प्रयत्न करता है। यदि इस प्रकार समस्या का समाधान नहीं होता है तो वह या तो संघर्ष करता है या अपने को उस स्थिति के अनुकूल बना लेता है अथवा उस स्थिति से दूर होने का प्रयत्न करता है। यदि ये तरीके भी असफल हो जाते हैं तो वह समस्या के प्रति उदासीन होकर मानसिक रोगी बन जाता है।

टिप्पणी

समाज कार्य सेवार्थी की अनुकूलन करने की प्रविधियों की शक्तियों, क्षमताओं, प्रभावों आदि को महत्व देता है। सेवार्थी में अनुकूलन करने की क्षमता सामाजिक पर्यावरण से समायोजन करने की स्थिति को प्रभावित करती है। वह यह निश्चित करता है कि सेवार्थी तनावपूर्ण स्थिति को किस प्रकार सुलझाने का प्रयत्न करता है तथा अपने प्रयत्नों को किस सीमा तक परिवर्तित करता है और उसकी कठिनाई एवं समस्या को कितनी जल्दी दूर किया जा सकता है। कार्यकर्ता यह जान लेने के पश्चात दो प्रकार के प्रयत्न करता है। वह या तो व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों को सम्बल प्रदान करते हुए अनुकूलन सम्भव बनाता है या फिर सामाजिक परिस्थिति में ही परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

भारत के इतिहास का यदि हम अवलोकन करें तो पता चलता है कि समाज के निर्माण के साथ–साथ समाज सेवा के कार्य चलते रहे हैं। गरीबों, असहायों तथा अपंगों की सहायता करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य माना गया है। वैदिक काल में सामुदायिक जीवन का विकास हुआ तथा सामूहिक सम्पत्ति की परम्परा टूटी। ऋग्वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में पुरोहित को एक कुशल समाज कार्यकर्ता के रूप में माना गया। उपनिषदों एवं प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है कि प्राचीन समय में दान देना, धर्मशालायें बनवाना, सड़कें बनवाना तथा दीन–दुखियों की सहायता करना राजा का कर्त्तव्य होता था। व्यक्ति को सदैव महत्व दिया गया तथा उसकी पीड़ा को दूर करने के निरन्तर प्रयास होते रहे। सनातन धर्म के सबसे महत्वपूर्ण साहित्य रामायण, महाभारत, गीता आदि से पता चलता है कि इस काल में व्यक्ति तथा समुदाय की भौतिक सहायता ही केवल सेवार्थी की सेवा नहीं थी। क्योंकि इससे हीनता एवं आश्रितता की भावना पनपने का भय था इसीलिए उन्हें किसी न किसी उद्योग में लगाना भी कर्तव्य समझा जाता था।

बौद्ध काल में समाज कार्य के भारतीय दर्शन की एक झलक मिलती है। विद्यार्थियों को अपने जीवन यापन के लिए स्वयं साधन ढूंढ़ने होते थे। विद्या दान पर विशेष बल दिया जाता था। युवकों में धार्मिक मनोवृत्ति के विकास के लिए अनेक मठों, मन्दिरों तथा धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की गयी थी। इस शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों में सुधार करना तथा उन्हें सुदृढ़ बनाना था।

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने समाज कार्य के मूल्यों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। जाति, प्रथा तथा भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया गया। राजा राममोहन राय ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर, शशिपदा बैनर्जी, महादेव गोविन्द रानाडे ने अनेक सराहनीय प्रयास किये। अनेक संस्थाओं जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन इत्यादि ने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाने तथा सामाजिक सम्बन्धों में सुधार करने के उद्देश्य से अनेक कार्य किये।

बीसवीं शताब्दी में गांधी जी के कार्यों का राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। अतः समाज कार्य के संदर्भ में गांधी दर्शन को समझना आवश्यक प्रतीत होता है। समाज कार्य के आधुनिक प्रत्यय "समाज कार्य मनो–सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त लोगों की इस प्रकार सहायता करता है कि वे स्वयं अपनी सहायता कर सके" ने गांधी जी के नेतृत्व में पर्याप्त सामाजिक स्वीकृति प्राप्त की। अपना तथा दूसरों का आदर एवं सम्मान (Respect for self and others) समाज कार्य में सभी प्रकार के सम्बन्धों का आधार है। गांधी जी ने मानव प्रतिष्ठा पर जोर दिया और उसकी प्राप्ति

के लिए देश को स्वतंत्र कराने का बीड़ा उठाया क्योंकि परतंत्रता की स्थिति में आत्म सम्मान तथा प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

टिप्पणी

गांधी जी ने अपने आन्दोलन में कभी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के आधार पर भेदभाव नहीं आने दिया। उनके कार्यों, भाषणों तथा व्याख्यानों में सदैव जाति एवं वर्ग विहीन समाज की स्थापना का स्वप्न झलकता था। गांधी जी के लिए लोग महत्वपूर्ण थे, न कि उनकी जाति, धर्म तथा पृष्ठभूमि। उन्होंने कभी भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों के आधार पर लोगों को समझने तथा उनकी सहायता करने का प्रयत्न नहीं किया। गांधी जी का मत था कि किसी को भी दूसरों पर अपना मत अथवा विचार नहीं थोपना चाहिए। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लोग अपने मन से ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करेंगे, दूसरों के विचार उन पर प्रभाव नहीं डाल सकते।

गांधी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि स्वयं अपनी सहायता सबसे अच्छी सहायता है। लोग तभी सक्रियता एवं पूर्ण आस्था के साथ काम करेंगे जब वे नियोजन एवं कार्यक्रमों में भाग लेंगे। गांधी जी चाहे हरिजनों के साथ कार्य करते थे या महिलाओं के, उनके सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने का कार्य करते थे तथा उन्हें यह अनुभव कराने का प्रयत्न करते थे कि उनकी भलाई उन्हीं में निहित है।

गांधी जी ने आत्म–अनुशासन (Self-discipline) को जीवन की शैली माना तथा इसका उन्होंने अपने जीवन में अभ्यास भी किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि नैतिक शक्ति के द्वारा बड़े से बड़े साम्राज्य से टक्कर ली जा सकती है और उसे हराया भी जा सकता है। उनके अनुसार सत्य और अहिंसा (Truth and Non-violence) न केवल व्यक्ति के लिए आवश्यक है बल्कि समूहों, समुदायों तथा राष्ट्रों के विकास के आधार भी है। उनका विचार था कि लक्ष्य साधनों के औचित्य को सिद्ध नहीं करते हैं (Ends do not justify means) बल्कि साधन स्वयं महत्वपूर्ण हैं।

गांधी जी ने समाज कल्याण को "सर्वोदय" के रूप में समझा जिसका तात्पर्य सभी क्षेत्रों में सभी का कल्याण है। लेकिन साथ ही साथ भारतीय समाज के निर्बल एवं दुर्बल वर्ग के कल्याण पर विशेष बल दिया। इसीलिए उन्होंने रचनात्मक कार्यों का शुभारम्भ किया। गांधी जी ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए जन आन्दोलन छेड़ा। उन्होंने जनमत तैयार किया तथा जन साधारण के स्तर से कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया।

अपनी प्रगति जांचिए

3. यह किसका मत है कि सामाजिक कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है?

   (क) लियोनार्ड का   (ख) बट्रिम का

   (ग) जान्सन का   (घ) विल्सन का

4. किसने सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए जन आंदोलन छेड़ा?

   (क) गांधी जी ने   (ख) इंदिरा गांधी ने

   (ग) पटेल ने   (घ) बोस ने

2.4 सामाजिक सुधार एवं समाजवाद

टिप्पणी

सुधार की सबसे पहली अभिव्यक्ति बंगाल में राममोहन राय द्वारा शुरू हुई। उन्होंने 1814 में आत्मीय सभा की स्थापना की जो उनके द्वारा 1829 में संगठित ब्रह्म समाज की अग्रगामी थी। सुधार की भावना शीघ्र ही देश के अन्य भागों में भी दिखाई देने लगी। महाराष्ट्र की परमहंस मंडली और प्रार्थना समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में आर्य समाज, हिंदू समाज के कुछ मुख्य आंदोलन थे। इस दौरान के कई अन्य धार्मिक व जातिगत आंदोलन जैसे यू.पी. में कायस्थ सभा तथा पंजाब में सरीन सभा थे। पिछड़ी जातियों में भी इन सुधारों ने जड़ पकड़ ली जैसे, महाराष्ट्र में सत्य–शोधक समाज और केरल में नारायण धर्म परिपालन सभा। अहमदिया और अलीगढ़ आंदोलन, सिंह सभा तथा रहनुमाई मजदेबासन सभा आदि ने क्रमशः मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों में सुधार की भावना का प्रतिनिधित्व किया।

ऊपर दिए गए ब्योरे से निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं–

(i) इनमें से हरेक सुधार– आंदोलन कुल मिलाकर किसी एक या अन्य प्रांत तक सीमित था। ब्रह्म समाज और आर्य समाज की देश के अन्य प्रांतों में शाखाएं थीं फिर भी ये अन्य स्थानों की अपेक्षा बंगाल व पंजाब में ही ज्यादा प्रसिद्ध थे।

(ii) ये आंदोलन किसी एक ही धर्म या जाति तक ही सीमित थे।

(iii) इन आंदोलनों की एक अन्य विशेषता यह थी कि वे अलग–अलग समय में देश के अलग–अलग हिस्सों में उभरे। उदाहरण के लिए, बंगाल में सुधार के प्रयत्न 19वीं शताब्दी के आरंभ में शुरू हुए जबकि केरल में इनकी शुरुआत 19वीं शताब्दी के बाद हुई। इन सबके बावजूद उनके उद्देश्य और परिप्रेक्ष्य काफी हद तक समान ही थे। सभी की चिंता सामाजिक व शैक्षिक सुधारों द्वारा समाज के पुनर्जागरण में थी। भले ही उनकी प्रणालियों में अंतर था।

19वीं शताब्दी के सुधार आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन नहीं थे बल्कि ये सामाजिक–धार्मिक आंदोलन थे। बंगाल के राममोहन राय, महाराष्ट्र के गोपाल हरि देशमुख (लोकहितवादी) और आंध्र के विरेशलिंगम् जैसे सुधारकों ने धार्मिक सुधारों की वकालत "राजनीतिक फायदों और सामाजिक सुख" के लिए की थी। इन आंदोलनों और उनके नेताओं के सुधार परिप्रेक्ष्य की विशेषता उनकी इस मान्यता में थी कि धार्मिक और सामाजिक समस्याओं में अंतर्संबंध है। उन्होंने धार्मिक विचारों के प्रयोग द्वारा सामाजिक संस्थानों और उनकी परंपराओं में बदलाव लाने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, महत्वपूर्ण ब्राह्मण नेता केशव चंद्र सेन ने "देवत्व की एकता और मानव मात्र में भाई चारे" की व्याख्या समाज से जातिभेद मिटाने के लिए की थी। सुधार आंदोलनों की सीमा के अंतर्गत आने वाली प्रमुख समस्याएं निम्न थीं–

- नारी मुक्ति जिसमें सती प्रथा, शिशुहत्या, विधवा तथा बाल–विवाह इत्यादि समस्याओं को उठाया गया।
- जातिवाद और छुआछूत।
- समाज के ज्ञानोदय हेतु शिक्षा।

धार्मिक क्षेत्र के मुख्य विषय थे—

- मूर्तिपूजा।
- बहुदेववाद।
- धार्मिक अंधविश्वास।
- पंडितों द्वारा शोषण।

समाजवाद का अभिप्राय (Meaning of Socialism)

समाजवाद का उदय पूंजीवाद की एक वैकल्पिक आर्थिक प्रणाली के रूप में हुआ। समाजवाद के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ एकमत नहीं है। समाजवाद के विचार विभिन्न राजनीतिज्ञों एवं अर्थ—शास्त्रियों द्वारा विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किए गए हैं।

समाजवाद के स्वरूप को लेकर विभिन्न विचारधाराओं के जो मतभेद परिलक्षित होते हैं, उसके संदर्भ में प्रो. सी.ई.एम. जोड़ ने कहा है— "समाजवाद एक ऐसी टोपी है जिसका रूप प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड़ गया है।" प्रो. जोड़ के इस व्यंगात्मक कथन का अभिप्राय यह है कि समाजवाद का अपना कोई वास्तविक स्वरूप नहीं होता तथा इसके स्वरूप में परिस्थितियों के अनुसार समायोजन हो जाता है।

यद्यपि समाजवाद के अभिप्राय को लेकर अर्थशास्त्रियों में भिन्नता पाई जाती है।

फिर भी निम्नलिखित परिभाषाओं को समाजवाद की उपयुक्त परिभाषाओं की संज्ञा दी जा सकती है—

प्रो. डिकिन्स के अनुसार समाजवाद समाज का एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होता है तथा उनका संचालन एक सामान्य योजना के अन्तर्गत, सम्पूर्ण समाज के प्रतिनिधि एवं उसके प्रति उत्तरदायी संस्थाओं के द्वारा किया जाता है।

समाज के सभी सदस्य समान अधिकारों के आधार पर ऐसे नियोजन एवं समाजीकृत उत्पादन के लाभों के अधिकारी होते हैं। प्रो. लाक्स एवं छूट के अनुसार समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य बड़े पैमाने के उत्पादन में काम आने वाली प्रकृति निर्मित एवं मानव—निर्मित उत्पादन वस्तुओं का स्वामित्व एवं प्रबन्ध व्यक्तियों के स्थान पर समाज को सौंपना है, ताकि व्यक्ति की आर्थिक प्रेरणा अथवा उसकी व्यावसायिक एवं उपभोग संबंधी चुनाव करने की स्वतंत्रता को नष्ट किए बिना बड़ी राष्ट्रीय आय का अधिक समान वितरण हो सके।

मॉरिस डाब के अनुसार समाजवाद की आधारभूत विशेषता यह है कि इसमें सम्पन्न वर्ग की सम्पत्ति का अधिग्रहण एवं भूमि तथा पूंजी का समाजीकरण करके उन वर्ग सम्बन्धों को समाप्त कर दिया जाता है जो पूंजीवादी उत्पादन का आधार है।

समाजवाद की उपर्युक्त परिभाषा इस बात पर प्रकाश डालती है कि इस आर्थिक प्रणाली में उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व न होकर सामाजिक स्वामित्व (Social Ownership) होता है। साथ ही इन उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग किसी एक व्यक्ति के हित के लिए नहीं किया जाता, बल्कि सामाजिक एवं सामूहिक हित में किया जाता है। इसके अतिरिक्त समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय का न्यायोचित वितरण किया जाता है जिससे मानव द्वारा मानव का शोषण नहीं होने पाता।

समाजवाद की विशेषताएं (Characteristics of Socialism)

टिप्पणी

एक समाजवादी आर्थिक प्रणाली में पाये जाने वाले लक्षण एवं विशेषताएं अग्रलिखित हैं–

1. **उत्पत्ति के साधनों पर सामूहिक एवं सामाजिक स्वामित्व (Collective and Social Ownership on the Factor of Production) :** समाजवाद की नींव महत्वपूर्ण विशेषता पर आधारित है कि इस आर्थिक प्रणाली में उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व (Individual-Ownership) न होकर समाज का सामूहिक स्वामित्व (Collective-Ownership) होता है।

   दूसरे शब्दों में समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग सामाजिक कल्याण वाले कार्यों के लिए किया जाता है तथा इसमें व्यक्तिगत लाभ की भावना शून्य रहती है।

   उत्पत्ति साधनों का स्वामित्व (Ownership), नियंत्रण (Control) एवं नियमन (Regulation) राज्य द्वारा किया जाता है जिसके कारण पूंजीवाद की भांति समाजवाद में आर्थिक शोषण की कोई सम्भावना नहीं रहती तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है। इस प्रकार समाजवाद में अधिकतम सामाजिक कल्याण (Maximum Social Advantage) प्राप्त करना राजकीय कार्यों का एक मौलिक उद्देश्य बन जाता है।

2. **उत्पादन एवं वितरण क्रियाएं राज्य द्वारा सम्पादित (Government Performs the Activities of Production and Distribution) :** समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी क्रियाओं पर सरकार का स्वामित्व एवं नियंत्रण रहता है। क्या उत्पादन होगा (What Toproduce), कैसे होगा (How to Produce), कितना होगा (How much to Produce) तथा उत्पादन का समाज में किस प्रकार वितरण होगा (How to Distribute), सम्बन्धी सभी फैसले सरकार स्वयं अधिकतम सामाजिक कल्याण की भावना के आधार पर करती है।

   समाजवाद की इस विशेषता के कारण व्यक्ति के द्वारा व्यक्ति के शोषण की सम्भावना समाप्त हो जाती है। क्योंकि श्रमिक अपनी योग्यतानुसार श्रम का समुचित प्रतिफल सरकार द्वारा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समाजवाद में शोषण के सभी स्रोत समाप्त हो जाते हैं।

3. **निजी सम्पत्ति का अति–सीमित अधिकार (Very Limited Ownership Right of Private Property) :** उत्पत्ति के सभी साधनों पर राज्य के स्वामित्व का यह अभिप्राय नहीं कि समाजवाद में निजी सम्पत्ति का अधिकार पूर्णतः नगण्य होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति के अधिकार का सीमित अस्तित्व तो होता है, किन्तु इस सम्पत्ति का प्रयोग धनोपार्जन (Creation of Wealth) के लिए नहीं किया जा सकता।

   उदाहरण के लिए, रहने के लिए मकान एवं अन्य आवश्यक सामग्री (जैसे टी. वी., फ्रिज, फर्नीचर आदि) जैसी निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार इस समाजवादी प्रणाली में व्यक्तियों को होता है, किन्तु अपना मकान बेचकर अतिरिक्त आय अथवा लाभ प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता।

4. **एक केन्द्रीकृत नियोजन सत्ता (A Central Planning Authority) :** समाजवादी आर्थिक प्रणाली में आर्थिक क्रियाओं का संचालन करने के लिए एक केन्द्रीकृत नियोजन सत्ता (A Central Planning Authority) गठित की जाती है। यह केन्द्रीकृत सत्ता उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी महत्वपूर्ण फैसले, अधिकतर सामाजिक कल्याण का भावना के आधार पर करती है।

5. **आर्थिक नियोजन (Economic Planning) :** पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के विपरीत समाजवादी आर्थिक प्रणाली सामूहिक शक्ति वाली एक सामाजिक एवं पूर्णतः नियोजित प्रणाली होती है। समाजवाद में केन्द्रीकृत नियोजन सत्ता समाज में उपलब्ध उत्पत्ति के साधनों का अनुकूलतम प्रयोग (Optimum Exploitation of Resources) करने के लिए एवं अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति के लिए नियोजन का सहारा लेती है। नियोजन की इस प्रक्रिया में केन्द्रीय नियोजन सत्ता उपभोग, उत्पादन, वितरण, विनियोग, पूंजी निर्माण आदि सभी से संबंधित फैसले लेती है।

   दूसरे शब्दों में, एक समाजवादी आर्थिक प्रणाली में नियोजन प्रक्रिया द्वारा विभिन्न आर्थिक क्रियाओं को इस प्रकार संगठित किया जाता है कि उपलब्ध संसाधनों (Available Resources) को अनुकूलतम स्तर तक प्रयोग करके अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त किया जा सके इस प्रकार आर्थिक नियोजन के बिना समाजवादी आर्थिक संरचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

6. **कीमत संयन्त्र की गौण भूमिका (Passive Role of Price Mechanism) :** पूंजीवाद की भांति समाजवाद में कीमतों का निर्धारण कीमत संयन्त्र (अर्थात् मांग एवं पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों) द्वारा नहीं किया जाता बल्कि सरकार स्वयं अपने अनुभव के आधार पर कीमत निर्धारित करती है।

   आर्थिक क्रियाओं के लिए लेखा कीमतों (Accounting Price) का प्रयोग किया जाता है, जिसका निर्धारण सरकार स्वयं उत्पादन, लागत एवं सामाजिक हित को ध्यान में रखकर करती है।

7. **आर्थिक समानता (Economic Equality) अथवा आर्थिक विषमताओं की समाप्ति (Elimination of Economic Inequality) :** निजी सम्पत्ति के अधिकार, व्यक्तिगत लाभ की अनुपस्थिति, उत्तराधिकार के नियम की समाप्ति के कारण समाजवादी आर्थिक प्रणाली में धन के वितरण की असमानताएं समाप्त हो जाती हैं। उत्पत्ति के साधनों पर सामूहिक, सामाजिक स्वामित्व होने के कारण आर्थिक समानताएं उपस्थित होती हैं।

   समाजवादी प्रणाली में आय का मुख्य स्रोत श्रमिक की मजदूरी है। समाजवादी प्रणाली में समाज कार्य के लिए समान मजदूरी (Equal Wage for Equal Work) का सिद्धान्त अपनाता है। किन्तु मजदूरी का निर्धारण श्रमिक की योग्यतानुसार किया जाता है।

   इस प्रकार योग्यता के अन्तरों के कारण समाजवादी प्रणाली में मजदूरी दरों की भिन्नता कुछ आर्थिक विषमताओं को उत्पन्न तो करती है, किन्तु यह विषमता समाज में व्यक्तियों को योग्यता विस्तार के लिए प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार समाजवादी प्रणाली में आर्थिक विषमता का पूर्ण उन्मूलन नहीं होता, बल्कि आर्थिक विषमताओं को न्यूनतम अवश्य कर दिया जाता है।

टिप्पणी

8. **शोषण का अंत (Elimination of Exploitation) :** समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पत्ति के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होने के कारण न्यूनतम आर्थिक विषमताएं होती हैं, जिसके फलस्वरूप समाज का दो वर्गों सम्पन्न वर्ग एवं विपन्न वर्ग में विभाजन नहीं होता साथ ही वितरण व्यवस्था पर सरकार का स्वामित्व होता है। जिसके कारण मानव द्वारा मानव के शोषण की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

9. **प्रतियोगिता का अंत (Elimination of Competition) :** समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादन एवं वितरण दोनों पर सरकार का अधिकार एवं नियंत्रण होने के कारण पारस्परिक प्रतियोगिता की कोई सम्भावना नहीं रह जाती।

   सरकार द्वारा स्वयं उत्पादन का क्षेत्र उत्पादन मात्रा तथा वस्तु कीमत निर्धारण किए जाने के कारण समाजवाद में प्रतियोगिता उत्पन्न ही नहीं हो पाती, जिसके कारण प्रतियोगिता पर होने वाला अपव्यय समाजवाद में समाप्त हो जाता है।

10. **अनर्जित आय का अन्त (Elimination of Unearned Income) :** समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्तराधिकार के नियम की समाप्ति के कारण किसी भी व्यक्ति को अनर्जित आय प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं होती, इस आर्थिक प्रणाली में श्रम सर्वोपरि होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करके आय अर्जित करता है।

    समाजवादी आर्थिक प्रणाली की उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि इस प्रणाली में पूंजीवाद के विपरीत साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होने के कारण आर्थिक क्रियाओं का क्रियान्वयन सामाजिक हित को ध्यान में रखकर स्वयं सरकार द्वारा किया जाना है, जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत हित, प्रतियोगिता, शोषण, आर्थिक विषमताएं उत्पन्न नहीं होतीं।

समाजवाद की सफलताएं अथवा गुण (Success or Merits of Socialism)

(i) **उत्पत्ति के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव (Optimum Utilisation of Factors of Production) :** समाजवादी अर्थव्यवस्था का मौलिक आधार केन्द्रीकृत नियोजन (Centralised Planning) होने के कारण उत्पत्ति के साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग सम्भव हो पाता है। साथ ही नियोजन द्वारा संसाधनों को कम उत्पादकता एवं वांछनीयता वाले क्षेत्र से निकाल कर अधिक उत्पादकता वाले एवं अधिक सामाजिक हित वाले क्षेत्रों में स्थानान्तरित करके संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करना संभव हो पाता है।

   पूंजीवाद में स्वहित उद्देश्य सर्वोपरि होने के कारण पूंजीपतियों में पारस्परिक स्पर्धा उत्पन्न होती है तथा संसाधनों का अपव्यय (Wastage of Resources) होता है, जिसके कारण पूंजीवाद में संसाधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता, किन्तु समाजवाद में नियोजन द्वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की आर्थिक क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। जिसके फलस्वरूप संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव हो पाता है।

(ii) **व्यापार–चक्रों की समाप्ति एवं आर्थिक स्थायित्व (Elimination of Trade Cycle and Economic Stability) :** समाजवाद में केन्द्रीय नियोजन के

कारण तथा उपभोग एवं उत्पादन क्षेत्र के पारस्परिक समन्वयन के कारण अर्थव्यवस्था में अति–उत्पादन (Over-Production) एवं कम उत्पादन (Under Production) की कोई सम्भावना नहीं होती जिसके कारण अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थायित्व बन जाता है।

केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा आर्थिक क्रियाओं का निष्पादन पूर्व निश्चित उद्‌देश्यों के आधार पर किया जाता है, जिसके कारण अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता, असन्तुलन एवं अन्तविरोध उत्पन्न नहीं होता और आर्थिक स्थायित्व की स्थिति उपस्थिति रहती है।

(iii) **आर्थिक समानता एवं सामाजिक न्याय (Economic Equality and Social Justice) :** समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों पर सामूहिक सामाजिक स्वामित्व होने के कारण आय एवं सम्पत्ति के वितरण में विषमताएं नहीं पाई जातीं। समाजवाद में उत्तराधिकार के नियम की अनुपस्थिति होने के कारण समाज के सभी वर्गों को अपनी योग्यतानुसार कार्य करने के समान अवसर प्राप्त होते हैं। इस प्रकार समाजवाद में आर्थिक समानता के साथ–साथ सामाजिक न्याय का घटक स्वतः उपस्थित हो जाता है।

(iv) **सामाजिक परजीविता का अन्त (Elimination of Social-Parasitism) :** पूंजीवाद में उत्तराधिकार के नियम की उपस्थिति के कारण धनी एवं संपन्न व्यक्तियों के उत्तराधिकारियों को अनर्जित आय प्राप्त होती है, जिससे वह गरीब एवं विपन्न लोगों का शोषण करते थे, किन्तु समाजवाद में अनर्जित आय का कोई स्थान नहीं।

समाजवादी प्रणाली में आय अर्जन का मुख्य स्रोत श्रमिक की स्वयं मजदूरी है। जो वह अपनी योग्यतानुसार प्राप्त करता है। इस प्रकार समाजवाद में परिजीविता के लिए कोई स्थान नहीं।

(v) **वर्ग–संघर्ष की समाप्ति (Elimination of Class-Struggle) :** समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों एवं उत्पादन क्रियाओं पर सरकारी स्वामित्व होने के कारण धन के आधार पर समाज का विभाजन सम्भव नहीं होता। समाज में प्रत्येक व्यक्ति श्रमिक होता है, जिसे अपनी योग्यतानुसार कार्य एवं मजदूरी प्राप्त होती है। इस प्रकार समाजवाद में केवल एक ही वर्ग अर्थात् श्रमिक वर्ग (Labour-Class) होता है, जिसके कारण समाज में द्वेष एवं वर्ग संघर्ष की कोई सम्भावना नहीं रहती।

(vi) **आर्थिक शोषण की समाप्ति (Elimination of Economic Exploitation) :** समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति अपनी आजीविका स्वयं अर्जित करता है। जिसके कारण इस प्रणाली को श्रम प्रधान आर्थिक प्रणाली की संज्ञा दी जा सकती है। व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यतानुसार धनार्जन करने के कारण एवं उत्पत्ति के समस्त साधनों पर सरकारी स्वामित्व होने के कारण मानव द्वारा मानव के शोषण की कोई सम्भावना नहीं रहती।

(vii) **बेरोजगारी का निराकरण (Elimination of Unemployment) :** समाजवादी अर्थव्यवस्था में नियोजन केन्द्रीय बिन्दु होता है। जिसके कारण समाज में कार्य करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति एकसमान अवसर प्राप्त करता है। सरकार

टिप्पणी

अधिकतम सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर विभिन्न उत्पादन क्रियाएं सम्पादित करती है, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य पाता है और बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न नहीं होती। जी.डी.एच. कोल के अनुसार समाजवाद के अंतर्गत केवल बेरोजगारी की समस्या नहीं होती, बल्कि बेरोजगारी की समस्या के उत्पन्न होने की संभावना ही नहीं होती।

(viii) एकाधिकारी शक्तियों की समाप्ति (Elimination of Monopoly Powers) : समाजवाद में सभी उत्पत्ति के साधनों एवं आर्थिक क्रियाओं पर सरकारी स्वामित्व होने के कारण समाज में धन एवं सम्पत्ति का किसी व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष के हाथों में केन्द्रीकरण नहीं हो पाता, जिसके कारण समाज में एकाधिकारी शक्तियां उत्पन्न नहीं होतीं।

(ix) प्रतियोगिता एवं अपव्यय की समाप्ति (Elimination of Competition and Wastage) : समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादन एवं वितरण दोनों पर सरकार का अधिकार एवं नियंत्रण होने के कारण पारस्परिक प्रतियोगिता की कोई संभावना नहीं रहती। सरकार द्वारा स्वयं उत्पादन के क्षेत्र, उत्पादन मात्रा एवं वस्तु कीमत निर्धारित किए जाने के कारण समाजवाद में प्रतियोगिता उत्पन्न नहीं हो पाती, जिसके कारण प्रतियोगिता पर होने वाला अपव्यय (जैसे विज्ञापन एवं प्रचार पर होने वाला व्यय) समाजवाद में समाप्त हो जाता है।

समाजवाद की असफलताएं अथवा दोष (Failure and Evils of Socialism)

समाजवादी आर्थिक प्रणाली में कुछ कमियां एवं दोष भी परिलक्षित होते हैं–

(i) प्रेरणा का अभाव (Lack of Incentive) : समाजवादी अर्थव्यवस्था वस्तुतः एक सर्वसत्तावादी (Totalitarian) अर्थव्यवस्था है, जिसमें आर्थिक शक्तियों का सरकार के हाथों में केन्द्रीकरण हो जाता है जिसमें सरकार द्वारा निर्देशित कार्य को सम्पादित करके केवल अपनी मजदूरी अर्जित करना ही श्रमिक का मुख्य उद्देश्य बन जाता है।

अधिक उत्पादकता से अर्जित लाभ में श्रमिक की भागीदारी न होने के कारण अधिक कार्य करने की भावना समाप्त हो जाती है। इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था में प्रेरणा का अभाव होता है।

साथ ही इस व्यवस्था में नवीन आविष्कारों, उत्पादन तकनीकों आदि का विकास करने में व्यक्ति प्रोत्साहित अनुभव नहीं करता, क्योंकि इस विकार द्वारा अर्जित लाभ में व्यक्तिगत लाभ की सम्भावना शून्य रहती है और व्यक्ति मात्र एक उदासीन श्रमिक बनकर रह जाता है।

(ii) कुशलता एवं उत्पादकता में कमी (Lack of Efficiency of Productivity) : समाजवादी अर्थव्यवस्था में अभाव के कारण श्रमिकों की कुशलता एवं उत्पादकता हतोत्साहित होती है। समाजवाद में श्रमिकों की मजदूरी का निर्धारण उनकी उत्पादकता के आधार पर नहीं होता, बल्कि सरकार स्वयं न्यूनतम आवश्यकता के आधार पर मजदूरी निर्धारित करती है। इस प्रकार श्रमिकों में आर्थिक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन का अभाव उनकी कुशलता एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

(iii) लाल फीताशाही एवं नौकरी के दोष उपस्थित (Presence of Evils of Red-Tapism and Bureaucracy) : सामाजिक आर्थिक व्यवस्था लाल फीताशाही एवं नौकरशाही के दोषों से ग्रसित होती है। उत्पादन के क्षेत्र में नियोजन के विभिन्न चरणों का निर्धारण सरकारी तंत्र एवं उसके अधिकारियों द्वारा किया जाता है।

टिप्पणी

अधिकारी गण उत्पादन प्रक्रिया को उतनी कुशलता से सम्पन्न नहीं कर पाते जितनी कुशलता से एक व्यक्तिगत उद्यमी उत्पादन क्रिया सम्पन्न करता है क्योंकि–

(क) व्यक्तिगत उद्यमी निजी स्वार्थ (अर्थात् लाभ) के लिए उत्पादन को उसके अनुकूलतम स्तर तक पहुंचाने का प्रयास करता है, जबकि सरकारी तंत्र एवं अफसर एक परम्परागत तरीके से बिना निजी स्वार्थ के कार्यशील होते हैं तथा वे उत्पादकता बढ़ाने में व्यक्तिगत उद्यमी की भांति कार्यरत नहीं होते।

(ख) सरकारी अफसरों की नियुक्ति एवं प्रोन्नति का आधार उनकी कुशलता एवं क्षमता नहीं होती।

(ग) सरकारी अफसरों में खतरा मोल लेकर उत्पादन करने की क्षमता का (अर्थात् उद्यमता) का अभाव पाया जाता है।

(घ) भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही के अवगुण अवरोध बन जाते हैं।

(iv) उपभोक्ता की प्रभुता की समाप्ति (Elimination of Consumers Sovereignty) : समाजवादी आर्थिक प्रणाली में आर्थिक शक्तियां सरकारी हाथों में केन्द्रित होने के कारण उत्पादन सम्बन्धी सभी निर्णय (अर्थात What? How and How much) सरकार स्वयं लेती है और उपभोक्ता को चयन की स्वतंत्रता (Freedom of Choice) से वंचित होना पड़ता है।

इस प्रकार इस प्रणाली में सरकार द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण किया जाता है। उपभोक्ता को विवश होकर उन्हीं वस्तुओं का उपभोग करना पड़ता है। ऐसी दशा में उपभोक्ता की प्रभुसत्ता समाप्त होकर रह जाती है।

(v) व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव (Lack of Individual Freedom) : समाजवादी आर्थिक प्रणाली में केन्द्रीय नियोजन होने के कारण उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग सरकार पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करती है तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक क्रियाओं को संचालन योजना के अनुसार कार्य करना पड़ता है, जिसमें व्यक्ति को चयन की कोई स्वतंत्रता नहीं होती और उसे बाध्य होकर सरकार द्वारा आवंटित कार्य को सम्पादित करना पड़ता है। इस प्रकार समाजवाद में आर्थिक स्वतंत्रता समाप्त होकर रह जाती है।

(vi) उत्पत्ति के साधनों का अविवेकपूर्ण उपयोग (Irrational Utilisation of Factors of Production) : समाजवादी आर्थिक प्रणाली में केन्द्रीय नियोजन सत्ता स्वयं उत्पादन की मात्रा, किस्म, क्षेत्र वितरण एवं कीमत आदि का निर्धारण करती है। उत्पत्ति के साधनों के कुशल आवंटन हेतु समाजवादी आर्थिक प्रणाली में कोई स्वचालित यन्त्र नहीं पाया जाता।

प्रो. हायेक (Hayak) समाजवादी अर्थ में उत्पत्ति साधनों के वितरण के आधार को मानना एवं अविवेकपूर्ण (Arbitrary and Irrational) मानते हैं। साथ ही इस अर्थव्यवस्था में लागत गणना का कोई नियमित आधार नहीं होता, जिसके कारण साधनों का आवंटन और अधिक अविवेकपूर्ण हो जाता है।

टिप्पणी

(vii) **पूंजी निर्माण प्रक्रिया हतोत्साहित (Disincentive to Process of Capital Formation) :** समाजवादी आर्थिक प्रणाली में पूंजी निर्माण प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि सभी संसाधनों पर सरकारी अधिकारी होने के साथ–साथ सरकार न तो पूंजी निर्माण की अनुमति देती है न ही व्यक्ति प्रेरणा की अनुपस्थिति पूंजी निर्माण में सहयोग कर पाती है। इस प्रकार पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली की भांति समाजवादी आर्थिक प्रणाली में पूंजी निर्माण की दर अपेक्षाकृत बहुत कम रहती है।

(viii) **दासता का मार्ग (Wat to Serfdom) :** प्रो. हायक समाजवादी आर्थिक प्रणाली को दासता का मार्ग मानते हैं उनके विचार में समाजवादी प्रणाली में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यावसायिक स्वतंत्रता एवं उपभोक्ता की प्रभुता समाप्त हो जाती है। और व्यक्ति अपने जीवन–यापन एवं आजीविका के लिए सरकार पर आश्रित होकर रह जाता है।

सामाजिक सुधारों की न्यूनतम आवश्यकताएं

- दाब एवं आकर्षक तत्व।
- कृषिगत समृद्धि के कारण प्रवास।
- कस्बों से नगरों की ओर पलायन।
- औद्योगीकरण।
- यातायात साधनों का विस्तार।
- जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि।
- नगरीय क्षेत्रों का पुनः वर्गीकरण।
- जनसंख्या विस्फोट।

नगरीकरण अनेक समस्याओं तथा गंदी बस्तियों, अस्वच्छता, पर्यावरणीय प्रदूषण, आवास, जल, विद्युत, यातायात एवं चिकित्सकीय सहायता के अभाव को जन्म देता है। भारत में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं एवं चुनौतियों का वर्णन निम्नलिखित है–

1. आवास का आभाव

जनसंख्या की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में आवास व्यवस्था का महत्व भोजन एवं वस्त्र के तुरंत बाद है। आवास योजना के अनेक मौलिक उद्देश्यों में आवास की व्यवस्था करना, जीवन की गुणवत्ता को उन्नत करना, विशेष तौर पर जनसंख्या के निर्धन समूहों के स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं शिक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सुचारु दवाएं उत्पन्न करने, पर्याप्त अतिरिक्त रोजगार एवं विविध आर्थिक क्रियाएं उत्पन्न करने एवं उनकी पूर्ति में सहायता देना है। दुर्भाग्य का विषय है कि एक ओर तो शहरों में मकानों की कमी है वहीं दूसरी ओर मकान की जर्जर अवस्था, सघनता, बनावट, संरचना और बनावट का स्तर और भी प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। भीड़–भाड़ तथा घुटनयुक्त मकान, मकानों के उच्च मूल्य, तीव्रता से झुग्गी–झोंपड़ी एवं बस्तियों का निर्माण तथा सम्पूर्ण

सजीव पर्यावरण की गुणवत्ता में तीव्र पतन, द्रुत जनसंख्या में वृद्धि, अपर्याप्त निवेश, व्यापक निर्धनता, नगरों में आवास संबंधी समस्याओं के कुछ प्रमुख कारण हैं।

टिप्पणी

आवास की गुणवत्ता एवं मात्रात्मक दोनों दृष्टि से पूर्ति बढ़ाने अर्थात् लाखों को शरण देने एवं आवश्यकता आधारित उपयुक्त मकानों की व्यवस्था करने में सफलता की कुंजी आवश्यक आवासीय निवेशों को सुनिश्चित करने में है।

2. मलिन बस्तियां

गन्दी व मलिन बस्तियां विश्व के लगभग अधिकांश शहरों में किसी न किसी रूप में पायी जाती हैं। गन्दी बस्तियां जहां अनियोजित या आंशिक नियोजित विकास को दर्शाती हैं वहीं यह किसी देश में वहां के जीवन स्तर में गिरावट की ओर इंगित करती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इन गन्दी बस्तियों को अस्थाई अनियोजित मकानों का एक समूह या कोई क्षेत्र या कोई ऐसा भाग माना है, जहां काफी लोगों की भीड़ रहती हो और जन स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव वहां के निवासियों के स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा नैतिकता को खतरा उत्पन्न करता हो। इन बस्तियों में लोग घुटन भरी भीड़, तंग तथा बेतरतीब ढंग से बनाई गई झोंपड़ियों में रहते हैं और स्वास्थ्य, सफाई, शौचालय पीने का पानी आदि सुविधाओं के अभाव में अतिरिक्त निवासियों का जीवन स्तर इतना निम्न होता है कि वे स्वयं वैयक्तिक विकास व सामुदायिक जीवन में भाग लेने में स्वयं में असमर्थ पाते हैं। इन बस्तियों के विकास का मुख्य कारण आर्थिक है।

इन बस्तियों में श्रमिक और निम्न आय समूह वाले व्यक्ति निवास करते हैं। मकानों की अपर्याप्त संख्या भी इस समस्या को प्रोत्साहित करती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन के साधन, खेलने के मैदान की बात तो दूर इन बस्तियों में पीने का पानी, हवा, प्रकाश, शौचालय, गन्दे पानी के निकास की आदि आधारभूत आवश्यकताओं की भी व्यवस्था नहीं होती। आस–पास का वातावरण दुर्गन्धयुक्त और प्रदूषित होता है। फलस्वरूप तपेदिक, दमा, पेट की बीमारियां व सहायक रोग पेचिस जैसे गंभीर रोग पनपते हैं। वास्तव में गंदी बस्तियां अनैतिकता तथा अपराधों के केन्द्र भी होते हैं। नशा, जुआ, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति, बाल–अपराध, भिक्षावृत्ति आदि सामाजिक बुराइयां भी इन बस्तियों में पलती हैं। व्यक्तिगत विघटन, पारिवारिक विघटन, सामाजिक विघटन, राष्ट्रीय विघटन, नैतिक पतन, अज्ञानता को प्रोत्साहन, खराब स्वास्थ्य तथा बीमारियां आदि गंदी बस्तियों की देन हैं। इन मलिन बस्तियों को कम करने तथा लोगों की जिन्दगी तथा रहन–सहन में सुधार लाने की आवश्यकता है। अतः इसके लिए निम्न बातों पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है–जनसंख्या पर रोक, रोजगार सुविधाओं में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षाओं का विस्तार, कृषि की उन्नति, पर्याप्त मजदूरी सहकारी समितियों की स्थापना, गन्दी बस्तियों की सफाई, श्रमिक बस्तियों का निर्माण तथा नगर नियोजन आदि। इस प्रकार इन सब बातों पर ध्यान देते हुए नगरों को वैज्ञानिक सुविधाओं के अनुरूप नियोजित करके गंदी बस्तियों को समाप्त किया जा सकता है।

3. नगरीय सुविधाओं का भार

किसी भी शहर या कस्बे में पीने के पानी, शौचालय, गन्दे पानी के बहाव की व्यवस्था, बिजली, प्रकाश, खेलने के पार्क, कूड़ा करकट के निस्तारण आदि की उचित व्यवस्था वांछनीय होती है। जनोपयोगी जनसुविधाओं को प्रदान किया जाना तथा प्रबन्ध नगरीय प्रशासनिक संस्थानों के माध्यम से होता है। स्वच्छता, सफाई सेवाओं, पर्यावरणीय

टिप्पणी

परिस्थितियों तथा आधारभूत सेवाओं की स्थिति देश में संतोषजनक नहीं है। जन सुविधाओं की समस्याएँ मकानों की पुरानी संरचना तथा इनका निम्न स्तर होने के कारण और गम्भीर होती जा रही हैं। इसके अतिरिक्त मुहल्ले और कालोनियों में सड़कें, नालियां तथा गलियों में प्रकाश की समस्या है। सार्वजनिक शौचालय, स्नानागार, खेलकूद के लिए पार्क, आवागमन के लिए खुली सड़कें तथा रास्ते, सार्वजनिक यातायात व्यवस्था तथा उच्च सार्वजनिक सुविधाओं का अभाव महानगरों से लेकर छोटी श्रेणी के शहरों में सामान्य बात है।

4. यातायात की अव्यवस्थित वृद्धि

सभी प्रमुख नगरों में यातायात की भीड़ पायी जाती है। इसके उत्तरदायी कारण स्पष्ट तथा छोटे स्थान पर अत्यधिक लोगों एवं गति विधियों का संकेन्द्रीकरण एवं कार्य स्थानों पर निवास स्थानों के मध्य अदक्ष संबंध हैं पिछले दो दशकों में स्थिति और भी बिगड़ी हैं। समेकित नीति एवं समन्वित उपागम की अनुपस्थिति के कारण अन्तर नगर यातायात में अव्यवस्थित ढंग से वृद्धि हुयी है जिसमें दीर्घकालीन किसी भावी योजना पर विचार नहीं किया गया है एवं फलस्वरूप नगरों में भीड़ एवं गम्भीर संकट उत्पन्न हो गए हैं। नगरीय यातायात प्रणाली को अनुकूलतम प्रकार से तभी विकसित किया जा सकता है जब यातायात एवं भूमि प्रयोग नियोजन का इकट्ठा परीक्षण किया जाए।

5. नगरीय भूमि की दुर्लभता

भारत में नगरीकरण की अत्यधिक भयानक विशेषता भूमि की अति दुर्लभता है जो महंगी होने के कारण साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर है। भूमि की अल्पता के कारण विक्रेता एवं क्रेता दोनों कानून का उल्लंघन करते हैं।

6. प्रदूषण पर रोक

नगरीकरण की गम्भीर चुनौती जल, वायु, ध्वनि एवं ठोस जल के प्रदूषण से है। पर्यावरण संरक्षण कानून 1986 के अनुसार प्रदूषण किसी ठोस, तरल एवं रसायनिक पदार्थ का इतनी मात्रा में पाया जाना है जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संघ के अनुमानों के अनुसार संसार में सर्वाधिक रोगों का कारण जल प्रदूषण है। उद्योगों, वाहनों द्वारा उत्पन्न प्रदूषित वायु में दीर्घकाल तक श्वास लेने से विविध रोग तथा फेफड़ों का कैंसर, न्यूमोनिया, अस्थमा ब्रोकइटिस तथा सामान्य जुकाम हो सकते हैं। ध्वनि प्रदूषण से रक्त वाहिनियाँ सिकुड़ जाती हैं जिससे उच्च रक्त चाप हो जाता है एवं जो मस्तिष्क को भी प्रभावित कर सकता है। प्रदूषण से पशुओं, पक्षियों एवं जल में रहने वाले जानवरों फसलों एवं सब्जियों को भी गंभीर हानि होती है। ठोस कचरा एवं कूड़ा करकट अनेक प्रकार के जीवाणुओं को जन्म देते एवं पोषित करते हैं। घुमक्कड़ कुत्तों को आकर्षित करते हैं एवं भूमिगत जल तथा भूतल को प्रदूषित करते हैं। पिछले दो दशकों में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप अधिक से अधिक कचरा उत्पन्न हो रहा है जो कृषि के लिए प्रयोग किये जाने वाले भूमिगत जल एवं मिट्‌टी को प्रदूषित करता है।

7. रोजगार अवसरों का अभाव

नगरीय क्षेत्रों को प्रवासी व्यक्ति वहां पर रोजगार पाने की आशा से जाते हैं परन्तु जब उन्हें अपनी योग्यताओं एवं कौशल के अनुरूप रोजगार नहीं मिलता तो उन्हें निराशा

होती है। यद्यपि निम्नवर्गीय एवं अशिक्षित प्रवासियों के नगरों में भवन निर्माण कार्यों एवं कारखानों में श्रमिक के रूप में रोजगार मिल जाता है परन्तु अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों को जिन्हें रोजगार प्राप्त नहीं होता रोजगार के उचित अवसरों का अभाव तनाव, अवसाद, अपराध, विघटन तथा आत्महत्या जैसी घटनाओं को बढ़ावा देता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. सुधार की सबसे पहली अभिव्यक्ति बंगाल में किसके द्वारा शुरू हुई?
   (क) गांधी जी (ख) नेहरू जी
   (ग) राममोहन राय (घ) शास्त्री जी
6. समाजवादी अर्थव्यवस्था में केंद्रीय बिंदु क्या होता है?
   (क) नियोजन (ख) आयोजन
   (ग) शिक्षण (घ) आवेदन

2.5 भारत में सामाजिक सुधार

19वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप विकसित बुद्धिजीवी वर्ग ने देश में सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन का नेतृत्व किया है। इन आंदोलनों के नेतृत्व देने वाले प्रमुख संगठनों का विवरण निम्न प्रकार से है–

ब्रह्म समाज (ब्रह्म की सभा)

पहला सुधार आन्दोलन ब्रह्म समाज था जिस पर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव था। इसके प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। इसी कारण इन्हें भारत के नवजागरण का अग्रदूत सुधार आंदोलन का प्रवर्तक एवं आधुनिक भारत का प्रथम महान नेता माना जाता है। एक और उन्होंने ईसाई पादरी प्रचारकों के विरुद्ध हिन्दू धर्म की रक्षा की, वहीं दूसरी ओर हिन्दू धर्म में आए झूठ व अन्धविश्वासों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। उनका मानना था कि अपने पुनरुद्धार के लिए भारतीय पश्चिम के युक्तिसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानव गरिमा तथा सामाजिक एकता के सिद्धांत को स्वीकार करें। इस प्रकार उन्होंने पश्चिम के आधुनिक ज्ञान, विचार और दृष्टिकोण का समर्थन किया और उन्हें जानने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की जबर्दस्त तरफदारी की। अपने विशद ज्ञान और वैज्ञानिक व प्रगतिशील दृष्टिकोण की सहायता से उन्होंने हिन्दू धर्म में उत्पन्न कुरीतियों एवं आडम्बरों पर गंभीर प्रहार किये। मूर्तिपूजा की आलोचना करते हुए सप्रमाण यह बताया कि हिन्दुओं के सभी प्राचीन मौलिक धर्मग्रंथों ने एक ब्रह्म का उपदेश दिया है। इसके समर्थन में उन्होंने वेदों और पांच मुख्य उपनिषदों का बंगला भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने निरर्थक धार्मिक अनुष्ठानों का विरोध किया और पंडित पुरोहितों पर तीखा प्रहार किया। उनके अनुसार यदि कोई भी दर्शन, परम्परा आदि तर्क पर खरे न उतरे और वे समाज के लिए उपयोगी न हो तो मनुष्य को उन्हें त्याग देना चाहिए। वे संसार के सभी धर्मों की मौलिक एकता को स्वीकार करते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की और अपनी मानव सेवा के लिए उपनिषदों से पर्याप्त मात्रा में आधार खोज निकाले। ईसाई मत को अस्वीकार कर दिया परन्तु यूरोपीय

टिप्पणी

मानववाद को स्वीकार किया। सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू समाज की कुरीतियों, सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, वैश्यागमन, जातिप्रथा, छुआछूत इत्यादि का विरोध किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा राममोहन राय ने पूर्व और पश्चिम के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

20 अगस्त, 1828 ई. में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। 1830 ई. में लिखे हुए प्रन्यासकरण पत्र (trust deed) में इस समाज का उद्देश्य शाश्वत सर्वाधार, अपरिवर्त्य ईश्वर की पूजा है जो सम्पूर्ण विश्व का कर्ता और रक्षक है। इसका उद्देश्य राजा राममोहन राय की मान्यताओं के अनुरूप हिन्दू धर्म में सुधार लाना था। समाज के सिद्धांतों और दृष्टिकोण के मुख्य आधार मानव विवेक, वेद और उपनिषद थे। इसके कार्यक्रम में हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तीनों धर्मों के गुणों को शामिल किया जाता था।

राजा राममोहन राय के चिन्तन एवं गतिविधि का क्षेत्र केवल धर्म ही नहीं था उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में भी सुधारों की नींव रखी। वस्तुतः धार्मिक एवं सामाजिक सुधार एक–दूसरे से जुड़े हुए थे। उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध ऐतिहासिक आन्दोलन चलाया और उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप ही कम्पनी सरकार ने सती प्रथा को 1829 ई. में गैरकानूनी घोषित कर दिया। वे स्त्रियों के अधिकार के भी समर्थक थे उन्होंने बहुविवाह का विरोध किया और स्त्रियों के आर्थिक अधिकारों की वकालत की। वे आधुनिक शिक्षा के प्रारम्भिक समर्थक और प्रचारकों में से एक थे उन्होंने कलकत्ता में डेविड हेयर की सहायता से हिन्दू कॉलेज की स्थापना की। 1825 ई. में उन्होंने वेदांत कॉलेज की स्थापना की जिसमें भारत विधा के अतिरिक्त सामाजिक एवं भौतिक विज्ञानों का भी अध्ययन करवाया जाता था। राजा राममोहन राय भारतीय पत्रकारिता के भी अग्रदूत थे। उन्होंने बंगाली पत्रिका संवाद कौमुदी का प्रकाशन किया। 1833 ई. में उन्होंने समाचार–पत्रों के नियमन के विरुद्ध आंदोलन चलाया। 1835 ई. में समाचार पत्रों को जो थोड़ी–बहुत स्वतंत्रता मिली वह उनके आन्दोलन का ही परिणाम था।

राजा राममोहन राय उदारवादी राजनीतिक विचारों के पोषक थे। अतः उन्होंने आमूल परिवर्तन के स्थान पर भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए आन्दोलन किया। उन्होंने भारतीयों में राजनीतिक जागरण पैदा करने का भी प्रयास किया। उन्होंने वरिष्ठ सेवाओं के भारतीयकरण, कार्यपालिका से पृथक करने, जूरी द्वारा न्याय और भारतीयों एवं यूरोपियनों के मध्य न्यायिक समानता की भी मांग की। वे अन्तर्राष्ट्रीयता और विभिन्न राष्ट्रों के मध्य सहयोग की भावना के समर्थक थे। बताया जाता है कि 1821 ई. में वे नेपल्स में क्रांति की असफलता की खबर से बहुत दुखी हुए थे परन्तु 1823 ई. में जब स्पेनिश क्रांति सफल हुई तो उन्होंने इस खुशी को एक सार्वजनिक भोज देकर मनाया। 1833 ई. में उनकी इंग्लैण्ड में अचानक मृत्यु हो जाने के कारण ब्रह्म समाज के संगठन एवं कार्यों में शिथिलता आ गई। महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर के 1843 ई. में नेतृत्व संभालने के पश्चात इसमें नई जान आई। बाद में देवेन्द्र नाथ टैगोर ने केशव चन्द्र सैन को ब्रह्म समाज का आचार्य नियुक्त किया। केशव चन्द्र सैन की शक्ति, वाकपटुता और उदारवादी विचारों ने इस आंदोलन को लोकप्रिय बना दिया और शीघ्र ही इसकी शाखाएं बंगाल से बाहर उत्तर प्रदेश, पंजाब और मद्रास में खोल दी गईं। परन्तु उनके उदारवाद के कारण ब्रह्म समाज में फूट पड़ गई और देवेन्द्र नाथ टैगोर ने 1865 ई. में केशव चन्द्र सेन को आचार्य पदवी से हटा दिया। केशव चन्द्र सेन ने एक नवीन ब्रह्म समाज का गठन कर लिया जिसे उन्होंने आदि ब्रह्म समाज का नाम दिया। 1878 ई.

में इसमें दुबारा विभाजन हुआ और केशव चन्द्र सेन के अनुयायियों ने उनसे अलग होकर साधारण ब्रह्म समाज की स्थापना कर ली।

ब्रह्म समाज ने भारतीय पुनर्जागरण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने बहुत से अन्धविश्वासों तथा हठधर्म को अस्वीकार कर दिया। विदेश यात्रा पर समकालीन प्रतिबन्धों को चुनौती दी। बहु–विवाह, सती–प्रथा, बाल–विवाह तथा पर्दा–प्रथा को समाप्त करने के लिए तथा विधवा–विवाह और स्त्री–शिक्षा के लिए प्रयत्न किया। इन्होंने जाति–प्रथा तथा अस्पृश्यता को भी समाप्त करने का प्रयास किया। ब्रह्म समाज ने बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था, अवतारवाद आदि की जमकर आलोचना की।

प्रार्थना समाज

1867 ई. में केशव चन्द्र की प्रेरणा से बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इस समाज का उद्घाटन डॉ. आत्माराम पांडुरंग के नेतृत्व में हुआ था। दो वर्ष बाद इसमें प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान आर.जी. भंडारकर और महोदय गोविन्द रानाडे सम्मिलित हुए जिससे समाज को नई शक्ति मिली। समाज सुधार में उनके चार प्रमुख उद्देश्य थे–1. जाति–पाति का विरोध 2. पुरुषों और महिलाओं की विवाह की आयु बढ़ाना 3. विधवा पुनर्विवाह 4. महिला शिक्षा। अछूतों, दलितों तथा पीड़ितों की दशा सुधारने के उद्देश्य से उन्होंने कई कल्याणकारी संस्थाओं का गठन किया, जैसे– दलित जाति मण्डल, समाज सेवा संघ तथा दक्कन शिक्षा सभा। यह समाज साधारण ब्रह्म समाज से प्रभावित था परन्तु प्रार्थना सामाजियों ने स्वयं को किसी नवीन धर्म अथवा हिन्दू धर्म के बाहर किसी नवीन समानांतर मत का अनुयायी नहीं माना अपितु उन्होंने समाज को मुख्य हिन्दू धर्म के अन्दर ही रखकर सुधारों के लिए आन्दोलन किया। उनके अनुसार मूल परम्परागत हिन्दू धर्म से पृथक हुए बिना भी सुधार सम्भव है। पंजाब में दयाल सिंह प्रन्यास ने इस समाज के विचारों के प्रसार के लिए 1910 ई. में दयाल सिंह कॉलेज खोला। प्रार्थना समाजी आधुनिक विचारों के माध्यम से मात्र सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते थे। सामाजिक जीवन का आमूल परिवर्तन नहीं। इसी कारण उनका कट्टरपंथियों से ज्यादा संघर्ष नहीं हुआ और उनके सुधारों को शीघ्र एवं आसानी से स्वीकृति मिली।

आर्य समाज

आर्य समाज आन्दोलन का प्रसार प्रायः पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। इसकी स्थापना 10 अप्रैल, 1875 ई. को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में की थी। निरंतरता और प्रभाव की दृष्टि से यह आन्दोलन अपने समय में और आन्दोलनों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय था। इस आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की शुद्ध रूप से पुनः स्थापना करना था जो अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियां कालांतर में हिन्दू समाज में प्रवेश कर गई थीं उनको समूल जड़ से नष्ट करना था। आर्य समाज की स्थापना से पूर्व स्वामी दयानन्द ने 1863 ई. में झूठे धर्मों का खण्डन करने के लिए पाखंड खंडिनी पताका लहराई। 1877 ई. में लाहौर में आये समाज की स्थापना के पश्चात इसका अधिक प्रचार–प्रसार हुआ। स्वामी दयानंद ने पुनः वेदों की ओर चलो (Back To The Vedsa) का नारा लगाया। इनका उद्देश्य था कि भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक कर दिया जाए। प्रारम्भ में इन्होंने शास्त्रार्थ

व सामूहिक भोज के माध्यम से अपनी शिक्षाओं का प्रचार किया परन्तु बाद में किताबें लिखकर अपने विचारों का प्रतिपादन किया। सत्यार्थ प्रकाश इनकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसमें इन्होंने अपने मूल विचारों को व्यक्त किया।

धार्मिक क्षेत्र में स्वामी दयानंद ने बहुदेववाद, मूर्तिवाद, पशुबलि, श्राद्ध, तंत्र–मंत्र तथा झूठे कर्मकांडों का विरोध किया। उनके अनुसार वेद ही हिन्दू धर्म का वास्तविक आधार है, शेष सभी धार्मिक विचार जो वेद संगत नहीं हैं वे त्याज्य हैं। उन्होंने अद्वैतवाद दर्शन को शुद्ध वैदिक परंपरा के विपरीत बताया। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को ऋत (शाश्वत मानव धर्म) के अनुसार ही आचरण करके मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए। इस तरह से उन्होंने एकत्ववाद और नियति दोनों को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने मनुष्य को कर्मशील बनाने पर जोर दिया। आर्य समाज सामाजिक सुधार का भी बहुत बड़ा माध्यम बना। स्वामी दयानंद भारत के सामाजिक इतिहास में वह पहले सुधारक थे जिन्होंने शूद्रों तथा महिलाओं को वेद पढ़ने तथा शिक्षा प्राप्त करने व यज्ञोपवति धारण करने की पैरवी की। उन्होंने जाति प्रथा तथा छुआछूत का विरोध किया और सामाजिक समानता एवं एकता को अपना आदर्श माना। उन्होंने बाल–विवाह, शाश्वत वैधव्य, पर्दा–प्रथा, बहु–विवाह, वैश्या–गमन, देवदासी–प्रथा आदि सामाजिक बुराइयों का प्रबल विरोध किया।

आर्य समाज का सबसे अधिक प्रभावशाली और स्थायी कार्य शिक्षा के क्षेत्र में हुआ। इसने शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर सबसे अधिक जोर दिया। 1886 ई. में लाहौर में दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल की स्थापना हुई थी जो 1889 ई. में दयानंद एंग्लो कॉलेज में बदल गया। आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं में प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान का सर्वोत्तम समन्वय देखने को मिलता है। 1892–93 ई. में पश्चिमी पद्धति को लेकर समाज में दो दल बन गए और परम्परागत पद्धति से शिक्षा देने के लिए 1902 ई. में हरिद्वार में एक गुरूकुल विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्य समाज आन्दोलन ने न केवल धार्मिक सुधार आन्दोलन चलाया अपितु सामाजिक एकता आपसी सहयोग और बहुमुखी जागरण का सन्देश दिया। अतीत में स्वर्ण युग की धारणा ने भारतीयों में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का भाव जाग्रत किया। आर्थिक विचारों में विदेशी का विशेष महत्व था। स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते थे कि बुरे से बुरा देशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है अर्थात वे स्वराज के पक्षधर थे।

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरु रामकृष्ण की स्मृति में 1897 ई. में की थी। रामकृष्ण परंपरागत तरीके से सन्यास, ध्यान और भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने में विश्वास रखते थे। परन्तु वह चिन्ह और कर्मकाण्ड की अपेक्षा आत्मा पर अधिक बल देते थे। वे सभी धर्मों की मौलिक एकता में विश्वास करते थे और मानव सेवा को ही ईश्वर की सेवा मानते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात उनकी शिक्षाओं की व्याख्या को साकार करने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द को जाता है। उन्होंने 1893 ई. में शिकागो में पार्लियामेंट ऑफ रिलिजन में अपना सुप्रसिद्ध भाषण दिया। इस भाषण से उन्होंने विश्व में पहली बार भारतीय संस्कृति की महत्ता को प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया। उनके भाषण का सार यह था कि हमें पश्चिम के भौतिकवाद और पूर्व के अध्यात्मकवाद

का सामंजस्यपूर्ण समिश्रण करके एक अद्‌भुत संस्कृति का निर्माण करना चाहिए। उनके अनुसार ईश्वर की पूजा मानवता की सेवा द्वारा ही की जा सकती है इसलिए उन्होंने हिन्दू धर्म को एक नवीन सामाजिक उद्‌देश्य प्रदान किया। यही कारण है कि रामकृष्ण मिशन के कार्यों का मानवतावादी पक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा और मिशन के केन्द्र समाज सेवा एवं परोपकार में वर्तमान में भी लगे हुए हैं तथा विद्यालयों, अस्पतालों धर्मार्थ औषधालयों इत्यादि का संचालन कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने अपने लेखों तथा भाषणों द्वारा नवीन पीढ़ी में अपने अतीत में आत्मगौरव की भावना जगाई और भारतीय संस्कृति में नया विश्वास तथा भारत के भविष्य में एक नया आत्मविश्वास नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार हम विवेकानन्द को राष्ट्रीय आन्दोलन करा आध्यात्मिक पिता कह सकते हैं।

अलीगढ़ आन्दोलन

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना होने से मुस्लिमों के एक बड़े वर्ग का विशेषाधिकार उनसे छिन गया साथ ही अंग्रेजों की मुस्लिम विरोधी नीति और मुसलमानों के आधुनिक शिक्षा के प्रति पूर्वाग्रह ने उनकी भौतिक संवृद्धि के सभी अवसर समाप्त कर दिये ऐसे समय में ही सैयद अहमद खां ने मुस्लिम समाज को एक नई राह दिखाई। 1857 ई. के गदर के समय वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की न्यायिक सेवा में थे उन्होंने मुस्लिम समाज को आधुनिक बनाने का प्रयास किया। उनका प्रयास रहा कि मुसलमान ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व को स्वीकार कर उनके अधीन नौकरी करना आरम्भ कर दें जिससे वे अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठा सके।

वे आधुनिक वैज्ञानिक विचारों से प्रभावित थे और अपने विचारों के प्रचार के लिए तहजीब–उल–अखलाक (सभ्यता और नैतिकता) नामक पत्रिका निकाली। उनके अनुसार इस्लाम धर्म के लिए केवल एकमात्र मान्य ग्रंथ कुरान है। उनके अनुसार कुरान की कोई भी व्याख्या जो मानव–विवेक और विज्ञान के विरुद्ध हो, सही नहीं है। उन्होंने परम्पराओं के अंधाधुंध अनुसरण, रूढ़िवादी रीति–रिवाजों, अज्ञान और विवेकहीनता की भी आलोचना की। उन्होंने धार्मिक कट्‌टरता, मानसिक संकीर्णता और अलगाववाद का भी विरोध किया और मुसलमानों को सहनशील और उदार बनने के लिए कहा। सैयद अहमद धार्मिक सहिष्णुओं और सभी धर्मो की एकता में विश्वास रखते थे वे साम्प्रदायिक टकराव के विरोधी थे परन्तु अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे अंग्रेजों के समर्थ बन गये थे और मुस्लिम समुदाय को राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रहने की सलाह देने लग गए थे।

सैयद अहमद खां पश्चिम के आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और विचारों का महत्व समझते थे इसलिए आजीवन आधुनिक शिक्षा के प्रसार में लगे रहे। 1864 ई. में उन्होंने एक साइंटिफिक सोसायटी की स्थापना की जिसने अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों का उर्दू अनुवाद प्रकाशित करवाया। उन्होंने 1875 ई. में अलीगढ़ में एक मुस्लिम एंग्लो ओरियन्टल स्कूल स्थापित किया जो आगे चलकर 1920 ई. में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ कालान्तर में यह भारतीय मुस्लिमों का सबसे महत्वपूर्ण शैक्षिक संस्थान बन गया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सैयद अहमद खां ने मुस्लिम समुदाय को मध्यकालीन माहौल से बाहर निकालकर आधुनिक युग के मार्ग की ओर अग्रसर किया।

थिओसोफिकल सभा

टिप्पणी

धर्म को समाज सेवा का मुख्य साधन बनाने और धार्मिक भातृभाव के प्रचार और प्रसार हेतु 1875 ई. में अमेरिका में मैडम एच.पी. ब्लावेटस्की और कर्नल हेनरी स्टील ऑलकॉट ने की थी। 1882 ई. में उन्होंने इसका मुख्य कार्यालय मद्रास के समीप अडयार नामक नामक स्थान पर स्थापित कर दिया। इस सभा के अनुयायी ईश्वरीय ज्ञान को आत्मिक हर्षोन्माद और अन्तदृष्टि द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करते थे। वे पुनर्जन्म और कर्म में विश्वास रखते हुए सांख्य तथा उपनिषदों के दर्शन द्वारा प्रेरणा प्राप्त करते थे। वे विश्वबन्धुता की भावना के समर्थक थे। 1907 ई. में श्रीमती एनी बिसेंट के अध्यक्ष बनने पर यह सभा काफी लोकप्रिय हो गई भारत में थिओसोफिकल सभा इनके नेतृत्व में हिन्दू पुनर्जागरण का आन्दोलन बन गई। यह सभा हिन्दू धार्मिक पुनरुत्थान, समाज सुधार, शैक्षिक विकास और राष्ट्रवादी चेतना को जाग्रत करने में सफल रही। श्रीमती बिसेंट ने 1898 ई. में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की जहाँ विद्यार्थियों को हिन्दू धर्म और पाश्चात्य वैज्ञानिक विषय पढ़ाए जाते थे। कालान्तर में यह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बना। उन्होंने आयरलैंड की होम रूल लीग के आधार पर 1916 ई. में भारतीय स्वराज लीग बनाई जिसने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में मदद की।

सिक्ख सुधार आन्दोलन

आधुनिक शिक्षा और तर्कसंगत विचारों से सिक्ख सम्प्रदाय भी प्रभावित हुआ। सिक्खों में धार्मिक सुधार की शुरुआत अमृतसर में खालसा कॉलेज की स्थापना से होती है। अमृतसर में सिंह सभी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। सिंह सभा का ही संघटक अकाली आंदोलन था जो 1920 ई. में शुरू हुआ और इसके कारण ही बाध्य होकर ब्रिटिश सरकार को 1922 ई. सिक्ख गुरुद्वारा एक्ट पारित करना पड़ा जिसे 1925 ई. में संशोधिक किया गया। इस एक्ट से ही गुरुद्वारों को भ्रष्ट एवं स्वार्थी महंतों से मुक्ति मिल पाई।

पारसी सुधार आन्दोलन

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कुछ पारसियों–नौरोजी फरदोनजी, दादा भाई नौरोजी, आर.के. कामा, एस.एस. बंगाली आदि ने 1851 ई. में रहनुमाए मजदारस्यान समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य पारसियों की सामाजिक अवस्था का पुनरुद्दार करना और पारसी धर्म की पुनः प्राचीन शुद्धता प्राप्त करना था इसके लिए रास्त गोफतार नामक पत्रिका निकाली गई। महिलाओं की शिक्षा, विवाह एवं समाज में उनकी स्थिति को सुधारने के प्रयास किए गए पर्दा प्रथा समाप्त कर दी गई। विवाह की आयु बढ़ा दी गई तथा स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया। अन्ततः पारसी भारतीय समाज के सबसे आधुनिक वर्ग में बदल गए।

आलोचनात्मक परीक्षण

19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुए धार्मिक–सामाजिक आन्दोलनों ने भारतीय समाज पर अपना व्यापक प्रभाव छोड़ा परन्तु इसके कुछ प्रभाव दीर्घकालीन हितों की दृष्टि से नकारात्मक रहे। इन नकारात्मक प्रभावों में सबसे महत्वपूर्ण था कि धार्मिक पुनरुत्थान आन्दोलनों का उभार जिसने जहां एक ओर धर्मों के अन्दर सुधार की प्रक्रिया को धीमा किया वहीं दूसरी ओर अंतर–धार्मिक सहिष्णुता की भावना को कमजोर करने का कार्य किया। इसी दौर में धार्मिक कटुता में वृद्धि हुई और इसी धार्मिक कटुता के कारण भारत में धार्मिक

अलगाववाद को बढ़ावा मिला, जिसकी परिणति अन्ततः साम्प्रदायिक आधार पर देश के बंटवारे के रूप में सामने आई। इन सुधार आंदोलनों का प्रभाव बहुत संकीर्ण सामाजिक क्षेत्र तक सीमित था क्योंकि सुधार की भावना एक छोटे से कुलीन वर्ग को ही प्रभावित करती थी जो मुख्यतः उपनिवेशी शासन के आर्थिक और सामाजिक लाभार्थियों का समूह था। ये आन्दोलन भारत की आम जनता को अपने साथ नहीं ले पाए और मुख्यतः शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहे। बंगाल का सुधार आन्दोलन पश्चिम शिक्षा प्राप्त कुलीनों की एक छोटी–सी संख्या तक ही सीमित था जिनको भद्रलोक के नाम से जाना जाता था। सुधारकों ने सुधार की प्रक्रिया को कभी जनता तक ले जाने का प्रयास नहीं किया जैसे राजा राममोहन राय की ठेठ संस्कृतमय बंगला भाषा अशिक्षित किसानों और दस्तकारों की समझ से परे ही रही। इसी प्रकार पश्चिमी भारत में प्रार्थना समाज के सदस्य पश्चिमी शिक्षा प्राप्त चितपावन और सारस्वती ब्राह्मण, कुछ गुजराती सौदागर और पारसी समुदाय के कुछ लोग थे। मद्रास प्रेसिडेंसी में पश्चिमी शिक्षा की प्रगति बहुत धीमी रही और ब्राह्मणों का जातिगत वर्चस्व अप्रभावित रहा और सुधार के विचार भी बहुत देर से आये। वास्तव में 19वीं सदी के आंशिक वर्षों के सुधारवादी आन्दोलनों का स्वर्ण चरित्र ही जाति के प्रश्न पर अपनी सापेक्ष चुप्पी की काफी हद तक व्याख्या करता है। आधारभूत स्तर पर एक सुधारवादी सामाजिक चेतना पैदा करने की कोई खास कोशिश नहीं की गई जिसके कारण आगे चलकर धार्मिक पुनरुत्थान को एक उपजाऊ जमीन इसी स्तर पर मिली। समाज सुधारों का चरित्र औपनिवेशिक था। औपनिवेशिक धारणा थी कि भारतीय समाज का मूल आधार धर्म है और यह धर्म ग्रंथों में निहित है तथा भारतीय समाज पूरी तरह से ग्रंथों की अधीनता स्वीकार करता है। इसी कारण भारतीय सुधारकों और उनके विरोधियों ने अपने–अपने पक्ष के समर्थन में प्राचीन धर्म ग्रंथों का ही उल्लेख किया। उनके लिए किसी पक्ष की निर्ममता या अनौचित्य या सुधार अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। इसी कारण भारत में सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलन समाज के निम्न तबके तक पहुंचने में नाकाम रहे।

आन्दोलनों ने भारतीय समाज को एक नई दिशा प्रदान की जिससे भविष्य में भारतीय समाज में होने वाले उदारवादी लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में बहुत सहायता मिली। इन सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में आत्मविश्वास, स्वाभिमान और अतीत के प्रति गौरव का भाव जाग्रत किया तथा भारतीयों को ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध एकत्र कर स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2.5.1 सामाजिक सुधार आंदोलनों के प्रमुख क्षेत्र

सामाजिक आंदोलन संघर्षों की अभिव्यक्ति होते हैं। संघर्ष में स्पष्ट रूप से विरोधी को "शत्रु" अथवा विपक्षी माना जाता है। सभी संघर्षों में (ए) संगठित नायक, (बी) मूल्यों अथवा आकांक्षाओं के दावे/जोखिम तथा (सी) नायकों के बीच उन जोखिमों/दावों को प्राप्त करने के लिए विवाद तथा प्रतिस्पर्धा होते हैं। संघर्ष की संकल्पना की संरचना की पृष्ठभूमि में, चलिए हम विभिन्न प्रकार के संघर्षों का अध्ययन करते हैं। टूरीन ने आठ प्रकार के सामाजिक संघर्षों का निरूपण किया है।

(1) **सामूहिक हित का प्रतिस्पर्धात्मक प्रयास** : इस प्रकार के संघर्षों की पहचान किसी संगठन में नायक के निवेश अथवा निगम के बीच संबंध अथवा उनके सापेक्ष अभाव की अभिव्यक्ति के रूप में होती है। यदि किसी कंपनी का कर्मचारी

टिप्पणी

कम या अधिक निवेश करता है तथा कम या अधिक लाभ पाता है, तो चार संभावित स्थितियां हो सकती हैं– (ए) अधिक निवेश कम लाभ, (बी) अधिक निवेश अधिक लाभ, (सी) कम निवेश कम लाभ तथा (डी) कम निवेश एवं अधिक लाभ। पहली स्थिति में संघर्ष उत्पन्न होने की सबसे अधिक संभावना होती है। औद्योगिक असंतोष, श्रमिक हड़तालें तथा कर्मचारियों के आंदोलन पहली स्थिति के परिणामस्वरूप हो सकते हैं।

(2) **सामाजिक तथा सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक पहचान का पुनर्निर्माण :** इस प्रकार के संघर्ष की स्थिति में विरोधी को "वे", "अन्य" अथवा "विदेशी" अथवा आक्रमणकारी के रूप में वर्णित और परिभाषित किया जाता है न कि वर्ग विरोधी अथवा वर्ग शत्रु के रूप में। सामाजिक जगत "भीतरी" तथा "बाहरी" व्यक्तियों के बीच विभाजित है। संघर्ष सामान्यतः "समुदाय की सुरक्षा" की संकल्पना के इर्द–गिर्द होता है। भारत में अनेक समकालीन आंदोलन जैसे कि महाराष्ट्र में शिवसेना का तथा कुछ समय पूर्व बिहार में झारखंड, बंगाल में गोरखालैंड तथा उत्तर प्रदेश में उत्तराखंड इस प्रकार के संघर्ष की अभिव्यक्ति हैं तथा रहे हैं। अपनी कुरूप अभिव्यक्ति में इस प्रकार के संघर्ष की क्षेत्रीय, भाषाई, जातिवादी तथा सांप्रदायिक आंदोलनों का रूप लेने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार के आन्दोलन में नायक समाज की शुचिता तथा नैतिक स्वास्थ्य के "अन्य" अथवा "बाहरी" व्यक्तियों द्वारा खतरे में पड़ जाने से संबंधित नारे लगाते हैं। इससे "भाईचारे" के "भीतरी" सदस्यों के बीच प्रबल एकता उत्पन्न हो सकती है तथा "अन्य" के लिए अत्यधिक घृणा हो सकती है जिन्हें सामान्यतः "बेईमान" तथा समाज के "प्रदूषक" के रूप में चित्रित किया जाता है। यहां वामपंथियों की "वर्ग शत्रु" की संकल्पना दक्षिण पंथियों की "सांस्कृतिक शत्रु" की संकल्पना द्वारा विस्थापित हो जाती है। दोनों स्थितियों में कार्यकारिणी भाव प्रबल होता है।

(3) **राजनीतिक बल :** इस प्रकार के संघर्ष का लक्ष्य सामान्यतः महज दिए गए तंत्र में लाभ प्राप्त करना नहीं बल्कि "खेल के नियमों" को परिवर्तित करने का होता है। औद्योगिक विवाद, ट्रेड यूनियन तथा कामगारों के आंदोलन सामान्यतः राजनीतिक संघर्ष का रूप ले लेते हैं। शोर्टर एवं टिली फ्रांस में हड़ताल (1971) के अपने अध्ययन में तर्क करते हैं कि हड़तालें, अभाव की अभिव्यक्ति होने की बजाय उनकी तेजी से प्रगति तथा श्रमिक संघों के घटते हुए राजनीतिक प्रभाव को परिलक्षित करती थीं। सत्ता की संरचना अथवा उसके आदर्शों में आकस्मिक परिवर्तन से इस प्रकार के संघर्ष के पैदा होने की प्रबल प्रवृत्ति रहती है।

(4) **हैसियत तथा विशेषाधिकार की सुरक्षा :** इस प्रकार के संघर्ष के उदाहरण के तौर पर हित समूह द्वारा अपने अनिवार्य रूप से निजी स्वार्थपरक हित को जनता के मुद्‌दे के रूप में परिवर्तित करना सम्मिलित है। अतः आप नोट कर सकते हैं कि अपनी निष्कृष्टतम अभिव्यक्ति में मौलिक रूप से भ्रष्ट तथा अनिवार्य रूप से बेईमान राजनीतिक तंत्र अक्सर नारा लगाते हैं "राष्ट्र खतरे में है" जोकि महज अपनी कुरूपता को छिपाने के लिए तथा लोगों का घटते हुए राजनीतिक मूल्यों से ध्यान हटाने के लिए शासन तंत्र में लोगों के विश्वास को बनाए रखने के लिए होता है। इसकी हल्की अभिव्यक्तियां किसानों की लामबंदी तथा शिक्षकों के संघर्षों के मामले में पाई जाती हैं। अनेक मामलों में, किसानों के

आंदोलन तथा शिक्षकों के संघर्ष अपनी आय की प्रत्यक्ष रूप से प्रतिरक्षा करने की बजाय, ये उद्घोषणा करने लगते हैं कि कृषि तथा शिक्षा को "राष्ट्रीय प्राथमिकता" दी जानी चाहिए क्योंकि ये "राष्ट्रीय महत्व" के मसले हैं।

टिप्पणी

(5) **प्रमुख सांस्कृतिक पैटर्न का सामाजिक नियंत्रण** : टूरीन सांस्कृतिक पैटर्न की संकल्पना तीन घटक तत्वों के रूप में देखते हैं– (ए) एक ज्ञान का मॉडल, (बी) एक प्रकार का निवेश तथा (सी) एक नैतिक संस्था तथा ये तीनों घटक बदले में क्रमशः सत्य, उत्पादन तथा नैतिकता की संकल्पनाओं को प्रदर्शित करते हैं। ये घटक समाज द्वारा खुद को निर्मित करने की क्षमता से संबंधित होते हैं। बड़े जटिल समाजों में सदैव शासक समूहों के बीच तथा शासक समूहों और जनता के बीच विवाद तथा संघर्ष बने रहते हैं। शासक दल स्वयं की पहचान समाज के प्रमुख सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा करते हैं जिससे इन मूल्यों का उपयोग जनता पर अपना प्रभुत्व जताने के लिए अस्त्र के रूप में कर सकें। दूसरी तरफ जनता प्रभावी शासक दल को पदच्युत करने के प्रयास करती है जिससे वह स्वयं अपनी पहचान उन मूल्यों के साथ कर सके। संस्कृति तथा सत्ता के बीच इस प्रकार का विवाद अधिकांश जटिल तथा बड़े समाजों में एक सतत सामाजिक सच्चाई है।

(6) **नए सामाजिक क्रम का निर्माण** : इस प्रकार के संघर्ष का सबसे पैना उदाहरण किसी संपूर्ण राजनीतिक तंत्र तथा उसके शासन के तरीके के क्रांतिकारी रूप से जनता द्वारा हटा दिए जाने के मामले में पाया जाता है जिससे नई "सामाजिक व्यवस्था" तथा "नए राजनीतिक" वाले "नए समाज" को स्थापित किया जा सके। इस प्रकार की सामूहिक क्रिया का एक सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि क्रांति सभी प्रकार के सामाजिक संघर्षों का अंत कर देती है तथा संघर्ष के उन्मूलन द्वारा क्रांति सामाजिक आंदोलनों के उभरने की सभी संभावनाओं का अंत कर देती है। आप नोट कर सकते हैं कि आंदोलन सर्वसत्तात्मक बंद समाज की अपेक्षा प्रजातांत्रिक खुले समाजों की अभिव्यक्ति अधिक होते हैं। क्रांति आंदोलन को खत्म कर देती है। क्रांतिकारी नायक सामाजिक "व्यवस्था/क्रम" को विकास की पूर्व शर्त मानते हैं। लेकिन सामान्यतः, "व्यवस्था/क्रम" की आवश्यकता का नए राजनीतिक वर्ग तथा नए नेताओं द्वारा अपनी सत्ता तथा विशेषाधिकारों की रक्षा के लिए चतुराई से हेरफेर कर लिया जाता है (देखें राजेंद्र सिंह 2001 : 121)।

(7) **राष्ट्रीय संघर्ष** : टूरीन के अनुसार ऐतिहासिक संघर्ष अपने चरम स्तर पर राष्ट्रीय संघर्ष होते हैं। विकास तथा औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहे समाज की पहचान तथा सातत्य की रक्षा नायकों के द्वारा अथवा उनके सामाजिक संबंधों के द्वारा नहीं की जा सकती है क्योंकि राष्ट्र अकेले ही परिवर्तनों की पहचान तथा नियंत्रण का दावा कर सकता है। टूरीन कहते हैं कि सभी देशों में परिवर्तन पर नियंत्रण के लिए संघर्ष राज्यों का संघर्ष होता है (1985 : 758)। यहां महत्व राजनीतिक तंत्र को सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक तंत्रों के प्रतिनिधि के रूप में, समाजों के बीच ऐतिहासिक रूपांतरण के प्रमुख घटक के रूप में राज्य से पृथक करने की आवश्यकता का है।

टिप्पणी

(8) नव–समुदायवाद का संघर्ष : राष्ट्रीय संघर्ष सामान्यतः सामाजिक तथा ऐतिहासिक संघर्षों के बीच पृथक्करण दिखाते हैं। राष्ट्रीय संघर्ष का ऋणात्मक सतुल्य नव–समुदायवाद संघर्ष हैं। नव–समुदायी संघर्ष ऐतिहासिक रूपांतरण को रद्द करने का प्रयास करता है जो सामान्यतः विदेश से आता है तथा इसकी प्रकृति सामाजिक संगठन के पारंपरिक मूल्यों तथा प्रकारों का अपक्षय करने की होती है। इसका संदर्भ पूर्वज प्रत्यावर्ती, देसी विचारधाराओं तथा मांगों से है तथा इस प्रक्रिया में ये पुनर्नवीकरण–पुनर्जीवन तथा कभी–कभी मूलतत्ववादी अंतः–अभिमुख संघर्षों तथा आंदोलन का रूप ले लेता है।

एम.एस.ओ. राव ने भारत में सामाजिक आंदोलनों पर अपने संपादित ग्रंथ में सामाजिक आंदोलनों में सिद्धांतवाद, सामूहिक लामबंदी, संगठन तथा नेतृत्व के महत्व पर प्रकाश डाला है।

पारंपरिक रूप से सिद्धांतवाद, सामूहिक लामबंदी, संगठन तथा नेतृत्व की पहचान सामाजिक आंदोलनों के प्रमुख घटकों के रूप में की गई है। सिद्धांतवाद सामाजिक आंदोलन में क्रिया तथा सामूहिक लामबंदी का मूल ढांचा प्रदान करता है। यह संगठित सामूहिक क्रिया के हित स्पष्ट करने की प्रक्रिया को वैधता भी प्रदान करता है। सामाजिक आंदोलन में सिद्धांतवाद के निरूपण के विभिन्न तरीके हैं। हालांकि, नए सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में सिद्धांतवाद की भूमिका सूक्ष्म अन्वेषण का विषय है।

यहां भी सामूहिक लामबंदी सामाजिक आंदोलन का प्रमुख घटक है। सामाजिक आंदोलन की प्रकृति तथा दिशा व्यापक रूप से सामूहिक लामबंदी की प्रकृति द्वारा आकार लेती है। सामूहिक लामबंदी मूलज (radical), गैर–संस्थागत, स्वायत्त, बड़े स्तर पर हो सकती है अथवा यह अहिंसक, संस्थागत, विरल, सीमित हो सकती है। यह मूलज से सुधारवादी अथवा संस्थागत में रूपांतरण की प्रक्रिया से भी गुजर सकती है। जादुई आकर्षण का नित्यक्रमीकरण इसका उदाहरण है।

नेतृत्व तथा संगठन निकट रूप से सामूहिक लामबंदी की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं। नेता कोई चमत्कारित व्यक्तित्व अथवा प्रजातांत्रिक रूप से चुना गया व्यक्ति हो सकता है। नए सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में नेतृत्व, संगठन, सिद्धांतवाद तथा सामूहिक लामबंदी के मुद्दों ने अनेक नए आयाम/विस्तार अर्जित किए हैं।

वर्षों तक, सामाजिक आंदोलनों ने वैधानिक सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में क्रियात्मवादी तथा मार्क्सवादी दोनों प्रकारों में सीमांत स्थान पर रहे हैं। क्रियात्मकवादियों के लिए सामाजिक आंदोलन संपूर्णता में संभावी विघटन के स्रोत रहे हैं। यहां सामाजिक आंदोलनों को सीमांत स्थिति में रखकर ही "क्रियात्मक सैद्धांतिक तंत्र की अखंडता सुनिश्चित" की जाती थी। दूसरी तरफ, हालांकि मार्क्सवादी विश्लेषण का सरोकार सामाजिक रूपांतरण से है, इसने "वर्गों" को सामाजिक रूपांतरण का एकमात्र एजेंट/कारक माना है। अवर्ग आंदोलनों को समीक्षात्मक रूप से देखा जाता है और कभी–भी इन्हें अवमानना अथवा विरोध के रूप में भी देखा जाता है। (स्काट ए., 1990 : 2)। वर्षों तक, हालांकि, ये एक क्रम की व्याख्याएं सामाजिक आंदोलनों की परिघटनाओं के विश्लेषण में अपर्याप्त साबित हुई हैं तथा सामाजिक जिज्ञासा के इस उभरते क्षेत्र में विपुल मात्रा में साहित्य विकसित हुआ है। इन अध्ययनों ने विश्व के विभिन्न भागों से केसों का उपयोग करके सामाजिक आंदोलनों के मुद्दों तथा सक्रियता

टिप्पणी

को समझने के गंभीर प्रयास किए हैं। महत्वपूर्ण रूप से, सामाजिक आंदोलनों की संक्रियाताएं तथा घटक–सैद्धांतिक विन्यास, संगठनात्मक व्यवस्था, लामबंदी के पैटर्न, नेतृत्व, सामूहिक क्रिया की कुशलता, सामाजिक आंदोलनों में सम्मिलित मुद्दे तथा व्यापक सामाजिक प्रक्रियाओं से उनके संबंध आदि की नए परिप्रेक्ष्यों के साथ सामूहिक लामबंदी की परिघटनाओं की व्याख्या करने के उनके प्रयासों के द्वारा गंभीर रूप से पड़ताल की गई है। अतः समाज विज्ञानियों के इन प्रयासों में न सिर्फ 1960 के दशक तथा उसके बाद उभरने वाले सामाजिक आंदोलनों में "नएपन" की पहचान करने की खोज है बल्कि इन परिघटनाओं में विभिन्न समानता के घटकों का पता लगाने की स्वाभाविक इच्छा भी है।

नए सामाजिक आंदोलनों के उभरने से मूल्यों, संस्कृति, वैयक्तिकता, आदर्शवाद, नैतिकता, पहचान, सामर्थ्य आदि के मुद्दों को इन प्रयासों में नई पहचान तथा अतिरिक्त प्रभाविता मिली है। अतः बर्टोक्स (1990) ये जोड़ते हैं कि "वैयक्तिकता" तथा "आदर्शवाद" सामाजिक आंदोलन के अनिवार्य तत्व हैं तथा इन्हें गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

2.5.2 जाति समस्या के दो आयाम

प्राचीन काल में भारतीय समाज में जाति व्यवस्था मूलतः व्यवसाय पर आधारित थी। जैसे–जैसे समय बीतता गया उच्च जाति के द्वारा धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या और निम्न जाति की धार्मिक ग्रंथों से दूरी के कारण कई अंधविश्वासों प्रथाओं का प्रचलन हुआ। इसके परिणामस्वरूप, उच्च जाति के हाथों में सत्ता आ गई और निम्न जाति के शोषण की शुरुआत हो गई।

हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पर आधारित थी। इस व्यवस्था के अनुसार लोगों को उनके व्यवसाय के आधार पर विभाजित किया गया था।

जो लोग ईश्वर की प्रार्थना और पूजा पाठ के काम में लगे हुए थे उन्हें ब्राह्मणों के रूप में वर्गीकृत किया गया। जो युद्ध में लगे हुए थे उन्हें क्षत्रिय तथा जिनका व्यवसाय कृषि तथा व्यापार था, वे वैश्य के रूप में जाने जाते थे और जो ऊपरी तीनों वर्णों की सेवा कार्य में लगे थे, वे शूद्र कहे जाते थे। यह वर्ण व्यवस्था जो विशुद्ध रूप से व्यवसाय पर आधारित थी बाद में वंशानुगत हो गई। किसी एक विशेष जाति में पैदा हुआ व्यक्ति अपनी जाति को बदल नहीं सकता था यद्यपि वह अपने काम को बदल सकता था। इससे समाज में असमानताओं ने जन्म लिया। इससे निम्न जातियों का शोषण होने लगा। जिसके कारण जाति व्यवस्था एक स्वच्छ लोकतांत्रिक और प्रगतिशील समाज को बनाने में बाधक हो गई। समाज में जन्मी इन कुरीतियों के विरुद्ध कई समाज सुधारक सामने आए। कई समाज संगठन जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा सुधारक जैसे ज्योतिबा फूले, पीड़िता रमाबाई, नारायण गुरु, पेरियार, विवेकानंद, महात्मा गांधी तथा और कई दूसरों ने इन सबका दृढ़ता से विरोध किया। अधिकांश सुधारकों ने जाति प्रथा को वेदों और धर्मग्रंथों के विरुद्ध माना। उनके अनुसार जाति व्यवस्था, अतार्किक और अवैज्ञानिक थी। उन्होंने महसूस किया कि यह मानवता के बुनियादी नियमों के खिलाफ थी। समाज सुधारकों के अथक और अनवरत प्रयासों ने लोगों की मदद की जिससे एक–दूसरे के प्रति सहिष्णुता जागृत हुई।

टिप्पणी

भारतीय समाज की संरचनात्मक समस्याओं में जातिगत विभेद एक प्रमुख समस्या है। अनेक परिवर्तनों के बाद भी जाति पर आधारित भारतीय समाज की संरचना में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। यह सच है कि स्वतन्त्रता के बाद जाति व्यवस्था से सम्बन्धित सामाजिक सम्पर्क, खान–पान और व्यवसाय के नियम लगभग पूरी तरह टूट चुके हैं लेकिन पूरा भारतीय समाज आज भी हजारों जातियों में विभाजित है। जाति सम्बन्धी मनोवृत्तियों की जड़ें इतनी गहरी हैं कि आज भी कुछ जातियां अपने आपको दूसरी जातियों से अधिक पवित्र और श्रेष्ठ मानकर उनसे अपनी दूरी बनाये रखने का प्रयत्न करती हैं। गांवों में अभी भी निम्न जातियों से भेदभाव का व्यवहार किया जाता है। कानून द्वारा अस्पृश्यता का पूरी तरह उन्मूलन हो जाने के बाद भी अनेक क्षेत्रों में दलितों पर अत्याचार होना एक मामूली बात है। जातिगत असमानता का सबसे स्पष्ट रूप अन्तर्विद्रोह के प्रचलन के रूप में देखने को मिलता है। परम्परागत रूप से जाति व्यवस्था को बनाये रखने वाला सबसे मुख्य नियम यह था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति के अन्दर ही विवाह सम्बन्ध स्थापित करेगा। यह नियम आज भी पहले ही की तरह प्रभावपूर्ण बना हुआ है। ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जब किसी उच्च जाति की लड़की द्वारा निम्न जाति के युवक से विवाह करने पर जाति पंचायत द्वारा उसे अमानवीय रूप से प्रताड़ित किया गया।

जातिगत असमानता का एक दूसरा रूप आर्थिक क्षेत्र में देखने को मिलता है। निम्न जातियों की आर्थिक दशा में सुधार करने के लिए स्वतन्त्रता के बाद सरकारी नौकरियों में उन्हें आरक्षण जरूर दिया गया लेकिन इसका लाभ अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के एक बहुत छोटे भाग को ही मिल सका। निम्न जातियों के अधिकांश लोग आज भी अपने परम्परागत व्यवसाय को करने के लिए बाध्य हैं। इस दशा में निम्न और पिछड़ी जातियों के लोग शारीरिक श्रम या कर आय वाली आर्थिक क्रियाओं के द्वारा ही अपना भरण–पोषण कर पाते हैं। गांवों में निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करने की दशा में साधारणतया उच्च जातियों के लोगों द्वारा उसका बहिष्कार किया जाने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि स्वतन्त्रता के बाद भारत के नगरीय क्षेत्रों में जाति सम्बन्धी असमानताएं कुछ कम हुई हैं लेकिन भारत की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा ग्रामीण होने के कारण हम ग्रामीण क्षेत्रों के सन्दर्भ में ही जाति सम्बन्धी असमानताओं का सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

डॉ. श्यामाचरण दुबे ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन सोसाइटी' में अनेक ऐसी दशाओं का उल्लेख किया है जो यहां जाति सम्बन्धी असमानताओं को स्पष्ट करती है। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि इस्लाम और ईसाई धर्म में किसी तरह की सामाजिक असमानता को स्वीकार न करने के बाद भी भारत के मुसलमान और ईसाई भी एक–दूसरे से ऊंची और नीची अनेक जातियों में विभाजित हो गये। डॉ. दुबे का विचार है कि भारत में एक तरफ लोकतंत्र, सामाजिक समानता और धर्मनिरपेक्षता के विचारों को प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है तो दूसरी ओर अपने–अपने स्वार्थों के कारण विभिन्न समूह आज भी जाति विभेदों की बीमारी से चिपके हुए हैं। किसी का उद्देश्य जातियों के विभाजन द्वारा राजनीतिक लाभ प्राप्त करना है तो कुछ लोग धार्मिक कट्टरता के नाम पर जातियों की ऊंच–नीच के औचित्य को सिद्ध करना चाहते हैं। सामाजिक और बौद्धिक चेतना के नाम पर एक ओर जाति सम्बन्धी असमानताओं की

टिप्पणी

आलोचना की जाती है तो दूसरी ओर इन असमानताओं को दूर करने के लिए ईमानदारी से कोई संगठित प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं। देश की आधी से भी अधिक जनसंख्या दलितों, जनजातियों और पिछड़ी जातियों से सम्बन्धित है लेकिन आज भी उनके पास खेती योग्य भूमि का हिस्सा बहुत कम है। विभिन्न जाति संगठनों का राजनीतीकरण हो जाने के कारण योजनाबद्ध रूप से कुछ जाति समूहों को दूसरों से अलग रखने का प्रयत्न होने लगा है। स्पष्ट है कि कुछ समय पहले तक जाति सम्बन्धी जिन असमानताओं का सम्बन्ध जाति व्यवस्था के नियमों से था, वे असमानताएं भ्रष्ट राजनीति के कारण एक नया रूप लेने लगी हैं।

भारत में जातिगत असमानताओं की समस्या मण्डल आयोग के इस कथन से भी स्पष्ट होती है कि "भारत में ऊँची और नीची जातियों की असमानता हमारे दिमाग को प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी ताकत है। लोगों की सामाजिक चेतना और व्यवहारों को प्रभावित करने से इसकी हमेशा से एक विशेष भूमिका रही है।" सन् 1988 में तमिलनाडु के बिशप ने भी यह माना है कि "धर्म परिवर्तन के बाद भी दलित जातियों से ईसाई बनने वाले लोग सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप से बहुत पिछड़े हुए हैं। यह पिछड़ापन जातिगत असमानताओं वाली परम्परागत व्यवस्था और व्यवहारों का ही परिणाम है।"

वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज में जाति सम्बन्धी असमानताओं का इतिहास लगभग दो हजार वर्ष पुराना है। ये असमानताएं विभिन्न स्मृतिकारों द्वारा सामाजिक व्यवस्था को एक विभेदकारी रूप देने के कारण पैदा हुईं। यहां जैन और बौद्ध धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए जातियों की ऊंच–नीच को इतना दृढ़ रूप दे दिया गया कि कोई भी व्यक्ति जाति सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन न कर सके। डॉ. एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार स्मृतियों द्वारा जाति सम्बन्धी जो नियम निर्धारित किये गये, उनमें 9 नियम मुख्य थे–1. विभिन्न जातियों के बीच ऊंच–नीच का एक निश्चित संस्तरण, 2. अन्तर्विवाह या अपनी ही जाति में विवाह करने का नियम, 3. सभी जातियों द्वारा अपने आनुवंशिक व्यवसाय को करने का नियम, 4. विभिन्न जातियों के बीच भोजन और हुक्का–पानी से सम्बन्धित प्रतिबन्ध, 5. विभिन्न जातियों की प्रथाओं और वेशभूषा में अन्तर, 6. सभी जातियों के साथ जुड़े हुए पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी विश्वास, 7. जाति की प्रस्थिति के अनुसार व्यक्तियों के अधिकारों और निर्योग्यताओं का निर्धारण, 8. जाति संगठनों द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों का नियमन तथा 9. विभिन्न जातियों के लिए एक–दूसरे से भिन्न दण्ड–व्यवस्था।

यदि जाति सम्बन्धी इन नियमों का विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट होता है कि ये सभी नियम इसलिए बनाये गये जिससे निम्न जातियों की तुलना में उनसे उच्च जातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति ऊँची रहे तथा सभी जातियां एक–दूसरे से अलग रहें। सभी जातियों को मानसिक रूप से अपनी सामाजिक प्रस्थिति के बारे में सन्तुष्ट रखने के लिए धर्मशास्त्रों द्वारा पवित्रता और अपवित्रता की धारणा के बारे में बहुत–सी गाथाएं प्रचारित की गईं। वर्तमान युग में जाति व्यवस्था की संरचना और नियमों में अनेक परिवर्तन हो जाने के बाद भी किसी न किसी रूप में जाति व्यवस्था के असमानताकारी नियम आज भी प्रभावपूर्ण बने हुए हैं। इसी का परिणाम है कि

अनेक प्रयत्नों के बाद भी जातिगत असमानताएं हमारे समाज के विकास में गम्भीर बाधा पैदा कर रही हैं।

टिप्पणी

आज जैसे–जैसे निम्न जातियां अपने अधिकारों को पाने के लिए संगठित होती जा रही हैं, अन्तर्जातीय तनावों में भी वृद्धि होने लगी है। वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अनेक राजनीतिक दल विभिन्न जातियों के संगठन इसलिए बनाने में रुचि लेते हैं जिससे वे इसका राजनीतिक लाभ प्राप्त कर सके। चुनाव के समय अपने–अपने उम्मीदवारों का चयन करते समय भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि एक विशेष क्षेत्र में किस जाति के मतदाताओं की संख्या कितनी अधिक है। स्वाभाविक है कि ये सभी दशाएं जातियों की दूरी को बढ़ाकर अप्रत्यक्ष रूप से जातिगत विभेदों को कम करने में बाधा पैदा करती हैं।

जातिगत असमानताओं के कारण (Causes of Caste Inequalities)

भारतीय समाज में परिवर्तन और रूपान्तरण के बाद भी जनसाधारण का जीवन एक बड़ी सीमा तक तरह–तरह के धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं से बंधा हुआ है। शिक्षित और आधुनिक मनोवृत्तियों वाले लोगों के विचार भी परम्पराओं के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हैं। जाति–असमानताओं को प्रोत्साहन देने वाली कुछ मुख्य दशाएं अग्र प्रकार हैं–

(1) **धार्मिक शिक्षा एवं परम्परावादी जीवन (Religious Education and Traditional Life) :** भारत में जाति असमानताओं को बढ़ाने का एक अन्य कारण यहां एक लम्बे समय तक धर्म पर आधारित अनौपचारिक शिक्षा और परम्परावादी जीवन रहा है। धार्मिक रूप से यहां शिक्षा कुछ राजपरिवारों और संभ्रान्त वर्ग तक ही सीमित रही। यह शिक्षा भी पूरी तरह जाति के नियमों पर आधारित थी। इसके फलस्वरूप अपने आरम्भिक जीवन से ही व्यक्ति जातियों की पारस्परिक दूरी और जाति पर आधारित पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी मनोवृत्तियां विकसित करने लगे। शूद्र जातियां किसी भी तरह की शिक्षा से वंचित रहने के कारण सामाजिक भेदभाव पर आधारित नीतियों का विरोध नहीं कर सकीं। इस प्रकार यहां एक ऐसी परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था विकसित हो गयी जिसमें जातिगत असमानताओं को व्यवहार के सामान्य ढंग के रूप में देखा जाने लगा।

(2) **जाति पंचायतें (Caste Panchayats):** ग्रामीण और नगरीय सभी क्षेत्रों में जाति पंचायतों को मिलने वाले अधिकारों से भी जाति असमानताओं में वृद्धि हुई। नगर में सभी छोटी–बड़ी जातियों की अपनी अलग–अलग पंचायतें थीं जबकि गांव में उच्च जातियों के वयोवृद्ध लोग ही पंचों के रूप में गांव के लोगों के व्यवहारों को नियन्त्रित करते थे। इन पंचों की शक्ति इतनी अधिक थी कि इन्हें 'पंचपरमेश्वर' के रूप में देखा जाने लगा। जाति पंचायतों का मुख्य काम जाति व्यवस्था के नियमों को प्रभावपूर्ण बनाना और इनका उल्लंघन करने वाले लोगों को कठोर दण्ड देना था। ऐसा दण्ड जाति–निष्कासन, हुक्का–पानी बन्द, ब्राह्मण भोज, जाति भोज, तीर्थ यात्रा या प्रायश्चित आदि के रूप में दिया जाने लगा। इसी व्यवस्था के कारण भारत में जातिगत असमानताओं ने एक संस्थात्मक रूप ग्रहण कर लिया।

(3) ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Rural Economy): भारत सदैव से ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाला समाज रहा है। गांव के पुजारी और गांव पंचायत के पंचों द्वारा ग्रामीणों को जिन व्यवहारों का निर्देश दिया गया, उन्हें हमेशा उसी रूप में स्वीकार किया जाता रहा। भारी निर्धनता और अशिक्षा अपने आप व्यक्ति को अन्धविश्वासी और असहाय बना देती है। इन दशाओं में गांव में उच्च जातियों के लोग जाति सम्बन्धी असमानताओं को बढ़ाकर अपने स्वार्थों को पूरा करने में लगे रहे जबकि धर्म के नाम पर निम्न जातियों के लोग इन असमानताओं को अपने भाग्य का परिणाम मानते रहे।

टिप्पणी

(4) अन्तर्विवाह का प्रचलन (Rule of Endogamy): जाति व्यवस्था के नियमों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का विवाह अपनी ही उपजाति के अन्दर करना अनिवार्य रहा है। इस नियम के उल्लंघन को बहुत गम्भीर सामाजिक अपराध के रूप में मानकर इसके लिए कठोर सामाजिक दंड की व्यवस्था की गयी। धुरिये ने लिखा है कि अन्तर्विवाह के नियम के कारण सभी छोटी–बड़ी जातियां आत्म–केन्द्रित समुदायों के रूप में बदल गईं तथा उनके सामने जाति के नियमों के अनुसार व्यवहार करना ही सबसे बड़ा धार्मिक कर्तव्य समझा जाने लगा।

(5) जाति पर आधारित राजनीति (Caste-based Polities): भारत में स्वतन्त्रता के बाद जब यहां लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित हुई तो धीरे–धीरे विभिन्न राजनीतिक दल जाति के आधार पर लोगों का अधिक से अधिक समर्थन पाने का प्रयत्न करने लगे। सिद्धान्तहीन राजनीति राष्ट्रीय और सामाजिक हितों को उतना महत्व नहीं देती जितनी कि सत्ता की जोड़–तोड़ की। इसके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों के अनेक राजनीतिक दलों ने जातिगत समानताओं और एकीकरण को प्रोत्साहन देने की जगह विभिन्न जातियों को एक–दूसरे के विरुद्ध संगठित करना शुरू कर दिया। जब जातीय समर्थक के आधार पर चुनावों में जीत–हार होने लगी तो सत्ता पक्ष के निर्वाचित प्रतिनिधि प्रत्येक दशा में अपनी जाति के लोगों को लाभ पहुंचाने की मुहिम में जुट गये।

(6) जातियों का असमान विकास (Uneven Development of Castes): हमारे समाज में जाति सम्बन्धी असमानताओं का एक अन्य कारण विभिन्न जातियों को विकास के समान अवसर प्राप्त न हो पाना है। कुछ जातियों को शिक्षा, नौकरियों और व्यवसाय के अधिक अवसर मिले जबकि दलित और पिछड़ी जातियों में भी बहुत–सी जातियां विकास के अधिक अवसर प्राप्त नहीं कर सकीं। आरक्षण से मिलने वाले लाभों के कारण अनुसूचित जातियों ने भी अपनी स्थिति में सुधार लाने के अधिक प्रयत्न नहीं किये। दूसरी ओर ऊँची जातियों के लोगों में आरक्षण के प्रति असन्तोष बढ़ने लगा। इससे विभिन्न जातियों के बीच विरोध की भावना पैदा हुई तथा सभी जाति–समूह अधिक अधिकारों की मांग को लेकर संगठित होने लगे।

(7) गुट निर्माण की प्रवृत्ति (Tendency of Faction Formation): आन्द्रे बितेई ने अपने अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया कि भारत के ग्रामीण जीवन में गुट–निर्माण की दशा ने ही जातिगत असमानताओं को बढ़ाया है। आज गांवों में एक विशेष जाति की प्रस्थिति और अधिकारों का निर्धारण इस बात से होता

टिप्पणी

है कि उस जाति का गुट दूसरे गुटों की तुलना में कितना अधिक या कम प्रभावशाली है। इसे आन्द्रे बितेई ने एक 'असंगत सामाजिक व्यवस्था' (Disharmonic Social System) का नाम दिया। यह असंगत सामाजिक व्यवस्था गुटों के निर्माण को प्रोत्साहन देकर जाति सम्बन्धी असमानताओं में वृद्धि करती है।

जातिगत असमानताओं से उत्पन्न समस्याएँ (Problems Emerging Due to Caste Inequalities)

भारत में जातिगत विभेदों का सबसे अमानवीय रूप अस्पृश्यता की समस्या के रूप में सामने आया। देश की आधी से भी अधिक आबादी को शिक्षा के अधिकार न मिल पाने के कारण समाज चेतना शून्य बन गया। राज दरबारों में ऊंची जातियों के लोगों का ही बोलबाला रहने के कारण गांवों के अभावपूर्ण जीवन की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। जैसे–जैसे पुरोहित वर्ग की ताकत बढ़ती गयी, भारतीय समाज में तरह–तरह के अन्धविश्वासों, कर्मकाण्डों और कुप्रथाओं में वृद्धि होने लगी। जातिगत असमानताओं ने अनन्त शताब्दियों तक के लिए भारतीय समाज को हजारों टुकड़ों में इस तरह बांट दिया कि आज सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है।

(1) **निम्न जातियों का शोषण (Exploitation of Lower Castes)**: भारत की जनसंख्या में दलित जातियों और पिछड़ी जातियों की संख्या आधे से भी अधिक है। जाति सम्बन्धी नियमों के कारण दलित जातियों का इतना अमानवीय शोषण हुआ जिसका उदाहरण संसार के किसी भी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। यूरोप में गुलामों का भी उतना शोषण नहीं हुआ जितना भारत में अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों का हुआ। पिछड़ी जातियों के लिए भी केवल उन्हीं व्यवसायों के द्वारा आजीविका उपार्जित करने की अनुमति दी गयी जो उच्च जातियों की सेवा से सम्बन्धित थे। इस शोषण को सामाजिक और धार्मिक स्वीकृति मिली होने से इसने एक स्थायी व्यवस्था का रूप ले लिया।

(2) **सामाजिक निष्क्रियता (Social Passivism)**: प्रोफेसर डिसूजा ने अपने एक लेख में लिखा है कि सामाजिक निष्क्रियता एक ऐसी दशा है जिसमें व्यक्ति अपनी ही सामाजिक व्यवस्था से अपने आपको अलग–थलग महसूस करता है तथा सामाजिक सहभाग में रुचि लेना बन्द कर देता है। वास्तव में हम आज सामाजिक निष्क्रियता की एक गम्भीर समस्या का शिकार हैं जो जातिगत असमानताओं का ही परिणाम है। भारत में स्वतन्त्रता के बाद निम्न जातियों को नौकरियों, व्यवसाय, उद्योग और शिक्षा की विशेष सुविधाएं दी गईं। इसके बाद भी लाभपूर्ण आर्थिक क्रियाओं और व्यवसायों में इन जातियों का सहभाग बहुत कम है। तमाम छात्रवृत्तियों के बाद भी दलित जातियों के लोग अपने बच्चों को समुचित शिक्षा देने में रुचि नहीं ले रहे हैं। सामाजिक निष्क्रियता के कारण उनकी मानसिकता आज भी पृथक्करण की है।

(3) **व्यापक निरक्षरता (Wide Spread Illiteracy)**: जातिगत नियमों के अनुसार केवल निम्न जातियां ही शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं थीं बल्कि व्यावहारिक रूप से क्षत्रिय और वैश्य जातियां भी शिक्षा की सुविधा से वंचित रहीं। इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि स्वतन्त्रता के समय भारत में केवल 18 प्रतिशत लोग साक्षर थे। साक्षरता का तात्पर्य केवल मामूली अक्षर ज्ञान

से है, शिक्षा से नहीं। लगभग 60 वर्षों के प्रयत्नों के बाद भी भारत में साक्षरता का प्रतिशत आज भी 65 प्रतिशत से अधिक नहीं है। शिक्षा की कमी के कारण भी लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो सके।

टिप्पणी

(4) जातिवाद (Casteism): जातिगत असमानताओं ने विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक दूरी और विरोध को प्रोत्साहन देकर समाज में जातिवाद की एक नयी समस्या पैदा कर दी। जातिवाद अपनी जाति के प्रति वह निष्ठा है जो सामाजिक न्याय, कुशलता और समानता के मानदण्डों की उपेक्षा करके व्यक्ति को प्रत्येक दशा में अपनी ही जाति के लोगों का पक्ष लेने की प्रेरणा देती है। यदि हमारी सामाजिक संरचना जातिगत असमानताओं पर आधारित न होती तो हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था कहीं अधिक सफल हो सकती थी।

(5) अन्तर्जातीय तनाव (Inter-caste Tensions): एक ओर उच्च जातियां अपनी परम्परागत श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए निम्न जातियों को ऊपर उठते हुए देखना नहीं चाहतीं तो दूसरी ओर निम्न जातियां अपनी स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए ऊंची जातियों का हर तरह से विरोध करने के लिए संगठित होने लगी हैं। ऐसा विरोध कभी–कभी हिंसक संघर्ष के रूप में बदल जाता है। जिन क्षेत्रों में निम्न जातियों के लोगों की संख्या शक्ति अधिक है, वहां अन्तर्जातीय संघर्षों का रूप अधिक उग्र हो जाता है। जाति संघर्ष का दूसरा रूप उच्च जातियों के बीच बढ़ने वाले संघर्ष के रूप में भी देखने को मिलता है। बिहार में ब्राह्मण और ठाकुर जातियों के बीच चलने वाले संघर्षों ने आज एक गम्भीर समस्या का रूप ले लिया है।

2.5.3 पारसी और मुस्लिम सामाजिक सुधार

19वीं सदी के बीच नौरोजी फरदोंजी, दादाभाई नौरोजी, एस.एस. बंगाली और दूसरी पारसियों के बीच धार्मिक सुधारों की शुरुआत हुई। सन् 1851 में "रहनुमाय मांजदायासन सभा" या धार्मिक सुधार संगठन की स्थापना की गई। उन्होंने शिक्षा के प्रसार में विशेष रूप से लड़कियों के बीच एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्होंने पारसी धर्म में रूढ़िवादी प्रथाओं के विरुद्ध अभियान चलाया। समयक्रम में पारसी धर्म भारतीय समाज के प्रगतिशील वर्गों में सबसे महत्वपूर्ण बन गए।

मुस्लिम सुधार आंदोलन

आधुनिक शिक्षा के प्रसार तथा बहु विवाह जैसी सामाजिक प्रथाओं को दूर करने के लिए कई आंदोलन शुरू किए गए हैं। अब्दुल लतीफ ने 1863 में कलकत्ता में "मोहम्दन साक्षरता सोसायटी" स्थापित की। यह आरंभिक संगठनों में से एक था, जिसने आधुनिक शिक्षा को मध्यम वर्ग एवं उच्च वर्ग के मुसलमानों के बीच तथा हिन्दू, मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंगाल के शरीयतुल्ला "फरायजी" आंदोलन के प्रवर्तक ने बंगाल में किसानों के लिए काम किए। उन्होंने मुसलमानों के बीच व्याप्त जाति व्यवस्था जैसी बुराइयों की निंदा की।

अन्य कई सामाजिक धार्मिक आंदोलनों ने मुसलमानों में राष्ट्रीय जागृति लाने में सहायता की। मिर्जा गुलाम अहमद ने 1899 में "अहमदिया आंदोलन" की स्थापना की, इन आंदोलन के अंतर्गत विद्यालय कालेज देश भर में खोले गए। उन्होंने इस्लाम के

टिप्पणी

सार्वभौमिक और मानवीय चरित्र पर जोर दिया। वे हिन्दू और मुसलमानों के बीच एकता को पसंद करते थे। आधुनिक भारत के महानतम कवियों में से एक कवि मोहम्मद इकबाल (1876–1938) थे। उन्होंने कविताओं के माध्यम से कई पीढ़ियों के दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण को प्रभावित किया।

सर सैयद अहमद खान का मानना है कि मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में सुधार आधुनिक पश्चिमी वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति अपनाने से हो सकते हैं। उनको मुसलमानों में सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए विभिन्न कार्य किए। उन्होंने मुस्लिम महिलाओं की स्थिति को बढ़ाने के लिए कड़ी मेहनत की वे पर्दा प्रणाली, बहुविवाह, आसान तलाक और लड़कियों के बीच शिक्षा की कमी के विरुद्ध थे। हालांकि रूढ़िवादी मुसलमानों ने उनका विरोध किया था, उन्होंने महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सराहनीय प्रयास किए। उन्होंने तर्क सहित कुरान की व्याख्या करने की कोशिश की और कट्टरता और अज्ञानता के विरुद्ध अपनी बात कही। उन्होंने मुस्लिम समाज के उत्थान के लिए सामाजिक सुधार प्रारंभ किया।

अपने प्रारंभिक जीवन के दौरान उन्होंने भी अंग्रेजी भाषा के अध्ययन के खिलाफ रूढ़िवादी मुसलमानों का विरोध किया। उन्होंने कहा कि केवल आधुनिक शिक्षा ही मुसलमानों को प्रगति की दिशा में ले जा सकती है। उन्होंने 1864 में गाजीपुर में (वर्तमान में उत्तर प्रदेश) एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की थी। उन्होंने मोहम्मदन एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज (एम.ए.ओ.) जो बाद में 1875 में अलीगढ़ में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ की भी स्थापना की। यहां मानविकी और विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान की गई। उन्होंने अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद के लिए एक साइंटिफिक सोसाइटी की स्थापना की। उन्होंने मुसलमानों के बीच सामाजिक सुधारों के प्रति जागरूकता के प्रसार तथा विशेष रूप से आधुनिक शिक्षा के लिए पत्रिका प्रकाशित की। पत्रिका के द्वारा चलाया गया सुधार आंदोलन अलीगढ़ आंदोलन के नाम से जाना गया जो मुसलमानों के बीच सामाजिक और राजनीतिक जागृति की ओर एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ।

मुसलमानों में शिक्षा के प्रसार हेतु उन्होंने निम्नलिखित कदम उठाए—

- 1870 ई. के बाद प्रकाशित डब्ल्यू. हण्टर की पुस्तक इण्डियन मुसलमान में सरकार को सलाह दी गई थी कि वह मुसलमानों से समझौता कर तथा उन्हें कुछ रियायतें देकर अपनी ओर मिलाए।
- प्रारम्भ में सर सैय्यद अहमद खां हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे।
- उन्होंने मुस्लिम समुदाय को आधुनिक बनाने एवं इस्लाम में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया।
- उन्होंने पीरी–मुरीदी प्रथा एवं दासप्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया।
- अपने विचारों के प्रसार के लिये उन्होंने 'तहजीब–उल–अखलाक' (सभ्यता और नैतिकता) नामक पत्रिका का प्रकाशन किया।
- कुरान पर परम्परागत टीकाकरों की आलोचना करते हुए समकालीन वैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में अपने विचार व्यक्त किये।

- इन्होंने सर्वप्रथम 1864 ई. में गाजीपुर में साइंटिफिक सोसायटी स्थापित की और एक वर्ष बाद अंग्रेजी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करने के लिए एक विज्ञान समाज की स्थापना की।
- इन्होंने महारानी विक्टोरिया की वर्षगांठ के अवसर पर अलीगढ़ में 'एंग्लो–ओरिएंटल कॉलेज' की स्थापना की (24 मई, 1875 ई.) जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय कहलाया।
- विश्वविद्यालय के प्रथम प्रिंसीपल थियोडोर बैक थे।
- अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा को प्रकट करने हेतु 'राजभक्त मुसलमान' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया।
- बनारस के राजा शिवप्रसाद के साथ 'देशभक्त एसोसिएशन' की स्थापना की।

2.5.4 सुधार की गतिविधि सामग्री

सामाजिक–धार्मिक परंपराओं में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया गया जिनमें से चार मुख्य धाराएं निम्नलिखित हैं–

(1) आंतरिक सुधार

आंतरिक सुधार–प्रणाली की शुरुआत राममोहन राय द्वारा की गयी थी और 19वीं शताब्दी में इसका प्रयोग हुआ। इस प्रणाली के प्रचारकों का यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समाज के अंदर से ही हो। परिणामस्वरूप इनके प्रयास लोगों के बीच जागरूकता की भावना पैदा करने पर केंद्रित थे। यह प्रयास उन्होंने किताबें छापकर, विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर बहस व विवाद का आयोजन इत्यादि करके किया। राममोहन राय का सती प्रथा के खिलाफ प्रचार, विद्यासागर के विधवा–विवाह पर लिखे इश्तहार तथा बी.एन. मालाबारी के शादी–विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के प्रयास इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

(2) कानून के द्वारा सुधार

दूसरी प्रवृत्ति कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आधारित थी। इस प्रणाली की वकालत करने वाले बंगाल के केशवचंद्र सेन, महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे तथा आन्ध्र प्रदेश के विरेशलिंगम का मानना था कि सुधार के प्रयास वास्तव में तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकते जब तक उन्हें राज्य का सहयोग प्राप्त नहीं हो। इसीलिए उन्होंने सरकार से विधवा–विवाह, कानूनी–विवाह (सिविल मैरिज) तथा अन्य विवाहों की न्यूनतम आयु बढ़ाने जैसे सुधारों को कानूनी समर्थन देने की मांग की। हालांकि वे यह समझने में भूल कर बैठे कि ब्रिटिश सरकार की सामाजिक सुधारों में रुचि केवल अपने संकीर्ण राजनीतिक व आर्थिक स्वार्थों के कारण थी और वे तभी हस्तक्षेप करते जब इन सुधारों से उनका स्वार्थ अप्रभावित रहता। साथ ही वे यह समझने में भी गलती कर बैठे कि बदलाव के लिए हथियार के रूप में कानून की भूमिका औपनिवेशिक समाज में ही सीमित थी क्योंकि इसे जनता की मान्यता प्राप्त नहीं थी।

(3) प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार

तीसरी प्रवृत्ति की कोशिश विशिष्ट विरोधी–गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। यह प्रवृत्ति "डेरोजिओ" या "यंग बंगाल" तक ही सीमित थी जो सुधार–आंदोलन

टिप्पणी

के बीच क्रांतिकारी धारा का नेतृत्व करती थी। इस समूह के सदस्य, जिनमें से प्रमुखतः दक्षिनारंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष तथा कृष्ण मोहन बनर्जी ने परंपराओं का बहिष्कार किया और समाज के मान्यता प्राप्त मानदंडों के खिलाफ विद्रोह किया। वे "पश्चिम के नए उठते विचारों" की धारा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वाली क्रांतिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया। रामगोपाल घोष ने इस समूह की क्रांतिकारिता को अभिव्यक्त करते हुए घोषणा की – "वह जो तर्क नहीं करेगा धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, बेवकूफ है और जो नहीं करता, गुलाम है।" इन्होंने जिस प्रणाली को अपनाया उसकी मुख्य कमजोरी यह थी कि वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपरा को आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाई। अतः बंगाल में उभरते नए मध्यम वर्ग ने इसे परंपरा के विरुद्ध पाया और स्वीकार नहीं किया।

(4) सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार

चौथी प्रवृत्ति सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार की थी जैसा कि ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन की गतिविधियों से स्पष्ट है। उन लोगों को बिना सहायक सामाजिक कार्य के विरुद्ध बुद्धिजीवी प्रयासों की सीमित सीमा का स्पष्ट ज्ञान था। उदाहरण के लिए विद्यासागर विधवा विवाह की वकालत सिर्फ प्रवचनों और किताबों के प्रकाशन से करके ही खुश नहीं थे। शायद आधुनिक युग में भारत ने उनके रूप में सबसे महान मानवतावादी को जन्म दिया, जिसने अपने को विधवा–विवाह की समस्याओं से जोड़ लिया और अपनी पूरी जिन्दगी, शक्ति और धन इसी कार्य पर लगा दिया। इन सबके बावजूद वह सिर्फ कुछ एक विधवा–विवाह ही करवा पाए। विद्यासागर का सार्थक रूप से कुछ न प्राप्त कर पाना ही इस बात का द्योतक है कि औपनिवेशिक भारत में सामाजिक सुधारों के प्रभाव की अपनी एक सीमा थी।

आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन ने भी सामाजिक कार्य द्वारा सुधार व पुनर्जागरण के विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। उनकी सीमा उनकी खुद की वह सीमित समझ थी कि सामाजिक और बौद्धिक स्तरीय सुधार समाज के संपूर्ण चरित्र व संरचना के साथ इस कदर जुड़े हैं कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। मौजूदा व्यवस्था की संकीर्णता ही उन सीमाओं को दर्शाती है जिन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कोई भी प्रयास लांघ नहीं पाया है। दूसरे सुधार–आंदोलनों की तुलना में इनकी निर्भरता औपनिवेशिक सरकार के हस्तक्षेप पर कम और सामाजिक कार्य को मत के रूप में विकसित करने पर ज्यादा रही।

आधुनिक भारत के क्रमिक विकास में 19वीं शताब्दी के सुधार–आंदोलनों ने अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने समाज को जनतांत्रिक बनाने, घृणित रिवाजों और अंधविश्वासों को दूर करने, ज्ञान के प्रसार और एक विवेकपूर्ण तथा आधुनिक दृष्टिकोण के विकास का समर्थन किया है। मुसलमानों के बीच अलीगढ़ व अहमदिया आंदोलनों ने इन विचारों की मशाल अपने हाथों में थामे रखी। मिर्जा गुलाम अहमद से प्रोत्साहन पाकर अहमदिया आंदोलन ने 1890 में एक निश्चित स्वरूप धारण कर लिया और "जिहाद" का विरोध तथा लोगों के बीच भाईचारे व स्वतंत्र पश्चिमी शिक्षा की वकालत की। बहुविवाह का विरोध कर तथा विधवा–विवाह का समर्थन कर अलीगढ़ आंदोलन

ने मुसलमान समाज में एक नया लोकाचार पैदा करने की कोशिश की। इसने कुरान की स्वतंत्र व्याख्या करने तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार का समर्थन किया।

हिंदू समाज के बीच हुए सुधार–आंदोलनों ने अनेक सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार किया। इन आंदोलनों ने, बहुदेववाद और मूर्तिपूजा (जो व्यक्ति के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं), दैवशक्तिवाद तथा धार्मिक प्रधानों की तानाशाही (जो अधिनायकवाद जैसी प्रकृति को दबाती है) की आलोचना की। जाति–प्रथा का विरोध न केवल आदर्श या नैतिकता के आधार पर हुआ, बल्कि इसलिए भी हुआ कि यह समाज में फूट डालने जैसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। ब्रह्म समाज के आरंभिक आंदोलनों में जाति–प्रथा का विरोध केवल सैद्धांतिक आधार पर एक निश्चित स्तर तक ही सीमित होकर रह गया, इसके विपरीत आर्य समाज, प्रार्थना समाज और रामकृष्ण मिशन जैसे धार्मिक आंदोलनों ने जाति–प्रथा से समझौता नहीं करके उसकी आलोचना की। जाति–प्रथा की आलोचना करने वालों में अधिकतर निचली जाति के लोग थे। ज्योतिबा फूले और नारायण गुरू द्वारा शुरू किये गए आंदोलनों से ही पता चलता है कि उन्होंने स्पष्ट रूप से जाति–प्रथा के उन्मूलन की वकालत की थी, नारायण दत्त का नारा था–

"मानवता के लिए केवल एक भगवान और एक जाति"।

स्त्रियों की दशा सुधारने की इच्छा का आधार केवल विशुद्ध मानवीय आधार न होकर समाज में विकास लाने की खोज का ही एक रूप था। केशवचंद्र सेन ने अपना मत रखा कि "पृथ्वी पर उस किसी भी देश ने सभ्यता की दौड़ में कभी अपेक्षित विकास नहीं किया, जहां की स्त्री–जाति का जीवन अंधकारमय हो।"

इन सभी आंदोलनों में समाज की तात्कालिक स्थिति में प्रचलित मूल्यों को बदलने का प्रयास देखा जा सकता है। किसी एक तरह से या अन्य तरह से इन आंदोलनों का प्रयास था कि सामंती समाज के प्रमुख मूल्यों को बदलकर बुर्जुवा चरित्र के मूल्यों से समाज का परिचय कराया जाए।

हालांकि 19वीं शताब्दी के सुधार–आंदोलनों का उद्देश्य भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के सामाजिक, शैक्षिक व नैतिक स्तर को ऊपर उठाने का था, किंतु यह उद्देश्य कई कमजोरियों व सीमाओं से बाधित हुआ। इन सुधार–आंदोलनों में एक शहरी–प्रवृत्ति भी थी, केवल आर्य समाज को छोड़कर, जिसका कि प्रभाव नीची जातियों के आंदोलनों पर व्यापक रूप से था, दूसरे सुधार–आंदोलनों का क्षेत्र ऊंची जाति व वर्ग तक ही सीमित था। उदाहरण के लिए बंगाल का ब्रह्म समाज "भद्रलोक" की समस्याओं से संबंधित था तो अलीगढ़ आंदोलन ऊँचे वर्ग के मुसलमानों की समस्याओं से। आम जनता साधारणतः इनसे अप्रभावित ही रही। सुधारकों की एक दूसरी सीमा ब्रिटिश राज्य व भारत के प्रति उनके दृष्टिकोण के प्रत्यक्ष बोध में थी। वे भ्रांतिपूर्ण ढंग से यह सोचते रहे कि ब्रिटिश शासन तो भगवान द्वारा नियोजित है और वे ही भारत को आधुनिकीकरण के मार्ग पर ले जायेंगे। चूंकि उनकी भारतीय समाज के आदर्श स्वरूप की संकल्पना 19वीं शताब्दी के ब्रिटेन का प्रतिरूप थी, इसीलिए उन्हें लगा कि भारत को ब्रिटेन जैसा बनाने के लिए ब्रिटिश शासन जरूरी है। इन सुधारकों ने हालांकि भारतीय समाज के सामाजिक, धार्मिक स्वरूप को अच्छी तरह से समझ लिया था, किंतु

इसके राजनीतिक स्वरूप को पहचानने में चूक गए; जो कि अंग्रेजों द्वारा शोषण पर आधारित था।

टिप्पणी

19वीं शताब्दी के सुधारों का सामाजिक–धार्मिक यथार्थ के बुद्धिवादी आलोचकों ने सामान्य चित्रण किया है। शुरुआती ब्रह्म सुधारकों और "यंग बंगाल" के सदस्यों ने सामाजिक–धार्मिक समस्याओं के प्रति अत्यधिक विवेकपूर्ण रवैया अपनाया था। अक्षय कुमार दत्त, समझौता न करने वाले बुद्धिवादी ने तर्क दिया कि प्राकृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति को मात्र इसकी बनावट व मशीनी प्रक्रिया के स्तर पर अपनी बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है तथा इसकी समीक्षा की जा सकती है। विश्वास को विवेक से बदलने का प्रयास किया गया और सामाजिक–धार्मिक परंपराओं को उनकी सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से आंका गया। बुद्धिवादी परिप्रेक्ष्य से ब्रह्म समाज में वेदों की अमोघता का खण्डन हुआ तथा अलीगढ़ में सर सैयद अहमद खान द्वारा स्थापित आंदोलन ने इस्लाम की शिक्षाओं को नए युग की जरूरतों व आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने पर जोर दिया। सर सैयद अहमद खान ने धार्मिक सिद्धांतों को निर्विकार मानते हुए सामाजिक विकास में धर्म की भूमिका पर जोर देते हुए कहा कि यदि धर्म ने समय के साथ कदम नहीं मिलाया और समाज की मांगों को पूरा नहीं किया तो यह प्रभावहीन हो जाएगा जैसा कि इस्लाम के साथ भारत में हुआ है।

यद्यपि सुधारकों ने धर्मग्रंथों की सम्मति ली (जैसा कि राममोहन के सती–प्रथा की समाप्ति के लिए और विद्यासागर के विधवा–विवाह के समर्थन में दिए गए तर्कों से स्पष्ट होता है) किंतु, सामाजिक–सुधार हमेशा धार्मिक भावनाओं के अनुकूल नहीं थे। उस समय की व्याप्त सामाजिक परंपराओं को बदलने के लिए रखे गए दृष्टिकोणों में एक विवेकपूर्ण और निरपेक्ष दृष्टिकोण स्पष्टतः परिलक्षित था। विधवा–विवाह की वकालत तथा बहुपत्नी–प्रथा व बाल–विवाह का विरोध करते समय अक्षय कुमार को किसी धार्मिक विधान की खोज या भूतकाल में उनके प्रचलन की जानकारी हासिल करने में कोई अभिरुचि नहीं थी। उनके तर्क मुख्यतः समाज में होने वाले उनके प्रत्यक्ष प्रभावों पर ही आधारित थे। धर्मग्रंथों पर निर्भर होने की बजाय उन्होंने बाल–विवाह का विरोध करने के लिए डाक्टरी राय का हवाला दिया।

अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा महाराष्ट्र में धर्म पर निर्भरता कम थी। गोपाल हरि देशमुख के लिए सामाजिक सुधारों का धार्मिक विधान सम्मत होना या न होना महत्वहीन था। यदि धर्म ने सुधारों की अनुमति नहीं दी, तो उनका मानना था कि धर्म को ही बदल दो। क्योंकि जो धर्मग्रंथों में लिखा है जरूरी नहीं कि वह समकालीन प्रसंगों के अनुकूल हो।

19वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण विचार था– विश्व धर्म जिसका ईश्वर की एकता में विश्वास था और जो सब धर्मों के आवश्यक रूप से एक होने पर जोर देता था। राममोहन राय ने विभिन्न धर्मों को अखिल आस्तिकवाद का राष्ट्रीय अवतार माना और शुरू में ब्रह्म समाज को विश्वधर्म चर्च का दर्जा दिया था। वे सभी धर्मों के मूल तथा सार्वभौमिक नियमों वेदों के एकेश्वरवाद तथा इसाई धर्म के अधिनायकवाद के रक्षक थे तथा इसके साथ ही उन्होंने हिंदुओं के बहुदेववाद तथा इसाई धर्म के त्रित्ववाद का विरोध किया। सैयद अहमद खान के विचारों में भी लगभग वही गूंज थी। सभी पैगंबरों का एक ही संदेश (विश्वास) था और हर देश और राष्ट्र के अलग–अलग पैगम्बर थे।

इस मत ने केशवचंद्र सेन के विचारों में अधिक स्पष्टता पाई जिन्होंने ब्रह्म समाज से हटकर सभी बड़े धर्मों की धाराओं को एक ही सूत्र "नव विधान" में बांधने की कोशिश की तथा उसमें सभी प्रमुख धर्मों के विचारों का संश्लेषण करने का प्रयास किया। "सभी धर्मों में सत्य की तलाश करना हमारा कर्तव्य नहीं बल्कि यह मानना है कि विश्व के सभी प्रस्थापित धर्म सत्य हैं।"

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. ब्रह्म समाज की स्थापना कब की गई?
   (क) 20 अगस्त, 1828 को (ख) 3 अगस्त, 1828 को
   (ग) 15 अगस्त, 1828 को (घ) 20 अगस्त, 1959 को
8. राजा राममोहन राय ने किस पत्रिका का प्रकाशन किया?
   (क) वामा (ख) नीहारिका
   (ग) वनिता (घ) संवाद कौमुदी

2.6 सामाजिक सुधार एवं समाज कार्य

19वीं शताब्दी के राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख प्रभाव सामाजिक सुधार के क्षेत्र में देखने को मिला। नवशिक्षित लोगों ने बढ़–चढ़कर जड़ सामाजिक रीतियों और पुरानी राजनीति से विद्रोह किया। बुद्धिविरोधी और अमानवीयकारी सामाजिक व्यवहारों को और सहने को तैयार न थे। उनका विद्रोह सामाजिक समानता और सभी व्यक्तियों के समान क्षमता के मानवतावादी आदर्शों से प्रेरित था।

प्रमुख समाज सुधारक

समाज–सुधार के आंदोलन में लगभग सभी धर्म–सुधारकों का योगदान रहा। भारतीय समाज के पिछड़ेपन की तमाम निशानियों जैसे जाति प्रथा या स्त्रियों की असमानता को अतीत में धार्मिक मान्यता प्राप्त रही है। साथ ही सोशल कान्फ्रेंस, भारत सेवक समाज जैसे कुछ अन्य संगठन और ईसाई मिशनरियों ने भी समाज–सुधार के लिए जम कर काम किया। ज्योतिबा गोविंद फुले, गोपाल हरि देशमुख, जस्टिस रानाडे, के.टी. तेलंग, बी.डी. मालाबारी, डी.के. कर्वे, शशिपद बनर्जी, विपिन चंद्र पाल, वीरेशलिंगम, ई.वी. रामास्वामी नायकर और भीमराव अंबेडकर और दूसरे प्रमुख व्यक्ति की भी एक प्रमुख भूमिका रही। 20वीं सदी में और खासकर 1919 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन समाज सुधार का प्रमुख प्रचारक बन गया। जनता तक पहुंचने के लिए सुधारकों ने प्रचार–कार्य में भारतीय भाषाओं का अधिकाधिक सहारा लिया। उन्होंने अपने विचारों को फैलाने के लिए उपन्यासों, नाटकों, काव्य, लघु कथाओं, प्रेस और 1930 के दशक में फिल्मों का भी उपयोग किया।

समाज सुधार पश्चिमी संस्कृति व मूल्यों के साथ तालमेल बैठाने का नतीजा

19वीं शताब्दी में कुछ मामलों में समाज–सुधार का कार्य धर्म–सुधार से जुड़ा था, लेकिन बाद के वर्षों में यह अधिकाधिक धर्मनिरपेक्ष होता गया। इसके अलावा रूढ़िवादी

टिप्पणी

धार्मिक दृष्टिकोण वाले अनेक व्यक्तियों ने भी इसमें भाग लिया। इसी तरह आरंभ में समाज–सुधार बहुत कुछ उच्च जातियों के नवशिक्षित भारतीयों द्वारा अपने सामाजिक व्यवहार का आधुनिक पश्चिमी संस्कृति व मूल्यों के साथ तालमेल बैठाने के प्रयासों का नतीजा था। लेकिन धीरे–धीरे इसका क्षेत्र व्यापक होकर समाज के निचले वर्गों तक फैल गया और यह सामाजिक क्षेत्र की क्रांतिकारी पुनर्रचना करने लगा। कालांतर में सुधारकों के विचारों व आदर्शों को सार्वभौमिक मान्यता मिली और आज वे भारतीय संविधान के अंग हैं।

समाज–सुधार के आंदोलनों ने मुख्य रूप से दो लक्ष्यों को पूरा करने के प्रयास किए– (अ) स्त्रियों की मुक्ति और उन्हें समान अधिकार देना, और (ब) जाति–प्रथा की जड़ताओं को समाप्त करना तथा खासकर छुआछूत का खात्मा।

स्त्रियों की समस्याएं

स्त्रियों की मुख्य समस्याएं निम्नलिखित हैं–

पर्दा प्रथा

भारत में स्त्रियां अनगिनत सदियों से पुरुषों की अधीन और सामाजिक उत्पीड़न का शिकार रही हैं। भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मों व उन पर आधारित गृहस्थ–नियमों ने स्त्रियों को पुरुषों से हीन स्थान दिया। इस संबंध में उच्च वर्गों की स्त्रियों की स्थिति किसान औरतों से भी बदतर थी। चूंकि किसान स्त्रियां अपने पुरुषों के साथ खेतों में काम करती थीं, इसलिए उन्हें बाहर आने–जाने की कुछ अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थीं, और परिवार में उनकी स्थिति उच्च वर्गों की स्त्रियों से कुछ मामलों में बेहतर थी। उदाहरण के लिए, वे शायद ही कभी पर्दे में रहती हों और उनमें से अनेकों को पुनर्विवाह के अधिकार प्राप्त थे।

स्त्रियों का व्यक्ति के रूप में हीन सामाजिक स्थान

पारंपरिक विचारधारा में पत्नी और मां की भूमिका में स्त्री की प्रशंसा तो की गई है लेकिन व्यक्ति के रूप में उसे बहुत हीन सामाजिक स्थान दिया गया है। अपने पति से अपने संबंधों से अलग उसका भी एक व्यक्तित्व है, ऐसा कभी नहीं माना गया है। अपनी प्रतिभा या इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए घरेलू महिला से भिन्न कोई अन्य भूमिका उसे प्राप्त नहीं थी। वास्तव में, उसे केवल पुरुष का पुछल्ला माना गया।

बहुपत्नी प्रथा एवं बालविवाह

उदाहरण के लिए, हिंदुओं में किसी महिला का एक ही विवाह संभव था, लेकिन किसी पुरुष को कई पत्नियां रखने का अधिकार था। मुसलमानों में भी यह बहुपत्नी–प्रथा प्रचलित थी। देश के काफी बड़े हिस्से में स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था। बाल–विवाह की प्रथा आम थी; आठ–नौ साल के बच्चे भी ब्याह दिए जाते थे।

विधवा विवाह निषेध एवं सती प्रथा

विधवाएं पुनर्विवाह नहीं कर सकती थीं और उन्हें त्यागी व बंदी जीवन बिताना पड़ता था। देश के कई भागों में सती प्रथा प्रचलित थी जिसमें एक विधवा स्वयं को पति की लाश के साथ जला लेती थी।

उत्तराधिकार में संपत्ति पाने का हक नहीं

हिंदू महिला को उत्तराधिकार में संपत्ति पाने का हक नहीं था, न उसे अपने दुखमय विवाह को रद्द करने को कोई अधिकार था। मुस्लिम महिला को संपत्ति में अधिकार मिलता तो था, लेकिन पुरुषों का केवल आधा और तलाक के बारे में स्त्री और पुरुष के बीच सैद्धांतिक समानता न थी। वास्तव में, मुस्लिम स्त्रियां तलाक से भयभीत रहती थीं। हिंदू और मुस्लिम स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और उनके मान–सम्मान भी मिलते–जुलते थे। इसके अलावा, दोनों ही सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर पूरी तरह निर्भर थीं।

शिक्षा से वंचित

अंतिम बात यह कि शिक्षा के लाभ उनमें से अधिकांश को प्राप्त नहीं थे। साथ ही, स्त्रियों का अपनी दासता को स्वीकार कर लेने, बल्कि इसे सम्मान का प्रतीक समझने के पाठ भी पढ़ाए जाते थे। यह सही है कि भारत में कभी–कभी रजिया सुल्ताना, चांद बीवी और अहिल्याबाई होलकर जैसी स्त्रियां भी गुजरी हैं। मगर ये उदाहरण बहुत कम हैं और इनसे सामान्य स्थिति में कोई अंतर नहीं आता।

स्त्रियों की दशा सुधारने के प्रयास

19वीं शताब्दी के मानवतावादी व समानतावादी विचारों से प्रेरित होकर समाज–सुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए एक प्रतिस्पर्धी आंदोलन छेड़ा। कुछ सुधारकों ने व्यक्तिवाद और समानता के सिद्धांतों का सहारा लिया, तो दूसरों ने घोषणा की कि हिंदू धर्म या इस्लाम मत स्त्रियों की हीन स्थिति के प्रचारक नहीं हैं और यह कि सच्चा धर्म उन्हें एक ऊंचा सामाजिक दर्जा देता है।

अनेकानेक व्यक्तियों, सुधार समितियों और धार्मिक संगठनों ने स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने, विधवाओं के पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देने, विधवाओं की दशा सुधारने, बाल–विवाह रोकने, स्त्रियों को पर्दे से बाहर लाने, एक पत्नी–प्रथा प्रचलित करने और मध्यवर्गीय स्त्रियों को सरकारी व्यवसाय या सरकारी रोजगार में जाने के योग्य बनाने के लिए कड़ी मेहनत की। 1880 के दशक में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन की पत्नी लेडी डफरिन के नाम पर जब डफरिन अस्पताल खोले गए तो आधुनिक औषधियों तथा प्रसव की आधुनिक तकनीकों के लाभ भारतीय स्त्रियों को उपलब्ध कराने के प्रयास भी किए गए।

राष्ट्रीय आंदोलन से स्त्री–मुक्ति के आंदोलन को बल

20वीं सदी में जुझारू राष्ट्रीय आंदोलन के उदय से स्त्री–मुक्ति के आंदोलन को बहुत बल मिला। स्वतंत्रता के संघर्ष में स्त्रियों ने एक सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका अदा। बंग–भंग विरोधी आंदोलन और होम रूल आंदोलन में उन्होंने बड़ी संख्या में भाग लिया। 1918 के बाद वे राजनीतिक जुलूसों में भी चलने लगीं, विदेशी वस्त्र और शराब बेचने वाली दुकानों पर धरने देने लगी तथा खादी बुनने और उसका प्रचार करने लगी। असहयोग आंदोलनों में वे जेल गईं तथा जन–प्रदर्शनों में उन्होंने लाठी, आंसू गैस और गोलियां भी झेलीं। उन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन में सक्रिय हिस्सा लिया। वे विधानमंडलों के चुनावों में वोट देने और नेताओं के रूप में भी खड़ी होने लगीं। प्रसिद्ध कवियत्री

टिप्पणी

सरोजिनी नायडू राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। कई स्त्रियां 1937 में बनी जनप्रिय सरकारों में मंत्री या संसदीय सचिव बनीं। उनमें से सैकड़ों नगरपालिकाओं और स्थानीय शासन की दूसरी संस्थाओं की सदस्या तक बनीं। 1920 के दशक में जब ट्रेड यूनियन और किसान आंदोलन खड़े हुए तो अक्सर स्त्रियां उनकी पहली पंक्तियों में दिखाई देती थीं। भारतीय स्त्रियों की जागृति और मुक्ति में सबसे महत्वपूर्ण योगदान राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भागीदारी का रहा है। कारण कि ब्रिटिश जेलों और गोलियों को झेला था उन्हें ही भला कौन कह सकता था और उन्हें अब और कब तक घरों में कैद रखकर 'गुड़िया' या 'दासी' के जीवन से बहलाया जा सकता था? मनुष्य के रूप में अपने अधिकारों का दावा उन्हें करना ही था।

महिलाओं द्वारा महिला आंदोलन का नेतृत्व

एक और प्रमुख घटनाक्रम में देश में महिला आंदोलन को जन्म दिया गया। 1920 के दशक तक प्रबुद्ध पुरुषगण स्त्रियों के कल्याण के लिए कार्यरत रहे। अब आत्मचेतन तथा आत्मविश्वास प्राप्त स्त्रियों ने यह काम संभाला। इस उद्देश्य से उन्होंने कई संस्थाओं और संगठनों को खड़ा किया। इनमें से सबसे प्रमुख था आल इंडिया वूमेन्स कांफ्रेंस जो 1927 में स्थापित हुआ।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद समानता के लिए स्त्रियों के संघर्ष

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद समानता के लिए स्त्रियों के संघर्ष में बहुत तेजी आई। भारतीय संविधान (1950) की धारा 14 व 15 में स्त्री व पुरुष की पूर्ण समानता की गारंटी दी गई है। 1956 के हिंदू उत्तराधिकार कानून ने पिता की संपत्ति में बेटी को बेटे के बराबर अधिकार दिया गया। 1955 के हिंदू विवाह कानून में विशिष्ट आधारों पर विवाह–संबंध भंग करने की छूट दी गई। स्त्री–पुरुष दोनों के लिए एक विवाह अनिवार्य बना दिया गया। लेकिन दहेज प्रथा की बुराई अभी तक जारी है। हालांकि दहेज लेने और देने, दोनों पर प्रतिबंध है। संविधान स्त्रियों को भी काम करने और सरकारी संस्थाओं में नौकरी करने के समान अधिकार देता है। संविधान के नीति–निर्देशक सिद्धांत में स्त्री–पुरुष दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धांत भी शामिल है। स्त्रियों की समानता के सिद्धांत को व्यवहार में लागू करने में अभी भी निश्चित ही कई स्पष्ट और अस्पष्ट बाधाएं हैं। इसके लिए एक समुचित सामाजिक वातावरण का निर्माण आवश्यक है। फिर भी समाज–सुधार आंदोलन, स्वाधीनता संग्राम, स्त्रियों के अपने आंदोलन और स्वतंत्र भारत के संविधान ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किए हैं।

समाज कार्य का अर्थ एवं उद्देश्य

समाज कार्य का उद्देश्य व्यक्ति, समूह व समुदाय को उन्नत बनाना है, परन्तु विकास तथा उन्नति में सदैव बाधाएं, कमियां तथा कठिनाइयां आती रहती हैं। इन सभी बातों को सुलझाने तथा दूर करने का कार्य समाज कार्य अपने निश्चित तरीकों तथा प्रणालियों द्वारा करता है। व्यक्ति एवं समूह का समाज में सही ढंग से व्यवस्थापन होना अत्यन्त आवश्यक होता है। समाज कार्य सदैव यह प्रयत्न करता है कि व्यक्ति स्वयं समूह के माध्यम से अपना उचित समायोजन तथा व्यवस्थापन करने में सक्षम हो।

अतः सामाजिक शक्तियों में हस्तक्षेप करना आवश्यक होता है। बाधित पारस्परिक अन्तःक्रिया समस्या का कारण होती है। अतः समाज कार्य का मुख्य केन्द्र अन्तःक्रियाएं होती हैं। समस्या के अनेक रूप होते हैं। अतः अनेकानेक विधियों की आवश्यकता होती है।

समाज कार्य की मान्यताएं एवं मूल्य

समाज कार्य में शिक्षा एवं ज्ञान का प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्ति एवं समाज से होता है। इसी कारण यह सामाजिक मूल्यों से प्रभावित होता है। अन्तर यह है कि समाज कार्य आज आधुनिक समाज में एक व्यवसाय का रूप ग्रहण कर चुका है, जिसके फलस्वरूप एक व्यवसाय की प्रवृत्ति में ही एक मूल्य निर्णय विद्यमान होते हैं अर्थात् व्यवसाय के सन्दर्भ में निर्धारित उद्देश्यों एवं व्यावसायिक आचार–संहिता में मूल्य उपस्थित होते हैं। केवल समाज कार्य ही नहीं वरन् सभी व्यवसाय अपने अभ्यासकर्ताओं से ये अपेक्षा करते हैं कि उनके कार्य एवं व्यवहार इन्हीं व्यावसायिक मूल्यों से प्रभावित एवं निर्देशित हों।

समाज कार्य की एक स्पष्ट आचार–संहिता होती है जिसके अन्तर्गत मूल्य निहित है तथा सामाजिक कार्यकर्ता उन्हीं मूल्यों से प्रभावित होकर व्यावसायिक व्यवहार करता है। कुछ विशिष्ट दार्शनिक व नैतिक मान्यताएं ही समाज कार्य के व्यावसायिक अभ्यास एवं व्यवहार का आधार स्तम्भ होती हैं।

समाज कार्य की व्याख्या

इनकी व्याख्या निम्नलिखित रूप से की जा सकती है–

समानता का अवसर एवं आत्मविकास का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को समाज में आत्मविकास का अधिकार एवं समानता का अवसर समुचित रूप से प्राप्त होना चाहिए।

आत्म विकास का मार्ग समाज के हित में व्यक्तियों, वर्गों समुदायों के मतों में भिन्नता स्वाभाविक रूप से होती है। अतः उनका ध्यान रखते हुए आत्म का ऐसा मार्ग निश्चित करना जिससे अन्य सदस्यों के साथ सामंजस्य हो तथा जनहित व कल्याण के रास्ते में कोई रूकावट न उत्पन्न होने पाए।

व्यक्ति के आत्मविकास में सहायक होना तथा उसके लिए सामाजिक अनुबन्ध उपलब्ध कराना समाज का कर्त्तव्य है समाज में उपलब्ध समस्त साधनों पर सभी सदस्यों का समान अधिकार होता है, इसलिए सामाजिक उपलब्धियों एवं अनुदान को व्यक्ति के हित के लिए उस तक पहुंचाने का प्रयास करना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता सेवा प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति की क्षमता के अनुरूप उसके योग्य उपलब्धियां समाज से दिलाने का प्रयास करती है।

आत्मनिर्भरता के लिए प्रोत्साहित करना समाज की जटिलता और विकास के साथ–साथ आत्माभिव्यक्ति तथा आत्मनिर्भरता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि समाज का संगठन अधिकाधिक विशेषीकृत हो। जिस प्रकार समाज के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के लिए उपयुक्त सामाजिक साधन प्रस्तुत करे, उसी प्रकार व्यक्ति को यह अधिकार है कि सामाजिक साधनों में इस प्रकार परिवर्तन करे, जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक हो। इस प्रकार समाज और व्यक्ति एक–दूसरे पर आश्रित हों और अधिक–से–अधिक श्रम विभाजन हो।

टिप्पणी

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता समाज के सदस्य के रूप में हर व्यक्ति को अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह अपने विचार, भावना एवं मनोवृत्ति को व्यक्त करने में किसी प्रकार का नियन्त्रण या प्रतिबन्ध का आभास न करे। परन्तु अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सामाजिक हित की सीमा तक ही प्राप्त होनी चाहिए।

गोपनीयता की अभिरक्षा करना समाज कार्य एक व्यावसायिक प्रक्रिया है जिसका आधार व्यावसायिक सम्बन्ध होता है जिसे व्यावसायिक सीमा तक गोपनीय रखने का भार एवं उत्तरदायित्व व्यावसायिक अभ्यासकर्ताओं का होता है।

समाज में कल्याणकारी व्यावसायिक सम्बन्धों की स्थापना समाज कार्य व्यक्ति व समाज के कल्याण के उद्देश्य से किए जाने वाले क्रियाकलापों में व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करता है। इस सम्बन्ध का अधिकतम उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि व्यक्ति एवं समाज पर अधिकतम कल्याण का उत्तरदायित्व हो।

अपनी प्रगति जांचिए

9. किस शताब्दी के राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख प्रभाव सामाजिक सुधार के क्षेत्र में देखने को मिला?

   (क) 19वीं (ख) 18वीं

   (ग) 17वीं (घ) 16वीं

10. किस वर्ष के हिंदू विवाह कानून में विशिष्ट आधारों पर विवाह–संबंध भंग करने की छूट दी गई?

   (क) 1950 (ख) 1960

   (ग) 1965 (घ) 1955

2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (ख)
4. (क)
5. (ग)
6. (क)
7. (क)
8. (घ)
9. (क)
10. (घ)

टिप्पणी

2.8 सारांश

सामाजिक आंदोलनों को मुख्य रूप से ऐसे 'संगठित' अथवा 'सामूहिक प्रयास' के रूप में समझा गया है जो समाज में विचारों, मान्यताओं, मूल्यों, रवैयों, संबंधों तथा प्रमुख संस्थाओं में परिवर्तन लाते हैं अथवा उपर्युक्त सामाजिक व्यवस्थाओं में होने वाले किसी परिवर्तन का प्रतिरोध करते हैं। ब्लूमर (1951) ने सामाजिक आंदोलनों को "जीवन के नए सामाजिक क्रम को स्थापित करने के रूप में परिभाषित किया। टॉच (1965) के लिए सामाजिक आंदोलन" बड़ी संख्या में व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप से कि ऐसी समस्या को हल करने का प्रयास है जिसे वो सभी की समस्या के रूप में महसूस करते हैं। हेबरली (1972) के अनुसार, "यह किसी सामाजिक संस्था में परिवर्तन करने के लिए अथवा किसी पूर्णतः नई व्यवस्था को निर्मित करने के लिए सामूहिक प्रयास है"। जे.आर. गसफील्ड (1972) ने सामाजिक आंदोलन को समाज की किसी व्यवस्था में परिवर्तन के लिए सामाजिक भागीदारी वाली मांग माना। विल्सन (1973) के अनुसार सामाजिक आंदोलन या तो परिवर्तन के लिए अथवा परिवर्तन से प्रतिरोध के लिए होते हैं। अतः उनके लिए, सामाजिक आंदोलन गैर संस्थागत साधनों द्वारा सामाजिक व्यवस्था में व्यापक स्तर पर परिवर्तन लाने अथवा उनका प्रतिरोध करने के लिए संगठित उद्यम है।

दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं की व्याख्या करता है। यह सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा व्यक्ति, समाज आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। समाज कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूलाधार ही मानवतावादी है, लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धान्तों तथा तथ्यों पर आधारित है। समाज कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन कल्याण के लिए करता है।

लियोनार्ड (Leonard) के अनुसार, "दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्यात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है। आदर्शात्मक रूप के अतिरिक्त यह मनुष्य–मनुष्य के बीच तथा मनुष्य व सम्पूर्ण जगत के बीच सम्बन्धों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है। मानव विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा।"

सुधार की सबसे पहली अभिव्यक्ति बंगाल में राममोहन राय द्वारा शुरू हुई। उन्होंने 1814 में आत्मीय सभा की स्थापना की जो उनके द्वारा 1829 में संगठित ब्रह्म समाज की अग्रगामी थी। सुधार की भावना शीघ्र ही देश के अन्य भागों में भी दिखाई देने लगी। महाराष्ट्र की परमहंस मंडली और प्रार्थना समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में आर्य समाज, हिंदू समाज के कुछ मुख्य आंदोलन थे। इस दौरान के कई अन्य धार्मिक व जातिगत आंदोलन जैसे यू.पी. में कायस्थ सभा तथा पंजाब में सरीन सभा थे। पिछड़ी जातियों में भी इन सुधारों ने जड़ पकड़ ली जैसे, महाराष्ट्र में सत्य–शोधक समाज और केरल में नारायण धर्म परिपालन सभा। अहमदिया और अलीगढ़ आंदोलन, सिंह सभा तथा रहनुमाई मजदेबासन सभा आदि ने क्रमशः मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों में सुधार की भावना का प्रतिनिधित्व किया।

पहला सुधार आन्दोलन ब्रह्म समाज था जिस पर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव था। इसके प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। इसी कारण इन्हें भारत के

टिप्पणी

नवजागरण का अग्रदूत सुधार आंदोलन का प्रवर्तक एवं आधुनिक भारत का प्रथम महान नेता माना जाता है। एक और उन्होंने ईसाई पादरी प्रचारकों के विरुद्ध हिन्दू धर्म की रक्षा की वही दूसरी ओर हिन्दू धर्म में आए झूठ व अन्धविश्वासों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। उनका मानना था कि अपने पुनरुद्धार के लिए भारतीय पश्चिम के युक्तिसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानव गरिमा तथा सामाजिक एकता के सिद्धांत को स्वीकार करे। इस प्रकार उन्होंने पश्चिम के आधुनिक ज्ञान, विचार और दृष्टिकोण का समर्थन किया और उन्हें जानने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की जबर्दस्त तरफदारी की अपने विशद ज्ञान और वैज्ञानिक व प्रगतिशील दृष्टिकोण की सहायता से उन्होंने हिन्दू धर्म में उत्पन्न कुरीतियों एवं आडम्बरों पर गंभीर प्रहार किये। मूर्तिपूजा की आलोचना करते हुए सप्रमाण यह बताया कि हिन्दुओं के सभी प्राचीन मौलिक धर्मग्रंथों ने एक ब्रह्म का उपदेश दिया है। इसके समर्थन में उन्होंने वेदों और पांच मुख्य उपनिषदों का बंगला भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने निरर्थक धार्मिक अनुष्ठानों का विरोध किया और पंडित पुरोहितों पर तीखा प्रहार किया। उनके अनुसार यदि कोई भी दर्शन, परम्परा आदि तर्क पर खरे न उतरे और वे समाज के लिए उपयोगी न हो तो मनुष्य को उन्हें त्याग देना चाहिए। वे संसार के सभी धर्मों की मौलिक एकता को स्वीकार करते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की और अपनी मानव सेवा के लिए उपनिषदों से पर्याप्त मात्रा में आधार खोज निकाले। ईसाई मत को अस्वीकार कर दिया परन्तु यूरोपीय मानववाद को स्वीकार किया। सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू समाज की कुरीतियों, सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, वैश्यागमन, जातिप्रथा, छुआछूत इत्यादि का विरोध किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा राममोहन राय ने पूर्व और पश्चिम के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

समाज–सुधार के आंदोलन में लगभग सभी धर्म–सुधारकों का योगदान रहा। भारतीय समाज के पिछड़ेपन की तमाम निशानियों जैसे जाति प्रथा या स्त्रियों की असमानता को अतीत में धार्मिक मान्यता प्राप्त रही है। साथ ही सोशल कांफ्रेंस, भारत सेवक समाज जैसे कुछ अन्य संगठन और ईसाई मिशनरियों ने भी समाज–सुधार के लिए जम कर काम किया। ज्योतिबा गोविंद फुले, गोपाल हरि देशमुख, जस्टिस रानाडे, के.टी. तेलंग, बी.डी. मालाबारी, डी.के. कर्वे, शशिपद बनर्जी, विपिन चंद्र पाल, वीरेशलिंगम, ई.वी. रामास्वामी नायकर और भीमराव अंबेडकर और दूसरे प्रमुख व्यक्ति की भी एक प्रमुख भूमिका रही। 20वीं सदी में और खासकर 1919 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन समाज सुधार का प्रमुख प्रचारक बन गया। जनता तक पहुंचने के लिए सुधारकों ने प्रचार–कार्य में भारतीय भाषाओं का अधिकाधिक सहारा लिया। उन्होंने अपने विचारों को फैलाने के लिए उपन्यासों, नाटकों, काव्य, लघु कथाओं, प्रेस और 1930 के दशक में फिल्मों का भी उपयोग किया।

2.9 मुख्य शब्दावली

- **प्रतिरोध** : विरोध।
- **व्यापक** : बड़ा।
- **वास्तविक** : असली, सच्चा।

- **समृद्धि** : संपन्नता।
- **विभेद** : अंतर।

टिप्पणी

2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. ब्लूमर ने सामाजिक आंदोलनों को किस रूप में परिभाषित किया?
2. दर्शन से आप क्या समझते हैं?
3. प्रदूषण से मुख्य रूप से क्या नुकसान होते हैं?
4. प्रार्थना समाज के बारे में आप क्या जानते हैं?
5. भारत के प्रमुख समाज सुधारक कौन–कौन हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सुधार आंदोलनों में शिक्षा की भूमिका की समीक्षा कीजिए।
2. सामाजिक कार्य के मूल प्रत्ययों की व्याख्या कीजिए।
3. सामाजिक सुधार एवं समाजवाद के मूल बिंदुओं पर प्रकाश डालिए।
4. भारत में होने वाले सामाजिक सुधारों की विवेचना कीजिए।
5. सामाजिक सुधारों और सामाजिक कार्यों का विश्लेषण कीजिए।

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: Routledge Falmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 3 गांधीवादी दर्शन और सामाजिक कार्य

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 महात्मा गांधी : भारत में आधुनिक सामाजिक कार्य के गुरु
3.3 सर्वोदय और समाजकार्य
    3.3.1 गांधी जी के समाज कार्य की विशेषताएँ
    3.3.2 सर्वोदय कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण
3.4 ग्रामदान का प्रभाव
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

गांधी जी ने एक सामाजिक कार्यकर्त्ता और आदोलनकर्ता के रूप में दृढ़तापूर्वक इस बात पर जोर दिया कि गांधीवाद जैसा कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार उन्होंने इस शब्द गाँधीवादी समाज कार्य को हटा दिया होता परन्तु उनके समाज कार्य करने के तौर–तरीके को वर्तमान में गांधीवादी समाज कार्य की मान्यता प्राप्त हो चुकी है। इसे अच्छी तरह से नहीं समझा जा सकता जब तक कि गांधी जी के व्यक्तित्व के समाज कार्य वाले पहलू की जानकारी न हो। वे महात्मा के नाम से जाने जाते थे– एक महान आत्मा–राष्ट्रपिता या साधारण रूप से बापू जिसने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की अगुवाई की, एक पत्रकार, वकील, प्राकृतिक चिकित्सक, एक सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक, एक समाज सुधारक, सामाजिक अभियन्ता एवं चिकित्सक आदि उनकी शख्सियत के विभिन्न पहलू थे। उन्होंने समाज कार्य की कुछ पद्धतियों का अविष्कार किया जो अभी भी जीवित हैं, और जिनका उपयोग अन्तरर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के लोगों जैसे डॉ. मार्टिन लूयन किंग और नेलसन मंडेला ने भी किया है।

प्रस्तुत इकाई में गांधीवादी दर्शन एवं गांधी जी के सामाजिक कार्यों का विस्तृत अध्ययन किया गया है और गांधी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जुड़े विभिन्न पहलुओं को उजागर किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- गांधीवादी दर्शन से परिचित हो पाएंगे;
- गांधी जी के सामाजिक कार्यों के बारे में जान पाएंगे;
- सर्वोदय कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम को समझ पाएंगे;

- मजदूरों के कर्तव्यों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- ग्रामदान के प्रभाव की समीक्षा कर पाएंगे।

टिप्पणी

3.2 महात्मा गांधी : भारत में आधुनिक सामाजिक कार्य के गुरु

गांधी जी के प्रति ऋणी होते हुये नोबल पुरस्कार प्राप्त डॉ. किंग ने लिखा कि मुष्ट बैथम व मिल के उपयोगितावाद से, मार्क्स व लेनिन के क्रांतिकारी तरीकों से, तथा हाब्स की सामाजिक अनुबंध थ्योरी, द बैंक आफ नेचर, का रूसो आशावाद और नीत्शे का अतिमानव (Superman) दर्शन आदि से जो बौद्धिक व नैतिक संतुष्टि प्राप्त नहीं हुई वह मुझे गांधी के अहिंसक विरोध दर्शन से प्राप्त हुई। मुझे यह महसूस हुआ कि स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाले उत्पीड़ित लोगों के लिये केवल यही तरीका नैतिक व व्यावहारिक रूप से सही था। इस छोटे से निबंध में उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालना संभव नहीं है। हम गांधी को केवल एक "सामाजिक विचारक" और "सामाजिक कार्यकर्ता" के रूप में याद करेंगे। मोहन दास करमचंद गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को पोरबंदर गुजरात में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था, उनकी शालेय शिक्षा भारत में हुई। वे इंग्लेंड में कानून की शिक्षा ग्रहण करने के लिये गये तथा 1981 में बैरिस्टर बनकर लौटे। उनके अंदर के सामाजिक कार्यकर्ता का अभ्युदय 1893 में हुआ जब वे दक्षिण अफ्रीका गये, जहां उन्होंने भारतीय समुदाय को संगठित किया और रंगभेद के खिलाफ धर्म युद्ध प्रारंभ किया। यही वह स्थान है जहां वे पत्रकार बने और उन्होंने "इंडियन ओपीनिय" नामक समाचार पत्र प्रारंभ किया। उन्होंने श्रीमद् भगवदगीता तथा रस्किन की किताब "अनटू दिस लास्ट" का अध्ययन करना प्रारंभ किया जिसने उनके सामाजिक–राजनीतिक नेता के जीवन की नींव रखी। रस्किन की किताब में उन्होंने तीन आधारभूत सिद्धान्त पाए–

(1) सबकी भलाई में ही व्यक्तिगत भलाई है।

(2) एक वकील के कार्य का मूल्य एक नाई के कार्य के बराबर होता है तथा समी को अपने काम से आजीविका कमाने का समान अधिकार है।

(3) एक मजदूर का जीवन अर्थात भूमि को जोतने वाले का जीवन तथा हस्तशिल्पी का जीवन, जीने योग्य जीवन है।

ये तीनों सिद्धान्त गांधी जी की प्रणाली एवं रचनात्मक कार्यक्रम में दृष्टिगोचर होते हैं, जोकि उन्होंने भारतीय लोगों के समक्ष प्रस्तुत किए।

उन्होंने दक्षिण अफ्रिका में 1908 में सत्याग्रह शब्द की खोज की और इसके अगले वर्ष से ही उन्होंने अपने "अहिंसा" के अस्त्र का उपयोग करना आरंभ किया। वे 1915 में विजयी नेता के रूप में वापस लौटे, जिसे भारत में गांधीजी के युग की शुरुआत माना गया है, जोकि 33 वर्ष के अंतराल यानी उनकी हत्या के समय 30 जनवरी 1948 तक रहा। देश में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जैसे राजनीतिक, समाज कल्याण, ग्रामीण विकास, पत्रकारिता, साहित्य और फिल्में जोकि गांधी जी के प्रभाव से अछूते रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ संघर्ष किया परन्तु

उनका अंतिम लक्ष्य सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था। उनका अंतिम लक्ष्य था "पूर्ण स्वराज जिसमें कि राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता समाहित थे। वह एक नये समाज की संरचना करना चाहते थे और उसकी प्राप्ति के लिये साधनों व पद्धति के विषय में उनकी सोच स्पष्ट थी।

गांधी के दृष्टिकोण में मनुष्य

आदमी एक जटिल, बहुआयामी जीव है जोकि पदार्थ के विभिन्न तत्वों जीवन, अंतरआत्मा और बुद्धिमता से मिलकर बना है। सदियों से प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण से आदमी पर खोज चलाई जा रही है जोकि आज भी चल रही है। गांधी के मनुष्य पर विचार जानना रुचिकर होगा। पाठक को यह ज्ञात होगा कि गांधी के दृष्टिकोण में एक व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता के दृष्टिकोण में मनुष्य की विशेषताएँ समान हैं।

मनुष्य का वंशक्रम

गांधी मनुष्य के पाशविक वंशक्रम की उपेक्षा नहीं करते। उनके शब्दों में "मैं यह विश्वास करने के लिये तैयार हूँ कि हम बहुत धीमे चलने वाली विकास की प्रक्रिया द्वारा पशु से मनुष्य बने है।" वह यह भी जोड़ते हैं कि मनुष्य के लिये अच्छा होना बुरे होने से ज्यादा प्राकृतिक है, जैसे–नीचे उतरना ऊपर चढ़ने से ज्यादा सरल है।

मनुष्य की प्रकृति में विश्वास

उन्होंने आगे कहा कि मनुष्य हमेशा अपूर्ण रहेगा तथा वह हमेशा सपूर्ण बनने के लिये प्रयत्नशील रहेगा। निश्चित ही सैद्धान्तिक रूप से उसके आगे के विकास की संभावना संपूर्णता के लक्ष्य के लिये हो। इसके लिये उसके अन्दर असीमित ईश्वरीय शक्तियां निहित हैं।

मनुष्य सिर्फ हाड़ व माँस का पुतला नहीं है परन्तु वह मूल रूप से आत्मा है–ईश्वरीय शक्ति का हिस्सा या स्वयं परमेश्वर है। वह हमेशा कहते थे कि मनुष्य ईश्वर नहीं है परन्तु वह ईश्वर की ज्योति से भिन्न भी नहीं है।

मनुष्य और उसका वातावरण

गांधी मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके व्यवहार पर वातावरण के प्रभाव को मान्यता देते हैं। उनके अनुसार यदि मनुष्य को पृथक रखने का प्रयास करें तब भी कोई भी मनुष्य अपने वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता परन्तु मनुष्य सिर्फ परिस्थितिजन्य प्राणी नहीं है। मनुष्य को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वह विषम परिस्थितियों से उबर सकता है।

गांधी के अनुसार मनुष्य पाशविक ताकत के साथ पैदा हुआ था, परन्तु इस जन्म में उसे यह अनुभव करना था कि ईश्वर की उपस्थिति उसके भीतर है, तथा सभी मनुष्यों के भीतर होती है। यह मनुष्य का सौभाग्य है कि यह उसे पशुओं की श्रेणी से अलग करती है। अतः मनुष्य का अंतिम लक्ष्य अपने भीतर बसने वाले ईश्वर को पहचानना है जोकि आत्म बोध के समान है। उसका प्रत्येक विचार और कार्य की दिशा अंतिम लक्ष्य अर्थात आत्म बोध की ओर होनी चाहिये।

टिप्पणी

यह सत्य है कि मनुष्य के भीतर ईश्वरीय तत्व विद्यमान है, एवं यह तत्व मनुष्य की प्रतिष्ठा के लिए पर्याप्त सबूत है। अतः जाति, धर्म व रंग के आधार पर असमानता का प्रश्न ही नहीं उठता सभी मनुष्य समान रूप से ईश्वर से संबंधित हैं अतः एक—दूसरे के समान हैं।

मैकआइवर ने नये समाज को सामाजिक संबंधों के जाल के रूप में परिभाषित किया है। प्लेटो से चेगुएवरा तक उनके दार्शनिकों, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक आंदोलनकर्ताओं ने इस जाल को एक आदर्श आकार देने का प्रयास किया है। एक आदर्श समाज का ब्लूप्रिंट आदर्श समाज के अनेक प्रतिमानों के मध्य गांधी का प्रतिमान दूसरों से इस मायने में भिन्न है— उनका प्रतिमान सत्य और अहिंसा के दो स्तम्भों पर आधारित है। इतिहास में किसी अन्य सामाजिक संदर्भ में इन दो मूल्यों पर बल नहीं दिया गया उन्हें यह ज्ञात था कि आलोचक इसे आदर्श राज्य कहेंगे परन्तु यह नाम कमोबेश किसी भी प्रतिमान पर लगाया जा सकता है। आदर्श समाज की एक स्पष्ट रूपरेखा के अभाव में व्यावसायिक समाज कार्य के साहित्य में एक व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्त्ता को गांधी का प्रतिमान रुचिकर लगेगा।

गांधी ने आदर्श समाज को "रामराज्य" का नाम दिया अर्थात पृथ्वी पर 'परमेश्वर का राज्य। अपने साप्ताहिक "हरिजन" में उन्होंने लिखा कि "कोई गरीब नहीं होगा न ही भिखारी, न ही ऊँचा न नीचा, न ही करोड़पति मालिक, न ही भूखे कर्मचारी न ही नशीले पेय, न ही दवाएं। महिलाओं के लिये पुरुषों के समान आदर होगा और पुरुष के ब्रम्हचर्य व शुद्धता की चौकसी सर्तकता से ही जाएगी। जहाँ अस्पृश्यता नहीं होगी, और जहां सभी धर्मों का समान रूप से आदर होगा। जहां सभी अभिमान एवं अपनी स्वेच्छा से अपनी रोजी—रोटी कमाने वाले होंगे।

गांधी के आदर्श समाज में दोनों शहर व गाँव हैं, परन्तु वह शहरों में रहने वालों के द्वारा ग्रामीणों के शोषण के विरुद्ध थे। वे शहर को पूरा, एक जाल तथा एक अनुपयोगी बाधा समझते थे, जहाँ मनुष्य खुशी से नहीं रह सकता एवं यह मनुष्य जाति के लिए एवं विश्व के लिए दुर्भाग्यवश है। उनका यह अनुभव था कि शहरों में अंग्रेजी शिक्षित पुरुष व स्त्रियों ने अपराधिक रूप से भारत के गाँवों की उपेक्षा की है, जोकि देश की रीढ़ की हड्डी हैं। वास्तव में गाँवों का खून वह सीमेंट है, जिससे शहर की इमारत का निर्माण हुआ है....वह रक्त जो शहर की धमनियों को फैला रहा है, फिर से गाँवों की घमनियों में दौड़ना चाहिये। वह यह देखने की आशा करते थे कि उद्योग व प्रकृति में शहर व गाँवों में शोषण मुक्त एक युक्तिसंगत सम्पूर्ण संतुलन हो।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हैं कि गांधी का आदर्श समाज एक ग्रामीण समाज है। गांधी ने यह विश्वास किया तथा अनेक बार दोहराया कि "भारत हमें कुछ शहरों में नहीं परन्तु उसके गांवों में मिलता है। वास्तविक भारत गांवों में बसता है। यदि भारतीय सभ्यता एक स्थायी विश्व के निर्माण में पूरा सहयोग देती है तो इसी विशाल मानवता के समूह को फिर से जीवन जीना पड़ेगा। मैं यह कहूंगा कि यदि गांव नष्ट होते हैं तो भारत भी नष्ट हो जाएग। भारत भारत नहीं रहेगा। विश्व में उसका लक्ष्य

टिप्पणी

खो जाएगा। गांधी को ग्रामीण लोगों की बुद्धिमत्ता पर पूरा विश्वास था। उनका यह विचार था कि सदियों पुरानी भारतीय संस्कृति और बुद्धिमानी आज भी चली आ रही है। "जिस क्षण आप उनसे (भारतीय ग्रामीण)" बात करना आरंभ करते हैं तो बोलने लगते हैं, उनके होठों से समझदारी टपकती है। उनके अपरिष्कृत बाहरी रूप के पीछे आत्मिकता का सैलाब मिलेगा। मैं इसे ही संस्कृति कहता हूं–आपको ऐसा पश्चिम में नहीं मिलेगा। भारतीय ग्रामीण के संदर्भ में सदियों पुरानी संस्कृति उनके अनगढ़ रूप के पीछे छुपी हुई है। यदि ऊपरी सतह हटा दी जाए, न मिटने वाली गरीबी और अज्ञान को हटा दें तो आपको सबसे परिष्कृत संस्कारों वाला स्वतंत्र नागरिक कैसा होना चाहिये मालूम होगा।

गांधी का ग्रामीण समाज "ग्राम स्वराज" की अवधारणा पर आधारित है जिसका तात्पर्य है ग्राम का स्वराज, ग्राम के द्वारा और ग्राम के लिये। उनके शब्दों में मेरे विचार से ग्राम स्वराज एक संपूर्ण गणतंत्र तथा अपनी आवश्यकताओं के लिये पड़ोसियों से स्वतंत्र, दूसरों के लिये परावलम्बित जहां निर्भरता आवश्यकता है। अतः प्रत्येक ग्रामीण की प्राथमिकता अपना अनाज उगाना, और कपड़े के लिये कपास उगाना होगा। गाँधी के अनुसार गांव की कल्पना एक सशक्त सामाजिक इकाई के रूप में की गई है, जिससे गांव का समुचित लेखा मिल सकता है, यदि उसे आत्मनिर्भरता के आधार पर संगठित किया गया है।

उसमें झोंपड़ियां होंगी, जिनमें प्रकाश और हवा की समुचित व्यवस्था हो। वे ऐसी निर्माण सामग्री से निर्मित होंगी जो पांच किलोमीटर के दायरे में उपलब्ध हों। झोंपड़ी के आसपास आंगन का स्थान होगा, जिसमें उसमें रहने वाले अपने उपयोग को सब्जियां उगा सकें, और अपने पशुओं को रख सकें। गांव की सड़कें और गलियां जहां तक हो सके धूल से मुक्त होंगी। गांव में आवश्यकता के अनुसार कुएं होंगे जहां पर सबकी पहुंच हो सके। सभी के लिये आराधनालय होंगे तथा सभी के मिलने के लिये एक स्थान एक थियेटर, पशुओं को चराने के लिये एक चारागाह, एक सहकारी डेयरी, प्राथमिक और सेकेंडरी शालाएं जिसमें पढ़ाई उद्योग केन्द्रित होंगे। और मतभेदों को सुलझाने के लिये ग्राम पचायत होगी। गांव अपना अनाज, साग–भाजी, फल और अपनी खादी का उत्पादन स्वयं करेगा।

अहिंरग सत्याग्रह और असहयोग को ग्रामीण समुदाय की स्वीकृति प्राप्त होगी। ग्रामीण प्रहरी की सेवाएँ अनिवार्य होंगी जोकि गांव के बनाये रजिस्टर द्वारा क्रमशः बारी–बारी से चुने जाएगे। गांव का शासन पंचायत द्वारा चलाया जाएगा जिसमें पांच व्यक्ति होंगे जिनका चुनाव गांव के लोगों के द्वारा सालाना किया जाएग अर्थात ऐसे पुरुष व महिलाओं के द्वारा जोकि निर्धारित, न्यूनतम योग्यता रखते हैं। उनके पास सभी आवश्यक अधिकार व अधिकार क्षेत्र होगा चूंकि, इसमें सजा की मान्य प्रणाली नहीं होगी, यह पंचायत विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका का कार्य संयुक्त रूप से अपने एक वर्ष के कार्यकाल के लिये करेगी।

यंत्रों का अपना स्थान है, तथा ये रहेंगे, परन्तु गांधी कहते हैं कि इसे मनुष्यों के श्रम के बदले उपयोग में नहीं लाना चाहिए–कुटीर उद्योगों के यंत्रों में सुधार का स्वागत

टिप्पणी

है। गांधी यंत्रों के खिलाफ नहीं हैं, परन्तु उनका अंधाधुंध बहुलता से उपयोग गरीब लोगों से रोजगार रोटी छीन लेता है। आदर्श समाज सभी विनाशकारी यंत्रों से मुक्त होगा और ऐसे सरल औजारों पर ध्यान देगा जिससे व्यक्ति के श्रम में कभी हो सके और करोड़ों कारीगरों का बोझ कम कर सकें। गांधीजी ऐसे यंत्रों की कामना करते हैं जो भारतीय बेरोजगारी और कगांली हो हटाने में मददगार साबित हो सकें।

गांधी यह विश्वास करते हैं कि कोई भी गांव बिना किसी हस्तक्षेप के एक गणतंत्र बन सकता है। उन्होंने यहां पर पड़ोसी गांवों व केन्द्र से संबंधों की जांच नहीं की है। यहां ग्रामीण शासन की रूप रेखा को प्रस्तुत करने का उद्देश्य है। यहां संपूर्ण लोकतंत्र है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आधारित है। व्यक्ति अपनी सरकार का निर्माण करने वाला वास्तुविद है। अहिंसा का कानून उस पर तथा उसकी सरकार पर शासन करता है। और उसका गांव दुनिया की महानता को झुठला सकता है। कानून जो प्रत्येक ग्रामीण पर शासन करता है यह है कि वह अपनी व अपने गांव की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये मृत्यु का वरण भी कर सकता है।

ग्रामीणों को ऐसे उच्च स्तरीय कौशल का विकास करना होगा कि उनके द्वारा तैयार की गई सामग्री को बाहर एक उपयुक्त बाजार मिल सके। जब हमारे गांव पूर्णतः विकसित होंगे तब, उच्च दक्षता प्राप्त और कलात्मक रुचि वाले व्यक्तियों की कमी नहीं रहेगी। गांव के कवि, कलाकार, ग्रामीण वास्तु शिल्पी, भाषाविद और अनुसंधानकर्ता होंगे। संक्षेप में ऐसा कुछ भी नहीं होगा जो जीवन में आवश्यक है, जोकि गांव में न हो। वर्तमान में गांव गोबर के ढेर हैं। कल को वे छोटे बगीचों के समान होंगे जहां अत्यधिक बुद्धिमान लोग रहेंगे जिन्हें कोई छल न सके न ही उनका शोषण कर सके।

असंख्य गांवों से निर्मित संरचना में हमेशा बढ़ने वाले कभी नीचे नहीं जाने वाले वृत्त होंगे। जिंदगी एक पिरामिड के समान नहीं होगी जहां उसकी चोटी, उसके निचली सतह के द्वारा बनी रहती है। परन्तु वह एक समुद्री वृत्त के समान है, जिसके केंद्र में व्यक्ति होगा जो अपने गांव के लिये नष्ट होने के लिये तैयार रहेगा, जब तक कि अंत में एक जीवन नहीं बन जाता जोकि व्यक्तियों से मिलकर बना है। अपने घंमड में आक्रामक न होते हुए हमेशा विनम्र समुद्रीय वृत्त की महानता की सहमति रखते हुये जिसकी वे अभिन्न इकाइयां हैं।

अतः सबसे बाहरी घेरा अंदरूनी घेरे को नहीं दबाएगा परन्तु सभी को शक्ति प्रदान करेगा और स्वयं के लिये केंद्र से शक्ति प्राप्त करेगा। मुझ पर यह ताना कसा जा सकता है कि ये सभी काल्पनिक बातें हैं, तथा जो विचार योग्य नहीं हैं, जैसे कि युक्लिड के विचार में यह क्षमता नहीं है कि कोई मानवीय संस्था उसे कर सके, तथा जिसमें नष्ट न होने वाले मूल्य है मेरी तस्वीर में भी हैं, जिससे मनुष्य जीवित रह के। भारत इसी सही तस्वीर के लिये जिये, तथापि यह कभी समपूर्णता में सिद्ध नहीं हो सकती। हमें क्या चाहिये इसकी एक सही तस्वीर होना चाहिये। इसके पहले कि उसकी ओर कोई कदम बढ़ाए यदि भारत का प्रत्येक गांव एक गणतंत्र हो तब मेरी तस्वीर में निश्चित ही विभिन्नता होगी जहां अंतिम और प्रथम समान हैं या दूसरे शब्दों में जहां कोई भी पहला न हो और कोई भी अंतिम न हो।

टिप्पणी

गांधी जी का एक सामाजिक आंदोलनकर्ता के रूप में प्रादुर्भाव 1893 में दक्षिण अफ्रीका में तब हुआ जब बैरिस्टर गाँधीजी को प्रथम श्रेणी के रेल डब्बे से बाहर यह कह कर फेंक दिया था कि यह गोरे रेलवे स्टाफ के लिये है, भले ही आप के पास वैधानिक टिकक हो। अफ्रीका निवास के दौरान उनको सदैव ऐसे ही अपकृत्य व अपमान का सामना, काली चमड़ी होने के कारण, करना पड़ा। परन्तु दूसरे भारतीयों से हटकर वे कभी ऐसे व्यवहार से सहमत नहीं रहे और इस भेदभाव के विरुद्ध वैचारिक आधार पर एक विधि को विकसित किया। इस प्रकार बहुत कम समय में ऐसे व्यवहार के विरुद्ध गांधी जी का विरोध उस देश में फैल गया। परिणामस्वरूप मई 1983 में स्वदेशी भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इस संस्था ने भारतीयों की आवश्यकताओं व उनकी तकलीफों के समाधान तथा समाज की सेवा करने के लिये प्रेरित करने का कार्य किया। इस संस्था ने दक्षिण अफ्रीका व इंग्लैण्ड में अंग्रेजों व भारत में लोगों को स्वदेश व दक्षिण अफ्रीका की वस्तुस्थिति से भी अवगत कराया। कहना न होगा कि यह तरीका और सोच बिल्कुल व्यावहारिक थी जिसने लोगों को व्याप्त भेदभाव के खिलाफ जागरूक किया और लोगों को अपने उत्थान के लिये अपने संगठन बनाने के लिये भी प्रेरित किया।

गांधी जी ने क्षेत्रीय लोगों के हालात पर कुछ लेख भी प्रकाशित किये तथा 1986 में वे भारत लौट आए लेकिन उन्होंने दक्षिण अफ्रिका में लोगों के हालात के विषय में लोगों को शिक्षित करना जारी रखा। तीन माह पश्चात वे पुनः दक्षिण अफ्रीका गए और भेदभाव की नीति के विरुद्ध अपना अभियान जारी रखा। उन्होंने भारतीयों अंग्रेजों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, समाजवादी ताकतों तथा 1900 में कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्ताव पेश कर अपना पक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रकार भेदभाव व पक्षपात के विरुध गांधी ने (द.अ.) 21 वर्ष के लम्बे समय तक संघर्ष (1914 तक) निरन्तर जारी रखा। इस दौरान, उन्होंने बड़ी सभाएं कीं, ब्लैक एक्ट का विरोध किया जो सामाजिक भेदभाव पर आधारित था। उन्होंने अपरोक्ष प्रतिरोध भी किया जिसको बाद में सत्याग्रह के नाम से जाना गया। हजारों भारतीय स्त्री–पुरुषों को जेल हुई, मीडिया से सहायता की अपील की गई। ब्रिटिश सांसदों को पक्ष में लाना, सामाचार–पत्रों में प्रकाशन, जून 1903 से आन्दोलन के पक्ष में भारतीय अभिमत का प्रकाशन, अधिकारियों से वार्ताएं, खादानों में श्रमिक हड़ताल और हजारों भारतीयों द्वारा न्यू केसल से डांडी तक महान पद यात्रा जो लगभग चार माह तक चली जैसे अभियान चलाए गए। यह अपने आप में एक अनूठी मिसाल है, जिसको समाजशास्त्रीयों ने वास्तविक सामाजिक कार्यवाही बताया। इस आंदोलन में सामाजिक कार्यवाही में प्रत्येक पहलू का प्रयोग किया गया।

अरवाद

गांधीजी के विचारों पर आधारित आदर्श समाज को जानने के पश्चात् गांधीवादी उपागम के मूल्यों; रचनात्मक कार्यक्रमों; विधियों उत्पत्ति तथा विकास को जानना रुचिदायक होगा। गांधीजी के समाज कार्य के ऐतिहासिक विकास से पहले यह जानना जरूरी है कि उनके सभी कार्य–कलापों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है–उनमें से कुछ राजनीतिक प्रकृति की थी, जैसे ब्रिटिश सरकार के साथ, गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना

टिप्पणी

तथा भारत छोड़ो आन्दोलन जोकि उस समय की मांग थी। कुछ कार्य तो शुद्ध रूप से सामाजिक गतिविधियां थीं जैसे कोढ़ियों की सेवा करना, ग्रामीण स्वास्थ व आरोग्य इत्यादि। लेकिन कुछ गतिविधियाँ जैसे खादी के प्रयोग को बढ़ावा देना, अस्पृष्यता निवारण व नशाबन्दी आदि की प्रकृति सामाजिक भी है और राजनीतिक भी। इन दोनों को पृथक करना भी संभव नहीं है। आगे हम गांधी जी की राजनीतिक गतिविधियों से हटकर उनके बाद वाली गतिविधियों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे ताकि गाँधीजी को हम उनकी सामाजिक क्रिया–शीलता तथा सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अधिक गहराई से समझ सकें।

यदि हम गांधी जी की आत्म कथा (My Experience with Truth) का सामाजिक कार्यों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि उन्होंने उसमें सामाजिक दर्शन के प्रयोगात्मक तौर–तरीकों का समावेश किया है, जिसको उन्होंने जीवन पर्यान्त निरतर जारी रखा। यहां यह भी स्मरण योग्य है कि गांधीजी ने बार–बार इस बात को दोहराया है कि दुनिया को कोई नई चीज नहीं बताई बल्कि सत्य और अहिंसा उतने ही पुरातन संकल्प हैं जितने कि ये पर्वत और प्रकृति हैं तथा गांधीवाद जैसी कोई भी चीज नहीं है। उन्होंने यह भी दोहराया कि गांधी जी के सामाजिक विचार जैसी भी कोई चीज नहीं हैं। लेकिन यह भी अपनी जगह सही है। कि गांधी व गांधी के सामाजिक विचार उनके जीवन पर्यन्त एक–दूसरे के पर्याय बने रहे। उन्होंने समाज हेतु जो किया लाखों लोगों ने उस का पालन किया। शनैः–शनैः उत्तरोत्तर सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में यह विचार का अदभुत सम्प्रदाय बनकर उभरा जिसे आज समाज शास्त्रियों ने गांधीजी के सामाजिक योगदान के रूप में मान्यता दी।

गांधी के अनुसार एक मनुष्य जोकि अपनी पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करना चाहता है इसके लिये यदि वह अपने स्वाद पर नियंत्रण करता है तो उसे ज्यादा आसानी होती है। परन्तु इस नियम या मूल्य का पालन करना अत्यधिक कठिन होता है। जब तक हम अपने शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने वाले आवश्यक भोजन से संतुष्ट नहीं होते, जब तक हम भोजन को चटपटा बनाने के लिये उपयेग किये जाने वाले पदार्थों को छोड़ न दें तब तक हम अत्यधिक रूप से उपयोग किये जाने वाले अनावश्यक पदार्थों द्वारा प्राप्त उत्तेजना पर नियंत्रण नहीं कर सकते। यदि हम ऐसा नहीं करते तो परिणामस्वरूप हम अपने साथ दुर्व्यहार करते हैं और जानवरों के सदृश्य बन जाते हैं।

सर्वत्र भयावर्जना

भयावर्जना अर्थात सभी प्रकार के बाह्य डरों एवं अनुपस्थित मुत्यु का भय, शारीरिक चोट का भय, भूख का भय, अपमान का भय, लोगों की अस्वीकृति का भय, भूतों और दुष्टात्माओं का भय, किसी के क्रोध का भय आदि इन सभी से और अन्य सभी प्रकार के भय से मुक्ति ही भयावर्जना कहलाता है।

भयावर्जना का मतलब घमंड और आक्रामक नहीं होता। यह भी डर की ही निशानी है। भयावर्जना का तात्पर्य शांति और मन की शांति से है। इसके लिये परमेश्वर में विश्वास जीतना आवश्यक होता है भयावर्जना का गुण अहिंसा, सत्य और

टिप्पणी

प्रेम अच्छे गुणों की बढोत्तरी के लिये एक पूर्व अवस्था है। गांधीजी निर्भीक होने का मार्ग दिखाते हैं। उनके अनुसार सभी प्रकार के भय शरीर के चारों ओर परिक्रमा करते हैं और शरीर का मोह छोड़ देने पर ये सभी अर्न्तध्यान हो जाते हैं। व्यक्ति का अपनी लालसाओं और अपने भीतरी दुश्मनों पर विजय प्राप्त करने पर ही शरीर का मोह त्याग करने का विकास किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि एक संतुलित मानसिक स्थिति या साम्यावस्था की जो अपनी इच्छाओं की तुष्टि के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

सर्वधर्म संभव

धर्म आपस में गुंथे हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति सभी में कोई न कोई विशेषता देखता है। परन्तु कोई भी धर्म किसी धर्म से ऊँचा नहीं होता। सभी एक–दूसरे के पूरक होते हैं। चूंकि ऐसा मेरा विश्वास है कि किसी एक धर्म की विशेषता दूसरे की विरोधाभासी नहीं हो सकती तथा सार्वभौमिक रूप से मान्य सिद्धान्तों से भिन्न भी नहीं हो सकती। मैं संसार के सभी महान धर्मों के आधार पर विश्वास करता हूं कि जिन लोगों पर इनका खुलासा किया गया उनके लिए ये बहुत आवश्यक थे। मैं विश्वास करता हूं कि यदि हम सभी विभिन्न धर्मो को, वचनों को उन्हें मानने वालों के दृष्टिकोण के अनुसार पढ़ सकें तो हमें यह ज्ञात होगा कि अंदरूनी रूप से सभी एक हैं और दूसरे के सहायक हैं।

धर्म एक निश्चित स्थान पर पहुंचने के अलग–अलग रास्ते हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि हम विभिन्न मार्गो को एक निश्चित लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अपनाते हैं। वास्तव में जितने व्यक्ति हैं, उतने ही धर्म होते हैं।

एक वृक्ष का भी एक तना होता है परन्तु उसमें अनेक शाखाएं व पत्तियां होती हैं अतः एक ही सच्चा व संपूर्ण धर्म है, परन्तु वह अनेक बन जाता है जब वह मनुष्य रूपी माध्यम के बीच से गुजरता है। धर्म सभी बोलियों से ऊँचा है। अपूर्ण मनुष्य इसे ऐसी भाषाओं में अभिव्यक्त करते हैं जिसका उन्हें ज्ञान होता है, और उनके शब्द उसका अर्थ होते हैं जिसे सही समझा जाए अपने स्वयं के दृष्टिकोण से सभी सही हैं परन्तु यह असंभव नहीं है कि सभी गलत हैं। अतः सहनशीलता की आवश्यकता है, जिसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरों के विश्वास की उपेक्षा करें परन्तु उसके लिये बुद्धिमत्तापूर्ण और पूर्ण रूप से प्रेम भाव रखें। सहनशीलता हमें आत्मिक अर्न्तदृष्टि प्रदान करती है, जोकि धार्मिक उन्माद से बहुत दूर है। जिस प्रकार उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव है धर्म का सच्चा ज्ञान एक विश्वास से दूसरे विश्वास के मध्य की दीवारों को तोड़ता है।

स्वदेशी हमारे भीतर की ऐसी आत्मा है जो हमें दूसरों से पहले पड़ोसियों की सेवा के लिये प्रेरित करती है। और अपने आस–पास निर्मित वस्तुओं का उपयोग करने का प्राथमिकता देना सिखाती है। हम मानवता की सेवा अपनी संपूर्ण क्षमता से नहीं कर सकते, हम अपने पड़ोसियों की उपेक्षा करके मानवता की सेवा नहीं कर सकते।

ऐसी वस्तुओं का उपयोग करना अपराध है, जिनके निर्माण में शारीरिक श्रम नहीं किया गया है। अमेरिका का गेहूं खाना भी पाप है, जबकि हमारा पड़ोसी अनाज व्यापारी पैसे के अभाव में भूखा मरे। इसी प्रकार रीजेन्ट स्ट्रीट के आधुनिक कपड़े

पहनना भी पाप है, जबकि मुझे ज्ञात है कि हमारे आसपास के बुनकर और कातने वालों द्वारा निर्मित कपड़े भी हमारा तन ढक सकते हैं। और इस प्रकार हम उनका पोषण करके उन्हें वस्त्र पहना सकते हैं।

टिप्पणी

मेरी स्वदेशी की परिभाषा सर्वविदित है। मुझे अपने पड़ोसी की उपेक्षा करके दूरस्थ पड़ोसी की सेवा नहीं करनी चाहिए। यह प्रतिशोधात्मक या दंडात्मक नहीं है। किसी भी दृष्टिकोण से यह संतुलित नहीं है, क्योंकि मैं विश्व के सभी स्थानों से खरीदता हूं जो मेरे विकास के लिये आवश्यकता हैं। मैं किसी से कुछ भी खरीदने को इनकार करता हूं ताकि वह वस्तु कितनी भी अच्छी या सुन्दर हो, यदि यह मेरे विकास में बाधक हो या उन लोगों को नुकसान पहुंचाती हो जो प्रकृति द्वारा देखभाल करने के लिये मुझे प्रदान किये गये है।

स्वदेशी हमारे अंदर की ऐसी आत्मा है जो अपने आस–पास की वस्तुओं का उपयोग और आस–पास के लोगों की सेवा करने के लिये सीमित करती है। तथा दूरस्थ का बहिष्कार करती है। मुझे सिर्फ ऐसी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये जो मेरे आस–पास के लोगों द्वारा निर्मित की गई हैं। और ऐसे उद्योगों की सेवा, उनकी कार्यकुशलता बढ़ाकर और उन्हें पूर्ण करके करूं जहां आवश्यकता हो।

स्पर्श भावना

अस्पृश्यता का मतलब किसी ऐसे व्यक्ति के स्पर्श के द्वारा अपवित्र होना जिसका जन्म किसी विशेष परिस्थिति में या परिवार में हुआ हो। यह निन्दनीय बात है धर्म के रूप में यह हमेशा आड़े आता है और धर्म को विखंडित करता है।

अस्पृश्यता को दूर करना मतलब है मनुष्य व मनुष्य के बीच तथा मनुष्य के अस्तित्व की विभिन्न श्रेणियों के बीच अवरोधों को तोड़ना है। इस दुनिया में चारों तरफ अवरोध मनुष्य ने खड़े कर लिये हैं। संसार के लिये प्रेम और सेवा की भावना अहिंसा में मिल जाती हैं। छुआछूत का निवारण यह बताता है कि आदमी व आदमी के मध्य व मनुष्य के अस्तित्व की विभिन्न श्रेणियाँ के मध्य की जंजीरों को तोड़ना है।

गांधी जी छुआछूत को मानवता के खिलाफ एक निकृष्ट अपराध मानते थे। यह आत्म नियंत्रण की पहचान नहीं है। परन्तु श्रेष्ठता की अहंकार से भरी कल्पना है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. गांधी जी का जन्म कब हुआ था?
   (क) 2 अक्टूबर को (ख) 15 अगस्त को
   (ग) 26 जनवरी को (घ) 20 अगस्त को
2. गांधी जी ने आदर्श समाज को क्या नाम दिया?
   (क) कृष्णराज्य (ख) रामराज्य
   (ग) राधाराज्य (घ) सीताराज्य

3.3 सर्वोदय और समाजकार्य

इधर राजनीतिक व्यस्तता के कारण गांधीजी के सामाजिक उद्देश्यों, दायित्वों में कुछ ढिलाई महसूस की गई अतः 17 सितम्बर 1937 को गांधीजी ने एक ऐतिहासिक निर्णय लिया जो उनके सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में महत्वपूर्ण साबित हुआ। वह निर्णय था सक्रिय राजनीति का त्याग तथा पूरा समय व शक्ति अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति क्रमानुसार लगाना– (1) अस्पृश्यता उन्मूलन (2) नशा बंदी (3) हिन्दू–मुस्लिम एकता (4) खादी ग्रामोद्योग व स्वदेशी (5) भारत में 7 लाख गाँवों का संगठन। यद्यपि, देश के हालात तथा देशवासियों के दबाव ने उन्हें अपने निर्णय पर पुर्नविचार के लिये मजबूर किया तो भी 5 वर्ष तक उन्होंने पूरा समय सामाजिक सरोकारों के लिये दिया जो लाखों लोगों के लिये वरदार सिद्ध हुआ विशेषकर हरिजनों के लिये। 26 अक्टूबर 1934 को गांधी जी ने अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ का उद्घाटन किया जो वर्तमान खादी ग्रामोद्योग के रूप में कार्यरत है। जिसका उद्देश्य लाखों ग्रामीणों को वहीं पर रोजगार उपलब्ध कराना है, अप्रैल 1936 में गांधीजी ने इसे सेवा ग्राम वरधा (महाराष्ट्र) में स्थानांतरित किया जो गांधी जी के सामाजिक कार्यों, दायित्वों की राजधानी बना जोकि गांधीजी के समान विचार वालों के लिये देश तथा विदेश में प्रेरणास्रोत है। प्राथमिक शिक्षा की ओर भी गांधीजी ने ध्यान दिया। 22 अक्टूबर 1937 को गांधी जी ने वरधा में एक सम्मेलन आयोजित किया तथा शिक्षा की नई प्रणाली का सूत्रपात किया। गांधी जी ने वर्ष 1941 में "गौ सेवा संघ" स्थापित कर गायों की सुरक्षा एवं सेवा करने का एक और विशेष कार्य किया। गांधी जी और बड़ी संख्या में उनके अनुयायी विभिन्न कल्याणकारी विकास कार्यक्रमों जैसे अस्पृश्यता उन्मूलन, नशा बन्दी, खादी ग्रामोद्योग, आदिम जाति कल्याण, गौरक्षा आदि में कार्यरत थे।

महिलाएं एवं बाल कल्याण

वर्ष 1942 भारत छोडो आन्दोलन का वर्ष था, परिस्थितियों ने फिर एक बार गांधी जी को राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बनने को बाध्य किया। उनकी पत्नी कस्तूरबा जो न केवल उनकी जीवन संगिनी थीं बल्कि जिन्होंने राजनीतिक व कल्याणकारी गतिविधियों में 50 वर्षों तक बढ़–चढ़कर साथ दिया। कस्तूरबा का 22 फरवरी 1944 को जेल में निधन हो गया। राष्ट्र ने उनको श्रद्धा स्वरूप एक करोड़ रुपये से ज्यादा धन एकत्रित कर कस्तूरबा स्मारक न्यास बनाया और मध्य प्रदेश में इन्दौर के निकट कस्तूरबा ग्राम की स्थापना की जो वर्तमान में ग्रामीण बच्चों व महिलाओं के स्वास्थ और विकास के लिये कार्यरत है। वर्ष 1945 में गांधी जी ने शान्ति निकेतन पश्चिमी बंगाल में ग्रामीणों के स्वास्थ्य सुधार हेतु सी.एफ एन्ड्रूज अस्पताल की स्थापना की और वर्ष 1946 में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने हेतु तथा अस्पृश्यता के विरुद्ध आंदोलन चलाने हेतु दक्षिण भारत की यात्रा की।

नशे के विरुद्ध जंग

अब भारत की स्वतंत्रता का सूर्योदय स्पष्ट दिखाई दे रहा था तथा अन्तरिम सरकार के मंत्रिगण राजकीय कार्यों में संलग्न थे। इस दौरान गांधी जी ने नशा बन्दी का मुद्दा जोर–शोर से उठाया और सरकारों से कहा कि शराब व नशे की चीजों से मिलने वाले राजस्व से सरकार दूर रहे। शासन से गांधी जी की आशाएं इस प्रकार थीं–

टिप्पणी

(1) नशाबंदी के लिये कानून बनाये।

(2) नशे की बुराई के प्रति लोगों को शिक्षित करे।

(3) शराब की दुकानों पर शराब के अलावा किताबें, समाचार–पत्र, खेल का सामान आदि बेचने को कहा जाए ताकि लोगों का शराब पीने से ध्यान हटाया जा सके।

(4) नशीले पदार्थों के विक्रय से मिलने वाले राजस्व से लोगों को नशे की बुराई के प्रति शिक्षित करना चाहिये तथा बच्चों के कल्याण की योजनाएं चलानी चाहिए।

लेकिन स्वतंत्रता की सुबह बिल्कुल भिन्न थी जिसमें प्रकाश से ज्यादा अग्नि की तपन थी। अंग्रेजों ने तो साम्प्रदायिक घृणा के बीज बोये थे उन पर हिंसा के फल लग चुके थे। 1946 में गांधीजी के सामाजिक भ्रातृत्व व अहिंसा में विश्वास की अग्नि परीक्षा थी। देश के अनेक भागों कलकत्ता, नावाखाली (बंगाल), बिहार, दिल्ली में हिन्दू–मुस्लिम दंगे प्रारम्भ हो चुके थे। मिलने वाली स्वतंत्रता का पर्व मनाने के बजाय गांधी जी को दंगा पीड़ित स्थानों पर जाना पड़ा। वर्ष 1946 में गांधी जी को निरंतर भ्रमण करना पड़ा ताकि समाज के दोनों वर्गों में मतभेद सामाप्त किया जा सके, इसके लिये गांधी जी ने अपने जीवन को भी दांव पर लगा दिया। उन्होंने दंगा प्रभावित क्षेत्रों में अनशन किया तथा क्रोधित भीड़ का नियंत्रण भी सफल रहा। लंदन टाइम्स् के एक पत्रकार ने लिखा कि कलकत्ता के दंगों को रोकने की सफलता तो एक चमत्कार ही था। गांधी जी पंजाब नहीं जा सके वहां एक लाख से ज्यादा फौज भी दंगों पर नियंत्रण नहीं कर सकी। भारत के आखिरी वाइसराय लार्ड माउंटबैटन ने कहा कि जो कार्य सेना के चार डिवीजन न कर सके वह गांधी जी के आत्मबल ने कर दिखाया। इस सामाजिक कार्यवाही को एक विशिष्ट उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। जैसा कि होता है, प्रत्येक क्रिया की प्रति क्रिया होती है, गांधी जी के सिद्धान्तों व सफल तरीकों ने असामाजिक व साम्प्रदायिक तत्वों को और भड़का दिया।

गांधी जी पर दो जानलेवा हमले किये गये, एक स्वतंत्रता के पहले 22 जून 1946 को जब गांधी जी रेल यात्रा कर रहे थे उस गाड़ी को पटरी से उतारने का षडयंत्र किया गया। दूसरा स्वतंत्रता के बाद 20 जनवरी 1948 को दिल्ली की प्रार्थना सभा में बम बलास्ट किया गया और अन्त में 30 जनवरी 1948 को पुनः दिल्ली की प्रार्थना सभा में एक कट्टर हिन्दूवादी ने गांधी जी की हत्या कर गांधी युग का समापन किया और इस तरह गांधी जी की सभी सामाजिक योजनाओं व सार्वजनिक जीवन का दुखद अंत हुआ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गांधी जी के भारतीय उप महाद्वीप में तीन दशकों से भी अधिक वर्षों तक किये गये सार्वजनिक कार्यों तथा उनके एक राष्ट्रीय विभूति होने के अतिरिक्त उनके सामाजिक दायित्वों एवं दृष्टिकोण का नये तरीके से विश्लेषण किया गया है।

3.3.1 गांधी जी के समाज कार्य की विशेषताएँ

गांधी जी द्वारा पांच दशकों तक किये गये सामाजिक कार्यों का विश्लेषण करने के उपरांत, उनमें निम्नलिखित विशेषताएं पाई गईं–

टिप्पणी

(1) **भारतीय समाज को एक नये स्वदेशी नमूने के रूप में बदलना** : गांधी जी भारत के पहले सामाजिक विचारक थे जिन्होंने भारतीय समाज को एक नये आदर्श रूप में प्रस्तुत किया उन्होंने प्रत्येक विषय पर अपने विचार दिये जैसे कि राज्य व प्रशासन की प्रकृति, सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, गृह शिक्षा, रोजगार, कमजोर, वर्गों का विकास तथा समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे अस्पृर्ष्यता, नशा मुक्ति, गरीबी आदि।

(2) **सामाजिक दायित्वों का नया चिंतन** : यद्यपि, गांधी जी ने स्वयं कहा है कि उनके मूल्य व सिद्धान्त उतने ही पुराने हैं जितनी कि प्रकृति तदुंपरात भी उनका संहिताबद्ध प्रस्तुतीकरण उनकी सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों का अनुपम आधार है। गांधी जी के अनुयायियों द्वारा तैयार की गई आचार संहिता भी अनुकरणीय है।

(3) **व्यावहारिक चिंतन** : गांधी जी केवल एक सैद्धान्तिक चिंतक ही नहीं थे, उन्होंने जो कहा उसे व्यवहार में भी लाये। ये सब उनके विचारों एवं कार्यों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। गांधी जी का उन्नीस बिन्दु वाला रचनात्मक कार्यक्रम कथनी को करनी में बदलने का एक अच्छा उदाहरण है।

(4) **सामाजिक दायित्वों को पूरा करने की विधियों का आविष्कार** : वैसे तो भारतीय समाज में अनशन, पदयात्रा, बहिष्कार का चलन बहुत पुराना है, ज्यादातर लोग इन चीजों का प्रयोग धार्मिक व जातीय आधार पर करते थे। गांधी जी ने इनका बड़े स्तर पर सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयोग किया तथा इनकी उपयोगिता को नया आयाम प्रदान किया। असहयोग की अवधारणा गाँधीजी ने पाश्चात्य महान विचारक हैनरी डेविड थेरो से ली, लेकिन सत्याग्रह उनकी अपनी खोज थी, जिससे समाजशास्त्री अनजान थे। उनके द्वारा सत्याग्रह का प्रयोग समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये विशेष अध्ययन का विषय रहा।

(5) **सामाजिक सुधार से सामाजिक विकास की ओर** : निःसंदेह गांधी की सामाजिक क्रियाशीलता का प्रारम्भ एक समाज सुधारक के रूप में हुआ। देश में वह समय समाज सुधार का ही था। लेकिन गांधीजी ने दूसरों की तरह अपने आपको वहीं तक सीमित नहीं रखा बल्कि सामाजिक समस्याओं से पीड़ितों की भलाई के लिये अपने कार्य करते रहे। असल में गांधी जी समाज में कुछ छुटपुट कार्यों में विश्वास नहीं करते थे बल्कि विकृत व टूटे समाज का पुनः निर्माण व नये समाज की रचना उनका उद्देश्य था।

(6) **कार्यकर्ताओं व संस्थाओं का राष्ट्रीय संगठन** : गांधी जी ने अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर, कांग्रेस पार्टी को विघटित कर लोक सेवक संघ नाम का संगठन बनाने की सलाह दी जो राजनीतिक गतिविधियों से पूर्णतः मुक्त हो तथा जिसमें पूर्णकालिक सामाजिक कार्य किए जाएं। यद्यपि यह विचार मूर्तरूप न ले सका तथापि गांधी जी ने बड़ी संख्या में राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक कार्यकर्ताओं का संगठन खड़ा किया जो अब गांधीवादी या सर्वोदय कार्यकर्ता के रूप जाने जाते हैं, ये सभी संस्थाएं वर्तमान में गांधी जी की विचारधारा के अनरूप कार्य कर रही हैं।

(7) **सामाजिक कार्य में धर्म निरपेक्षता के पक्षधर** : गांधी जी के आगमन से पूर्व भारत में अधिकार सामाजिक कार्य धर्म के आधार पर गठित संगठनों द्वारा किये जा रहे थे। गांधी जी ने सभी सामाजिक गतिविधियों को एक धर्मनिरपेक्ष व आध्यात्मिक आधार प्रदान किया। आज की धर्मनिरपेक्षता से भिन्न गांधी जी ने धर्म को दरकिनार नहीं किया परन्तु सभी धर्मों से प्रोत्साहन देने वाले तत्वों का समावेश अपने दायित्व निर्वाह के दौरान किया।

(8) **शोध कार्य एवं प्रकाशन** : व्यावसायिक तरीके से काम करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं की तरह गांधीवादी कार्यकर्ताओं के लिये भी विशेष जानकारी दिये जाने के प्रावधान हैं। देश भी में आश्रमों में कार्यकर्ताओं को लघु एवं दीर्घ अवधि के लिये विशेष अध्ययन की व्यवस्था की। देश के दूसरे संस्थानों, विश्वविद्यालयों जो विभिन्न डिग्री/डिप्लोमा की औपचारिक शिक्षा प्रदान करते हैं इसी प्रकार– गांधी जी विद्यापीठ, अहमदाबाद एवं काशी विद्यापीठ, वाराणसी जिनको विश्वविद्यालय का दर्जा मान्य किया गया है, गांधी जी साहित्य पर शोध अध्ययन आदि कार्यों में कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त गांधी अध्ययन संस्थान वाराणासी में शोध, गांधी जी के योगदान पर शोध कार्य अध्ययन कार्यशाला का सम्मेलन आदि कार्यों में संलग्न हैं। देश में गांधी जी भवनों की स्थापना भी की गई है जहाँ पर सामान्य गतिविधियों के अतिरिक्त नियमित रूप से पुस्तकें प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होती हैं, जिनके अध्ययन से गांधी जी के विचारों एवं कार्यों का देश–विदेश में प्रचार प्रसार होता है।

गांधी जी का उदय एक समाज सुधारक, सामाजिक कार्यकर्ता तथा सामाजिक दायित्वों के प्रति क्रियाशील व्यक्ति के रूप में हुआ जो वस्तुतः गांधी जी के सामाजिक योगदान एवं उनके सामाजिक कार्यों के मूल एवं विकास का पर्याप्त ही है। पहले उनकी कार्यभूमि दक्षिण अफ्रीका तथा बाद में भारत रहा। गांधी जी की विचारधारा व कार्यों का प्रभाव समाज के हर वर्ग क्षेत्र में स्पष्ट देखा जा सकता है जैसे किसानों, श्रमिकों, छात्रों, बुनकरों, महिलाएं बच्चों, कोढ़ी अस्पृर्श्य तथा आदिम जति के लोगों आदि वर्गों के कल्याण हेतु किये गये कार्य। देश के बटवारे के समय वे दंगा प्रभावित गांव व नगरों में स्वयं गये तथा एक अपूर्व योद्धा की तरह काम करते हुए शान्ति व साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित करने में सफलता पाई। स्वतंत्रता पूर्व गांधी जी के सामाजिक कार्यों के आधार पर आदर्श समाज का नमूना स्थापित हुआ। उनके नये सामाजिक चिंतन द्वारा सामाजिक सुधार सामाजिक विकास में परिवर्तित हुआ। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक कार्यकर्ताओं व संस्थाओं का जाल बिछा, धर्म निरपेक्षता की भावना को बढ़ावा मिला शोध कार्य व प्रकाशन आदि कार्य भी प्रारम्भ हुए।

गांधीवादी समाजकार्य

सभी लोग एकता से सहमत हैं, परंतु सभी को यह ज्ञात नहीं है कि एकता का मतलब राजनीतिक एकता से नहीं है जाकि थोपी जा सकती है। इसका अर्थ है दिल का अटूट बंधन। इस प्रकार की एकता प्राप्त करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक भारतीय चाहे वह किसी भी धर्म का हो उसे अपने व्यक्तित्व के द्वारा ही प्रतिनिधित्व देना चाहिये। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, पारसी, यहूदी आदि सभी हिन्दू व गैर हिन्दुओं को करोड़ों में से प्रत्येक हिन्दुस्तानी के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिये। इसे साकार करने के लिये प्रत्येक भारतीय को अपने से दूसरे धर्म के लोगों के साथ व्यक्तिगत

मित्रता स्थापित करनी चाहिए। उसमें दूसरे धर्म के लिये भी उतना सम्मान होना चाहिये जितना स्वयं के धर्म के लिये है।

टिप्पणी

अस्पृश्यता निवारण

हिन्दुत्व पर लगे इस दाग और श्राप पर जोर देना बेमानी होगा। जहां तक हिन्दुओं की बात है, हिन्दुत्व के अस्तित्व के लिये यह अनिवार्य है। यदि हिन्दू इस समस्या को उठाते हैं तो वे सनातनी कहे जाने वाले लोगों को ज्यादा प्रभावित करेंगे। उनकी तरफ लड़ाकू भावना से नहीं परन्तु अहिंसात्मक तरीके से मित्रता की भावना से बढ़ना चाहिये! और जहां तक परिजनों का सवाल है, प्रत्येक हिन्दू को उनसे समझ रखते हुए उनके निकृष्ट एकाकीपन में उनसे मित्रता करनी चाहिए—ऐसी पृथकता जो दुनिया ने कभी नहीं देखी, जो भारत में राक्षसी रूप में बहुतायत से विद्यमान है। यह कितना कठिन कार्य है। यह स्वराज के शिखर निर्माण का हिस्सा है तथा स्वराज तक पहुंचने का मार्ग संकरा और दुरूह है।

मद्य निषेध

गांधी जी ने एक बार कहा था कि यदि उन्हें भारत का तानाशाह सिर्फ एक घंटे के लिये बना दिया जा तो वे बिना मुआवजा दिये सभी मद्य की दुकानों को बंद कर देंगे। उन्होंने आगे कहा कि यदि हमें अहिंसा के द्वारा अपने उद्देश्य तक पहुंचना है तो हमें उन लाखों स्त्री—पुरुषों का भाग्य सरकार पर नहीं छोड़ देना चाहिये जो नशे के गुलाम हैं।

इस बुराई को दूर करने के लिये चिकित्सा जगत के लोग महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

इस बदलाव को लाने के लिये महिलाओं व विद्यार्थियों के सामने अवसर है। प्रेम से सेवा करके वे नशा खोरों को इस बुराई को छोड़ने के लिये बाध्य कर सकते हैं। पूरी तरह से स्थायी व स्वस्थ मुक्ति भीतर से प्राप्त होती है अर्थात् आत्म शुद्धि के द्वारा रचनात्मक कार्यकर्त्ता कानूनी रोक को सफल बना सकते हैं।

खादी

यह पूरे देश में आर्थिक स्वतंत्रता व समानता के आरंभ को दर्शाती है। सभी को प्रयास करने दो और महिला व पुरुष को स्वयं यह मालुम हो जाएगा कि मैं क्या कह रहा हूँ। खादी को अपने सभी निहितार्थों के साथ अपनाना चाहिये। इसका अर्थ है संपूर्ण स्वदेशी मानसिकता, भारत में जीवन की सभी आवश्यक बातों को ग्रामीणों के श्रम व ज्ञान से ढूँढने के लिये दृढ़—प्रतिज्ञ होना। इसका मतलब है वर्तमान में चल रही प्रक्रिया को उलटा करना। अर्थात् यह कहें कि भारत के आधा दर्जन शहर गाँवों का शोषण कर उन्हें नष्ट करके उन पर निवास के बदले, यदि गांवों को आत्म निर्भर बनाए तो वे स्वाभाविक रूप से शहरों से ही नहीं परन्तु भारत से बाहर भी लाभदायक साबित होंगे। इसके लिये लोगों की मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। मेरे लिये खादी भारतीय मानवता उसकी आर्थिक स्वतंत्रता, समानता का प्रतीक है। अंत में नेहरू जी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति देखें तो "खादी भारत की स्वतंत्रता का पहनावा है।"

खादी मानसिकता का अर्थ उत्पादों का विकेन्द्रीकरण और जीवन के लिये आवश्यकता वस्तुओं का आवंटन होता है, इसलिये जो समीकरण बनता है वह इस

टिप्पणी

प्रकार है– सभी ग्रामों को अपनी आवश्यकता के अनुसार और उससे कुछ प्रतिशत अधिक उत्पन्न करना चाहिये जिससे शहरों की भी आवश्यकता पूरी हो सके। ये खादी से अलग पायदान पर खड़े हैं। इसमें स्वैच्छिक श्रम के लिये बहुत अवसर नहीं है। प्रत्येक उद्योग कुछ ही व्यक्तियों का श्रम ले सकते हैं। खादी के लिये ये उद्योग दासी/नौकरानी के समान हैं। खादी के बिना इनका अस्तित्व नहीं हो सकता है और बिना खादी ये अपना सम्मान खो देंगे। ग्रामों की अर्थव्यवस्था जरूरी ग्रामोद्योग के बिना अधूरी है जैसे–हाथ से पीसना, हाथ से कूटना, साबुन बनाना, कागज बनाना, माचिस बनाना, चमड़े को रंगना व तेल निकालन आदि।

सभी को ग्रामों के उत्पादों का उपयोग करना अपनी प्रतिष्ठा बना लेना चाहिये वे चाहे जहाँ से भी उपलब्ध हों। यदि मांग होगी तो इसमें कोई शक नहीं कि हमारी सभी आवश्यकताएं ग्रामों से पूरी हो सकती हैं। जब हम ग्रामीण मानसिकता वाले बन जाएंगे तब हम पश्चिम की नकल नहीं चाहेंगे या मशीनों द्वारा निर्मित उत्पाद नहीं चाहेंगे परन्तु हम एक सच्ची राष्ट्रीय चाहत का विकास कर लेंगे जहां नये भारत की ऐसी छवि होगी जिसमें गरीबी, भुखमरी व बेरोजगारी नहीं होगी।

ग्रामीण स्वच्छता

बुद्धिमत्ता का श्रम के मध्य अलगाव के फलस्वरूप ग्रामों की अपराधिक रूप से उपेक्षा हुई। और धरती पर सुंदर ग्राम फैले होने के बजाय हमारे यहां गोबर के ढेर हैं। अनेक ग्रामों तक पहुंचने वाले मार्ग बहुत बुरा अनुभव कराते हैं। प्रायः हम आंख व नाक बंद कर लेते हैं–क्योंकि चारों तरफ ऐसी गंदगी व दुर्गन्ध फैली रहती है। राष्ट्रीय व सामाजिक स्वच्छता का हमारे बीच कोई गुण नहीं है। हम स्नान तो करते हैं, परन्तु हमें यह भी ध्यान नहीं रहता कि हम कुएं, टंकी व जिसके किनारे हम निस्तार कर रहे हैं उसे ही गंदा कर रहे हैं। गांधीजी ने हमारे ग्रामों और नदी के किनारे की दयनीय स्थिति को एक बुराई कहा, जिसकी गन्दगी बीमारियों को जन्म देती है।

आधारभूत शिक्षा

इस शिक्षा के द्वारा हमारे ग्रामीण आदर्श ग्रामीणों में परिवर्तित हो जायेंगे। इसे सैद्धान्तिक रूप से ग्रामीणों के लिये तैयार किया गया है। इसकी प्रेरणा ग्रामों से ही मिली है। स्वराज वर्ग संरचना के निर्माण में उसकी नींव से ही बच्चों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। विदेशियों के राज में उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों पर ध्यान दिया है। प्राथमिक शिक्षा की रूपरेखा भारत के ग्रामों व शहरों की आवश्यकता के अनुरूप नहीं बनाई है। आधारभूत शिक्षा पद्धति जोकि चाहे गांवों की हो या शहरों की, भारत का निर्माण करती है। यह शारीरिक व मानसिक विकास करती है और बच्चे को धरातल के जोड़े रखती है तथा उज्जवल भविष्य को साकार करने के लिए बच्चों को प्रेरित करती है।

प्रौढ़ शिक्षा

यदि मुझे प्रौढ़ शिक्षा का प्रभार सौंप दिया जाय तो मैं सर्वप्रथम प्रौढ़ छात्रों के मस्तिष्क को उनके देश की महानता व विशालता द्वारा खोलूंगा। मेरी प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ है, प्रौढ़ों को सही राजनीतिक शिक्षा देना। यह बिना किसी भय के प्रदान की जा सकती है। अब बहुत देर हो चुकी है कि कोई अधिकारी इस प्रकार की शिक्षा में हस्तक्षेप करे, परन्तु

यदि हस्तक्षेप होता है तो इस प्राथमिक अधिकार के लिए लड़ाई होनी चाहिये जिसके बिना स्वराज असंभव है। जो कुछ भी मैंने लिखा है, उसमें खुलापन अनुमानित है। अहिंसा डर की विरोधी है। गुप्त बातों के साथ ही साथ बोलने के द्वारा शिक्षा करना साहित्यिक शिक्षा होगी।

महिलाएँ

महिला का हमेशा रीति–रिवाजों और कानूनों के द्वारा दमन हुआ है जिसके लिये पुरुष उत्तरदायी है और जिन्हें बनाने में महिलाओं का कोई हाथ नहीं है। अहिंसा आधारित जीवन की योजना में महिला को अपना भाग्य तय करने का उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना कि पुरुष को। अहिंसात्मक समाज में प्रत्येक अधिकार पिछले कार्य के निष्पादन से आरंभ होता है। सामाजिक व्यवहार के नियम आपसी सहयोग व परामर्श से ही बनाने चाहिये। ये कभी भी ऊपर से थोपे नहीं जा सकते। पुरुष कभी स्त्री के प्रति अपने व्यवहार को वास्तविक रूप से नहीं समझता। वह स्त्री को मित्र व सहयोगी न समझकर हमेशा अपने को उसका मालिक समझता है। पुरुषों के पास यह अवसर है कि वे भारत की स्त्रियों को ऊँचा उठाने के लिये हाथ बढ़ाएं। पुराने समय से स्त्रियाँ गुलामी की स्थिति में रही हैं। यह पुरुषों की जिम्मेदारी है कि वे स्त्रियों को अपनी स्थिति का एहसास कराएं और पुरुषों के बराबर की भूमिका का निर्वाह करें। यदि मन बना लिया जाय तो यह क्रांति बहुत आसान है। पुरुषों को अपने घरों से शुरुआत करने दें। पत्नियों को गुड़ियों के समान और विलासित की वस्तु न समझकर उनके साथ सम्मानजनक सहयोगी का व्यवहार करें। जिन स्त्रियों ने शिक्षा ग्रहण नहीं की है, यदि संभव हो सके, उन्हें शिक्षित करें। इसी प्रकार का व्यवहार आवश्यक बदलाव के साथ माताओं व बेटियों पर लागू किया जा सकता है।

स्वच्छता और स्वास्थ्य शिक्षा

अपने को स्वस्थ रखने की कला और स्वच्छता का ज्ञान अपने आप में अध्ययन का एक पृथक विषय है। एक सुव्यवस्थित समाज में नागरिकों को स्वास्थ्य व स्वच्छता का ज्ञान होता है तथा वे उसके नियमों का पालन भी करते हैं। यह बात बिना किसी संदेह के स्थापित हो चुकी है कि स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों की उपेक्षा व अज्ञानता अनेक बीमारियों के लिए उत्तरदायी है। हमारे बीच ऊँची मृत्यु दर, एवं अत्यधिक गरीबी इत्यादि विद्यमान हैं। परन्तु यह कम की जा सकती है यदि लोगों को उचित रूप से स्वास्थ्य और स्वच्छता की शिक्षा दी जाए।

एक स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन, एक सच्चा प्रमाण है। मन और शरीर में एक अटूट संबंध है। यदि हमारे पास स्वस्थ मन होंगे तो हम समस्त हिंसा को त्याग देंगे। स्वाभाविक रूप से स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से हम बिना किसी प्रयास के स्वस्थ शरीरों के मालिक होंगे।

स्थानीय भाषाएँ

गांधी जी के अनुसार हमारी मातृभाषा के बदले हमारे अंग्रेजी भाषा के लिये प्रेम ने पढ़े–लिखे और राजनीतिक विचारधारा के लोगों तथा जन साचारण के मध्य गहरी खाई बना दी है। भारत की भाषाओं ने अपनी समृद्धि खो दी है। हम अपनी मातृभाषा में दुरूह विचार अभिव्यक्त करने की नाकाम कोशिश करते हुये लड़खड़ाते हैं। विज्ञान से

संबंधित शब्दों के लिये समरूपी के शब्द नहीं मिलते। इसका परिणाम खेदजनक है। भारत की महान भाषाओं की उपेक्षा करके हमने अपने देश की उपेक्षा की है। इस कारण से लोग स्वराज की रचना में अपना कोई योदगदान नहीं दे सकते। अहिंसा पर आधरित स्वराज की रचना में अपना कोई योगदान नहीं दे सकते। अहिंसा पर आधारित स्वराज में यह निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता आंदोलन में अपना सहयोग देना पड़ा। लोग इसे पूरी तरह से नहीं कर सकते जब तक कि वे सभी पायदानों के उसके पूरे अर्थ को साथ न समझ लें, और जब तक कि प्रत्येक सीढ़ी की व्याख्या, उनकी अपनी भाषा में न की गई हो तब तक यह असंभव होगा।

राष्ट्र भाषा

पूरे भारत के सह संबंध के लिये हमें भारतीय जन समूह से ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो अधिक से अधिक लोग जानते व समझते हों तथा जिसे दूसरे सरलता से सीख सकें। ऐसी विवादों से परे भाषा हिन्दी है। यह उत्तर के हिन्दू और मुसलमानों द्वारा बोली व समझी जाती है।

1925 में जन साधारण की भाषा समस्त भारत की बोली को हिन्दुस्तानी करा गया और उस समय से कम से कम सैद्धान्तिक रूप से हिन्दुस्तानी राष्ट्र भाषा है। 1920 से भारतीय भाषाओं के महत्व को पहचान दिलाने का प्रयास किया गया जिससे कि लोगों को राजनीति का ज्ञान दिया जा सके तथा पूरे भारत की सामान्य बोली जिसे राजनीतिक विचारों वाला भारत सरलता से बोल सके और भाषा व्यक्ति को इस योग्य बनाए कि वह उसे समझ व बोल सके तथा दोनों लिपियों को लिख सके।

आर्थिक समानता

अहिंसात्मक स्वतंत्रता की कुंजी आर्थिक समानता है जिसका उद्देश्य धनी एवं मजदूरों के मध्य सतत् संघर्ष को समाप्त करना है। इसका तात्पर्य यह है कि कुछ धनी लोगों को दूसरों के समकक्ष लाना जिनके पास देश के धन का अधिकतम हिस्सा है और अधभूखे और नग्न लोगों को ऊपर उठाना है। एक अहिंसात्मक सरकार का सपना तब तक साकार नहीं हो सकता जब तक कि धनी और करोड़ों भूखे लोगों के मध्य गहरी खाई है। एक दिन एक खूनी आंदोलन अवश्य होगा, जब तक कि धन का स्वयं अधित्याग न हो और यह सत्ता जो धन से प्राप्त है का भी त्याग न हो और इनका उपयोग सभी की भलाई के लिये हो।

किसान

यह कार्यक्रम संपूर्ण नहीं है, स्वराज एक विशालकाय संरचना है। उसके निर्माण के लिये करोड़ों हाथों को काम करना होगा। किसानों में से कृषि वर्ग बहुत बड़ा है। जब उन्हें अपनी अहिंसा की शक्ति का अभास होगा तब इस धरती पर कोई शक्ति उनका सामना नहीं कर सकेगी।

उनका उपयोग सत्ता की राजनीति के लिये होना चाहिये। मैं उसे अहिंसा के तरीके का विरोधी समझता हूँ। ये जो किसानों को संगठित करने की मेरी पद्धति जानना चाहते है उन्हें पप्पारन का सत्याग्रह आंदोलन का अध्ययन करना चाहिये जहां भारत में सत्याग्रह पहली बार हुआ और इसका परिणाम सभी जानते हैं। यह एक जन आन्दोलन बन गया था जोकि आरंभ से अंत तक अहिंसात्मक था।

टिप्पणी

श्रमिक

अहमदाबाद मजदूर यूनियन एक प्रतिमान है जिसका अनुकरण पूरा भारत कर सकता है। इसका आधार अहिंसा, शुद्धता और सरलता है। अपने कार्यकाल में उसे कभी भी पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। यह बिना किसी बहाने व दिखावे के सामर्थ्यवान होती गई। उन बच्चों के लिये जिनके माता–पिता मिल में कार्यरत हैं, अस्पातल एवं पाठशालाएं हैं। प्रौढ़ों के लिये शिक्षा, प्रिटिंग प्रेस, खादी डिपो और रिहायशी मकान हैं। सभी लोग वोट देने वाले हैं जोकि चुनावों में भाग लेते हैं। उनका नाम वोटर सूची में है। इस संगठन ने कभी पार्टी व राजनीति में भाग नहीं लिया। यह शहर की म्यूनिसिपल नीति को प्रभावित करता है। उसके खाते में ऐसी सफल हड़तालों के उदाहरण हैं जो पूर्णतः अहिंसात्मक थीं। मिल मालिक और मजदूरों ने अपने आपसी संबंध, स्वयं मध्यस्थता करके स्थापित किये हैं।

आदिवासी

आदिवासी की सेवा भी इस रचनात्मक कार्यक्रम का हिस्सा है। वैसे इस कार्यक्रम में उनका क्रम सोलहवां हैं, परन्तु उनका महत्व कम नहीं है। हमारा देश इतना बड़ा है, और उसमें इतनी विभिन्न जातियाँ हैं कि हम में से सबसे उत्तम व्यक्ति को भी उनकी परिस्थितियों और विषय में जानकारी नहीं हो सकती। जैसी ही व्यक्ति को इस विषय में पता चलता है, तो यह समझ में आता है कि एक राष्ट्र की कल्पना करना बहुत कठिन है, जब तक कि प्रत्येक इकाई को एक–दूसरे के साथ एकाकार होने की जीवित चेतना न हो।

कुष्ठ रोगी

कोढ़ एक ऐसा शब्द है जिससे दुर्गंध आती है। मध्य अफ्रीका के बाद शायद भारत इसका घर है। यह हमारे समाज का हिस्सा है। सामाजिक तौर पर कुष्ठ रोगियों पर ध्यान देने की ज्यादा आवश्यकता है जबकि उनकी जान–बूझकर उपेक्षा की जाती है। यदि हम अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में देखें तो ज्यादातर मिशनरी लोगों को इनकी सेवा का श्रेय जाता है।

विद्यार्थी

जैसे कि विद्यार्थी होते हैं, इन्हीं युवकों और युवतियों में से भविष्य के नेताओं का उदय होगा। दुर्भाग्य से ये उनके प्रकार की बातों से प्रभावित होकर कार्य करते है। विद्यार्थियों के लिए गांधी जी की आचार संहिता निम्नलिखित है–

(1) विद्यार्थियों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिये, वे विद्यार्थी हैं, वे खोजी हैं। वे राजनीतिज्ञ नहीं हैं।

(2) उन्हें राजनीतिक हड़तालों में भाग नहीं लेना चाहिये। उनके अपने आदर्श हो सकते हैं परन्तु उन्हें अपनी श्रद्धा अपने आदर्श की अच्छी बातों का अनुकरण करना चाहिये।

(3) उन्हें अपना कार्य कतई वैज्ञानिक तरीके से करना चाहिये। उनके औजार हमेशा साफ–सुथरे, अच्छी हालत में व व्यवस्थित होने चाहिये। यदि संभव हो तो उन्हें स्वयं बनाना सीखना चाहिये।

टिप्पणी

(4) उन्हें खादी का उपयोग करना चाहिये और हमेशा ग्रामीण उत्पादों का उपयोग करना चाहिये न कि विदेशी या मशीन द्वारा निर्मित वस्तुओं का।

(5) उन्हें अपने व्यक्तित्व में तिरंगे की भावना को स्थान देना चाहिये और अपने हृदय में अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता की भावना नहीं रखना चाहिये। उन्हें दूसरे धर्म के विद्यार्थियों से और हरिजनों से सच्ची मित्रता विकसित करना चाहिये जैसे कि वे अपने भाई बन्धु के साथ करते हैं।

(6) अपने घायल पड़ोसी को प्राथमिक चिकित्सा देना सुनिश्चित करना चाहिये और अपने पास के गांवों में सफाई करके ग्रामीण बच्चों व प्रौढ़ों को निर्देश देना चाहिए।

(7) वे राष्ट्र भाषा हिन्दुस्तानी सीखेंगे, उसकी दो प्रकार की बोली और लिपि, जिससे उन्हें हिन्दी व उर्दू वाली तथा नागरी व उर्दू लिपि समझ में आये व अपनापन महसूस हो।

(8) वे जो भी नया सीखें उसका अनुवाद अपनी मातृ भाषा में करें और अपने आस–पास के गांवों में उसका प्रसार करें।

(9) वे गुप्त रीति से कुछ न करें तथा अपने लेन–देन में खुलापन रखें। वे एक शुद्ध व संयम भरा जीवन जीयेंगे, समस्त डर को त्यागकर अपने कमजोर साथी विद्यार्थियों के बचाव के लिये सदैव तत्पर रहेंगे, और अहिंसात्मक व्यवहार के द्वारा दंगे–फसाद को समाप्त करने के लिये प्राणों की बाजी लगा देंगे। उनका व्यवहार अपनी छात्राओं के प्रति पूर्णतः सच्चा व साहसी होगा।

गौ सेवा

गांधी जी के लिये गाय एक दया की मूर्ति है। मनुष्य से विनम्र सबसे शुद्ध जीवन वाली। मनुष्य गाय के माध्यम से सभी जीवों से तादात्म्य स्थापित करता है। मनुष्य के विकास में गाय का संरक्षण एक अद्‌भुत घटना है। संसार को यह हिन्दुत्व की देन है। धार्मिक भावनाओं के अलावा, मनुष्य के विकास में गाय की भूमिका अद्वितीय है। कृषि, भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्‌डी है और गाय कृषि की रीढ़ है। गाय के उत्पादों का उपयोग बहुतायत से होता है जैसे दूध, गोबर, गोमूत्र, बैल, उसकी हड्डियां, सींग और चमड़े का उपयोग पोषण, स्वास्थ्य, स्वच्छता, ईधन के अतिरिक्त जूते बनाने में, खाद और बटन बनाने में होता है। यह अपने आप में एक चलता फिरता संयंत्र है जोकि स्थानीय संसाधनों के द्वारा जीवित रहता है। गौवध पाप है जिसका निषेध पूर्ण रूप से होना चाहिये और गाय प्रजाति के संरक्षण और विकास के लिये हर संभव प्रयास करना चाहिये।

3.3.2 सर्वोदय कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण

गांधीजी के आदर्श समाज और उन आधारभूत सिद्धांतों की चर्चा के पश्चात् गांधी जी जी के द्वारा प्रस्तुत 19 सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम, का क्रियान्यन करने के द्वारा ही आदर्श समाज का सपना साकार हो सकेगा। उनकी पुस्तक "रचनात्मक कार्यक्रमः उसका अर्थ व स्थान" की प्रस्तावना में उन्होंने उसे पूर्ण स्वराज या सत्य अहिंसा के द्वारा संपूर्ण स्वतंत्रता के निर्माण का कार्यक्रम निरूपित किया। इसकी रूप रेखा इस प्रकार से बनाई गई है जिससे कि राष्ट्र का निर्माण निचले स्तर से ऊपर की ओर हो

टिप्पणी

सके। सत्य और अहिंसा के द्वारा संपूर्ण स्वतंत्रता से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता चाहे वह राष्ट्र का सबसे दीन–हीन व्यक्ति क्यों न हो, बिना किसी भेद–भाव के जैसे जाति, रंग और धर्म मिले। इस प्रकार की स्वतंत्रता कभी भी ऐकान्तिक नहीं होगी परन्तु यह भीतरी निर्भरता के अनुकूल होगी। गांधी जी जी को मालूम था कि इस कार्यक्रम की आलोचना होगी। उन्होंने लिखा कि "जब आलोचक इस प्रस्ताव पर हंसते हैं, उनका मतलब यह होता है कि इस कार्यक्रम को पूर्ण करने के प्रयास में करोड़ों लोग कभी भी सहयोग नहीं करेंगे। इसमें कोई शक नहीं है, कि लोग हंसी उड़ाएंगे। और मेरा उत्तर यही है कि कोशिश करने में कोई हानि नहीं है। गंभीरता से कार्य करने वालों के समक्ष यदि अदम्य इच्छाशक्ति हो तो यह कार्यक्रम किसी भी अन्य कार्यक्रम की तुलना में सुचारु रूप से क्रियान्वित किया जा सकता है। मेरे पास इसका कोई दूसरा पूरक नहीं है। यदि यह अहिंसा पर आधारित है तो सर्वोदय कार्यकर्ताओं के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था की गई थी वह सर्वोदय शब्द के अर्थ अर्थात् उदय या सबका कल्याण पर आधारित थी। सर्वोदय कार्यकर्ताओं के लिये निम्नलिखित प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी–व्यावसायिक समाज कार्य की संस्थाओं के समान गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिये अनेक संस्थाएं व उनके संघ कार्यरत हैं। गांधी जी के अनेक अनुयायी अपनी व्यक्तिगत क्षमता के अनुरूप समाज कार्य में संलग्न हैं परन्तु उनकी संख्या नगण्य है। ये संस्थाएं जो गांधी जी के समय व उनके पश्चात स्थापित की गईं, उनका जाल पूरे देश में फैला हुआ है, उनमें से कुछ ने अपनी प्लेटिनम जयंती बहुत पहले मनाई है।

सत्याग्रहियों की आचार संहिता के समान गांधी जी ने उन संस्थाओं के लिये भी आचार संहिता का निर्माण किया जो उन्नीस सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम का क्रियान्वयन कर रही है। यह संहिता सार्वभौमिक रूप से मान्य है व वर्तमान में भी यह स्वयंसेवी संस्थाओं के लिये प्रासंगिक है। यह निम्नलिखित है–

संस्था की सफलता

किसी भी संस्था की सफलता निम्न बातों पर आधारित होती है–

(अ) संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समर्पण और उत्साह।

(ब) संस्था के नियमों का सिर्फ पालन ही न करके उसकी भावना से कार्य करना।

(स) संस्था के प्रबंध उसके सदस्य और कार्य करने वाले स्टाफ के साथ भाईचारा व एकता की भावना कायम करना।

(द) दूसरी अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद संस्था मृत हो जाती है यदि उपरोक्त लिखी तीन बातों में से किसी एक का भी पालन न किया जाए तो।

संस्था का निर्देशक

1. संस्था के निर्देशक को संस्था की धुरी कहा जा सकता है।
2. संस्था की सफलता उसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्देशक के समर्पण पर निर्भर होती है। यह उसके नियमों का पालन, संस्था के सदस्यों के साथ उसका व्यवहार तथा उसकी मेहनत पर भी अधारित होती है।

टिप्पणी

3. यदि निर्देशक को अपनी सत्ता का घमंड है और वह दूसरे सदस्यों में रुचि नहीं लेता तो यह संस्था के लिए हानिकारक होता है।
4. संस्था के निर्देशक को सेवा के एक सक्षम कमांडर–इन–चीफ के समान व्यवहार करना चाहिए जो कि दूसरों को नियम पालन करवाने में जागरूक व अनुशासित होता है साथ ही वह अपने सैनिकों का प्यार व आदर पाता है और उन पर घमंड करता है।
5. निर्देशक को संस्था की छोटी से छोटी बातों पर ध्यान देना चाहिए। उसे संस्था के सदस्यों और साथियों की इस प्रकार देखभाल करनी चाहिए जैसे मां अपने बच्चे की करती है।
6. परिस्थिति के अनुसार निर्देशक को अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहिए। उसे अपने नीचे कार्य करने वालों को अपने समकक्ष समझना चाहिए। उसे अपने सबसे छोटे कर्मचारी से भी मित्रवत व्यवहार करना चाहिए। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि उसे निर्देशक का पद उसकी विशेष क्षमता से नहीं मिला परंतु साथी कार्यकर्ताओं के द्वारा दिखाए गए आदर से प्राप्त हुआ है।
7. उसे अपने सबसे जूनियर कर्मचारी की सलाह आदर के साथ सुननी चाहिए और यदि वह उसका समर्थन करता है तो उसे लागू करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। यदि उसे वह सलाह उचित नहीं लगती तो, उसे अपने दृष्टिकोण से अवगत कराना चाहिए।
8. निर्देशक को कान का कच्चा नहीं होना चाहिए। उसे जल्दबाजी में दूसरों के प्रति कोई गलत धारणा नहीं बनानी चाहिए। उसे दूसरे को समझने में समय लगाना चाहिए, फिर कोई धारणा बनानी चाहिए। वास्तव में बिना किसी सबूत के दूसरों के प्रति कोई भी गलत धारणा नहीं बनानी चाहिए।
9. किसी एक व्यक्ति के ऊपर विशेष कृपादृष्टि नहीं होनी चाहिए। व्यक्तियों से भेदभाव नहीं करना चाहिए। दूसरों को नीचा दिखाने के लिए किसी एक सदस्य का गुणगान नहीं करना चाहिए।
10. नियमों का तरीके से पालन करने के लिए कठोर व्यवहार व खराब भाषा का उपयोग करना आवश्यक नहीं है। निर्देशक जो ऐसे कठोर व्यवहार का पक्षधर है, वह अपनी अयोग्यता का परिचय देता है।

संस्था के सदस्य

1. ऐसी संस्था ज्यादा समय तक स्थायी नहीं रहती जहां सदस्यों के मध्य भाईचारा व एकता की भावना न हो। मतभेद होना स्वाभाविक है, और सदस्य संस्था के उद्देश्य को भूलकर आपस में झगड़ने लगेंगे।
2. ऐसी संस्था ज्यादा समय तक कार्य नहीं कर सकती जिसके सदस्य अधिकारी की बात नहीं मानते। संस्था में आलस और लापरवाही फैल जाएगी और सदस्य इसका शिकार बन जाएंगे।
3. निर्देशक और सदस्यों के मध्य सिर्फ बाह्य सहयोग ही न हो परंतु मानसिक सहयोग भी होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि संस्था के सदस्यों को सिर्फ

निर्देशक की इच्छा के अनुसार ही कार्य नहीं करना चाहिए। यदि वे निर्देशक की इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं तो उन्हें दिखाना चाहिए जैसे वे स्वयं अपनी इच्छा से कार्य कर रहे हैं।

टिप्पणी

4. यदि सदस्य किसी एक नियम या आज्ञा में विश्वास नहीं करते तो उनकी चर्चा निर्देशक से करके समझना चाहिए और वह जब तक आश्वस्त न हो निर्देशक को गलत प्रभाव में नहीं रखना चाहिए।
5. यदि सदस्य किसी ऐसे नियम का सामना करते हैं जो सत्य और धर्म के खिलाफ न हो परंतु जो व्यावहारिक दृष्टिकोण से पालन करने योग्य न दिखता हो तो सदस्यों को उसका पालन करना चाहिए परंतु यदि वह धर्म व सत्य के खिलाफ हो तो सदस्यों को ऐसी संस्था छोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।
6. यदि कोई विशेष नियम या आज्ञा जो धर्म व सत्य के खिलाफ न हो परंतु जिसे सदस्य अपनी व्यक्तिगत कमजोरी के कारण पालन न कर सके तो उसे संस्था की प्रगति के लिए संस्था को छोड़ देना चाहिए।
7. यदि सदस्यों में आपसी मतभेद हो, यदि किसी भी सदस्य के व्यवहार के प्रति शंका हो, यदि कोई सदस्य असंतुष्ट है, उसके मन में शंका है, वह नाखुश है तो प्रत्येक कार्य में उस व्यक्ति के साथ विचार–विमर्श या चर्चा करनी चाहिए। यदि समस्या का समाधान नहीं होता तो अधिकारी के ज्ञान में लाना चाहिए तथा निर्णय उसके ऊपर छोड़ना चाहिए।
8. मतभेद वाली बातें सर्वोच्च अधिकारी के समक्ष तब तक नहीं ले जानी चाहिए जब तक कि संबंधित सदस्य से चर्चा न की गई हो या अपने अधिकारी को सूचित न की गई हो।
9. संस्था तब तक अच्छी तरह कार्य नहीं कर सकती जब तक उसके सदस्यों की गलतियों और कमजोरियों पर कानाफूसी की जाए। उसे संबंधित अधिकारी को बताना चाहिए व संबंधित व्यक्ति से खुले रूप में चर्चा करनी चाहिए। यदि ऐसी स्थिति कायम रहती है तो संस्था निर्जीव हो जाएगी और वह असत्य, बुराई, घमंड आदि का घर बन जाएगी।

संस्था की आर्थिक स्थिति

1. कोई भी वास्तविक कार्य निधि (फंड) से नहीं रुक सकता।
2. बैंक में निधि को डालकर उसके ब्याज का खर्च करना अनुचित है। संस्था के निर्देशक का यह विश्वास होना चाहिए कि संस्था लोगों के कल्याण के लिए है तथा उसे अपने बने रहने के लिए धन प्राप्त होता रहेगा।
3. निर्देशक को बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ेगा जब तक लोग संस्था की उपयोगिता के प्रति आश्वस्त न हो जाएं। परंतु यह कठिन परिश्रम उसकी सेवा का हिस्सा होगा।
4. एक समय के बाद बहुत सा धन इकट्ठा हो जाता है, परंतु यह धन ही संस्था को निर्जीव बना देता है। अतः एक आदर्श संस्था को धन इकट्ठा करने के प्रलोभन में नहीं पड़ना चाहिए।

टिप्पणी

5. सामान्यतः ऐसा देखा गया है कि जिन संस्थाओं को कार्य करने के लिए जनता का धन मिलता है वे उसे खर्च करने में लापरवाह हो जाते हैं। संस्थापकों के समक्ष यह बहुत बड़ी समस्या है। भारत जैसे गरीब देश की स्वयं सेवी संस्थाओं को किफायत से खर्च करना चाहिए।
6. संस्था का लेखा रखने पर समुचित ध्यान देना चाहिए। एक रुपये के खर्च को भी लिखना चाहिए और प्रमाणित ऑडिटरों से ही जांच करवानी चाहिए।

गांधी ने अपने उन्नीस सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम को पूर्ण स्वराज का कार्यक्रम कहा जो कि सिर्फ राजनीतिक ही नहीं परंतु सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता से सत्य और अहिंसा द्वारा निर्मित है। सामाजिक वैज्ञानिक इसे सामाजिक पुनर्विभाग के कार्यक्रम के रूप में देखते हैं जिसके द्वारा अस्पृश्यता, नशाखोरी, बेरोजगारी (खादी व ग्रामोद्योग), निचले वर्गों का पिछड़ापन जैसे कि छोटे किसान, मजदूर, जनजाति, कुष्ठ रोगी जैसी सामाजिक समस्याएं दूर की जा सकती हैं तथा इस कार्यक्रम के द्वारा समाज के विभिन्न वर्ग सांप्रदायिक एकता, आर्थिक समानता तथा राष्ट्रीय भाषा के द्वारा पास लाये जा सकते हैं। उन्होंने इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने वाली संस्थाओं के लिए आचार संहिता बनाई जो आज भी सामयिक है।

हर आंदोलन, व्यवसाय के लिए निर्धारित उद्देश्य एवं उनकी विधियां होती हैं, जिनके माध्यम से उन्हें प्राप्त किया जाता है। गांधी जी का उद्देश्य एक आदर्श समाज की स्थापना है। गांधी जी द्वारा अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए अपनाई गई विधियों एवं तकनीक का अध्ययन उचित है। ये विधियां एवं तकनीक मानव इतिहास में एक विशेष स्थान रखते हैं क्योंकि इनका उपयोग कभी भी राजनीति व समाज कार्य के क्षेत्र में एक साथ नहीं किया गया।

गांधी जी का कथन है कि साधन की उपयोगिता शुद्धता के आधार पर हो ताकि लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। गांधी जी के अनुसार उन्होंने स्पष्ट किया है कि लक्ष्यों को उनकी उपयोगिता के आधार पर सामाजिक उद्देश्यों के हित के लिए किया जाना आवश्यक है। सिद्धांत रूप में साध्यों का प्रगतिशील उपयोग मत से सहमत हूं। साध्यों के उपयोग की विधि, एक निश्चित क्रम या अनुपात में ही कार्यकारी है। विधि लंबी लगती है परंतु यह एक छोटे क्रम से ही पूरी हो जाती है।

गांधी जी द्वारा अपनाई गई सभी विधियां समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं। इनका प्रयोग करके देश के अतिरिक्त विदेशों में भी विभिन्न नेताओं ने सफलता प्राप्त की है, जैसे अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग ने अश्वेतों को समान अधिकार दिलाने हेतु किया। इसी तरह गांधी जी के कथन अनुसार सत्याग्रह की अन्य विधियों में हड़ताल भी एक कारगर अस्त्र या तरीका है। वह सामान्य या औद्योगिक ही क्यों न हो उसका भी आधार सत्य एवं अहिंसा पर होना चाहिए। उनके विचार अनुसार हड़ताल की प्रकृति एवं लक्ष्य न्यायिक प्रक्रिया द्वारा ही होना चाहिए। अन्य प्रकरण जो सामान्य जनमानस या राजनीतिक दलों द्वारा लगाए जाते हैं उनका भी स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए।

हड़ताल के प्रकार या प्रकृति

- किसी भी परिस्थिति में हमारा लक्ष्य अहिंसा के द्वारा ही समस्या का समाधान होना चाहिए। सत्ता या बल प्राप्ति के लिए इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी

- हड़ताल गुणों के आधार पर होनी चाहिए, जो कि न्यायोचित है जिन्हें जनमानस का समर्थन प्राप्त हो।
- आर्थिक संपन्नता के लिए या राजनीतिक उद्देश्यों के लिए हड़ताल का प्रयोग वर्जित है। बल्कि इसका प्रयोग दूरदर्शितापूर्ण परिणामों के लिए होना चाहिए। इसके परिणाम हड़ताल करने वालों के हित में नहीं होते, जबकि वे जनजीवन एवं समाज को प्रभावित करते हैं। उदाहरणस्वरूप पोस्टल हड़ताल वगैरह से जनता को अनावश्यक असुविधा होती है।

हड़ताल और जनता

- यदि जनता निष्पक्ष भाव से हड़ताल का समर्थन करे तो उसकी सफलता निश्चित है और जनता का विश्वास भी प्राप्त कर लेती है। स्वार्थी लोग इसकी अच्छाइयों को नहीं समझ पाते हैं। अतः दोनों पक्षों को किसी न्यायिक अभिकरण के माध्यम से समस्या का हल निकालना चाहिए।
- नियमानुसार जनता के सामने समस्या तब तक नहीं जानी चाहिए जब तक वह न्यायालय या अभिकरण के पास निर्णय के लिए लंबित रहे। ऐसे प्रकरण बहुत आते हैं। कर्मचारी अपने स्वार्थों के लिए लोगों को भड़काते हैं जिससे झगड़े की पूरी संभावना रहती है।
- भावनात्मक हड़ताल रुकावट बन जाती है और आंदोलनकारी अपने संवैधानिक अधिकारों को भूल जाते हैं।

मजदूर का कर्तव्य

- न्याय प्राप्ति के लिए हड़ताल मजदूरों का वैधानिक अधिकार है। लेकिन वह अपराध का रूप धारण कर लेती है, जब पूंजीपति उसे न्यायिक अभिकरणों में ले जाते हैं।
- मजदूर न हमेशा सतर्क रह पाता और न ही बुद्धि से निर्णय ले सकता है। पूंजीपति या उद्योगपति उन्हें एक बाजार की तरह उपयोग करते हैं ताकि धन अर्जित कर सकें। अतः उन्हें सतर्कतापूर्वक अपने हथियार नहीं डालना चाहिए। राजनीतिक हस्तक्षेप से भी मजदूर दुविधा में पड़ जाता है क्योंकि राजनीति उसे सत्ता या लाभ के लिए साधन के रूप में इस्तेमाल करती है।
- मजदूरों को राजनीतिक तौर पर उपयोग नहीं होना चाहिए क्योंकि यह देश के वातावरण या परिस्थितियों एवं जनहित के अनुकूल नहीं है।
- देश में हड़ताल, धरना सिर्फ मजदूरों के उत्थान के लिए होना चाहिए परंतु इसका उद्देश्य देशभक्ति से नहीं मुनाफा कमाने के लिए किया जा रहा है।
- हड़ताल सर्वसहमति से होनी चाहिए न कि किसी छल या चालाकी के दबाव से होनी चाहिए। उसमें गुंडा तत्व या लूटपाट करने वाले शामिल न हों। हड़तालियों के बीच आपस में सामंजस्य एवं सहयोग की भावना होनी चाहिए। यह बलपूर्वक नहीं बल्कि शांतिपूर्वक तरीके से होनी चाहिए।

टिप्पणी

- हड़तालियों में से यदि कुछ मजदूर काम करना चाहते हैं तो उन्हें किसी भी तरह की शारीरिक हिंसा या आर्थिक नुसान नहीं पहुंचाना चाहिए। बूढ़े एवं महिला कर्मचारियों के साथ भी शांतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।
- हड़तालियों को कुछ काम स्वयं या संयुक्त रूप से करने चाहिए, जिससे वे अपने परिवार के लिए हड़ताल के दौरान साधन जुटा सकें। इस कार्य की रूपरेखा पहले ही तय कर लेनी चाहिए। हड़ताल प्रभावकारी एवं शांतिपूर्वक होनी चाहिए। लूटपाट या मारपीट के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

नियोक्ता की भूमिका

मजदूरों की हड़ताल होती है तो नियोक्ता का व्यवहार क्या होता है? वर्तमान स्थितियों में यह जानना एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसमें अमेरिकन उपनाम सर्वप्रथम है, जिसे गुंडावाद की संज्ञा देते हैं। यह एक गलत एवं विध्वंसक कार्य है। हड़ताल के सिद्धांतों एवं गुणों के आधार पर अच्छे या बुरे की समीक्षा की जाती है। मजदूरों को हड़ताल की सफलता के लिए संयमित व्यवहार करना चाहिए।

सफलता की शर्तें

हड़ताल की सफलता के लिए जिन शर्तों को गांधी जी ने बताया है, वे निम्नलिखित हैं–

1. हड़ताल का कारण न्यायोचित एवं सामाजिक हित के लिए होना चाहिए। हड़तालियों के बीच कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए, बल्कि व्यावहारिक सामंजस्य होना चाहिए।
2. गैर हड़तालियों पर किसी भी प्रकार का बल प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. हड़ताल के दौरान हड़तालियों को अपने परिवार के पोषण के लिए यूनियन चंदे पर निर्भर न होकर किसी अस्थायी उत्पादक व्यवसाय में अपने आपको लगाकर अपने परिवार के पोषण हेतु धन जुटाना चाहिए।
4. कई बार उद्योगपति या मिल मालिकों को दूसरे मजदूर मिल जाते हैं और वे अस्थाई तौर से उनसे काम कराकर हड़ताल को निष्प्रभावी बनाने का प्रयास करते हैं। गांधी जी ने ऐसी स्थिति में सभी कर्मचारियों को सामूहिक रूप से इस्तीफा देने को एक मात्र उपाय बताया है।
5. उपरोक्त शर्तों को नहीं माने जाने पर हड़ताल की सफलता संदिग्ध रहती है जिससे प्रतिद्वंद्वी को हमारी कमजोरियों का एहसास हो जाता है। हम यदि असफल या बुरे उदाहरणों को अपनाते हैं तो यह एक भूल है। हड़ताली को हड़ताल के लक्ष्य एवं उसकी सफलता के लिए निहित उद्देश्यों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। हड़ताल की सफलता नियमों के पालन से ही संभव है।

गांधी जी के समाज कार्य की समस्त पद्धतियों और तकनीकों का एक संकलित नाम 'सत्याग्रह' हो सकता है जो कि राजी करना, आत्म पीड़ा, उपवास, असहयोग, बहिष्कार, सविनय अवज्ञा, धरना देना व हड़ताल आदि है। ये सभी पद्धतियां गांधी जी के मूल्यों अर्थात सत्य और अहिंसा पर आधारित हैं। प्रत्येक सत्याग्रहियों को आचार संहिता का पालन करना चाहिए। गांधी जी के समाज कार्य में हड़ताल का उपयोग अलग तरीके से हुआ है तथा संबंधित साहित्य में नियोक्ताओं की भूमिका और श्रमिकों तथा जनता की भूमिका की विस्तार से चर्चा की गई है।

टिप्पणी

किसी सजीव चीज को चोट न पहुंचाना निःसंदेह अहिंसा का भाग है। परंतु यह इसकी निम्नतम अभिव्यक्ति है। अहिंसा के सिद्धांत, विचार और अभिव्यक्ति के क्षेत्र काफी व्यापक हैं। किसी भी बुरे विचार, अवांछनीय जल्दबाजी, कार्य अधूरा छोड़ना, नफरत और किसी का बुरा चाहने से भी यह भंग हो जाती है। संसार को जो चाहिए, उसमें विघ्न डालने से भी यह भंग हो जाती है। अहिंसा के बिना सत्य को ढूंढ़ना और प्राप्त करना असंभव है। अहिंसा और सत्य इतने जुड़े हुए हैं कि वास्तविक रूप से इन्हें अलग करना असंभव होगा। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा प्रयोजन (पथ) है और सत्य लक्ष्य है। साधनों को प्राप्त करने के साधन हमारी पहुंच में होने चाहिए और इसीलिए अहिंसा हमारा परम कर्तव्य है। यदि हम अपने साधनों का ध्यान रखते हैं तो हम निश्चित ही जल्दी या देर से लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। जब हम इस तथ्य को समझ लेते हैं तो विजय निस्वयंभावी होगी।

हमारे सभी कार्यकलाप सत्य पर केंद्रित होने चाहिए। हमारे जीवन का श्वास सत्य ही होना चाहिए। सही जीवन के सभी नियम बिना प्रयास के आ जाएंगे, यदि एक तीर्थयात्री की प्रगति में जब यह अवस्था आ जाती है तो आज्ञाकारी का सहज रूप होगी। परंतु सत्य के बिना जीवन में कोई भी नियमों, सिद्धांतों का पालन नहीं किया जा सकता।

सत्य परमेश्वर का सही पदनाम है, अतः सभी मनुष्यों को इसका अनुकरण करने में कोई बुराई नहीं है एवं यह उसका कर्तव्य है। अतः सत्य का पालन करने में किसी से भूल हो भी जाए तो वह अपने आप ही ठीक हो जाएगा। सत्य की खोज में तप–आत्म–पीड़ा, कभी–कभी मृत्यु भी सम्मिलित है। इसमें स्वार्थ के लिए जरा–सा भी स्थान नहीं है। इस प्रकार बिना किसी स्वार्थ के सत्य की खोज में कोई भी ज्यादा देर के लिए स्वयं मार्ग से भटक नहीं सकता। यदि वह गलत रास्ते पर चलता है तो लड़खड़ा जाता है और सही मार्ग की ओर फिर से भेज दिया जाता है।

अस्तेय

ऐसा असंभव है कि एक मनुष्य चोरी करे और साथ ही यह भी कहे कि वह सत्य को जानता है और प्रेम को हृदय में संजोये रखता है। परंतु हममें से प्रत्येक चेतन व अचेतन रूप से, अधिक या कम, चोरी के दोषी हैं– इस विश्वास से किसी चीज को ले लेना कि यह किसी की जागीर नहीं है, चोरी कहलाता है। सड़क पर मिली हुई वस्तु या तो शासक की होती है या स्थानीय अधिकारी की होती है।

आवश्यकता न होने पर भी किसी की वस्तु उसकी आज्ञा से लेना भी चोरी कहलाता है। हमें ऐसी कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करनी चाहिए जिसकी हमें आवश्यकता न हो। इस प्रकार की चोरी सामान्यतः भोजन के लिए होती है। ऐसा फल जिसकी आवश्यकता न हो या आवश्यकता से अधिक ले लेना भी चोरी है। हम अपनी वास्तविक आवश्यकताओं के बारे में प्रायः नहीं जानते और हममें से अधिकांश अपनी आवश्यकताओं को बढ़ा लेते हैं और अनजाने में अपने आपको चोर बना लेते हैं। यदि इस विषय पर हम विचार करें तो हम यह पाएंगे कि हम अपनी अनेक आवश्यकताओं से छुटकारा पा सकते हैं। ऐसा व्यक्ति जो अस्तेय के नियम का पालन करता है, वह अपनी आवश्यकताओं को ज्यादा से ज्यादा कम कर सकता है। इस दुनिया की दुःखदायी गरीबी अस्तेय के सिद्धांत का उल्लंघन करने से ही उत्पन्न हुई है।

टिप्पणी

ब्रह्मचर्य (आत्म अनुशासन)

ब्रह्मचर्य का अर्थ अपनी सभी इंद्रियों को वश में रखना होता है। ऐसा व्यक्ति जो सिर्फ एक इंद्रीय को वश में रखता है, और बाकी सभी इंद्रियों को मनमानी करने देता है तो उसका वह प्रयास भी निरर्थक हो जाएगा। अपने कानों से उत्तेजक कहानियां/बातें सुनना, आंखों से उत्तेजक दृश्य देखना, अपनी जीभ से उत्तेजना प्रदान करने वाले भोजन को चखना, अपने हाथों से उत्तेजक वस्तुओं को छूना और साथ ही शेष अंग के द्वारा नियंत्रण की अपेक्षा करना अपने हाथों को आग में डालकर किसी भी प्रकार की तकलीफ से बचने की कामना करना होता है। वे सभी इंद्रियां एक–दूसरे पर निर्भर होती हैं। निचले स्तर पर मन इंद्रियों से जुड़ हुआ होता है। मन के ऊपर नियंत्रण न करके सिर्फ शारीरिक नियंत्रण करना कुछ समय के लिए हो सकता है परंतु इसका ज्यादा लाभ नहीं होता।

असंग्रह

असंग्रह से तात्पर्य यह है कि हमें ऐसी वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए जिनकी आवश्यकता हमें वर्तमान में न हो। हमारे पास जितना कम संग्रह होगा हमारी आवश्यकता भी उतनी ही कम होगी और हम उतने ही अच्छे होंगे। किस बात की अच्छाई? इस जीवन के उपयोग के लिए नहीं परंतु अपने साथी मनुष्यों की व्यक्तिगत सेवा के द्वारा आनंद प्राप्त होता है ऐसी सेवा जिसमें अपना तन–मन और आत्मा का समर्पण हो। संग्रह करना अर्थात भविष्य के लिए प्रबंध करना एक सत्य का खोजी, जो प्रेम के नियम का अनुसरण करता है वह कल के लिए संचय नहीं कर सकता। परमेश्वर कभी भी कल के लिए संचय नहीं करता तथा वह निश्चित रूप से वर्तमान की आवश्यकता से अधिक की रचना कभी नहीं करता। अतः यदि हम उसके प्रबंध में विश्वास करते हैं तो हमें यह विश्वास होना चाहिए कि वह हमें हमारी प्रतिदिन की रोटी प्रदान करेगा अर्थात वह सभी चीजें जिनकी हमें आवश्यकता होती है। संत और अनुयायी जो ऐसे विश्वास में रहे हैं उन्होंने अनुभव से इस बात का हमेशा समर्थन किया है। इस ईश्वरीय नियम के प्रति हमारी अज्ञानता या उपेक्षा, जो मनुष्य को प्रतिदिन की रोटी प्रदान करता है, के कारण असमानता अपने सभी कष्टों के साथ उत्पन्न हुई।

धनवानों के पास अत्यधिक वस्तुएं होती हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती है जो कि उपेक्षित पड़ी रहती हैं और नष्ट हो जाती हैं, जबकि करोड़ों लोग जीवित रहने के साधनों के अभाव में भूखे मर जाते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ अपनी आवश्यकता के अनुसार सामग्री रखे तो कोई भी व्यक्ति जरूरतमंद नहीं रहेगा और सभी संतुष्ट रहेंगे। जैसा कि विदित है, कि धनवान भी गरीबों के समान ही असंतुष्ट होते हैं। एक गरीब आदमी करोड़पति बनने के लिए तैयार रहता है और करोड़पति, अरबपति बनना चाहता है। धनवान को असंग्रह करने की पहल करनी चाहिए जिससे संतुष्टि की भावना संसार में प्रसारित हो सके। यदि वे अपनी संपदा सीमित रखें तो भूखों को आसानी से भोजन दिया जा सकेगा और धनवानों के साथ संतुष्टि का पाठ पढ़ सकेंगे।

यदि आप अपनी समस्त संपत्ति को त्याग दें, तो वास्तव में आपके पास इस संसार का समस्त धन होगा। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो आपको वह सभी प्राप्त हो जाता है जो आपके लिए आवश्यक है अर्थात सब कुछ।

टिप्पणी

शरीर श्रम

बाइबिल के अनुसार, "अपनी रोटी माथे के पसीने से काम करके कमाएं।" शरीर श्रम का यह अर्थ है कि सभी उचित शारीरिक श्रम करके अपनी रोजी कमाने के योग्य बनना चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि अपनी आजीविका के लिए शारीरिक श्रम किया जाए। आजीविका को विस्तृत दृष्टिकोण से देखें। परंतु सभी को उपयोगी शारीरिक श्रम करना चाहिए। रोजी के लिए शारीरिक श्रम का अर्थशास्त्र जीवन जीने का जीवित तरीका है। इसका कार्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य को भोजन और वस्त्र के लिए अपने शरीर के द्वारा श्रम करना चाहिए। यदि मैं लोगों को इसके महत्व और आवश्यकता के विषय में विश्वास दिला सकूं तो भोजन और वस्त्रों की कमी कभी नहीं होगी। विचार यह है कि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को अपने भोजन के लिए पर्याप्त श्रम करना चाहिए और उसे अपनी बौद्धिक क्षमता आजीविका और भविष्य के लिए संचय करने में न लगाकर मानवता की भलाई में लगानी चाहिए। यदि इस सिद्धांत को सभी व्यवहार में लाएं तो सभी मनुष्य समान होंगे। कोई भी भूखा नहीं रहेगा और संसार एक पाप करने से बच जाएगा। गीता के तीसरे अध्याय में इस सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। जहां हमें यह बताया गया है कि वह जो बिना त्याग के भोजन ग्रहण करता है वह चोरी का भोजन ग्रहण करता है। यहां पर त्याग का तात्पर्य शारीरिक श्रम से है।

सर्वोदय कार्यताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता के लिए आवश्यक विशेषताएं निम्न हैं–

- **शांति** : गांधी जी ने अंतर्राष्ट्रीय व स्थानीय रूप से शांति का प्रचार किया। वह यह उपेक्षा करते हैं कि भारत विश्व में शांति के लिए अहम भूमिका निभाए ताकि वह स्वयं न तो शोषित और न किसी का शोषण करे। उनका विश्वास था कि भारत विश्व शांति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाए।

  स्थानीय स्तर पर उन्होंने तनावपूर्ण सामाजिक परिस्थितियों जैसे दंगा इत्यादि से निबटने का सुझाव दिया। अहिंसा के द्वारा उन्होंने एक स्वैच्छिक संस्था शांति सेना के रूपरेखा रखी जो कि प्रत्येक गांव, शहर व देश में कार्य करेगी।

- **समानता** : गांधी जी के अनुसार मनुष्य के अनेक रूप होते हैं, परंतु आत्मा एक ही होती है। बाह्य विभिन्नता के बावजूद जहां सबको गले लगाने वाली आधारभूत एकता होती है वहां कैसे ऊंच–नीच की भावना हो सकती है। वे सभी एक उम्र, ऊंचाई, चमड़ी और बुद्धि के नहीं हैं परंतु ये असमानताएं अस्थायी व सतही होती हैं। इस भूमि की परत के नीचे जो आत्मा छुपी हुई है वह एक व सभी स्त्री–पुरुषों सभी के लिए समान होती है। अनेकता में एकता सच्ची व ठोस एकता होती है। :असमानता' के शब्द में एक दुर्गंध होती है जो अभिमान व क्रूरता की ओर ले जाती है।

- **मनुष्य की प्रतिष्ठा और दोषी न ठहराने का मूल्य** : आचार्य विनोबा भावे ने एक और मूल्य को जोड़ा है, जिसे दोषारोपण न करना कहा है तथा जिसकी जड़ें मनुष्य की प्रतिष्ठा में निहित होती हैं। उनके अनुसार दूसरों में कमजोरियों और कमियों को ढूंढ़ना और फिर उन पर दोषारोपण करके अपने समय व ऊर्जा की बरबादी करने के बदले हमें रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा

टिप्पणी

उनकी खामियों पर भी ध्यान देना चाहिए जिससे व्यक्ति विशेष का भला होगा और फिर समाज का भी भला होगा।

- **प्रजातंत्र :** प्रजातंत्र का निचोड़ यह है कि वह प्रत्येक वर्ग के लोगों के समस्त भौतिक, आर्थिक व आत्मिक संसाधनों को विकसित करने की कला और विज्ञान है, जो सभी की भलाई के लिए होता है।

  प्रजातंत्र का सार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति विभन्न प्रकार की अभिरुचियों का प्रतिनिधित्व करता है कि जिससे राष्ट्र का निर्माण होता है। यह सच है कि वह विशेष रुचियों के प्रतिनिधित्व की उपेक्षा नहीं करता न ही उसे करना चाहिए। पर इस प्रकार का प्रतिनिधित्व उसकी परीक्षा नहीं है। इस संदर्भ में आचार्य विनोबा भावे के विचार एक कदम आगे हैं। उनके अनुसार वर्तमान में प्रजातंत्र की दलगत राजनीति को ग्रहण लगा है जो कि व्यक्ति उन्मुखी नहीं है परंतु सत्ता उन्मुखी है। अतः प्रजातंत्र राजनीति द्वारा नहीं चलाना चाहिए परंतु लोक नीति द्वारा चलाना चाहिए अर्थात ऐसी नीति जो लोगों की, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए हो जहां निर्णय बहुमत के द्वारा न हो परंतु सर्वसम्मति से लिए जाएं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. गांधी जी ने अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ का उद्घाटन कब किया था?

   (क) 26 अक्टूबर, 1934 को (ख) 2 अक्टूबर, 1934 को

   (ग) 26 जनवरी, 1948 को (घ) 15 अगस्त, 1947 को

4. किस वर्ष जन साधारणा की भाषा समस्त भारत की बोली को हिन्दुस्तानी किया गया?

   (क) 1920 में (ख) 1921 में

   (ग) 1924 में (घ) 1925 में

3.4 ग्रामदान का प्रभाव

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र है। गांधी जी का प्रभाव वैधानिक स्तर पर भी देखा जा सकता है। अपने जीवन के अंतिम खंडों में उन्होंने नेहरू जी को एक मंत्र विस्तार देश की नीतियों को परखने हेतु दिया था। उन्होंने नेहरू जी से कहा कि मैं तुम्हें एक तिलिस्म दे रहा हूं, इसका उपयोग करना जब तुम संदेह में हो तथा तुम्हारा अहम तुम्हारे आड़े आता हो तब उन सभी असहाय व गरीब व्यक्तियों के चेहरों का ध्यान करो जिनसे तुम कभी मिले या देखा था और अपने आप से पूछो उन असहाय व्यक्तियों की मदद के लिए उठाए जाने वाले पहले कदम के बारे में जो उनको मदद पहुंचाएगा। क्या उन्हें उससे कुछ भी फायदा होगा? क्या वे उससे अपने जीवन व किस्मत पर नियंत्रण कर पाएंगे? दूसरे शब्दों में जब तुम देखोगे करोड़ों लोग जो भूखे पेट हैं जिनका स्वराज से आत्मीय जुड़ाव नहीं रहा है, तब तुम महसूस करोगे कि तुम्हारी शंका खत्म हो चुकी है व अहम भस्म हो गया होगा।

वर्तमान में गांधीवादी विचारकों व कार्यकर्ताओं द्वारा यह मत रखा जाता है कि भारत गांधी जी के दिखाए रास्ते पर ही चल रहा है। परंतु हमारी स्वतंत्रता के प्रारंभिक दौर में गांधी जी के तिलिस्म का प्रभाव हम कई वैधानिक क्रियाओं में देख सकते हैं। भारतीय संविधान के कई अनुच्छेद मुख्य रूप से मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीतिनिर्देशक तत्वों के भाग में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, जो गांधी जी के विचारों के काफी करीब हैं। संविधान के छुआछूत के, समता के, सेक्यूलरिज्म के, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के, निचले तबके के, लघु उद्योगों के, ग्राम पंचायत के, शक्ति व साख के, विकेंद्रीकरण के उपबंध जो किए गए वे गांधी जी द्वारा विशेष रूप से उल्लेखित किए गए थे। 1947 के बाद सामाजिक न्यायाधिकरण में किए गए प्रयासों में सामाजिक समस्या तथा असहाय व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा को लेकर किए गए। यह प्रयास भी गांधी जी के विचारों की देन है। उनके विचारों का प्रतिबिंब पंचवर्षीय योजनाओं में भी दिखता है।

रचनात्मक कार्यों की निरंतरता

गांधी काल व उससे पूर्व के काल में जो संस्थाएं स्थापित हुई थीं वे आज भी 19 सूत्रीय रचनात्मक कार्यों के क्रियान्वयन के लिए प्रयास कर रही हैं। उनके द्वारा राज्यों से संबंध सही दिशा में बदले हैं। ब्रिटिश सरकारों द्वारा इन्हें संदेह व विद्रोही के रूप में देखा जाता था, परंतु स्वतंत्र भारत में कुछ अपवादों के अलावा ज्यादातर राज्य व केंद्र से सहयोग पा रही हैं जिसमें आर्थिक सहयोग भी प्राप्त किया जा रहा है। केंद्र सरकार ने पहल करते हुए अखिल भारतीय खादी तथा ग्राम उद्योग कमीशन की स्थापना कर खादी व ग्रामोद्योग के विकास को लेकर अपनी नीति स्पष्ट कर दी। राज्य सरकार, स्वयं सेवी संस्था तथा सहकारी संस्था द्वारा बनाए गए ग्रामोद्योग बोर्ड को कमीशन से आर्थिक व तकनीकी मदद प्राप्त होती है। कमीशन द्वारा हितग्राहियों को सीमांत धन मुहैया कराया जाता है जिससे वह अपने क्षेत्र के बैंक से ग्रामीण रोजगार योजना के अंतर्गत ऋण प्राप्त कर सके। उसी तरह से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति कमीशन का निर्माण, केंद्र सरकार द्वारा इस वर्ग के उत्थान के लिए सहयोग प्रदान करने हेतु किया जो कि गांधी जी के मिशन 1930 का विस्तार स्वरूप है। इसके अलावा इनकी महत्ता जमीनदारी व जागीरदारी के माध्यम से जो भूमिहीन व सीमांत खेती करने वाले किसानों का शोषण किया जाता रहा है उससे मुक्ति दिलाना है। इसी तरह के प्रयास केंद्र सरकार के निर्देशानुसार राज्य सरकारों द्वारा किए जा रहे हैं। भूमि पुनर्वास व भूमि मुद्रांकण अधिनियम पारित कर आर्थिक समानता व संपत्ति कमीशन द्वारा एकाधिपत्य का निषेध करना है। पंचायती राज अधिनियम पारित किया गया जिससे सत्ता का विकेंद्रीकरण किया जा सके। उपरोक्त सभी व अन्य कई कारण गांधी जी के रचनात्मक कार्यों व शासन के कार्यों के समांतर स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हैं। गांधीवादी संस्थाएं व कार्यकर्ता वर्तमान में भी अपना कार्य स्वयं सेवी रूप में जारी रखें हैं। उपरोक्त में से कुछ संस्थाओं के बारे में आगे उल्लेख किया गया है।

ग्रामदान के प्रभावों को निम्न बिंदुओं में देखा जा सकता है–

1. **आदिम जाति सेवक संघ – अनुसूचित जनजाति** : संघ के रूप में कार्यरत, भारत में कार्य करने वाली सभी गांधीवादी संस्थाएं इनसे संबंधित हैं। भारत में कार्य करने के लिए संघ द्वारा इन्हें दिशा, सहयोग तथा आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाता है। संपूर्ण भारत में अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए 'आश्रम–विद्यालय' का तंत्रजाल है।

2. **हरिजन सेवक संघ – अनुसूचित जाति** : मुख्य रूप से इनकी राज्य इकाई पद यात्रा द्वारा व अन्य संसाधनों के सहयोग से अस्पृश्यता के विरोध के प्रति जनादेश एकत्रित कर लोगों को जागरूक करती है। ये संघ आश्रम विद्यालय के रूप में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए कल्याणकारी प्रयास कर रहे हैं।

3. **सेवाग्राम – समाज कार्य का गांधीवादी परिसर** : गांधी जी ने जमनालाल बजाज से आग्रह किया तब उन्होंने अपने करीबी विनोबा भावे को 1921 में वर्धा में सत्याग्रह आश्रम की एक शाखा की स्थापना के लिए भेजा। वहां से पास शेगांव नाम की जगह पर मीरा बहन नामक गांधीवादी पहले से कार्य कर रही थीं। सन 1936 में शेगांव में एक आश्रम बनाया गया जिसका दोबारा नाम सेवाग्राम रखा गया तथा सेवाग्राम काफी समय तक गांधी जी के राजनीतिक दल का मुख्यालय रहा। आज वर्धा कई सारी रचनात्मक गतिविधियों का केंद्र है जो गांधीवादी आधार पर क्रियान्वित की जाती हैं। महिला आश्रम तथा ब्रह्म विद्या मंदिर, पवनार महिलाओं की स्वतंत्रता व सशक्तिकरण पर कार्य करता है। गांधीवादी विचारों पर आधारित संस्थान उन विचारों पर शोध प्रशिक्षण तथा डिप्लोमा कोर्स का संचालन करते हैं। दातापुर का संस्थान कुष्ठ रोगियों की चिकित्सा व शोध पर कार्य करता है। यह संस्थान विज्ञान व प्रौद्योगिकी के सहयोग से ग्रामीण क्षेत्र में गांधीवादी सिद्धांतों के साथ कार्य करता है।

4. **गांधी मैमोरियल न्यास तथा गांधी जी एकता संस्थान** : यह शांति तथा सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य करता है। गांधी जी के स्वर्गवास के पश्चात यह निश्चित था कि गांधी जी मेमोरियल न्यास (ग्रामीण स्मारक निधी) की स्थापना की जाएगी। उनके अनुयायियों द्वारा इस कार्य हेतु 12 करोड़ रुपये एकत्रित किए गए। न्यास द्वारा गांधीवादी समाज कार्य पर की जाने वाली प्रशिक्षण कार्यशाला तथा शोध कार्य को सहयोग प्रदान किया जाता है। गांधी जी शांति संगठन शांति की गांधीवादी अवधारणा पर आधारित है तथा इसकी कार्यप्रणाली स्थानीय से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक विस्तृत है।

5. **कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय मेमोरियल न्यास – ग्रामीण महिला व बच्चों के लिए** : जैसा कि पहले बताया गया, कस्तूरबा गांधी के जाने के बाद सन 1944 में एक करोड़ की राशि इस न्यास के लिए एकत्रित हुई। इसका मुख्यालय इंदौर में स्थापित किया गया। न्यास के द्वारा पूरे देश में कार्य किया जाता है। परिवार कल्याण, महिला तथा बच्चों, स्वच्छता इत्यादि पर ग्रामीण क्षेत्र में कार्य किया जाता है। विशेषतौर पर यह ग्रामीण महिलाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित करती है। हजारों की संख्या में प्रशिक्षित महिलाओं द्वारा गांधीवादी रचनात्मक क्रियाओं को ग्रामीण क्षेत्र में संचालित किया जा रहा है।

6. **गांधीवादी समाज कार्य के अन्य क्षेत्र** : अहमदाबाद के मजदूरों को एकत्रित कर गांधी जी द्वारा 'मजदूर महाजन संघ' की स्थापना की गई जो गुजरात में आज भी कार्य कर रहा है। उसी तरह अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना खादी के तथा बुनकरों के उत्थान के लिए की गई तथा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना लघु उद्योग, ग्रामीण उद्योगों तथा कारीगरों की सुरक्षा व विकास के लिए की गई थी। निषेध के लिए समिति की स्थापना की

टिप्पणी

गई ताकि राज्य सरकारों द्वारा गौसेवा संघ, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अखिल भारतीय कुष्ठ संगठन, गाय की रक्षा, राष्ट्र भाषा के विस्तार, विशेष रूप से दक्षिण के राज्यों में कुष्ठ रोगियों के उत्थान हेतु कार्य किए जा सकें। इन सभी के अलावा बड़ी संख्या में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कई सारे व्यक्तियों द्वारा गांधी जी के 19 सूत्रीय कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता है।

7. **सर्वसेवा संघ – संस्थानों के भीतर समन्य** : गांधी जी की इच्छा थी कि सभी संस्थाएं व संघ इस तरह से समन्वय के साथ कार्य करें जिससे हम पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकें। परंतु यह उनके जीवन समय में नहीं हो सका। इसके पश्चात प्रेरणा स्वरूप विनोबा भावे ने सभी संघ प्रमुखों से भेंट कर एक संघ की स्थापना करने का आग्रह किया। जिसके पश्चात अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ का अस्तित्व उभरा जिसमें कई संस्थान व संघ मिल गए थे। संघ ने दूसरे गांधीवादी संघों से तालमेल कर भारत में समाज कार्यों हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही कारण है कि गांधी के स्वर्गवास के पश्चात भी उनके 19 सूत्रीय गांधीवादी रचनात्मक कार्य आज भी जारी हैं कुछ आवश्यक परिवर्तन के साथ।

आचार्य विनोबा भावे के अनुसार ग्रामदान व भूदान में दान शब्द को किसी भी तरह के समान अर्थ में न समझा जाए अपितु यहां यह समान वितरण के अर्थ के रूप में परिभाषित किया गया। जिस तरह से कुदरत ने वायु, जल सबको समान रूप से वितरित किया उसी तरह से उसने जमीन पर भी सबका समान हक दिया हुआ है। इस पर किसी का स्वामित्व व एकाधिकार नहीं है। जिस तरह से जलवायु हमें समान रूप से उपहार स्वरूप प्राप्त हुई उसी तरह से जमीन भी हमें उपहार में ही मिली है। यह भूदान का पहला कदम था। आंदोलन के दौरान जमीन मालिकों ने स्वैच्छिक रूप से अपनी जमीन को उन्हें दान करना शुरू किया जिनके पास जमीन नहीं है। परंतु यह आंदोलन जमीन देने तक सीमित नहीं था इसके और भी उद्देश्य निर्धारित किए गए थे जो कि निम्नलिखित है–

(1) **निजी स्वामित्व को खत्म करना** : जिस तरह से हमें कुदरत ने जल, वायु के रूप में प्राकृतिक उपहार प्रदान किए हैं उसी तरह से जमीन भी है। ये सभी हमारी सामाजिक संपत्ति हैं। उसी तरह से धन, संपत्ति, बौद्धिक संपत्ति (ज्ञान, सत्ता, क्षमता, अनुभव, कला आदि) व्यक्ति के द्वारा अर्जित होती हैं परंतु व्यक्ति भी तो समाज का एक अंग है। इस तरह से उस वस्तु पर या संसाधन पर अपना मालिकाना हक नहीं जताता है। उसके रक्षक की भूमिका निभाता है। उनका असली मालिकाना हक समाज का है वह उसका उपयोग सामाजिक कल्याण में व विकास में कर सकता है।

(2) **आंतरिक सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देना** : आंदोलन का लक्ष्य धनी एवं निर्धन के बीच के अंतर को कम करना था। यह सामाजिक न्याय व समता का विस्तार करता। इसका मकसद लोगों के व्यक्तित्व व दृष्टिकोण में बदलाव करना था ताकि सभी एक–दूसरे के प्रति भाईचारे की भावना रखें। उन पर स्तर, नाम, ग्राम व राज्य का प्रभाव न हो।

(3) **शक्ति को जनता की शक्ति में बदलना** : गांधी जी की तरह विनोबा भावे ने भी हिंसा को हर मंच से नकारा था। उनके अनुसार सामान्यतः राज्य की मुख्य शक्ति उसकी पुलिस, फौज में होती है, परंतु प्रजातांत्रिक राज्य में वह जनता के

टिप्पणी

मत को प्राप्त कर कार्य करता है। भूदान आंदोलन का उद्देश्य इस शक्ति से उसके खुद के भीतर संचालित होने वाली शक्ति में बदलना था तथा मिलिट्री व पुलिस का उपयोग राज्यविहीन व्यवस्था में ही होना चाहिए। भूदान आंदोलन का उद्देश्य स्वयं के अंदर अनुशासन लाना है। यह एक राज्यविहीन समाज बनाने में काफी सहयोगी होगा।

(4) **राजनीति का लोकनीति में परिवर्तन** : विनोबा भावे के अनुसार, आज राज्य पार्टियों द्वारा चलाए व दबाए जाते हैं, राजनीति ही शक्ति है, जिसमें लोगों के अस्तित्व का प्रभाव स्पष्ट नहीं था। भूदान आधारित समाज पार्टियों के दुष्प्रभाव से मुक्त तभी होता है जब राजनीति को जनता द्वारा संचालित किया जाता है और तब वह लोकनीति का रूप धारण कर लेती है, जिसमें नीति जनता के लिए जनता द्वारा बनाई जाती है।

(5) **पूर्ण क्रांति की शुरुआत करना** : पूर्व उल्लेखित चरणों से समाज निश्चित रूप से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, क्रांति व शांति तथा अहिंसा की दिशा में बढ़ेगा जैसा कि विनोबा भावे के शब्दों में भूदान आधारित गांव उद्योग व अहिंसात्मक क्रांति को पूर्णता के रूप में उल्लेखित किया गया।

ग्रामदान तंत्र

भूदान आंदोलन के शुरुआती दौर में जमीन के स्वामी से आग्रह किया जाता था कि वह अपनी भूमि का छठा हिस्सा उनको दान में दे जो भूमिहीन है। बहुत जल्द ही भूदान ग्रामदान में बदल गया। निम्नलिखित शर्तों को पूरा कर ही कोई गांव ग्रामदानी ग्राम घोषित किया जा सकता है–

1. ग्राम सभा सभी सदस्यों के द्वारा बुलाई जाए तथा सर्वसहमति से निर्णय की प्रक्रिया हो।
2. ग्राम की 50 प्रतिशत भूमि की मिलकियत उन लोगों को वितरित कर दी जाएगी जो भूमिहीन हैं। भूमि मिलकियत नीति से ग्राम सभा को हस्तांतरित होगी।
3. उन किसानों को हक होगा कि वे उसमें क्या बोएं या उसका क्या उपयोग करे परंतु इसका मालिकाना हक सिर्फ ग्रामसभा के पास होगा और किसान उसे लीज पर या विक्रय नहीं कर सकते।
4. सभी व्यक्ति अपनी भूमि का बीसवां भाग या 5 प्रतिशत भूमिहीन कृषकों को देंगे ताकि कोई भी भूमिहीन न रहे।
5. एक ग्राम कोष की स्थापना की जाएगी जिसमें ग्राम का हर किसान मुनाफे का चालीस प्रतिशत, मजदूर मजदूरी का तीस प्रतिशत, नौकरीपेशा लोग वेतन की तीस प्रतिशत राशि से सहयोग करेंगे। यह राशि गांव के विकास व कल्याण के लिए उपयोगी होगी। ग्रामदान ग्राम मुक्त होंगे तीन प्रमुख बाधाओं से– पुलिस, कोर्ट बाजार, ब्याज।

ग्रामदान आंदोलन की आलोचना

मानव, समाज, समूह द्वारा किया गया कोई भी कार्य पूर्णतः सही या सफल कभी नहीं हो सकता, उसी तरह ग्रामदान व भूदान पर आलोचकों ने निम्न कमजोरियों की चर्चा की है–

टिप्पणी

- शुरुआत में लक्ष्य 5 करोड़ एकड़ भूमि एकत्रित करने का रखा गया जिसमें उसका दसवां हिस्सा यानी 8.4 प्रतिशत एकत्रित किया जा सकता था।
- भूमि का पुनर्वितरण पूर्णतः गलत था। सिर्फ 30 प्रतिशत कुल भूमिदान से प्राप्त हुई।
- जिस तरह से भूमि का आवंटन किया गया उसने खेती की लागत में वृद्धि की तथा खेती के सही तरीके की अवहेलना की।
- ज्यादातर जो जमीनें उपलब्ध कराई गईं वे बंजर व ढाल पर व खेती के लिए अनुपयुक्त थीं।
- आंदोलन की तीव्रता के समय कई सारे दानकर्ताओं ने दान के लिए स्वीकृति प्रदान की परंतु बाद में सभी ने अपना कार्य नहीं किया।
- भूदान बोर्ड हर राज्य में बनाए गए परंतु उनके द्वारा सही तरीके से कार्य न करने के कई कारण थे– वैधानिक, मानव संसाधन, दबाव आदि।
- वास्तविकता में ग्रामीण परिवेश की संरचना गांधी, विनोबा व सर्वोदय के आदर्श ग्राम की कल्पना से अलग थी।

ग्रामदान की उपलब्धियां

एक मशहूर कहावत है कि हर विवाद के पीछे मुख्य रूप से तीन कारण होते हैं– भूमि, महिला व धन। मानव सभ्यता अपने इतिहास में इन कारणों से कई विवाद देख चुकी है। परंतु भूदान व ग्रामदान आंदोलन में कई सामाजिक, वैज्ञानिक व विचारकों व कार्यकर्ताओं ने एक अलग तरह की हकीकत प्रदर्शित की। शंका नहीं है कि जितनी भूमि एकत्र करने का लक्ष्य रखा गया था वह पूरा नहीं हुआ। सिर्फ 50 लाख एकड़ ही एकत्र हुई। सिर्फ एक तिहाई वितरित हुई। परंतु दुनिया में इस तरह का कोई दूसरा उदाहरण नहीं है जिसमें करोड़ों लोगों ने अपने ऐसे भाइयों जिनके पास जमीन नहीं है उनके लिए भूमि का दान किया हो किसी दबाव के बगैर। यह उपलब्धि बहुत बड़ी है यदि इसकी तुलना शासन के कानून से करें तो उसके माध्यम से केवल 22 लाख एकड़ भूमि ही एकत्रित हो पाई।

विनोबा भावे ने यह साफ तौर पर कहा था– हमारा उद्देश्य कृषि कार्यों को बढ़ावा देना या जमीन का विस्तार नहीं है। हमारा उद्देश्य व्यक्ति के समाज में मूल्यों के विस्तार व समता के विस्तार का है जिसमें सभी की सहभागिता के दृष्टिकोण का विस्तार करना है। निजी हाथों से लेकर सामुदायिक हाथ में कार्य को सौंप कर एक नए इतिहास की रचना की गई। एक जाने–माने अमेरिकन पत्रकार लूइस फिशर ने इसका उल्लेख इस तरह किया– "पूर्व से एक बहुत रचनात्मक विचार आया है।"

जयप्रकाश के अनुसार इस खूबसूरत आंदोलन में भूमि का स्वामित्व व्यक्ति से समुदाय को स्वैच्छिक स्वीकृति से प्रदान किया जाना इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। ग्रामदान ने पूर्णतः निजी स्वामित्व को खत्म करने का प्रयास किया, जो कई सदियों तक याद किया जाएगा। श्रीमान नायर पूर्व सदस्य योजना आयोग, ने कहा– ग्रामदान आंदोलन ने आधारभूत मूल्यों से अहिंसा के सहारे उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त किया। प्रजातंत्र तथा लोगों को एक साथ बिना भेदभाव से तथा उस वर्ग के लिए प्रयास किया जो समाज में सबसे नीचे है।

ग्रामदान की तरह सामुदायिक संगठन में व्यावसायिक समाज कार्य का उद्देश्य सामुदायिक स्तर पर लोगों के साथ कार्य करना है। व्यावसायिक के लिए यह रुचिदायक होगा कि वह सामुदायिक संगठन के दृष्टिकोण से ग्रामदान की परीक्षा करें। प्रो. एम.जी. रोज एक जाने–माने समाज कार्य शिक्षक तथा लेखक (किताब– सामुदायिक संगठन : सिद्धांत एवं मूल्य) हैं। वे भी ग्रामदान व भूदान के बारे में जानकारी नहीं रखते थे परंतु उनकी सामुदायिक संगठन की परिभाषा के अध्ययन के पश्चात यह ज्ञात होता है कि सामुदायिक संगठन का अंतिम एवं मुख्य उद्देश्य समुदाय में सहयोग एवं समन्वय स्थापित करना है। समुदाय की परिभाषा सेडर्सन व पाल्सन ने अपनी किताब 'ग्रामीण सामुदायिक संगठन' में दी है– ग्रामदान के सामुदायिक संगठन का लक्ष्य समूह व व्यक्ति में संबंध का निर्माण है तथा सहकार्य का कार्य करना है जिससे समान मूल्यों को क्रियान्वित किया जा सके तथा समुदाय के सभी सदस्यों का कल्याण हो। इससे हम कह सकते हैं कि ग्रामदान व सामुदायिक संगठन दोनों समुदाय में परिवर्तन तथा 'हम' की भावना का विकास करते हैं। अतः ग्रामदान एवं सामुदायिक संगठन में कोई बुनियादी फर्क नहीं है।

गांधीवादी परंपरा का उद्‌गम 19वीं सदी में दक्षिण अफ्रीका में हुआ एवं भारत में फैला। इसने जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से छुआ। इसे आज सौ साल हो चुके हैं। इसका भारतीय समाज कार्य के इतिहास में अमूल्य योगदान रहा है। हम महसूस करते हैं इसने हमें एक नए व अलग मूल्यों का संग्रह प्रदान किया तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए दिशा निर्देश का संकलन रखा। सत्याग्रह एक ऐसा सशक्त स्वरूप रखता है जिसका क्षेत्र बहुत बड़ा है तथा कई सारे तबकों को अपने में समाए हुए है। भूदान व ग्रामदान जैसे आंदोलन विश्व के इतिहास में दूसरे कोई नहीं हैं। इन प्रयासों ने विश्व को सामाजिक उत्थान के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु नए अस्त्र प्रदान किए हैं।

गांधीवादी समाज कार्य गांधी जी की मृत्यु के पश्चात भी तीव्र गति से चल रहे हैं। नई आवश्यकताओं के कारण इसमें नए क्षेत्र भी संकलित किए जा रहे हैं, जैसे डकैतों का पुनर्वास, जनता के समक्ष अभद्र पोस्टर व अन्य प्रस्तुतीकरण के खिलाफ सत्याग्रह, शिक्षा के स्तर को गति देना, पर्यावरण संरक्षण, चिपको आंदोलन तथा शांति सेना जो आतंकवाद के खिलाफ शांति से लड़ती है, इसके अलावा भारत के संविधान व पंचवर्षीय योजना, सामाजिक न्यायाधीकरण।

गांधी जी के युग के उपरांत सबसे ज्यादा सफल इतिहास सर्वोदय व गांधीवादी समाज कार्य का ग्रामदान व भूदान रहा है जो गांधी जी के अनुयायियों एवं शिष्यों द्वारा किया गया था। भूदान आंदोलन में ही भूमि स्वामी भूमि का छठा भाग दान में देता था, उसी तरह ग्राम दान में भूमि स्वामी अपना स्वामित्व ग्राम सभा के समक्ष दे देता था जिसे ग्राम सभा द्वारा दिया जाता है। भूमि इस तरह से वितरित की जाती है जिससे कोई भी व्यक्ति भूमि विहीन न रहे। ग्राम सभा व उसके सदस्य इसकी क्रियान्वयन समिति में होते हैं। विनोबा भावे व उनके साथियों ने मानव इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. सेवाग्राम काफी समय तक किसके राजनीतिक दल का मुख्यालय रहा?
   (क) नेहरू जी के (ख) गांधी जी के
   (ग) जिन्ना के (घ) अटलबिहारी वाजपेई के
6. गांधी जी की तरह किसने हिंसा को हर मंच से नकारा था?
   (क) बोस ने (ख) भगत सिंह ने
   (ग) विनोबा भावे ने (घ) चंद्रशेखर आजाद ने

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ग)

3.6 सारांश

गांधी मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके व्यवहार पर वातावरण के प्रभाव को मान्यता देते हैं। उनके अनुसार यदि मनुष्य को पृथक रखने का प्रयास करें तब भी कोई भी मनुष्य अपने वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता परन्तु मनुष्य सिर्फ परिस्थितिजन्य प्राणी नहीं है। मनुष्य को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वह विषम परिस्थितियों से उभर सकता है।

गांधी के अनुसार मनुष्य पाशविक ताकत के साथ पैदा हुआ था, परन्तु इस जन्म में उसे यह अनुभव करना था कि ईश्वर की उपस्थिति उसके भीतर है, तथा सभी मनुष्यों के भीतर होती है। यह मनुष्य का सौभाग्य है कि यह उसे पशुओं की श्रेणी से अलग करता है। अतः मनुष्य का अंतिम लक्ष्य है कि वह अपने भीतर बसने वाले ईश्वर को पहचाने जोकि आत्म बोध के समान है। उसका प्रत्येक विचार और कार्य की दिशा अंतिम लक्ष्य अर्थात आत्म बोध की ओर होना चाहिये।

गांधी ने आदर्श समाज को ”रामराज्य“ का नाम दिया अर्थात पृथ्वी पर परमेश्वर का राज्य। अपने साप्ताहिक ”हरिजन“ में उन्होंने लिखा कि ”कोई गरीब नहीं होगा न ही भिखारी, न ही ऊँचा न नीचा, न ही करोड़पति मालिक, न ही भूखे कर्मचारी, न ही नशीले पेय, न ही दवाएं। महिलाओं के लिये पुरुषों के समान आदर होगा और पुरुष के ब्रम्हचर्य व शुद्धता की चौकसी सर्तकता से ही जाएगी। जहाँ अस्पृश्यता नहीं होगी,

और सभी धर्मों का समान रूप से आदर होगा। जहां सभी स्वेच्छा से अपनी रोजी–रोटी कमाने वाले होंगे।

टिप्पणी

गांधी के आदर्श समाज में दोनों शहर व गाँव हैं, परन्तु वे शहरों में रहने वालों के द्वारा ग्रामीणों के शोषण के विरुद्ध थे। वे शहर को पुरा, एक जाल तथा एक अनुपयोगी बाधा समझते थे, जहाँ मनुष्य खुशी से नहीं रह सकता एवं यह मनुष्य जाति के लिए एवं विश्व के लिए दुर्भाग्य है। उनका यह अनुभव था कि शहरों में अंग्रेजी शिक्षित पुरुष व स्त्रियों ने अपराधिक रूप से भारत के गाँवों की उपेक्षा की है, जोकि देश की रीढ़ की हड्डी है। वास्तव में गाँवों का खून वह सीमेंट है, जिससे शहर की इमारत का निर्माण हुआ है। वह रक्त जो शहर की धमनियों को फैल रहा है, फिर से गाँवों की घमनियों में दौड़ना चाहिये। वह यह देखने की आशा करते थे कि उद्योग व कृति में शहर व गाँवों में शोषण मुक्त एक युक्तिसंगत सम्पूर्ण संतुलन हो।

इधर राजनीतिक व्यस्तता के कारण गांधीजी के सामाजिक उद्देश्यों, दायित्वों में कुछ ढिलाई महसूस की गई अतः 17 सितम्बर 1937 को गांधीजी ने एक ऐतिहासिक निर्णय लिया जो उनके सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में महत्वपूर्ण साबित हुआ। वह निर्णय था सक्रिय राजनीति का त्याग तथा पूरा समय व शक्ति अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति क्रमानुसार लगानी– (1) अस्पृश्यता उन्मूलन (2) नशा बंदी (3) हिन्दू–मुस्लिम एकता (4) खादी ग्रामोद्योग व स्वदेशी (5) भारत में 7 लाख गाँवों का संगठन। यद्यपि, देश के हालात तथा देशवासियों के दबाव ने उन्हें अपने निर्णय पर पुर्नविचार के लिये मजबूर किया तो भी 5 वर्ष तक उन्होंने पूरा समय सामाजिक सरोकारों के लिये दिया जो लाखों लोगों के लिये वरदार सिद्ध हुआ विशेषकर हरिजनों के लिये। 26 अक्टूबर 1934 को गांधी जी ने अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ का उद्घाटन किया जो वर्तमान खादी ग्रामोद्योग के रूप कार्यरत है। जिसका उद्देश्य लाखें ग्रामीणों को वहीं पर रोजगार उपलब्ध कराना है। अप्रैल 1936 में गांधीजी ने सेवा ग्राम वर्धा (महाराष्ट्र) में स्थानांतरित किया जो गांधी जी के सामाजिक कार्यों व दायित्वों की राजधानी बना जोकि गांधीजी के समान विचार वालों के लिये देश तथा विदेश में प्रेरणास्रोत है। प्राथमिक शिक्षा की ओर भी गांधीजी ने ध्यान दिया। 22 अक्टूबर 1937 को गांधी जी ने वरधा में एक सम्मेलन आयोजित किया तथा शिक्षा की नई प्रणाली का सूत्रपात किया। गांधी जी ने वर्ष 1941 में "गौ सेवा संघ" स्थापित कर गायों की सुरक्षा एवं सेवा करने का एक और विशेष कार्य किया। गांधी जी और बड़ी संख्या में उनके अनुयायी विभिन्न कल्याणकारी विकास कार्यक्रमों जैसे अस्पृश्यता उन्मूलन, नशाबंदी, खादी ग्रामोद्योग, आदिम जाति कल्याण, गौरक्षा आदि में कार्यरत थे।

एक मशहूर कहावत है कि हर विवाद के पीछे मुख्य रूप से तीन कारण होते हैं– भूमि, महिला व धन। मानव सभ्यता अपने इतिहास में इन कारणों से कई विवाद देख चुकी है। परंतु भूदान व ग्रामदान आंदोलन के कई विचारकों व कार्यकर्ताओं ने एक अलग तरह की हकीकत प्रदर्शित की। शंका नहीं है कि जितनी भूमि एकत्र करने का लक्ष्य रखा गया था वह पूरा नहीं हुआ। सिर्फ 50 लाख एकड़ भूमि ही एकत्र हुई। सिर्फ एक तिहाई वितरित हुई। परंतु दुनिया में इस तरह का कोई दूसरा उदाहरण नहीं है जिसमें करोड़ों लोगों ने अपने ऐसे भाइयों जिनके पास जमीन नहीं है उनके लिए भूमि का दान किया हो किसी दबाव के बगैर। यह उपलब्धि बहुत बड़ी है यदि इसकी तुलना

शासन के कानून से करें तो उसके माध्यम से केवल 22 लाख एकड़ भूमि ही एकत्रित हो पाई।

विनोबा भावे ने यह साफ तौर पर कहा था– हमारा उद्देश्य कृषि कार्यों को बढ़ावा देना या जमीन का विस्तार नहीं है। हमारा उद्देश्य व्यक्ति के समाज में मूल्यों के विस्तार व समता के विस्तार का है जिसमें सभी की सहभागिता के दृष्टिकोण का विस्तार करना है। निजी हाथों से लेकर सामुदायिक हाथ में कार्य को सौंप कर एक नए इतिहास की रचना की गई। एक जाने–माने अमेरिकन पत्रकार लूइस फिशर ने इसका उल्लेख इस तरह किया– "पूर्व से एक बहुत रचनात्मक विचार आया है।"

गांधी जी के युग के उपरांत सबसे ज्यादा सफल इतिहास सर्वोदय व गांधीवादी समाज कार्य का ग्रामदान व भूदान रहा है, जो गांधी जी के अनुयायियों एवं शिष्यों द्वारा किया गया था। भूदान आंदोलन में ही भूमि स्वामी भूमि का छठा भाग दान में देता था, उसी तरह ग्रामदान में भूमि स्वामी अपना स्वामित्व ग्राम सभा के समक्ष दे देता था जिसे ग्राम सभा द्वारा दिया जाता है। भूमि इस तरह से वितरित की जाती है जिससे कोई भी व्यक्ति भूमि विहीन न रहे। ग्राम सभा व उसके सदस्य इसकी क्रियान्वयन समिति में होते हैं। विनोबा भावे व उनके साथियों ने मानव इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **दृष्टिकोण** : नजरिया, सोच।
- **वातावरण** : माहौल।
- **विद्यमान** : उपस्थित, मौजूद।
- **प्रतिष्ठा** : सम्मान, इज्जत।
- **स्वीकृति** : रजामंदी, मंजूरी।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. गांधी जी के दृष्टिकोण में मनुष्य क्या है?
2. भयावर्जना से आप क्या समझते हैं?
3. कस्तूरबा गांधी कौन थीं? उनका निधन कब और कहां हुआ?
4. प्रौढ़ शिक्षा के बारे में गांधी जी के क्या विचार थे?
5. विद्यार्थियों के संबंध में गांधी जी का क्या कहना था?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में आधुनिक सामाजिक कार्य के गुरु के रूप में गांधी जी के कार्यों की व्याख्या कीजिए।
2. नशे के विरुद्ध गांधी जी की जंग की समीक्षा कीजिए।

3. गांधी जी के सामाजिक कार्यों की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
4. सर्वोदय कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का विश्लेषण कीजिए।
5. ग्रामदान आंदोलन की आलोचना का उल्लेख करते हुए इस आंदोलन की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: Routledge Falmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 4 व्यवसाय के रूप में सामाजिक कार्य

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 समाज कार्य की प्रकृति
4.2.1 समाज कार्य का वैज्ञानिक आधार
4.2.2 समाज कार्य का क्षेत्र
4.2.3 भारत में समाज कार्य : व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य
4.2.4 21वीं शताब्दी में समाज कार्य
4.2.5 व्यावसायिक–समाज कार्य : भविष्य के दृष्टिकोण, कार्य व चुनौतियां
4.2.6 समाज कार्य विभाग/समाज कार्य विद्यालयों के समक्ष समाज कार्य शिक्षा से संबंधित चुनौतियां
4.3 भारत में सामाजिक कार्य का दर्शन
4.3.1 समाज कार्य : अवधारणा एवं स्वरूप
4.3.2 सामाजिक कार्य के अंतर्गत दर्शनशास्त्र
4.3.3 समाज कार्य के सिद्धांत
4.3.4 समाज कार्य के कौशल
4.4 समाज कार्य के प्रकार्य
4.4.1 सामाजिक कार्य के प्रकार्यों की कल्याणकारी पृष्ठभूमि
4.4.2 समाज कार्य के नये एवं उभरते क्षेत्र
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

विभिन्न लोगों ने समाज कार्य को भिन्न–भिन्न अर्थ प्रदान किए हैं। कुछ के लिए समाज कार्य श्रमदान है, दूसरों के लिए यह परोपकार या विपत्ति के समय दी गई राहत है। सड़क निर्माण या घरों या पास–पड़ोस की सफाई जैसी सेवाओं को श्रमदान के अंतर्गत सम्मिलित किया जाएगा। परंतु ये सभी सदैव समाज कार्य नहीं होते हैं। समाज कार्य व्यवहार संबंधी समस्याओं वाले लोगों की सहायता करता है, जैसा कि बच्चों अथवा दंपत्तियों की वैवाहिक समस्याएं तथा गंभीर रोगियों के पुनर्वास संबंधी समस्याओं में सहायता करना है।

राजनीतिज्ञों, फिल्मी सितारों और क्रिकेटरों द्वारा अपने व्यवसाय को समाज कार्य का नाम दिये जाने के कारण इसमें और भ्रम पैदा हो जाता है। जैसे एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता वैतनिक होता है और स्वैच्छिक तथा अप्रशिक्षित वैतनिक नहीं होते परंतु सभी साथ–साथ कार्य करते हैं। प्रायः एक साधारण व्यक्ति समाज कार्य के विस्तृत क्षेत्र अंतर्गत भिन्न–भिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्तियों द्वारा संपन्न किए जाने वाले क्रियाकलापों के अंतर को नहीं समझ सकता है।

टिप्पणी

प्रस्तुत इकाई में हम समाज कार्य की प्रकृति, उद्देश्य, क्षेत्र आदि का विवेचन करते हुए व्यवसाय के रूप में सामाजिक कार्य के दर्शन पर प्रकाश डालेंगे और साथ ही समाज कार्य के विविध प्रकार्यों को भी समझेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- समाज कार्य की प्रकृति को समझ पाएंगे;
- भारत में सामाजिक कार्य का दर्शन विवेचित कर पाएंगे;
- समाज कार्य के विविध प्रकार्यों से परिचित हो पाएंगे।

4.2 समाज कार्य की प्रकृति

कुछ व्यक्तियों की व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक समस्याएं होती हैं। वे इनका समाधान स्वयं नहीं कर पाते हैं। अतः उन्हें बाहर से सहायता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सहायता प्रशिक्षित लोगों के द्वारा दी जाती है। सहायता लेने वाला व्यक्ति सेवार्थी कहलाता है और जो प्रशिक्षित व्यक्ति उसकी सहायता करता है वह सामाजिक कार्यकर्ता कहलाता है। इस प्रकार की सहायता के कार्यकलापों को सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य कहा जाता हैं

सेवार्थी के अंदर दी गई स्वयं के सुधार के लिए अभिप्रेरणा तथा सहायता को स्वीकार करने की तत्परता समाज कार्य के लिए पूर्व शर्त है। समाज कार्यकर्ता केवल सेवार्थी के स्वयं के प्रयासों को उसकी स्थिति में सुधार के लिए जोड़ता है, अपनी सलाह या समाधान सेवार्थी पर थोपता नहीं है और सेवार्थी के आत्म निर्णय के अधिकार का सम्मान करता है। समाज कार्यकर्ताओं को स्वयं को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए या सेवार्थी का अनादर नहीं करना चाहिए। उनके अंदर सेवार्थी की परिस्थिति में स्वयं को रखकर उसे समझने के लिए प्रयास करने की भावना होनी चाहिए। परंतु उस समय उसे स्वयं को सेवार्थी के जैसा नहीं महसूस करना चाहिए। समाज कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह सेवार्थी की भावनाओं को समझे और उन्हें स्वीकार करे।

घोर विपत्तियों और प्राकृतिक आपदाओं के दौरान सैकड़ों लोग पीड़ितों की सहायता के लिए नकद रकम या वस्तुएं दान में देते हैं। उनका पीड़ितों के साथ कोई प्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता। इसे सामान्यतः समाज सेवा कहते हैं जिसमें सहायता केवल पीड़ित तक पहुंचती है। परंतु समाज कार्य में कार्यकर्ता और सेवार्थी की आमने–सामने होने वाली अंतःक्रिया महत्वपूर्ण है। कुछ परिस्थितियों में अस्थायी राहत के अतिरिक्त, समाज कार्यकर्ता घोर विपत्ति एवं प्राकृतिक आपदाओं से संबंधित अंतरवैयक्तिक संबंधों एवं समायोजन समस्याओं में सुधार लाने में सहायता करता है। इस प्रकार के गंभीर मामलों और संबंधों से संबंधित अन्य समस्याओं के साथ कार्य करने की संबद्धता को हम समाज कार्य कहते हैं।

4.2.1 समाज कार्य का वैज्ञानिक आधार

समाज कार्य व्यवहार सशक्त वैज्ञानिक आधार से युक्त है। समाज कार्यकर्ता 'ज्ञान के लिए ज्ञान' में विश्वास नहीं करते हैं। समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान रखता है, यद्यपि यह

ज्ञान विभिन्न सामाजिक और जीव विज्ञानों से लेकर विकसित किया गया है। वैज्ञानिकता आधारित समाज कार्य अन्य विद्या विशेष की भांति तीन प्रकार का ज्ञान रखता है–

टिप्पणी

1. प्रमाणित ज्ञान।
2. परिकल्पित ज्ञान जिसे प्रमाणित ज्ञान में हस्तांतरित किया जाना आवश्यक होता है।
3. स्वीकृत ज्ञान जिसे बुद्धि द्वारा व्यावहारिक प्रयोग के माध्यम से परिकल्पित ज्ञान में और फिर प्रमाणित ज्ञान में हस्तांतरित किया जाता है।

समाज कार्य का ज्ञान समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, जीव विज्ञान, मनोरोग विज्ञान, विधि शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र इत्यादि से लिया गया है। इन सभी विद्या विशेषज्ञों ने मानव प्रकृति को समझने में अत्यधिक योगदान दिया है। समाज कार्यकर्ता इस ज्ञान का प्रयोग अपने सेवार्थियों की समस्याओं के समाधान में करते हैं।

समाज कार्य की जड़ें मानवतावाद में निहित हैं। यह 'वैज्ञानिक मानवतावाद' है क्योंकि यह वैज्ञानिक आधार का उपयोग करता है। समाज कार्य कुछ निश्चित मूल्यों पर आधारित है जब उन्हें संगठित किया जाता है तब उसे 'समाज कार्य का दर्शन' कहा जाता है। समाज कार्य आवश्यक योग्यता एवं व्यक्ति की प्रतिष्ठा में विश्वास पर आधारित है। आदमी सम्मान योग्य है क्योंकि मानव ही सम्माननीय है न कि इस कारण कि वह धनी या शक्तिशाली है। उसकी योग्यता और गरिमा मानवीय प्रकृति के कारण विभूषित है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान देना चाहिए।

समाज कार्य किसी भी प्रकार के जाति, रंग, प्रजाति, लिंग या धर्म पर आधारित किये जाने वाले भेद–भाव के विरुद्ध है। समाज कार्य 'सामाजिक डार्विनवाद' और सर्वाधिक योग्य के ही जीवित रहने' के सिद्धांत के विरुद्ध है, इसका अर्थ है कि समाज कार्य इस बात में विश्वास नहीं रखता कि केवल शक्तिशाली ही समाज में जीवित रहेगा और कमजोर का शीघ्रविनाश होगा। जो लोग कमजोर हैं, अक्षम हैं और/या जिन्हें देखभाल की आवश्यकता है वे सभी समान रूप से समाज कार्यकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति को उसकी सम्पूर्णता के साथ समझा जाता है, जिसका अर्थ है उसके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं की विभिन्नताओं के बावजूद उसके महत्व एवं गरिमा का ध्यान रखा जाना। समाज कार्यकर्ता व्यक्ति की क्षमता में विश्वास करता है और व्यक्तियों की विभिन्नताओं को मान्यता देता है। व्यक्ति के आत्म–निर्णय को महत्व दिया जाता है। उसे परिवार और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी समझने का प्रयास करना चाहिए। समाज कार्य 'आदर्शवाद और यथार्थवाद का एक संगम है। समाज कार्यकर्ता के लिए व्यक्ति महत्वपूर्ण है, परंतु समाज भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों के सांचे में अत्यंत गहरायी से ढला हुआ होता है। परंतु अंततः व्यक्ति अपने स्वयं के आचरण और व्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है। कार्यकर्ता, सेवार्थी की उस समस्या का समाधान करता है जिससे वह पीड़ित होता है, इसलिए समस्या का समाधान समाज कार्य की प्रकृति है।

टिप्पणी

4.2.2 समाज कार्य का क्षेत्र

समाज कार्य का संबंध ऐसे व्यक्तियों की सहायता करने से है जिन्हें इसकी आवश्यकता है जिससे कि वे अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान करने की क्षमता को विकसित कर सकें। यह विज्ञान एवं कला है। समाज कार्य इस अर्थ में विज्ञान है कि विभिन्न विषयों से लिए गए ज्ञान से इसके ज्ञान के स्वरूप का निर्माण समाज कार्यकर्ताओं के लिए होता है और वे इस सैद्धान्तिक आधार का प्रयोग लोगों की सहायता के लिए करते हैं। जो सिद्धान्त स्वयंसिद्ध होते है, उन्हें व्यवहार में प्रयुक्त किया जाता है। कार्य करने के लिए वांछित क्षमता को निपुणता के नाम से जाना जाता है। इसलिए, अपने चयनित ज्ञान और मूल्यों के संग्रह के साथ व्यावसायिक समाज कार्य व्यावसायिक सेवा में हस्तांतरित हो गया है।

समाज कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी के साथ सकारात्मक संबंध स्थापित करना होता है। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि किस प्रकार साक्षात्कार किया जाना चाहिए और किस प्रकार प्रतिवेदन लिया जाना चाहिए। उसमें निदान करने की योग्यता होनी चाहिए जिसका आशय है कि वह समस्या के कारण का पता लगाकर अंततः उसके उपचार की योजना बना सकता है। समाज कार्य में चार प्रमुख चरण सम्मिलित हैं– समाज का निर्धारण, इसके समाधान की योजना, योजना का कार्यान्वयन तथा परिणाम का मूल्यांकन। समाज कार्यकर्ता की अपने सेवार्थी की सहायता में तीव्र रुचि होती है फिर भी उसकी अकेली रुचि समस्या का समाधान नहीं कर पाएगी। सेवार्थी की सहायता किस प्रकार की जाए, इस बात का ज्ञान उसे होना चाहिए। समाज कार्य की प्रणालियों से उसे लोगों की सहायता करने के ढंग को समझने में मदद मिलेगी समाज कार्य की प्रणालियां निम्न प्रकार हैं–

1. सामाजिक केस अध्ययन
2. सामाजिक सामूहिक कार्य
3. सामुदायिक संगठन
4. समाज कार्य शोध
5. समाज कल्याण प्रशासन
6. सामाजिक क्रिया

प्रथम तीन को प्रत्यक्ष सहायता प्रणालियां और अन्तिम तीन को द्वितीयक या सहायक प्रणालियों के रूप में जाना जाता है। समाज कार्य की ये छः प्रणालियां लोगों की व्यवस्थित और नियोजित सहायता कर रही हैं।

सामाजिक केस अध्ययन किसी व्यक्ति की समस्याओं का उसके सम्पूर्ण पर्यावरण या उसके एक भाग के साथ व्यवहार करता है। एक व्यक्ति ऐसी समस्या से ग्रसित है, जिसका वह स्वयं हल करने में सक्षम नहीं है, क्योंकि समस्या के कारण उसके नियंत्रण से परे हैं। उसकी व्यग्रता कुछ समय के लिए उसे अस्थायी रूप से इसके समाधान के लिए अयोग्य बनाती है। किसी भी प्रकार की स्थिति में उसकी सामाजिक क्रिया बिगड़ जाती है। केस अध्ययनकर्ता सेवार्थी के सम्पूर्ण पर्यावरण के विषय में सूचनाएं प्राप्त करता है, कारणों का पता लगाता है, उपचार की योजना तैयार

टिप्पणी

करता है और व्यावसायिक संबंधों की स्थापना के माध्यम से सेवार्थी के प्रत्यक्षीकरण और अभिवृत्तियों में परिवर्तन का प्रयास करता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य एक समाज कार्य सेवा है जिसमें व्यावसायिक दृष्टि से प्रशिक्षित एक व्यक्ति, समूह अनुभवों के माध्यम से व्यक्तियों की इस प्रकार सहायता करता है जिससे वे संबंधों में सुधार और सामाजिक क्रिया की ओर उन्मुख हो सकें। सामूहिक कार्य में व्यक्ति महत्वपूर्ण होते हैं और उनके संबंधों में सुधार के लिए लचीले कार्यक्रम, समूह में व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को महत्व देकर सहायता दी जाती है। समूह एक माध्यम है और इसके द्वारा और इसके अंतर्गत परिवर्तन और समायोजन के लिए व्यक्तियों की सहायता की जाती है।

सामुदायिक संगठन, समाज कार्य की एक अन्य प्रणाली है। समूहों के अस्तित्व से निर्मित होने वाले समुदाय का अर्थ संबंधों की व्यवस्थित संरचना है, परंतु वास्तव में कोई भी समुदाय पूर्णतया व्यवस्थित नहीं होता है। सामुदायिक संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा समुदाय में संबंधों के सुधार के लिए व्यवस्थित प्रयास किया जाता है। सामुदायिक संगठन के अंतर्गत समस्याओं के समाधान के लिए संसाधनों का पता लगाना, सामाजिक संबंधों का विकास करना तथा समुदाय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन आदि सभी सम्मिलित हैं। इस प्रकार से समुदाय को निश्चित रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाना चाहिए एवं समुदाय के सदस्यों के बीच सहकारिता की मनोवृत्तियों का विकास होना चाहिए।

समाज कल्याण प्रशासन एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सार्वजनिक एवं निजी दोनों प्रकार की समाज कार्य सेवाओं को व्यवस्थित किया जाता है और उनका प्रशासन किया जाता है। प्रशासन के अंतर्गत समाज कार्यकर्ता द्वारा कार्यक्रमों का विकास, संसाधनों को गतिशील बनाना, कार्मिकों की भर्ती एवं चयन, समुचित संगठन, समन्वय, निपुणता से युक्त सहानुभूति पूर्ण नेतृत्व का प्रबंध करना, कर्मचारियों का निर्देशन और पर्यक्षण, वित्तसंबंधी गतिविधियों तथा कार्यक्रमों के लिए बजट का निर्धारण आदि कार्य किए जाते हैं।

समाज कार्य शोध, नए तथ्यों का पता लगाने पुरानी परिकल्पनाओं का परीक्षण करने, वर्तमान सिद्धांतों का सत्यापन करने और समस्याओं के आकस्मिक संबंधों जिसमें समाज कार्यकर्ता की रुचि होती है की खोज करने के लिए एक व्यवस्थित जांच–पड़ताल है। किसी भी प्रकार के समाज कार्य कार्यक्रम को वैज्ञानिक तरीके से आरंभ करने के लिए सामाजिक शोध और सर्वेक्षणों के माध्यम से प्रदत्त परिस्थिति का व्यवस्थित अध्ययन करना आवश्यक होता है।

सामाजिक क्रिया का उद्देश्य सामाजिक प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए इच्छित परिवर्तनों को लाना होता है। सामाजिक क्रिया प्रणाली का उपयोग करने के लिए समाज कार्यकर्ता को सामाजिक समस्या के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना, संसाधनों को गतिशील बनाना, अवांछनीय व्यवहारों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए विभिन्न वर्गों के लोगों को तैयार करना और कानूनों के निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त करने जैसे कुछ क्रियाकलाप करने होते हैं। यह सामुदायिक आवश्यकताओं और समाधानों, जो कि मुख्यतः वैयक्तिक और सामूहिक प्रयासों तथा स्वयं सहायता क्रियाकलापों के माध्यम से किये जाते हैं, के बीच पर्याप्त संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करता है।

टिप्पणी

समाज कार्य के कार्य

समाज कार्य के मूल कार्य पुनः स्थापना, संसाधनों का प्रावधान करना तथा निरोध है। ये परस्पर एक–दूसरे पर आश्रित तथा एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं। क्षीण सामाजिक क्रिया के पुनःस्थापना के दो पहलू हैं– इलाज और पुनर्वास। इलाज के द्वारा व्यक्ति की क्षीण सामाजिक क्रिया के उत्तरदायी कारणों को दूर किया जाता है। इसका अर्थ है कि बिगड़े हुए अंतरवैयक्तिक संबंधों को इसके उत्तरदायी कारणों को हटाकर ठीक किया जाना। समस्या के उत्तरदायी कारणों को हटाने के पश्चात व्यक्ति को नई परिस्थिति की आवश्यकता के साथ समायोजन सहायता की जाती है। व्यक्ति को नये उपचार या सुझाये गये उपायों के साथ समायोजन करना होता है। व्यक्ति की नयी परिस्थिति की आवश्यकता के साथ समायोजन में सहायता की जाती है। यह पुनर्वासन के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए, एक आंशिक रूप से बहरे बच्चे जिसके सामाजिक संबंध उसकी समस्या के कारण बिगड़े हैं, के इलाज के उपाय के रूप में सुनने में सहायता का ढंग सुझाया जाता है। यह इलाज का पहलू है। व्यक्ति का स्वयं सुनने के लिए दी गयी सहायता के साथ समायोजन प्राप्त करना पुनर्वास पहलू है।

संसाधनों के प्रावधान के दो पक्ष हैं– विकासात्मक और शैक्षिक पक्ष। विकासात्मक पक्ष की संरचना संसाधनों की प्रभाव पूर्णता में वृद्धि करने तथा प्रभावी सामाजिक अन्तःक्रिया के लिए व्यक्तित्व संबंधी कारकों में सुधार लाने के लिए की गई है। उदाहरण के लिए श्री 'क' और श्रीमती 'ख' कुछ वैचारिक मतभेदों के कारण उत्पन्न विरोध के साथ खुशहाली के साथ रह रहे हैं। वे तलाक लेने का रास्ता नहीं अपनाने जा रहे हैं और उनके वैवाहिक जीवन में कोई समस्या नहीं है। परंतु एक परिवार परामर्श संस्था की मदद से वे अपने मतभेदों की पहचान कर सकते हैं और बेहतर ढंग से जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यह विकासात्मक पक्ष के नाम से जाना जाता है। नयी या परिवर्तित परिस्थितियों के लिए विशिष्ट दशाओं और आवश्यकताओं के जनसमुदाय की पहचान कराने के लिए शैक्षिक पक्ष की योजनाबद्ध संरचना की गयी है। उदाहरण के लिए एक परामर्श दाता द्वारा पारिवारिक और वैवाहिक समस्याओं को कम करने के लिए की गयी बातचीत एक शैक्षिक प्रक्रिया है।

समाज कार्य का तीसरा कार्य सामाजिक अकर्मण्यता का निवारण करना है। इसमें प्रारंभिक खोज, उन दशाओं और परिस्थितियों का नियंत्रण या निष्कासन जो कि प्रभावी सामाजिक क्रिया में सक्रियता से बाधा डाल सकती हैं, सम्मिलित हैं।

उदाहरण के लिए कुछ क्षेत्रों में युवा क्लबों को शुरू करके बच्चों की बाल अपराध से बचाव में सहायता की जा सकती है। युवाओं के लिए पूर्व–वैवाहिक परामर्श भविष्य में वैवाहिक समस्याओं की रोक थाम कर सकेंगे।

4.2.3 भारत में समाज कार्य : व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य

एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य विशिष्ट कार्य प्रणालियों का उपयोग करता है। समाज कार्य व्यवसाय के अंतर्गत व्यक्ति एवं उसकी समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। समाज कार्य की कार्य प्रणालियों का विकास एक ऐतिहासिक कालक्रम में हुआ है जिन्होंने समाज कार्य को एक व्यवसाय के रूप में स्थापित कर दिया।

व्यवसाय एक ऐसा कार्य है जिसका उद्देश्य जीविका उपलब्ध कराना है, जिसमें विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता होती है और उसको करने वाले का व्यवहार अलग ही होता है। प्रोफेशन (prafession) शब्द लैटिन भाषा के प्रोफिटेरी "Profiteri" से बना है जिसका अर्थ है ''सार्वजनिक रूप से घोषणा करना'' या ''प्रतिज्ञा करना''।

वर्तमान समय में व्यवसाय शब्द का अर्थ ''संगठित जीविका'' से लिया जाता है। जिसमें एक विशेष औपचारिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है और जिस औपचारिक ज्ञान को एक विकसित एवं संचारित योग्य कार्यकर्ता की निपुणता द्वारा मानवीय जीवन के कुछ पहलुओं में एक कला के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

फ्रीडलैण्डर ने व्यवसायों की शिक्षा के विकास के तीन चरणों का उल्लेख किया है–

1. अनुभवी अध्यापकों एवं अभ्यासकर्ताओं के सान्निध्य में प्रशिक्षण।
2. शिक्षा के लिए अच्छे शिक्षण संस्थानों की स्थापना की अनिवार्यता।
3. विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं की जगह सुनिश्चित करना एवं उन्हें अपने शिक्षण कार्यक्रम का एक प्रमुख भाग बनाना।

फ्लेक्सनर (Flexner) ने व्यवसाय के संदर्भ में बताया है कि व्यवसाय के सदस्यों में वैयक्तिक उत्तरदायित्व के साथ ज्ञान एवं विज्ञान का समावेश होना चाहिए एवं नवीन ज्ञान को समझने के लिए सम्मेलन आयोजित किये जाने चाहिए। व्यवसाय के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों पर बराबर ध्यान देना चाहिए। व्यवसाय के अंतर्गत यह आवश्यक है कि एक प्राविधिक ज्ञान का परस्पर संबंधित भण्डार हो और यह प्राविधिक ज्ञान व्यक्तियों को एक विशिष्ट शैक्षिक पद्धति द्वारा सिखाया जा सकता हो। व्यवसाय को सामाजिक अनुमोदन प्राप्त हो एवं व्यवसाय से संबंधित व्यक्तियों में सामूहिक भावना का होना नितांत आवश्यक है। इनको अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को कुशलता से निभाना चाहिए। व्यवसाय का संबंध साधारण जनता से होना चाहिए, किसी व्यक्ति या समूह विशेष से नहीं।

समाज कार्य व्यवसाय में निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया जा रहा है जो समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में सिद्ध करता है–

1. **क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक ज्ञान** : समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। यह किसी कल्पना में विश्वास नहीं करता है। इसका अधिकांश ज्ञान अन्य विज्ञानों से लिया गया है, जो कि पूरी तरह से जांचा एवं परखा है एवं इसका शेष भाग अभ्यास के आधार पर विकसित किया गया है। इसी कारण समाज कार्य का ज्ञान व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक रूप ग्रहण करता है। समाज कार्य की विषय–वस्तु में मानव व्यवहार तथा सामाजिक पर्यावरण के परिदृश्य में व्यक्तित्व, इसके कारक, सिद्धांत, सामाजिक पक्ष तथा मनोचिकित्सीय पक्ष, मानव संबंध, समूह, सामाजिक संस्थाएं, समाजीकरण, सामाजिक नियंत्रण, पर्यावरण, प्रौद्योगिकी आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। समाज कार्य में विशेष निपुणता, बौद्धिक प्रशिक्षण, वैयक्तिक समाज कार्य, सामूहिक समाज कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक क्रिया तथा समाज कार्य शोध के द्वारा व्यावसायिक कार्यकर्ताओं में योग्यता का विकास किया जाता है। इसके अतिरिक्त जो भी नया ज्ञान सामने आता है, वह साहित्य एवं सम्मेलनों के माध्यम से कार्यकर्ताओं तक पहुंचाया जाता है।

टिप्पणी

2. **विशेष प्रणालियां एवं प्रविधियां :** समाज कार्य का उद्देश्य मानव कल्याण है, जिसमें दूसरे व्यवसाय भी रुचि रखते हैं। समाज कार्य की अपनी विशेष प्रणालियां हैं, जो इसकी अपनी विशेषता है। इसमें व्यक्तियों एवं समूहों की भावनाओं को समझने एवं समस्याओं से निबटने की क्षमता पायी जाती है। यह सेवार्थी को आत्मनिर्भर बनाने में निपुण होता है। जिसमें समुदाय तथा संस्था के स्रोतों एवं साधनों को समय–समय पर उपयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त समाज कार्य में विज्ञान एवं ज्ञान दोनों का समावेश मिलता है।
3. **समाज कार्य की शैक्षिक पद्धति :** समाज द्वारा मान्यता प्राप्त मुख्य व्यवसायों की शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहे हैं। इसकी शिक्षा स्नातक, स्नात्कोत्तर, पी.एच.डी. स्तर पर दी जाती है। समाज कार्य की शिक्षा अनुभवी शिक्षकों एवं अभ्यासकर्ताओं की देखरेख में दी जाती है। विद्यार्थियों को समाज कार्य अभ्यास के लिए विभिन्न संस्थाओं, जैसे चिकित्सालयों, श्रमकल्याण केन्द्रों, आवासगृहों, विद्यालयों, मलिन बस्तियों, सामुदायिक विकास केंद्रों निर्देशन केंद्रों आदि में क्षेत्रीय कार्य करने के लिए भेजा जाता है।
4. **व्यावसायिक संगठन :** व्यावसायिक समिति की स्थापना, व्यावसायिक संगठन द्वारा सेवा के स्तर या मानदण्ड निर्धारित किया जाना, आचार संहिता का ग्रहण किया जाना एक और विशेषता है जो किसी भी जीविका को व्यवसाय का स्तर प्रदान करती है। इन व्यावसायिक संगठनों का कार्य समाज कार्य व्यवसाय के स्तर को ऊंचा उठाना तथा कार्यकर्ताओं में उच्चतर योग्यताओं, क्षमताओं एवं निपुणताओं का विकास करना है।

   शिक्षण संस्थाओं के स्तर पर, कार्यकर्ताओं के स्तर पर, समाज कार्य के विद्यार्थियों के स्तर पर, समाज कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के स्तर पर जैसे मेडिकल सोशल वर्कशाप, साइक्रिऐटिक सोशल वर्कर्स, ग्रुप वर्कर्स आदि जैसे व्यावसायिक संगठन मिलते हैं। कुछ देशों में समाज कार्य की भी समितियां बनी हुई हैं।
5. **आचारसंहिता :** व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के पालन के लिए आचार संहिता का निर्माण किया जाना एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है, जो एक व्यावसायिक संगठन ही करते हैं।

   प्रो. सैयद अहमद खान ने उच्च आचार संहिता के निम्नलिखित भागों का उल्लेख किया है–

   (अ) सेवार्थियों से संबंध।
   (ब) नियोजक संस्था से संबंध।
   (स) व्यावसायिक साथियों से संबंध।
   (द) समुदाय से संबंध।
   (य) समाज कार्य के व्यवसाय से संबंध।
6. **सामुदायिक मान्यता एवं अनुमोदन :** व्यवसाय को सामुदायिक अनुमोदन प्राप्त होना आवश्यक माना गया है, जैसे वेश्यावृत्ति या भिक्षावृत्ति को सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नहीं है जिससे इनको व्यावसायिक स्तर नहीं दिया जा सकता

टिप्पणी

है। सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही निजी संस्थाएं समाज कार्य में शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं की ही नियुक्ति करती हैं।

समाज कार्य की शिक्षण संस्थाओं में वृद्धि इस बात का प्रतीक है, कि इन्हें समाज का अनुमोदन प्राप्त है और समाज के विशेष क्षेत्रों में केवल समाज कार्य की शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं को ही नियुक्त किया जाना इस बात को सिद्ध करता है कि समाज कार्य को मान्यता प्राप्त है।

भारत में समाज कार्य का व्यावसायिक रूप

1948 से लेकर अब तक समाज कार्य की शिक्षण संस्थाओं का विकास जिस गति से हुआ है वह इस बात का प्रतीक है कि भारतीय समाज में समाज कार्य को मान्यता प्राप्त है और वह धीरे–धीरे व्यावसायिक रूप धारण करता जा रहा है। परंतु यह भी सही है कि भारत में समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में अभी वह स्तर प्राप्त नहीं है जो अमेरिका जैसे देशों में प्राप्त हो चुका है।

भारत में समाज कार्य किस सीमा तक व्यवसाय के मानदण्डों या कसौटी पर खरा उतरता है, इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है–

1. **क्रमागत एवं वैज्ञानिक ज्ञान** : समाज कार्य ज्ञान में निरंतर वृद्धि हो रही है। अनेक समाज कार्य के स्कूलों में शोध की सुविधा पायी जाती है, जिनमें ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्रों में खोज की जा रही है। इसके अतिरिक्त सभी स्कूलों में मानव व्यवहार, पर्यावरण संस्कृति, प्रौद्योगिकी, सामाजिक विकास आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। सबसे बड़ी कठिनाई जो स्वीकार की जा सकती है, वह यह है कि भारत में समाज कार्य के सिद्धांतों, प्रणालियों एवं प्रविधियों, व्यावहारिक प्रयोग के विषय में नवीन अनुभवों का विकास एवं शोध कार्य उस स्तर के नहीं हो पा रहे हैं जिससे समाज कार्य को एक व्यवसाय के रूप में विकसित किया जा सके।

2. **व्यावसायिक शिक्षा** : भारत में समाज कार्य की परंपरा उतनी ही प्राचीन है, जितनी अन्य देशों में मुख्य रूप से यूरोपीय देशों में मानी जाती है। भारत में समाज कार्य की औपचारिक शिक्षा का आरंभ बीसवीं सदी में सन् 1936 से प्रारंभ हुआ है। बम्बई में एक संस्था 'सोशल सर्विस लीग' ने एक छः सप्ताह का संक्षिप्त पाठ्यक्रम समाज कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु बनाया। 1936 में बम्बई में ही 'सर दोराब जी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क' की स्थापना हुई। सन् 1947 में काशी विद्यापीठ में समाज विज्ञान के अंतर्गत समाज कार्य विद्यालय खुला। इसी वर्ष डेलही स्कूल आफ सोशल वर्क खुला। सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। इसी के अंतर्गत आगरा, दिल्ली, उदयपुर, नागपुर, मद्रास, पटना, कलकत्ता, बम्बई, मदुराई, धारवाड़, बेंगलूरू, बड़ौदा, कुरुक्षेत्र, पटियाला आदि कई स्थानों पर विश्वविद्यालयों में समाजकार्य की औपचारिक शिक्षा दी जाती है। इनमें स्नात्कोत्तर स्तर की शिक्षा के साथ–साथ पी.एच.डी. की उपाधि के लिए भी सुविधाएं उपलब्ध हैं। यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) द्वारा नियुक्ति की गई समिति ने 1960 में अपने प्रतिवेदन में यह संस्तुति की, ताकि समाज कार्य की शिक्षा अन्य विद्यालयों में पूर्व स्नातक स्तर पर भी दी जा सके।

3. **व्यावसायिक संगठन :** व्यावसायिक संगठन होने के मापदण्ड पर समाज कार्य पूरी तरह से खरा नहीं उतरता। भारत में समाज कार्य का व्यावसायिक संगठन तो है, परंतु यह संगठन बहुत ही दुर्बल है। सन् 1951 में इंडियन एसोसिएशन ऑफ अलुमनाई आफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क बनाया गया जिसका नाम बदल कर इंडियन एसोसियेशन ऑफ ट्रेंड सोशल वर्कर्स कर दिया गया। समाज कार्य की सह समितियां विद्यालय के स्तर पर भी हैं और देश के स्तर पर भी हैं। एक संगठन इंडियन कान्फ्रेन्स ऑफ सोशलवर्क है, जिसका नाम बदलकर इंडियन काउंसिल ऑफ सोशल वेलफेयर कर दिया गया। इसका मुख्य कार्य वार्षिक सम्मेलन कर समाज कल्याण के विभिन्न पहलुओं पर विचार–विमर्श करना है। इस समिति की शाखाएं कई नगरों में भी हैं।

   दिसंबर, 1957 में मद्रास में एक और अंतर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था का नाम इण्टर–नेशनल फ्रेडरेशन ऑफ सोशल वकर्स है। इस फ्रेडरेशन की सदस्यता उन राष्ट्रीय व्यावसायिक समाज कार्य संगठनों को ही दी गई है, जो अपने नियमों में सदस्यता के स्तर की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। अमेरिकन एशोसिएशन ऑफ सोशल वर्कर्स इस फेडरेशन के सदस्य हैं।

   'असोसियेशन ऑफ मेडिकल एण्ड साइक्याट्रिक सोशल वर्क' भी समाज कार्य व्यवसाय की सहायता कर रहा है। इसके अतिरिक्त 'लखनऊ विश्वविद्यालय सोशल वर्क एलुमिनाई अशोसियेशन' भी एक पत्रिका 'लखनऊ इनवरसिटी जनरल ऑफ सोशल वर्क' जिसे बदल कर अब कान्टम्प्रेरी सोशल वर्क (Contemporary Social Work) कर दिया गया है, के नाम से प्रकाशित करती है। कुछ समाज कार्य विद्यालय एवं विश्वविद्यालय अपने स्तर पर प्रकाशन करते हैं। जैसे एक प्रसिद्ध पत्रिका टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल वर्क द्वारा "इंडियन जनरल ऑफ सोशल वर्क" प्रकाशित होती है। निर्मला निकेतन बम्बई भी एक पत्रिका तथा महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी ने भी एक पत्रिका प्रकाशित की है। सामाजिक संगठन 'सखा', द्वारा भी एक पत्रिका 'प्रोफेशनल सोशल वर्क परसपेक्टिव' का प्रकाशन लखनऊ से किया जा रहा है। इस प्रकार भारत में समाज कार्य धीरे–धीरे व्यावसायिक गुणों को अर्जित करता जा रहा है। लेकिन व्यावसायीकरण की गति काफी धीमी है। इसके धीमे होने के अनेक कारण हैं। और यदि इन कारणों को अतिशीघ्र दूर नहीं किया गया तो समाज कार्य की स्थिति और भयावह हो सकती है।

4. **निपुणताएं एवं प्रणालियां :** भारतीय सामाजिक कार्यकर्ता के पास अमेरिका में प्रयोग में लाई जाने वाली निपुणताएं हैं जो कि भारतीय परिवेश में प्रासंगिक नहीं सिद्ध हो पा रही हैं। भारत में जिन विशेष प्रविधियों एवं निपुणताओं की आवश्यकता है, उनका विकास नहीं हो पा रहा है। सामाजिक क्रिया की प्रविधि, आत्मा को जागृत करने की प्रविधि, सम्प्रेषण की प्रविधि, विचारों में गति लाये जाने की प्रविधि जैसी प्रविधियों का विकास किया जाना नितान्त आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार प्रणालियों को भी भारतीय रूप प्रदान किये जाने की आवश्यकता है।

5. **आचार संहिता :** समाज कार्य की व्यावसायिक समितियां सक्रिय एवं प्रभावशाली न होने के कारण सामाजिक कार्यकर्ताओं को समाज कार्य की आचार संहिता का पालन करने पर विवश करने का कोई प्रयास भी नहीं किया जा रहा है।

भारत में आचार संहिता के विकास का उत्तरदायित्व 'असोसियेशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया' को 1960 में सौंपा गया था। उसके कार्य निम्नवत हैं–

1. समाज कार्य को व्यावसायिक शिक्षा के उच्च स्तर पर उठाना।
2. समाज कार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना।
3. संकाय के अध्यापकों को परस्पर मिलने तथा विचारों के आदान–प्रदान का सुअवसर देना।
4. संगोष्ठियों तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) को आयोजित करना।
5. अनुसंधान को बढ़ावा देना।
6. समाज कार्य का साहित्य प्रकाशित करना।
7. राष्ट्रीय फोरम के रूप में कार्य करना।

समाज कार्य के शिक्षण एवं प्रशिक्षण के बाद जो एक विशेष व्यक्तित्व लेकर विद्यार्थी समाज में पदार्पण करते हैं, उनसे यही आशा की जाती है कि वे समाज कार्य द्वारा स्वीकृत आचार संहिता का पालन आप–हम और सभी लोग करेंगे के आधार पर करेंगे।

6. **सामाजिक मान्यता और अनुमोदन :** भारत में समाज कार्य को धीरे–धीरे मान्यता प्राप्त होनी आरंभ हो चुकी है। 'कारखाना अधिनियम' के अनुसार, 'औद्योगिक कारखानों में श्रमिकों की संख्या के अनुसार श्रमकल्याण अधिकारी नियुक्त करना नितान्त आवश्यक है। कई अन्य क्षेत्रों जैसे बाल विकास, महिला सशक्तिकरण, परिवार कल्याण नियोजन, बाधितों का कल्याण आदि क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त मेडिकल सोशल वर्कर नियुक्त किये जाते हैं। यह निपुणता उन्हें स्नातकोत्तर स्तर पर शोध कार्य के पाठ्यक्रमों, जिसमें कक्षा व्याख्यान, क्षेत्रीय शोध कार्य पर आधारित प्रतिवेदन आदि को सम्मिलित कर उनके द्वारा सिखाई जाती है।

उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारत में समाज कार्य को मान्यता प्राप्त हो रही है और उसे समाज का अनुमोदन प्राप्त हो रहा है। किन्तु यह तब तक संभव नहीं है, जब तक कि सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न सामाजिक समस्याओं जैसे सामाजिक अन्याय, सामाजिक शोषण, सामाजिक तनाव आदि को शीघ्र से शीघ्र दूर करने में सक्रिय भूमिका का योगदान नहीं देते हैं।

4.2.4 21वीं शताब्दी में समाज कार्य

समाज कार्य का उद्देश्य व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करके उनके दुखों को कम करना है। व्यक्तियों की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी मनो–सामाजिक समस्याएं होती हैं। इसके अलावा बच्चों और वयस्कों में समायोजन संबंधी समस्या पर अलग से कार्य किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में समाज कार्य अवकाश के समय बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग कर व्यक्तियों को मनोरंजनात्मक सेवाएं प्रदान कर व्यक्तियों, समूहों और परिवारों की सामाजिक क्रिया में वृद्धि करता है। इस प्रकार से वह समाज में बाल अपराध और अपराध की रोकथाम कर सकता है तथा वह सेवार्थी व्यवस्था को आवश्यक

संसाधनों को जोड़ता है। समाज कार्य व्यक्ति की अभिवृद्धि और विकास के लिए पर्यावरण में परिवर्तन लाकर उसकी सहायता करता है।

टिप्पणी

समाज कार्य प्रजातांत्रिक विचारों को प्रदान करता है और उसे अच्छे अंतरवैयक्तिक संबंधों के विकास के योग्य बनाता है जिससे कि वह परिवार और पड़ोस में समुचित समायोजन स्थापित कर सके।

समाज कार्य 'सामाजिक डार्विनवाद' में विश्वास नहीं रखता है। यह सर्वाधिक योग्य को ही जीवित रहने के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता है। इसलिए यह कानूनी सहायता के माध्यम से सामाजिक न्याय के लिए कार्य करता है। यह सामाजिक नीति के विकास के माध्यम से भी सामाजिक नयाय बढ़ाता है। इसी प्रकार समाज कार्य सामाजिक सेवा के वितरण के तंत्र के संचालन में सुधार करता है।

समाज कार्यकर्ता की वैयक्तिक अभिवृत्ति

समाज कार्यकर्ता भी एक मनुष्य ही होता है। सभी भावनाओं का अनुभव वह भी एक मनुष्य की भांति करता है। जैसे ही वह दूसरों की सहायता करने की स्थिति में होता है। वैसे ही उसमें श्रेष्ठता का अनुभव करेंगे की प्रवृत्ति विद्यमान होती है। समाज कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की समस्या की पहचान करते समय कभी–कभी जब सेवार्थी अपने दुखों और भूतकाल के दर्द भरे अनुभवों का वर्णन कर रहा होता है तो कार्यकर्ता, सेवार्थी की ही तरह अनुभव करता है या समाज कार्यकर्ता की यह प्रवृत्ति हो सकती है कि वह सेवार्थी को इस प्रकार देखें जैसे कि दर्पण में अपना प्रतिरूप दिख रहा हो। ये सभी कार्यकर्ता के प्रारंभिक जीवन और अनुभव में मूल कारण हो सकते हैं। जिस समय वह व्यावसायिक रूप से सहायता प्रदान करने की भूमिका में होता है उसे अपनी स्वयं की भावनाओं को समझना चाहिए और नियंत्रित करना चाहिए। उसे सेवार्थी की भावनाओं को जैसी वे हैं वैसे ही स्वीकार करना चाहिए। उसे उन्हें अपनी भावनाओं के साथ मिश्रित नहीं होने देना चाहिए। उसे सेवार्थी की भावनाओं और संसाधनों के रचनात्मक और सकारात्मक उपयोग के क्षण सेवार्थी की सहायता पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

समाज कार्य और नैतिक संहिता

कोई भी व्यवसाय सामान्यतः अपने व्यावसायिक व्यक्तियों को अत्यधिक प्राधिकार देता है। साधारण व्यक्ति जिसे कि समाज कार्य सहायता की आवश्यकता है वह कदाचित समस्या की जटिलताओं के विषय में नहीं जानता है। व्यावसायिक सलाह बहुमूल्य होती है और उसके निर्णय पर कदाचित प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता है। परंतु जब शक्ति को व्यवहार के मानदण्ड द्वारा नियमित नहीं किया जाता तो यह अत्याचार में परिवर्तित होने के लिए उत्तरदायी होती है। समाज कार्यकर्ता अपनी व्यावसायिक सेवा के लिए अधिक मूल्य ले सकते हैं या जनता से अवांछित मांग कर सकते हैं। इसलिए कुछ निश्चित मानदण्डों के द्वारा व्यावसायिक संगठनों द्वारा आचार संहिता का विकास किया गया है।

व्यावसायिक व्यक्ति का सेवार्थी, नियोजक संस्था और सहकर्मियों के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व होता है। उसकी समुदाय तथा व्यवसाय के प्रति भी जिम्मेदारी होती है। व्यावसायिक व्यक्ति का उसके सेवार्थी से संबंध उसकी सेवा का आधार है। संबंध

टिप्पणी

निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ होने चाहिए। व्यावसायिक व्यक्ति के भीतर लिंग, जाति, धर्म या रंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। व्यावसायिक व्यक्ति को सेवार्थी की समस्या तथा प्रत्येक सूचना को अत्यधिक गोपनीय रखना चाहिए। उसके अपने सहकर्मियों के साथ समानता, सहयोग, सहायता की प्रवृत्ति और प्रतिस्पर्धा पर आधारित अच्छे संबंध होने चाहिए।

व्यावसायिक व्यक्ति की समाज के प्रति जिम्मेदारी अपनी समस्त क्षमताओं और संसाधनों का योगदान समाज के अच्छे उपयोग के लिए करने में होती है। व्यवसाय के प्रति यह जिम्मेदारी स्वयं व्यावसायिक व्यक्ति के प्रति जिम्मेदारी से श्रेष्ठ होती है। सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक और अनौपचारिक ढंग सदस्यों को आचार संहिता के अनुरूप कार्य करने को सुनिश्चित करने के लिए हैं।

व्यवसाय को जब मान्यता दी जाती है तो वह अस्तित्व में आता है। केवल तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त लोगों के लिए नौकरियों को आरक्षित करके, नौकरियों में शैक्षिक योग्यता को प्राथमिकता प्रदान करके और वित्तीय संसाधनों के लिए प्रोत्साहन प्रदान करके ही मान्यता दी जाती हैं।

समाज कार्यकर्ता के सेवार्थियों, नियोजक संस्थाओं, सहकर्मियों, समुदाय एवं व्यवसाय के प्रति आचरण संबंधी उत्तरदायित्व होते हैं।

समाज कार्यकर्ता के सेवार्थी के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व व्यक्ति के कल्याण के रूप में उसका प्राथमिक कर्तव्य होता है। समाज कार्यकर्ता को वैयक्तिक रुचियों की अपेक्षा व्यावसायिक उत्तरदायित्व को महत्व देना चाहिए। उसे अपने सेवार्थी के (आत्म–निर्णय) विचारों का सम्मान करना चाहिए। उसे सेवार्थी से संबंधित समस्त विषयों को गोपनीय रखना चाहिए। समाज कार्यकर्ता को सेवार्थियों की वैयक्तिक विभिन्नताओं का सम्मान करना चाहिए और गैर व्यावसायिक आधार पर कोई विभेद नहीं रखना चाहिए।

समाज कार्यकर्ता का उसके सेवायोजक के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व होता है और उसे उसके प्रति निष्ठावान होना चाहिए। उसे अपने सेवायोजक को सही और यथार्थ सूचनाएं उपलब्ध करानी चाहिए। समाज कार्यकर्ता संस्था की सेवा की गुणवत्ता और परिश्रम के लिए उत्तरदायी होना चाहिए और उसे संस्था की व्यवस्था की प्रक्रिया का सर्वेक्षण करते रहना चाहिए। यहां तक कि अपने सेवायोजन की समाप्ति के पश्चात भी उसे अपनी संस्था तथा अपने सहकर्मियों का सम्मान करना चाहिए और उन्हें उनके उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने में सहायता करनी चाहिए। समाज कार्यकर्ता को अपने ज्ञान को जोड़ने के उत्तरदायित्व की कल्पना कर लेनी चाहिए। उसे सभी के साथ बिना किसी भेदभाव के व्यवहार करना चाहिए और शोध और व्यवहार में सहयोग करना चाहिए।

समाज कार्यकर्ता का समुदाय के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व है कि वह उसे अनैतिक व्यवहारों से बचाए उसे समुदाय की उन्नति के लिए ज्ञान और निपुणताओं का योगदान देना चाहिए।

ऊपर दिए गए सभी पहलुओं के अतिरिक्त समाज कार्यकर्ताओं के अपने स्वयं के व्यवसाय के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व है। उसे अपने व्यवसाय की अन्यायपूर्ण आलोचना या गलत व्याख्या से रक्षा करनी चाहिए। उसे अपने आत्मानुशासन और व्यक्तिगत

व्यवहार के माध्यम से जनता के विश्वास को कायम रखना चाहिए और इसमें अभिवृद्धि करनी चाहिए। समाज कार्यकर्ता को सदैव इस बात का समर्थन करना चाहिए कि व्यावसायिक व्यवहार के लिए व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

21वीं शताब्दी में समाज कार्य की विशेषताएं

यदि समाज कार्य की वैश्विक (भूमण्डलीय) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को विश्लेषित किया जाए तो हम समाज कार्य की विभिन्न विचारधाराओं को समझ सकते हैं।

धर्म व्यक्ति को अपने पड़ोसियों जिनको सहायता की आवश्यकता है, सहायता के लिए प्रेरणा देता था। अभाव ग्रस्त व्यक्तियों को भिक्षा दी जाती थी। जो व्यक्ति उनकी सहायता करते थे, वे परोपकार में भिक्षा देते थे। इस प्रकार से पाश्चात्य देशों ने समाज कार्य व्यवहार को परोपकार के साथ प्रारंभ किया। जैसे ही धर्म ने उन्हें निर्धन व्यक्तियों की सहायता के लिए प्रोत्साहित किया उन्होंने भिक्षा नकद और वस्तु के रूप में देना प्रारंभ कर दिया। शीघ्र ही उन्होंने अनुभव किया कि वे निर्धनों की वृद्धि के लिए दान नहीं दे सकते हैं और इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए एक ढंग की आवश्यकता थी। उसी समय राज्य (ब्रिटिश सरकार) ने कानून बनाकर और राज्य द्वारा निर्धनों की देखभाल आरंभ करके इन निर्धनों की समस्या में हस्तक्षेप किया।

कल्याण समाज कार्य दृष्टिकोण

राज्य ने अपनी सेवा के हिस्से को भिक्षा देकर और यू.के. में एलिजावेथन पुअर लॉ, 1601 पारित करके निर्धनों के लिए कार्य करना प्रारंभ किया। इस अधिनियम ने निर्धनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया– शारीरिक रूप से सक्षम निर्धन, शक्तिहीन निर्धन और आश्रित बच्चे। पहली श्रेणी के व्यक्तियों को कार्य–गृहों में कार्य करने के लिए बाध्य किया गया। इसके विपरीत अन्य दोनों श्रेणियों के लोगों को भिक्षागृह में रखकर भिक्षा दी जाती थी। यह अधिनियम, और बाद में पारित किए गए इस प्रकार के अन्य अधिनियम निर्धनता की समस्या को सुलझाने में सक्षम नहीं हुए। सरकार ने महसूस किया कि समस्या को समझने के लिए एक वैयक्तिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। समस्या एक हो सकती है परंतु विभिन्न व्यक्तियों के लिए उसी समस्या के विभिन्न कारण हो सकते हैं। उन्होंने महसूस किया कि इसके समाधान के लिए व्यक्तिगत कारणों का पता लगाया जाना चाहिए। इसलिए इस कार्य को करने के लिए चैरिटी ऑर्गनाइजेशन सोसाइटी की शुरुआत हुई।

नैदानिक समाज कार्य दृष्टिकोण

1935 में निर्धनों की सहायता की आवश्यकता को मान्यता प्रदान करते हुए सामाजिक सुरक्षा अधिनियम पारित किया गया। यह औद्योगीकरण की समस्याओं से निबटने के लिए था। उन्होंने लोगों की कुछ वित्तीय समस्याओं का उत्तरदायित्व ले लिया। बड़ी संख्या में स्वयं सेवकों को काम में लिया गया। ऐसे स्वयं सेवक जो कि प्रशिक्षित थे और वैयक्तिक सेवा कार्य व्यवहार भी कर सकते थे, वे भी अप्रशिक्षित लोगों का पर्यवेक्षण करने लगे।

अधिकांश लोगों ने महसूस किया कि धन मात्र से ही समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है इसलिए वे परामर्श की भूमिका की ओर उन्मुख हो गए। परामर्श ने अपना आधार मनोवैज्ञानिक विज्ञानों विशेष रूप से मनोविश्लेषण सिद्धांत से प्राप्त किया।

टिप्पणी

नैदानिक समाज कार्य, प्रत्यक्ष समाज कार्य हस्तक्षेप का विशिष्ट रूप है जो व्यक्तियों के समूहों और परिवारों के साथ अधिकतर कार्यकर्ता के कार्यालय में स्थान पाता है। इस अभियान में कार्यकर्ता स्वयं के अनुशासित प्रयोग द्वारा व्यक्ति और उसके सामाजिक पर्यावरण के बीच अंतः क्रिया को सुगम बनाता है।

पारिस्थितिकी समाज कार्य दृष्टिकोण

पारिस्थितिकी समाज कार्य दृष्टिकोण में समस्याओं को व्यक्ति की व्यक्तिगत कमी के रूप में न देखकर पर्यावरण में कमी के रूप में देखा जाता है। समाज कार्य की परंपरा जो सामाजिक उपचार और समाज सुधार पर बल देती थी पारिस्थितिकी दृष्टिकोण का आधार बन गई। व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता और उनकी सेवायोजक संस्थाएं उन्हें व्यवस्था में परिवर्तन का लक्ष्य रखने वाले परिवर्तन अभिकर्ता के रूप में महत्व प्रदान करती हैं। समस्या की पहचान करना, सेवार्थी और लक्ष्य व्यवस्था (जो समस्या उत्पन्न कर रही है), की पहचान करना, सेवार्थी के सहयोग से परिवर्तन के लक्ष्य पर निर्णय लेने की प्रक्रिया का पता लगाना एवं कार्य व्यवस्था की पहचान करना जिसके द्वारा परिवर्तन अभिकर्ता परिवर्तन के लिए अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकें, इत्यादि पारिस्थितिकी दृष्टिकोण के चरण हैं।

अतिवादी समाज कार्य दृष्टिकोण

समाज कार्यकर्ता केवल अक्षम और पथभ्रष्ट लोगों की देखभाल से ही संतुष्ट नहीं हैं। 1970 में, मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण, उन्होंने विचार किया कि बहुत सी समस्याओं का कारण अत्याचार है। उन्होंने अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों में सुधार और समतावादी सामाजिक व्यवस्था के विकास को सम्मिलित करके उसका विस्तार किया।

कुछ अतिवादी व्यवसाय में सामाजिक सुधार और विकास की पहुंच से बाहर जा चुके हैं। समाज कार्यकर्ताओं का लक्ष्य समायोजन की समस्याओं को निबटाने एवं व्यक्ति की एक अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के शिकार के रूप में देखने के स्थान पर सामाजिक समस्याओं एवं संबंधों में आधारभूत परिवर्तनों द्वारा व्यवस्था को परिवर्तित करना है। इसे अतिवादी समाज कार्य कहा जाता है किन्तु विभिन्न कारणों से यह भी समस्याओं के समाधान में असफल रहा है।

प्रगतिशील समाज कार्य

प्रगतिशील समाज कार्यकर्ता अपना तादाम्य अतिवादी व्यक्तियों, सक्रिय व्यक्तियों इत्यादि के साथ कर सकते हैं। वे समाज में व्याप्त अन्याय से दुखी होते हैं। प्रगतिशील समाज कार्यकर्ता समाज में अत्याचार से जुड़े युक्त तत्वों में परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं। वे उन घावों को भरने में सहायता करते हैं और उन्हें अपना भविष्य बनाने के लिए समुचित विकल्प तैयार करने के लिए शिक्षित करते हैं।

नारीवादी समाज कार्य

उदार नारीवाद, विचारों का एक संप्रदाय है जो लैंगिक समानता पर बल देता है और कानूनी सुधार तथा महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए मताधिकार, शिक्षा और नौकरी के लिए समान अवसरों की मांग करता है। उदार नारीवादी समाज में लिंग संबंधी उत्पीड़न के मूल कारणों का विश्लेषण नहीं करते हैं। मार्क्सवादी महिलावादियों का

विचार है कि महिलाओं का उत्पीड़न पूंजीवादी उत्पादन पद्धति का परिणाम है। जहां पर घरेलू कार्यों और मजदूरी सहित कार्य में बंटवारा है वहां केवल मजदूरी सहित कार्य ही उत्पादक समझा जाता है।

टिप्पणी

अध्यात्म एवं समाज कार्य

भारत अनेक धर्मों और श्रेष्ठतम धार्मिक विचारधाराओं की जन्म भूमि रहा है। हिन्दू धर्म में वेद और उपनिषद आध्यात्मिक आधार प्रदान करते हैं। वे एक व्यक्ति को उसके आन्तरिक बलों को नियन्त्रित करने का ढंग उपलब्ध कराते हैं जिससे वह परम सत्य को समझ सके। सत्य, एक व्यक्ति के स्वयं की पहचान और जीवन के उद्देश्य को जानने का उत्तर है। यह एक व्यक्ति का उसकी भावनाओं को नियन्त्रित करने के लिए अलगाव का एक ढंग प्रदान करता है।

हम अपनी संस्कृति में विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि मानवता के लिए सेवा ईश्वर के प्रति सेवा है। मानवतावाद समाज कार्य का आधारभूत सिद्धांत है। यह मनुष्य की योग्यता एवं उसकी गरिमा का सम्मान करता है। समाज कार्य सृजनात्मकता और अन्तर्निहित शक्तियों में विश्वास करता है।

समाज कार्यकर्ता समुचित संस्थाओं और सामाजिक अवसरों को उपलब्ध कराने के माध्यम से उनकी शक्तियों को सामने लाता है। समाज कार्यकर्ता विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व वाले, यहां तक कि समाज–विरोधी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के साथ भी अन्तःक्रिया करेगा। उसे उनके प्रति अनिर्णयात्मक मनोवृत्ति का विकास करना चाहिए और व्यक्तियों और समूहों को जैसे वे हैं वैसे ही स्वीकार करना चाहिए। समाज कार्यकर्ता एक नियन्त्रित व्यावसायिक आत्म से युक्त प्रशिक्षित व्यक्ति होता है जिसके परिणामस्वरूप वह श्रेष्ठता का अनुभव करने से दूर रहता है हालांकि, सहायता प्रदान करने वाले संबंधों में वह सहायता देने वाले सिरे पर होता है। इसके अतिरिक्त उसे व्यावसायिक प्रयास करते समय सेवार्थी के साथ अनुभव करने में अलग दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए।

समाज कार्य का लक्ष्य लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए उनकी सहायता करना है। अधिकतर समाज कार्य अंतरवैयक्तिक समस्याओं जैसे– वैवाहिक जीवन की समस्याओं, अभिभावक–बच्चों की समस्याओं, गम्भीर रोगियों के पुनर्वास इत्यादि के साथ कार्य करता है। यह समाज सेवा से भिन्न है। व्यावसायिक संबंधों, आमने–सामने अंतःक्रिया, शक्ति प्रदान करने वाले तत्वों की उपस्थिति समाज कार्य समाज सेवा से भिन्न बनाती है। समाज कार्य का आधार ज्ञान है जो कि अन्य सामाजिक मनोवैज्ञानिक विज्ञानों से लिया गया है। समाज कार्य की प्रणालियां हैं जैसे– समाज केस अध्ययन, सामाजिक सामूहिक कार्य, सामुदायिक संगठन, सामाजिक क्रिया, समाज कल्याण प्रशासन और समाज कार्य शोध। ये प्रणालियां समाज कार्यकर्ता को व्यक्तियों के साथ करने में सहायता करती हैं।

समाज कार्य के तीन महत्वपूर्ण कार्य हैं– क्षीण सामाजिक क्रिया की पुनर्स्थापना, संसाधनों का प्रबंध करना तथा सामाजिक अकर्मण्यता का निवारण करना। समाज कार्य का लक्ष्य समस्या का समाधान करना है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी मनोसामाजिक समस्याओं के साथ कार्य करता है, अंतरवैयक्तिक संबंधों की समस्याओं को ठीक करता है और सामाजिक न्याय दिलाता है। समाज कार्यकर्ता की व्यक्तिगत

अभिवृत्तियां जैसे– नैदानिक दृष्टिकोण, पारिस्थितिकी दृष्टिकोण, अतिवादी दृष्टिकोण, प्रगतिशील समाज कार्य एवं नारीवादी समाज कार्य तक विभिन्न विचारधाराओं का एक लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है।

टिप्पणी

4.2.5 व्यावसायिक–समाज कार्य : भविष्य के दृष्टिकोण, कार्य व चुनौतियां

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसमें एक सामाजिक एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ता द्वारा समस्याग्रस्त व्यक्तियों को उनकी आवश्यकतानुसार मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान की जाती है। आज तक समाज कार्य के प्रति लोगों में भ्रांतियां फैली हैं। इस संबंध में भी विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। प्रो. राजाराम शास्त्री के शब्दों में समस्याग्रस्त व्यक्तियों के समस्या समाधान निदान और उपचार का जो नवीनतम तरीका विकसित हुआ है वही समाज कार्य है। उनके अनुसार इसी परिभाषा में जो भी कार्य विधि एवं जो भी उपकरण उपयोग किये जाते हैं वे सभी इसमें सम्मिलित किये जाते हैं। समाज कार्य वह है जो आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति की आवश्यकतानुसार व्यक्ति को भौतिक सहायता प्रदान करता है तथा आवश्यकतानुसार उसको मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान करता है। उसको इस योग्य बना दिया जाता है कि वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं करे और समाज में समायोजन कर सके। इस प्रकार समाजकार्य का उद्देश्य पूर्ण भी हो जाएगा। यदि व्यक्ति स्वयं में संतुष्ट रहे तो एक ऐसे समाज का निर्माण हो सकता है जहां सभी समान अधिकार के साथ जीवनयापन कर सकेंगे। समाज कार्य का इतिहास बहुत ही पुराना है। समाज कार्य का जन्म इंग्लैण्ड से माना जाता है और समाज कार्य के चलते इंग्लैण्ड ने प्रगति की। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जिस देश में समाज कार्य ने प्रगति की है उस देश का विकास हुआ है। इस प्रकार देश की प्रगति में समाज कार्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

कोई भी व्यवसाय समाज में सामाजिक रूप से उपयोगी तभी हो सकता है जब वह अपनी व्यावसायिक क्षमताओं का प्रयोग करते हुए सामाजिक रूप से लोगों को संतुष्ट कर सके। समाज में कोई भी शिक्षा एवं व्यवसाय किसी न किसी रूप में एक दूसरे पर निर्भर अवश्य है। कोई भी व्यवसाय समाज के परिप्रेक्ष्य के बिना अपने उद्देश्यों, विषय–वस्तु एवं माध्यमों का निर्धारण नहीं कर सकता है। समाज कार्य व्यवसाय के अंतर्गत सामाजिक आवश्यकताओं, आयामों एवं जटिलताओं का समावेश गहराई पूर्वक दिखना चाहिए। जिसके द्वारा यह अन्य व्यवसायों एवं कार्यों के परिप्रेक्ष्य में नये ज्ञान एवं दृष्टिकोण को अपने अंदर समाहित कर सके।

यह दुर्भाग्य की बात है कि छः दशक बीतने के बाद भी भारत में समाज कार्य अभी भी एक नए व्यवसाय के रूप में दिखाई पड़ता है या इसको यह भी कह सकते हैं कि अपूर्ण व्यवसाय के रूप में दिखता है। क्योंकि यह व्यवसाय अपनी व्यावसायिक क्षमताओं के आधार पर समाज में अपनी स्वीकृति नहीं सिद्ध कर पाया है। जैसा कि मंडल ने 1983 में अवलोकन किया कि भारत में समाज कार्य की शिक्षा समाज की आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में समसामयिक नहीं है। भारतीय समाज धीरे–धीरे बाहरी विश्व के संपर्क में आने के कारण बहुत ज्यादा जटिल होता जा रहा है तथा उसने विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में बहुत अधिक वृद्धि की है। जिसके परिणामस्वरूप समाज

कार्य व्यवसाय के समक्ष बहुत सी गम्भीर चुनौतियां हैं, जिससे इस व्यवसाय को अपने अस्तित्व को बनाए रखने में कठिनाइयां महसूस हो रही हैं। ये चुनौतियां उसे अंदर व बाहर से प्राप्त हो रही हैं।

टिप्पणी

समाज कार्य व्यवसाय के समक्ष तीन स्तर पर चुनौतियां हैं–

1. समाज कार्य शिक्षा के विभागों/विद्यालयों के स्तर पर।
2. समाज कार्य व्यवसाय के अभ्यास के स्तर पर।
3. व्यावसायिक मानदण्ड स्थापित करने वाले व्यावसायिक संगठनों के स्तर पर।

समाज कार्य के बाहर

समाज कार्य व्यवसाय के बाहर से प्राप्त होने वाली चुनौतियों को मुख्य रूप से चार स्तरों पर जाना जा सकता है–

1. अन्य व्यवसाय जैसे गृहविज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र द्वारा।
2. गैर सरकारी संगठन एवं गांधीवादी विचारधारा।
3. नौकरशाही।
4. विभिन्न सामाजिक आंदोलनों से जुड़े हुए व्यक्ति तथा स्वयं व्यवसाय के सेवार्थ में।

भारत में ये चुनौतियां भविष्य को देखते हुए एक गहन एवं त्रुटिरहित विश्लेषण की मांग करती हैं। इन सबके अतिरिक्त भारतीय समाज के बदलते हुए प्रतिमानों ने विभिन्न प्रकार की नई–नई समस्याओं को जन्म देते हुए सामाजिक कार्यकर्ता के सामने गम्भीर संकट पैदा किया है।

भारत में जहां एक ओर बहुत अधिक जनसंख्या वृद्धि हो रही है। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की समस्याएं जन्म ले रही हैं तथा इस परिप्रेक्ष्य में सरकार द्वारा परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। जिनके बहुत अच्छे तथा सकारात्मक परिणाम हमको देखने को नहीं मिलते हैं। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप ही समाज में कृषि हेतु भूमि लगातार कम होती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि ने ही समाज के समक्ष आवास की समस्या उत्पन्न की है। औद्योगिक राज्यों का जन्म हो रहा है, खाद्य पदार्थों की कमी हो रही है, लोग पीने के पानी के अभाव में मर रहे हैं। विभिन्न प्रकार की बीमारियों एवं प्रदूषण में निरंतर वृद्धि हो रही है। ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है जिनके पास छत नहीं है। शहरों में मलिन बस्तियो का जन्म हो रहा है।

"1991 की जनगणना में 151.11 लाख आवास राष्ट्र में थे जिनमें 15 लाख आवास ऐसे थे जिनमें केवल एक कमरा था," (महानिबन्धक एवं जनगणना आयुक्त, 1993)। हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी अशिक्षित है। अभी भी सभी शत–प्रतिशत बच्चों का विद्यालयों में प्रवेश एक सपना है। विद्यालयों में बच्चों की उपस्थिति कम है। प्राइमरी शिक्षा में गंभीर अनियमितताएं मिल रही हैं। ग्रामीण एवं शहरी शिक्षा में अंतर है। समाज में बालक–बालिकाओं में भेदभाव जारी है। समाज में दबे हुए अल्पसंख्यकों की संख्या बढ़ रही है। विभिन्न प्रकार की दैनिक आवश्यकताओं–कपड़ा, आवास, शिक्षा, जल एवं खाद्य पदार्थों में निरंतर कमी हो रही है।

टिप्पणी

भारत में गरीबी की समस्या विकराल रूप लिए हुए है। गरीबी रेखा में नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है। लोगों की प्रति व्यक्ति आय में मामूली वृद्धि परिलक्षित होती है। विकास कार्यों से संबंधित बहुत अधिक बजट का भार देश की जनसंख्या के ऊपर खर्च किया जा रहा है, जो कि भारत वर्ष को गरीबी की ओर ले जा रहा है।

बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। विशेषकर पढ़े–लिखे लोगों में काम चाहने वाले बेरोजगारों की संख्या 106–107 मिलियन तक पहुंच गयी है। काम करने वाले बहुत से ऐसे व्यक्तियों की संख्या असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्रों में देखने को मिल रही है, जहां उन्हें विभिन्न प्रकार के अत्याचारों एवं उत्पीड़नों का सामना करना पड़ रहा है। देश में अत्यधिक विकास की गति ने विलासी उपभोग से संबंधित वस्तुओं के निर्माण को प्रोत्साहित किया है जोकि देश के अमीर लोगों के प्रभाव को बढ़ावा देती है। समाज में प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक असमानताएं जन्म ले रही हैं, जो किसी न किसी रूप में हमें प्रभावित करती हैं। फलस्वरूप ग्रीन हाउस का प्रभाव बढ़ रहा है तथा ओजोन परत का क्षरण हो रहा है।

समाज में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति में गिरावट आ रही है। विभिन्न प्रकार के अपराध तथा विसंगतियां समाज में उत्पन्न हो रही हैं। यहां तक कि राजनीति भी अपराध की ओर प्रेरित हो रही है। विभिन्न प्रकार के अपराधी तथा माफिया जन्म ले रहे हैं, जिनके परिणामस्वरूप भारत का आम नागरिक डरा व सहमा हुआ है।

नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के साथ–साथ दुर्घटनाओं की संख्या भी बढ़ रही है। लोग शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग हो रहे हैं। विभिन्न प्रकार की जहरीली गैसों एवं रसायनों के खतरनाक उपयोग के परिणामस्वरूप नयी–नयी बीमारियां जन्म ले रही हैं। हमारे आधुनिक जीवन में चिन्ता एवं तनाव के कारण कई प्रकार की समस्याएं जन्म ले रही हैं।

देश में सामाजिक सौहार्द एवं एकीकरण पर खतरा बढ़ता जा रहा है। धर्मवाद, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद बढ़ता जा रहा है। लोगों में व्यक्तिवाद, भौतिकवाद तथा दूसरे लोगों को हानि पहुंचाते हुए लाभ पाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जीवन में भौतिकता बढ़ रही है, जिसके कारण शक्ति एवं महत्वाकांक्षाओं पर व्यक्ति ज्यादा जोर दे रहा है। इसके लिए वह किसी भी स्तर तक जाने को तैयार है। व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो गया है। आज के समय में हत्या, बलात्कार, अपहरण, दहेज, भ्रष्टाचार इत्यादि के मामलों में वृद्धि हो रही है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति तो सचेत हुआ है साथ ही वह दूसरों के अधिकारों में भी हस्तक्षेप कर रहा है। ये सब परिस्थितियां मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक गंभीर समस्या बनती जा रही हैं।

विभिन्न प्रकार के उद्योगों एवं वस्तुओं के उत्पादन की आड़ में उद्योगपति और दुकानदार भी तरह–तरह के असामाजिक कार्यों में लिप्त हैं। जैसे कि कृत्रिम वस्तुओं का निर्माण, ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी, काला–बाजारी, माप–तौल में कमी, वैधता समाप्त होने के बाद भी वस्तुओं की बिक्री इत्यादि। क्रेताओं व उपभोक्ताओं की स्थिति बहुत खराब है। उपभोक्ताओं को उनकी सुरक्षा के लिए विशेष प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। जिसके लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनाए गए हैं। नई–नई

टिप्पणी

आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप उदारीकरण तथा विभिन्न प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। अनेक प्रकार की बाधाएं एवं नियंत्रण दूर हुए, जिनसे निजीकरण और वैश्वीकरण को प्रोत्साहन मिला। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक समस्याएं उत्पन्न हुईं। सार्वजनिक उपक्रमों की उपेक्षा का दौर भी प्रारंभ हुआ जिससे सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के बीच असमानताएं बढ़ीं। हमारी निर्यात–नीति में परिवर्तन हुआ, तकनीकी सुधार में वृद्धि हुई।

विभिन्न प्रकार की आकस्मिक घटनाओं मुख्यतया मृत्यु एवं दुर्घटना, शारीरिक अपंगता, नयी एवं घातक बीमारियां जैसे एड्स आदि एवं पारम्परिक सामाजिक सुरक्षा संस्थाओं जैसे– संयुक्त परिवार, धार्मिक संगठनों, दानदाता संस्थाओं आदि के बिखराव ने सामाजिक सुरक्षा को और भी अधिक प्रासंगिक बना दिया है।

भौतिक वस्तुओं के उपभोग की सतत रूप से बढ़ती लालसा, आवश्यक सेवाओं एवं संसाधनों का आम आदमी से दिन प्रतिदिन दूर होते जाना, सामाजिक तन्त्र न्याय आधारित प्रणाली का निरन्तर क्षय एवं समाज में बढ़ता असन्तोष यहां तक कि मूलभूत सेवाओं का भी अभाव व्यक्ति एवं समाज में निरन्तर आक्रोश एवं असन्तोष को जन्म दे रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर लोगों का पलायन एवं सामाजिक–आर्थिक विकास ने शहरों में झुग्गी–झोंपड़ियों के अनियोजित विकास को बढ़ावा दिया है। शरणार्थियों का पलायन, मुख्य रूप से अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति समाज में व्याप्त हिंसा एवं सरकार द्वारा समाज को मौलिक सुरक्षा प्रदान करा सकने में असफल होना, सामाजिक व्यवस्था में अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दे रहा है।

महिलाओं द्वारा जीवन एवं सभ्यता के प्रत्येक क्षेत्र में समान भागीदारी ने व्यक्ति की भूमिकाओं को लेकर एक संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है, जो एक जटिल समस्या के रूप में सामने आ रही है। पारम्परिक रूप से जहां परिवार में बच्चों को परिवार के सदस्यों की अलग–अलग भूमिकाएं सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा प्रदान करती थीं, वहीं अब इनके बिखराव ने जटिल समस्याओं को जन्म देना शुरू कर दिया है। परिवार के द्वारा किये जाने वाले ज्यादातर कार्यों को अब समाज के विभिन्न व्यावसायिक संगठनों ने अंजाम देना शुरू कर दिया है, जिससे परिवार के अस्तित्व पर ही खतरा मंडराने लगा है। समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में विकसित एवं स्थापित होने के लिए समाज की उपरोक्त स्थितियों, समस्याओं एवं चुनौतियों को देखते हुए उनके समाधान प्रस्तुत करने की दिशा में कार्य करना होगा।

4.2.6 समाज कार्य विभाग/समाज कार्य विद्यालयों के समक्ष समाज कार्य शिक्षा से संबंधित चुनौतियां

1. समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं एवं मौलिक मुद्दों जैसे जाति व लिंग आधारित विभेदीकरण, अन्याय, गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा, गन्दगी, मानवाधिकारों का हनन, ग्राहकों का शोषण आदि, सिलिंग द्वारा जमीन के दुबारा बंटवारे, बंटाईदारों को जमीन का मालिकाना हक, जमींदारी उन्मूलन, परिवार के एक सदस्य को रोजगार की गारण्टी, मुख्यतया उन लोगों पर प्रतिबन्ध लगा कर जिनके परिवार के लोग सरकारी नौकरियों में पहले से मौजूद हैं, एवं उदार

टिप्पणी

ब्याज प्रणाली के अंतर्गत लोगों को ऋण प्रदान करवाकर रोजगार सुनिश्चित करने की व्यवस्था, 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करना एवं सभी के लिए मकान की व्यवस्था जैसे मुद्दों को समाज कार्य शिक्षा के अंतर्गत सम्मिलित करना चाहिए। मनो–सामाजिक समस्याओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है एवं व्यक्तिगत समूह एवं समुदाय की मनोसामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए उनके स्तर पर सही एवं संतुलित समाधान प्रस्तुत करना होगा एवं सामाजिक तंत्र को भी बदलने की आवश्यकता है। खासकर तब, जब यह तंत्र उनकी समस्याओं के लिए जिम्मेदार है।

2. समाज कार्य विषय के अंतर्गत सामाजिक नीति, सामाजिक योजना एवं सामाजिक विकास आदि से संबंधित विषय भारतीय समाज में बदलाव लाने हेतु ज्यादा मददगार सिद्ध होंगे। विशेष रूप से मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय जैसे मुद्दे अतः इन्हें समाज कार्य शिक्षा के अंतर्गत अधिक महत्व देने की आवश्यकता है।
3. मानव संसाधन विकास एवं लोक आधारित विकास को समाज कार्य विषय के अंतर्गत समुचित स्थान देने की आवश्यकता है। समाज कार्य शिक्षा में मानव संबंधों की पर्याप्त तकनीकों एवं ढंगों को, जो सामाजिक सेवा प्रदान करने का माध्यम हैं, भी समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।
4. समाज कार्य शिक्षण के वर्तमान स्वरूप में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के उच्च पदों के लिए समाज कार्य व्यावसायिकों को तैयार करने के से बेहतर है कि छोटे एवं तीन–तीन महीने के सर्टिफिकेट कोर्स चलाए जाएं, जो उन लोगों को मदद कर सकें जो जमीनी स्तर पर पहले से ही कार्य कर रहे हैं।
5. चूंकि सामाजिक सेवाओं को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए प्रबंध के नये तरीके एवं तकनीक जैसे विभिन्न प्रबंध कौशल जैसे उद्देश्य द्वारा प्रबंधन, संचार, मूल्य–लाभ विश्लेषण, समय प्रबंधन, सबल पक्ष, कमजोरी, अवसर, चुनौतियां, विश्लेषण, मूल्य प्रबंधन, संघर्ष प्रबंधन, उद्यमिता विकास, टीम बिल्डिंग, वितरण एवं प्राप्ति अधिकारों के कर्तव्य एवं जिम्मेदारी एवं वित्त प्रबंधन, वित्तीय परिभाषाओं का विश्लेषण, परियोजना निर्माण एवं मूल्यांकन, कार्यालय प्रबंधन आदि विषयों को समाज कार्य शिक्षा में स्थान देना होगा।
6. वर्तमान समय में अभियान्त्रिकी प्रणाली एवं कम्प्यूटर की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इन्हें भी समाज कार्य शिक्षण के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की आवश्यकता है।
7. 'कल्याण' की जगह 'विकास' एवं 'सशक्तिकरण' जैसे विषय को महत्व देना चाहिए।
8. सेवार्थी को सामाजिक सेवाएं प्रदान करने के लिए एवं समुदाय को भी मूल्य आधारित सेवाओं पर बल देते हुए तथा धनोपार्जन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के विषय एवं शिक्षा को सामाजिक कार्य शिक्षण में सम्मिलित करना चाहिए। परसोला ने ठीक ही कहा है, "भविष्य के सामाजिक कार्यकर्ताओं को ग्राहकों के भागीदारों सहित अन्य व्यावसायिक एवं राजनीतिज्ञों के साथ कार्य करना पड़ेगा।"

टिप्पणी

9. समाज कार्य पाठ्यक्रम सामान्यतया कार्यालयों से बाहर एवं क्षेत्र आधारित तैयार किया जाना चाहिए। समाज के तेजी से बदलते हुए परिवेश में तथा विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा लोक नीति में बदलावों के कारण समाज कार्य डिग्री धारियों के लिए नये रास्ते एवं अवसरों के द्वार खुले हैं। नये क्षेत्रों एवं आयामों के जुड़ने से न केवल समाज कार्य डिग्री धारियों की जिम्मेदारियां बढ़ी हैं बल्कि कई तरह की भ्रांतियां भी पैदा हुई हैं। समाज कार्य पाठ्यक्रम में समय–समय पर बदलाव के बावजूद अनेक नये एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र जैसे मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, संगठन गत्यात्मकता, भागीदारी प्रबंधन, हिंसा, पर्यावरण संरक्षण एवं विकास, ग्राहक संरक्षण, चिन्ता प्रबंधन, आतंकवाद, प्रति–आतंकवाद एवं शान्ति, कम्प्यूटर तकनीक, सामाजिक आंदोलन, राजनीतिक ध्रुवीकरण, मतैक्य स्थापना, लोक संबंध, संचार, संबंध–स्थापना, लोक–विवाद आदि विषयों को सम्मिलित नहीं किया जा सका है जिन्हें सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

10. समाज कार्य शिक्षा मुख्य तौर पर विदेशी साहित्य पर आधारित है। अधिकतर किताबें या तो अमेरिकी लेखकों द्वारा लिखी गयी हैं या ब्रिटिश लेखकों के द्वारा। इस संबंध में नागपाल ने रेखांकित किया है, "यहां तक कि आज भी कोई भी मौलिक किताब भारतीय समाज कार्य पर उपलब्ध नहीं है जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन का वर्णन हो।" यद्यपि इस दिशा में काफी प्रयास हो रहे हैं एवं विशेषकर अंग्रेजी में काफी किताबें लिखी गयी हैं किन्तु ये नाकाफी हैं। विशेषतौर पर तब, जब दूर–दराज के इलाकों में एवं देश के कई भागों में विद्यार्थी राष्ट्रभाषा या क्षेत्रीय भाषा में पुस्तकों की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय भाषा में पुस्तकों की कमी एक प्रमुख चुनौती है। नागपाल ने ठीक ही चेतावनी दी है, "समाज कार्य को व्यावसायीकरण की ओर जाना होगा। इसे एक तरफ प्रभावशाली सांस्कृतिक दर्शन की नींव तैयार करनी होगी वहीं दूसरी ओर लक्ष्य प्रतिवेदित करना पड़ेगा एवं उन्हें बढ़ाना होगा।"

11. यद्यपि समाज कार्य के तरीके (Methods of social work) जैसे संकुचित शब्दों के स्थान पर एक सामान्य तरीके को विकसित एवं स्थापित किया जा रहा है जो सभी भागों को लाभ पहुंचा सके। फिर भी अभी वैयक्तिक समाज कार्य एवं समूह समाज कार्य पर अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या का बड़ा भाग अभी मूलभूत आवश्यकताओं एवं संसाधनों के अभाव में रहने को मजबूर हो। वहां सामाजिक बदलाव (social change) के लिए कार्य करना चाहिए जो समाज की नीतियों, योजनाओं, सामाजिक विकास के कार्यक्रमों, समाज कल्याण प्रशासन (जिन्हें सामाजिक सेवा प्रबंधन नाम दिया जाना चाहिए, जो नये प्रबंधन तकनीक द्वारा सामाजिक सेवाओं को प्रभावी तरीके लागू कर सकें) पर ध्यान दिया जाना चाहिए। सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक अनुसंधान को अत्यंत महत्व दिये जाने की जरूरत है जो समस्या के समाधान का सही तरीका एवं तकनीक दे सके। परामर्श (counselling) पर भी अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है जो अभी समाज कार्य पाठ्यक्रम के वैयक्तिक समाज कार्य में एक महत्वपूर्ण भाग नहीं है।

टिप्पणी

12. समाज कार्य संकाय सदस्यों के लिए प्रशिक्षण का अभाव, समाज कार्य शिक्षकों एवं व्यावसायियों के विचारों के आदान–प्रदान की कमी, व्यावसायिक एवं उद्योग घरानों की कम रुचि, दान दाता संस्थाओं में समाज कार्य के प्रति रुचि का अभाव, समाज कार्य को विश्वविद्यालयी व्यवस्था के अंतर्गत बढ़ावा देना, समाज कार्य विद्यालयों की स्वायत्ता को समाप्त कर उसे विश्वविद्यालय के एक विभाग के रूप में स्थापित कर देना (कई विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभागों में समाज कार्य को सामान्यतया स्नातक के एक विषय के रूप में शामिल किया गया है जिसमें क्षेत्र कार्य फील्डवर्क पाठ्यक्रम एवं प्रयोगात्मक विषयों को शामिल नहीं किया गया है), पाठ्यक्रम के समय विद्यार्थियों द्वारा किये गये फील्डवर्क की पहचान की कमी एवं उपेक्षा आदि समस्याएं दिन प्रतिदिन समाज कार्य विषय की गुणवत्ता को कम कर रहे हैं जिसमें एक आवश्यक एवं गंभीरतापूर्ण हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

13. अभिकरण आधारित फील्डवर्क को विभिन्न समाज कार्य विभागों एवं विद्यालयों द्वारा बढ़ावा दिया जाना चाहिए। स्वैच्छिक संगठनों एवं समाज कार्य विभागों/विद्यालयों के बीच सम्मिलित भागीदारी का सर्वथा अभाव है। जिसे दुरुस्त किये जाने की आवश्यकता है। सामान्यतया समाज कार्य विद्यालयों को स्वैच्छिक संगठनों से लाभ उनके विद्यार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के रूप में प्राप्त होता है। परंतु इसे अंतर–आयामी बनाते हुए समन्वय को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विभागों के बीच भी पूरी तरह समन्वय होना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को फील्डवर्क अच्छे ढंग से कराया जा सके। प्रत्येक समाज कार्य विभाग या विद्यालय को कम से कम एक मलिन बस्ती को गोद लेना चाहिए।

14. सामाजिक कार्य अनुसंधान मुख्य रूप से सामाजिक समस्याओं की खोज एवं कुप्रबंधन से होने वाले प्रभाव तक सीमित हो गया है। प्रभावशाली हस्तक्षेप की मौलिक तकनीकों एवं तरीकों द्वारा समस्याओं के समाधान का सामाजिक कार्य अनुसंधान में सर्वथा अभाव है। यहां तक कि सांख्यिकीय विश्लेषण में भी व्याख्या पर अधिक जोर दिया जाता है। बजाय इसके परिणामों का अत्यधिक उपयोग समस्या समाधान में किया जाए। समाज कार्य विद्यार्थियों को नमूने के आकार (Sample size), तरीके एवं तकनीकों के बारे में ठीक तरह से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे पूर्ण समग्र (Universe) के परिणाम को ठीक तरह से विश्लेषित कर सकें। कम्प्यूटर का उपयोग भी जरूरी होना चाहिए खासकर तब, जब सामाजिक अनुसंधान की विशिष्ट साइट उपलब्ध है।

15. मध्यम वर्गीय समाज कार्य विद्यार्थियों का प्रमुख लक्ष्य समाज कार्य पाठ्यक्रम को पूरा करके कोई प्रतिष्ठित नौकरी प्राप्त करना, मुख्यतया अधिकारी बनना होता है। समाज कार्य के विद्यार्थियों की इस तरह की मनोवृत्ति को बदलने की जरूरत है और उन्हें यह बताने की आवश्यकता है कि वे समाज सेवा के लिए तत्पर रहें, विशेष रूप से उनके अंदर ऐसे मजबूत मूल्यों का संचार होना चाहिए, जिसमें बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए समान अवसर हों, उत्पीड़न, भूख तथा बीमारियों से सुरक्षा तथा मुक्ति प्रदान करने की भावना निहित हो। निश्चित रूप से समाज कार्य विद्यार्थियों की इस व्याख्या कि उन्हें भी बाकी व्यावसायिकों की तरह अच्छा एवं सुविधापूर्ण प्रतिष्ठित जीवन जीने का अधिकार है, को गलत नहीं

टिप्पणी

ठहराया जा सकता। फिर भी उन्हें इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि उनके मन में मानवता को स्थापित करने एवं लोगों को सेवाएं देने की भावना निहित हो एवं उनका रुझान सामाजिक सेवा एवं लोगों की विनम्र सहायता की ओर अधिक होना चाहिए।

16. समाज कार्य के विभागों एवं विद्यालयों के प्रशिक्षणकर्ता को उच्च अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों को अपने विभाग में महत्वपूर्ण अवसरों पर निमन्त्रित कर उनके साथ निकट संबंध स्थापित करने चाहिए। राजनीतिज्ञों एवं अधिकारियों को यह बताना चाहिए कि समाज कार्य के विद्यार्थी अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों की अपेक्षा समाज के प्रति सकारात्मक कार्यों एवं दायित्वों को ज्यादा अच्छे तरीके से अंजाम दे सकते हैं। साथ ही वे इस मामले में अन्य सामाजिक विज्ञान विषयों में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों से अधिक सक्षम सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि उन्हें इस तरह के कार्यों को करने का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त है। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि समाज कार्य विद्यार्थियों को राजनीतिक गठजोड़ स्थापित करना चाहिए बल्कि उन्हें राजनीतिज्ञों के साथ निष्पक्ष बर्ताव करना चाहिए न कि राजनीतिज्ञों के व्यक्तिगत सिद्धांतों एवं कार्यों को अंजाम देना चाहिए।

17. समाज कार्य विभागों एवं विद्यालयों को अपने पाठ्यक्रम में वास्तविक एवं प्रायोगिक विषयों को समाहित करने के लिए अपने पूर्व विद्यार्थियों की एक सूची तैयार करनी चाहिए तथा समय–समय पर उनकी बैठक बुलानी चाहिए ताकि नवीन सामाजिक अनुभवों एवं सफलताओं को पाठ्यक्रम में जोड़ा जा सके।

समाज कार्य के स्नातक एवं परास्नातक विद्यार्थी विभिन्न संगठनों में उच्च पदों को पाने में काफी सफल रहे हैं। पर वे व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में पहचान बनाने में बड़ी चुनौती का सामना कर रहे हैं, क्योंकि उनके वरिष्ठ खास करके नौकरशाह सामाजिक कार्यों एवं चुनौतियों की समुचित समझ नहीं रखते। अलग तरीके से सेवा देने की भावना का अभाव और जिस क्षेत्र में वे कार्य कर रहे हैं, उसमें अच्छा करने की भावना का अभाव और बाकी समाज विज्ञानियों से कुछ अलग करने की योग्यता की कमी ने स्थिति को बद से बदतर बनाया है। स्थिति और भी दयनीय हो जाती है जब बाकी विषयों से आये साथी सामाजिक वैज्ञानिक अपने विषय में दक्षता की वजह से इनसे अच्छा कर लेते हैं। यदि भविष्य में समाज कार्य विज्ञानियों को पहचान बनानी है तो उन्हें बाकी लोगों से अच्छा कार्य करके दिखाना होगा और अपने कार्यों से इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा कि वे अन्य लोगों से बेहतर एवं अलग हैं। समाज कार्यकर्ताओं को अपनी सामाजिक अभियान्त्रिकी की विशेषज्ञता प्रस्तुत करते हुए अपने लिए नये एवं विशेष क्षेत्र पैदा करने होंगे।

समाज कल्याण एवं सामाजिक सेवाएं प्रदान करने के कारण समाज कार्य वैज्ञानिक स्वयं को उनके सेवार्थी से अधिक बुद्धिमान समझने जैसी अह्य की समस्या से गुजर रहे हैं। बड़ी संस्थाओं एवं संगठनों में समाज कार्य वैज्ञानिक नौकरशाहों की तरह व्यवहार करने लगे हैं, और उनमें वे तमाम बुराइयां आ गयी हैं जो साधारणतया नौकरशाहों में पायी जाती हैं। वे लोगों को साथ लेकर चलने एवं उनकी साझीदारी विकसित करने की बजाय उनसे दूरियां बढ़ा रहे हैं। यदि समाज कार्य वैज्ञानिकों को अपनी छवि सुधारनी है तो उन्हें समान भागीदारी की भावना के साथ अपने सेवार्थी के साथ कार्य करना होगा।

टिप्पणी

सामाजिक कार्यकर्ता एक अलगाव की भावना के साथ कार्य कर रहे हैं यहां तक कि अस्पताल, उद्योग, शहरी विकास, ग्रामीण विकास आदि में भी जहां उन्हें बाकी व्यवसायियों के साथ निकटता एवं मिलजुल कर कार्य करने की आवश्यकता है। वे स्वयं को निरन्तर सामाजिक कार्यों में होने वाले विकास के साथ कदम मिलाने में असमर्थ पाते हैं जिसकी वजह से वे निरंतर एवं नयी जानकारियों से अपने बाकी विषय के सहयोगियों को अवगत कराने में असफल रहते हैं जो भविष्य में उन्हें सहयोग दिलाने में बाधा उत्पन्न करता हो। सामाजिक कार्यकर्ताओं के अपने विश्वविद्यालय एवं विभागों से संबंध बिल्कुल नहीं है। सामान्यतया पुराने छात्रों के संगठन की बैठक आदि जैसे दुर्लभ अवसरों पर वे व्यक्तिगत विषयों पर ही बातचीत करते हैं (जैसे प्रोमोशन, वेतन में बढ़ोत्तरी आदि) और व्यावायिक मुद्दों जैसे सामाजिक कल्याण प्रशासकों कैडर या राष्ट्रीय समाज कल्याण संगठन जैसे मुद्दों पर बात नहीं करते।

शुरू का उत्साह जो सामाजिक कार्यकर्ताओं में समाज सेवा, समर्पण, अपने कार्य के प्रति लगाव पाया जाता था, उनमें लगातार गिरावट आ रही है और अब सामाजिक कार्यकर्ता एक निश्चित कार्य एवं कार्यालय व्यवस्था की ओर उन्मुख हो रहे हैं। खासकर उन संगठनों में जहां अन्य विषयों से आये सामाजिक वैज्ञानिक कार्य करते हैं। कार्य न करने की संस्कृति जो सामाजिक वैज्ञानिकों में घर करती जा रही है वह एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में सामने आ रही है। बड़े संगठनों में कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता अपने बाकी सहयोगियों की तरह ही स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने पर अधिक ध्यान दे रहे हैं, और वे अपने कार्यों को ठीक तरीके से करने की बजाय अपने वरिष्ठ एवं बॉस को खुश करने में सारा वक्त लगाने लगे हैं।

अनेक सामाजिक कार्यकर्ता जो नौकरी पाने में असफल रहे हैं एवं अपनी स्वयं की संस्था बनाकर कार्य कर रहे हैं, वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों एवं कार्यों का निर्वहन करने की बजाय राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दानदाता संस्थाओं से धन प्राप्त करने में लगे रहते हैं। वे दानदाता संस्थाओं की शर्तों को पूरा करने एवं उनसे धन प्राप्त करने के लिए बनावटी एवं गलत लेखा–जोखा तैयार करते हैं। इस धन का प्रयोग वे उन कार्यों के लिए नहीं करते जिसके लिए उन्हें प्राप्त करते हैं। इससे भी आश्चर्यचकित करने वाली बात यह है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा संचालित इन संस्थाओं में कभी–कभी अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की नियुक्ति भी की जाती है।

सभी तरह की सेवाएं जो सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा दी जाती हैं, उसमें उनके सेवार्थी के प्रति भरोसे एवं विश्वास पैदा करने की अत्यंत आवश्यकता होती है। यह काफी दिनों के अच्छे चरित्र एवं व्यवहार के द्वारा ही विकसित किया जा सकता है। सामाजिक कार्यकर्ता धन प्राप्त करने के लिए झूठे वादे एवं अन्य प्रकार के गलत कार्य करने की ओर उन्मुख हो रहे हैं जो उनके मुवक्किल के प्रति विश्वास और भरोसे को कम कर रहा है।

व्यावसायिक स्तर को कायम रखने के लिए राष्ट्रीय, राज्य एवं जिले के स्तर पर व्यावसायिक संगठनों एवं इनकी शाखाओं का होना आवश्यक है। दुर्भाग्य से 'इण्डियन एसोसिएशन आफ ट्रेंड सोशल वर्कर्स' जो कुछ दिनों के लिए अस्तित्व में थी, वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ताओं के अहं की समस्या से अपना अस्तित्व खो चुकी है। भारत में 'द एसोसिएशन आफ स्कूल आफ सोशल वर्क' जो 70 एवं 80 के दशक में काफी अच्छा

टिप्पणी

कार्य कर रही थी, उसे 'मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया' एवं 'बार काउन्सिल आफ इण्डिया' की तरह ही संगठन का रूप देना होगा। यह बिल्कुल उचित समय है जब सभी सामाजिक कार्यकर्ता एक संगठन के गठन की दिशा में प्रयासरत हो एवं जल्दी से जल्दी इनका गठन हो सके। यदि आवश्यकता हो तो सभी व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं को बुलाया जाना चाहिए एवं संसद के समक्ष एक वक्तव्य दिया जा सकता है, ताकि राजनीतिज्ञों का समर्थन हासिल हो सके।

क्षेत्र कार्य के उद्देश्य

व्यक्ति के अस्तित्व के बिना समाज की कल्पना व्यर्थ है। जहां समाज ने व्यक्ति को मानवीय अस्तित्व प्रदान किया है वहीं समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं ने भी समय–समय पर जन्म लिया है। मनुष्य की इन समस्याओं पर नियंत्रण पाने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इन्हीं सामाजिक समस्याओं के निदान की एक श्रृंखला के रूप में समाज कार्य का जन्म हुआ है। इस प्रकार से समाज कार्य व्यवसाय का मुख्य ध्येय प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक अनुकूलन के मार्ग में आने वाली सामाजिक एवं मनोसामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान प्रस्तुत करना है।

इंडियन कांफ्रेंस आफ सोशल वर्क के अनुसार समाज कार्य मानवतावादी दर्शन वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित व्यक्तियों अथवा समूहों अथवा समुदायों को एक सुखी एवं संपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करने हेतु एक कल्याणकारी क्रिया है। इस प्रकार से समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का तात्पर्य आत्मसहायता करने हेतु लोगों की सहायता करने के वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग द्वारा व्यक्ति, समूह, समुदाय और संगठन की आवश्यकताओं को प्रभावित करने हेतु विभिन्न संसाधनों को जुटाने की एक कला है।

समाज कार्य में क्षेत्र कार्य की पृष्ठभूमि को समझने के लिए समाज कार्य दर्शन को समझना अति आवश्यक है क्योंकि सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धांतों और धारणाओं को समझे बिना क्षेत्र कार्य की वास्तविकता को समझना मुश्किल है। दर्शन सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा व्यक्ति, समाज आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। समाज कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूलाधार ही मानवतावादी है, लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धांतों तथा तथ्यों पर आधारित है। समाज कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन कल्याण के लिए करता है।

लियोनार्ड के अनुसार दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्यात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है। आदर्शात्मक रूप के अतिरिक्त यह मुनष्य मनुष्य के बीच तथा मुनष्य व सम्पूर्ण जगत के बीच संबंधों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है। मानव विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा। समाज कार्य मानव जीवन को अधिक सुखमय तथा प्रकार्यात्मक बनाने का संकल्प रखता है। अतः बट्रिम का मत है कि समाज कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है। परंतु यह संकल्प तभी पूरा हो सकता है जब समाज कार्य उन विश्वासों पर आधारित हो जो सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसी संदर्भ में समाज कार्य दर्शन का वर्णन किया जा रहा है जिसमें समाज कार्य के प्रत्ययों, मनोवृत्तियों तथा मूल्यों का निरूपण

टिप्पणी

किया जाएगा। यह आपको क्षेत्र में कार्य करने और समाज के दर्शन को समझने के योग्य बनाता है।

क्षेत्र कार्य नियोजन में व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता के लिए क्षेत्र कार्य से संबंधित व्यक्तिगत शक्तियों, कमजोरियों और भावनाओं को समझना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि यह कार्यकर्ता को सहायता एवं बाधा दोनों पहुंचा सकता है। इस प्रकार से क्षेत्रकार्य में यह जानना अति आवश्यक होता है कि आप क्षेत्र नियोजन से एवं पर्यवेक्षक से क्या अपेक्षा रखते हैं और उससे क्या सीखना चाहते हैं। इसमें कुछ ऐसे क्षेत्र भी हो सकते हैं जो आपके लिए नये हों और कुछ ऐसे भी जिनके विषय में आप अनुमान लगा सकते हैं। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थी को हमेशा तैयार रहना चाहिए।

सामाजिक कार्य शिक्षा में करके सीखने के घटक को फील्ड वर्क, फील्ड आधारित अधिगम जैसे विविध नाम दिये जाते हैं। इन सभी में एक समान घटक विद्यार्थियों की फील्ड आधारित नियुक्ति, इन नियुक्तियों पर नियोजित असाइनमेंट किये जाते हैं, किये गये कार्य की रिकार्डिंग की जाती है, फील्ड में अनुभवों का परिलक्षण और मूल्यांकन और निर्धारित क्रमिक अधिगम प्राप्त करने के लिए परिवेक्षणीय मार्ग निर्देशन का उपयोग किया जाता है। इसे 'व्यावसायिक अधिगम' बनाने के लिए प्रायोगिक कार्य कक्षा पाठ्यक्रम विषयवस्तु, सिद्धांत पर आधारित होता है। और इसे अति चापित नैतिक कोड के दायरे में ही किया जाता है।

ऐतिहासिक रूप से भारत में सामाजिक कार्य शिक्षा में पश्चिमी माडल को अपनाया जाता है और यह लगभग पूरी तरह से पश्चिमी साहित्य पर निर्भर करता है। विद्यार्थियों की भाषा, संस्कृति और सामाजिक, आर्थिक स्तर और वे व्यक्ति जिनके लिए उनहें कार्य करना था में निरंतर विविधता होती जा रही है। यही नहीं, चूंकि शिक्षण संस्थान मुख्य रूप से शहरी क्षेत्र में स्थित हैं अतः सुदूर क्षेत्रों में स्थित विद्यार्थी उच्चतर शिक्षा की सेवाओं तक पहुंचने में असमर्थ हैं। दूरस्थ शिक्षा प्राप्त करने वाले और कैम्पस विद्यार्थी के बीच में प्रमुख अंतर यह है कि अनेक दूरस्थ शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी अंशकालिक विद्यार्थी हैं और इसीलिए उनमें अपने पाठ्यक्रमों को पूर्णकालिक पारंपरिक प्रणाली की अपेक्षा अधिक वर्षों में करने की प्रवृत्ति होती है। दूसरे दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की क्षमताएं मिश्रित प्रकार की होती हैं। सामाजिक कार्य पाठ्यक्रमों को दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के तहत पंजीकृत विद्यार्थी स्वाभावित रूप से शिक्षा और कार्य अनुभव के विभिन्न प्रकार के स्तरों को प्रस्तुत करते हैं। ये विभिन्न क्षेत्रों के होते हैं, विभिन्न भाषाएं बोलते हैं और विविध सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आते हैं। दूरस्थ शिक्षा पद्धति के अंदर सामाजिक कार्य में फील्ड अथवा क्षेत्र प्रायोगिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाना वास्तव में चुनौतीपूर्ण कार्य है। पारंपरिक प्रणाली से थोड़ी समानता रखते हुए सामाजिक कार्य शिक्षण संस्थान दूरस्थ शिक्षा पद्धति में भी क्षेत्र आधारित अधिगम व शिक्षा के सभी महत्वपूर्ण घटकों को फील्ड वर्क कार्यक्रमों की संरचना में उसी प्रकार समावेशित कर देते हैं।

क्षेत्र कार्य के उद्देश्य निम्नानुसार हैं–

- संस्था में कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाली भूमिकाओं एवं कार्यों को समझना।

- संस्था में कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों की रूपरेखा तैयार करना एवं निश्चित समय सारिणी बनाना ताकि अतिरिक्त भार से बचा जा सके।
- समाज कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों से संबंधित निपुणताओं की पूर्ण जानकारी होना।
- व्यक्तिगत शिक्षण शैलियों एवं उसके द्वारा संपादित की जाने वाली भूमिकाओं का निर्धारण करना।
- संस्था में अपनी भूमिकाओं का निर्धारण होना।
- व्यावसायिक (पेशेवर) सामाजिक कार्यकर्ता की मर्यादाओं का पालन करना।

एक समाज कार्यकर्ता का पहला कदम उसका व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता बनने का निर्णय लिया जाना है क्योंकि व्यावसायिक समूह से जुड़ना एक लंबी प्रक्रिया है और क्षेत्र कार्य अभ्यास इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है। यह कोई अंतिम उद्देश्य नहीं है बल्कि सामाजिक कार्यकर्ता में समाज कार्य व्यवसाय के कौशलों को निखारने एवं ज्ञान के व्यापक होने के साथ–साथ परिवर्तित होने की कला का विकास भी किया जाना है। समाज कार्य व्यवसाय में क्षेत्र अभ्यास कार्यकर्ता के समाज कार्य व्यवसाय के साथ तादात्म स्थापित करने एवं व्यक्तिगत और व्यावसायिक सीमाएं स्थापित करने में सहायक होता है। क्षेत्र कार्य विविध परिवर्तनों, विभिन्न भूमिकाओं, समूह, कार्यकर्ता, समुदाय, संगठनकर्ता, विद्यार्थी एवं पर्यवेक्षक आदि की भूमिकाओं का निर्धारण करने एवं तनावों से समायोजन करने का एक अवसर प्रदान करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वैज्ञानिकता आधारित समाज कार्य किस प्रकार का ज्ञान रखता है?

   (क) प्रमाणित (ख) परिकल्पित

   (ग) स्वीकृत (घ) उक्त सभी

2. इनमें से क्या समाज कार्य की प्रणाली में शामिल नहीं है?

   (क) केस अध्ययन (ख) सामूहिक कार्य

   (ग) सामुदायिक संगठन (घ) प्रयोगशाला

4.3 भारत में सामाजिक कार्य का दर्शन

दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धांतों और धारणाओं की व्याख्या करता है। यह सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है। तथा व्यक्ति समाज आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्शों का निरूपण करता है। समाज कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूलाधार ही मानवतावादी है। लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धांतों तथा तथ्यों पर आधारित है। समाज कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन कल्याण के लिए करता है।

लियोनाई के अनुसार दर्शन विश्व में विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्यात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है। आदर्शात्मक के अतिरिक्त यह मनुष्य– मनुष्य के बीच तथा

मनुष्य व संपूर्ण जगत के बीच संबंधों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है। मानव विज्ञानों में वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा।

समाज कार्य मानव जीवन को अधिक सुखमय तथा प्रकार्यात्म बनाने का संकल्प रखता है। अतः वट्रिम का मत है कि समाज कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है।

हर्बट बिस्नो ने समाज कार्य के दर्शन का विस्तृत वर्णन किया है, उन्होंने समाज कार्य दर्शन को चार क्षेत्रों में विभाजित किया है। व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों में आपसी संबंधों के संदर्भ में समाज कार्य की प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संबंध में।

व्यक्ति के संदर्भ में

1. व्यक्ति अपने अस्तित्व के कारण ही सुखवान है।
2. मानवीय पीड़ा अवांछनीय है, अतः इसको दूर किया जाना चाहिए अन्यथा जहां तक संभव हो कम किया जाना चाहिए।
3. समस्त मानव व्यवहार जैविकीय अवयव तथा इसके पर्यावरण की अंतःक्रिया का परिणाम है।
4. मनुष्य संभवतः विवेकपूर्ण कार्य नहीं करता है।
5. जन्म के समय मनुष्य अनैतिक तथा असामाजिक होता है।
6. मानव आवश्यकताएं वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की होती हैं।
7. मनुष्य में महत्वपूर्ण अंतर होते हैं, अतः उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए।
8. मानव सम्प्रेषण जटिल एवं अस्पष्ट होता है।
9. व्यक्ति के प्रारंभिक विकास में पारिवारिक संबंधों का प्राथमिक महत्व होता है।
10. सीखने की प्रक्रिया में अनुभव आवश्यक पहलू है।

समूहों एवं व्यक्तियों के परस्पर संबंधों के संदर्भ में

1. समाज कार्य हस्तक्षेप न करने की नीति तथा सबसे अधिक उपयुक्त के जीवित रहने के सिद्धांत को नहीं मानता है।
2. यह आवश्यक नहीं है कि धनी और शक्तिशाली व्यक्ति ही योग्य हो तथा निर्धन एवं दुर्बल व्यक्ति अयोग्य हो।
3. समाजीकृत व्यक्तिवाद विषम व्यक्तिवाद की अपेक्षा अच्छा है।
4. सदस्यों के कल्याण का मुख्य उत्तरदायित्व समुदाय पर होता है।
5. सामाजिक सेवाओं पर समुदाय के सभी वर्गों का समान अधिकार है। समुदाय का उत्तरदायित्व है कि वह बिना भेदभाव के अपने सभी सदस्यों की कठिनाइयों का निराकरण करे।
6. केंद्रीय सरकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह स्वास्थ्य, आवास, पूर्ण रोजगार, शिक्षा व अन्य विविध प्रकार से जन कल्याण एवं सामाजिक बीमा योजना संबंधी कार्यक्रमों को लागू करे।

टिप्पणी

7. जन सहायता आवश्यकता की अवधारणा पर आधारित होनी चाहिए।
8. संगठित श्रम का सामुदायिक जीवन में सक्रिय योगदान होता है। उसकी शक्ति को विध्वंसात्मक न मानकर रचनात्मक मानना चाहिए।
9. संपूर्ण समानता एवं पारस्परिक सम्मान के आधार पर सभी प्रजातियों एवं प्रजातीय समूहों में संपूर्ण सहयोग होता है।
10. स्वतंत्रता एवं सुरक्षा में कोई पारस्परिक विरोध नहीं है।

समाजकार्य कार्य की प्रणाली

1. समाज कार्य का दृष्टिकोण द्विमुखी है। एक ओर समाजकार्य व्यक्तियों को संस्थागत समाज के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायता देता है, तो दूसरी ओर वह इस संस्थागत समाज के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायता देता है और इस संस्थागत समाज के आवश्यक क्षेत्रों में परिवर्तन लाने का प्रयास भी करता है।
2. सामान्यतया एक सक्षम व्यक्ति अपने हितों का सबसे अच्छा निर्णायक होता है। उसे स्वयं निर्णय लेना चाहिए तथा समस्या का निराकरण करना चाहिए।
3. व्यवहार में सुधार एवं सामाजिक विकास के लिए वातावरण के परिवर्तन एवं अंर्तदृष्टि के विकास पर विश्वास रखता है। न कि आदेश निर्णय अथवा प्रबोधन में।
4. समाजकार्य जनतंत्र को एक प्रणाली के रूप में मानता है।

4.3.1 समाज कार्य : अवधारणा एवं स्वरूप

समाज कार्य के अंतर्गत उन सभी स्वैच्छिक रूप से किये गये कार्यों एवं सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका संबंध सामाजिक संबंधों से होता है और ये कार्य व प्रयास वैज्ञानिक ज्ञान व वैज्ञानिक प्रणालियों के समुचित प्रयोग पर आधारित होता है।

समाज सेवा व सहायता कार्य करने के उन प्रयासों को सम्मिलित किया जाता है जो स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं या सक्षम सामाजिक सदस्यों द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान तथा समाज कार्य की उस समय तक विकसित प्रणालियों के माध्यम से किया जाता था। समाज कार्य एवं समाज सेवा को जानने के लिए दोनों को पृथक रूप से जानना आवश्यक है।

समाज कार्य कला तथा विज्ञान के रूप में मान्यता प्राप्त एवं व्यावसायिक शास्त्र है जिसका संबंध मानवीय व्यवहारों, क्रियाकलापों, संबंधों एवं समस्याओं से होता है जिसके कारण इसका स्वरूप, क्षेत्र, विषयवस्तु, प्रकृति एवं क्रियाकलाप अत्यंत जटिल होता है। इस कारण समाज कार्य को परिभाषित करना सरल कार्य नहीं है। विभिन्न समाज विज्ञान वेत्ताओं व विद्वानों ने समाज कार्य को उसके क्रियाकलापों, कार्यों, सेवाओं, प्रणालियों, उद्देश्यों तथा स्वरूप व प्रकृति के संदर्भ में परिभाषित करने का प्रयास किया है।

समाज कार्य एक नवीन विषय है जिसका विकास मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं समस्याओं का विशिष्ट ढंग से समाधान करने के उद्देश्य से हुआ। यद्यपि समाज कार्य करना कोई नवीन कार्य नहीं है किंतु व्यावसायिक ढंग से लोगों की

सहायता करने के इस उपागम का विकास अपेक्षाकृत आधुनिक समय में हुआ है। इसलिए इस उपागम से परिचित होने के लिए विभिन्न विद्वानों के द्वारा अनेक परिभाषाएं दी गयी हैं जिनसे समाज कार्य विषय से परिचित होने में सहायता मिलती है।

समाज कार्य की परिभाषाओं से समाज कार्य विषय पर प्रकाश पड़ता है। इन परिभाषाओं के माध्यम से ही समाज कार्य व्यवसाय के अंतर्गत प्रदान की जाने वाली सेवाओं के क्षेत्र का भी पता चलता है। समाज कार्य की परिभाषाएं नवीन कार्यकर्ताओं के लिए मार्गदर्शन का भी कार्य करती हैं कि उन्हें किस प्रकार से व्यक्ति एवं समाज के लिए सेवाएं प्रदान करनी चाहिए।

समाज कार्य की परिभाषाएं

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएं समाज कार्य के अर्थ को स्पष्ट करती हैं जो निम्नलिखित हैं–

एलिस चेनी (Alice Cheney, 1926)– "सामाजिक कार्य के अंतर्गत आवश्यकताओं का प्रत्युत्तर करने वाली उन समस्त स्वैच्छिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो सामाजिक संबंधों से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सेवाएं प्रदान करती हैं तथा इस हेतु वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रणालियों का उपयोग करती हैं।"

हेलेन एल. विटमर (Helen I. Witmor, 1942)– "समाज कार्य का प्राथमिक कार्य संगठित समूह की सेवाओं का उपयोग करने अथवा संगठन/समूह के सदस्य के रूप में अपनी भूमिका प्रतिपादित करने में कठिनाइयों का सामना करने वाले व्यक्तियों की सहायता करना है।"

हेलेन क्लॉर्क (Helen Clarke, 1947)– "समाज कार्य व्यावसायिक सेवा का एक स्वरूप है जो वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणता के मिश्रण पर आधारित है जिसका कुछ विशिष्ट कार्य है और कुछ भाग समाज कार्य नहीं है जो एक ओर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आवश्यकताओं की पूर्ति के संदर्भ में व्यक्ति की सहायता करता है और दूसरी ओर वह व्यक्तियों की योग्यतानुसार विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाली संभावनाओं के निराकरण का प्रयत्न करता है।

वाल्टर ए. फ्रीडलैंडर (Walter A. Friedlander, 1955)– "समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो मानवीय संबंधों के विषय में वैज्ञानिक ज्ञान व निपुणता पर आधारित है जो व्यक्तियों की अकेले अथवा समूहों में इस प्रकार सहायता करती है कि वे सामाजिक एवं व्यक्तिगत संतुष्टि तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकें।"

इंडियन कॉन्फ्रेंस ऑफ सोशल वर्क के अनुसार– "समाज कार्य मानवतावादी दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकी निपुणताओं पर आधारित एक कल्याणकारी गतिविधि है जो व्यक्तियों एवं समुदायों की सहायता इस प्रकार करती है कि वे सुखमय, समृद्धशाली एवं संपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।"

विटमर (1942) के मतानुसार– "समाज कार्य का प्रमुख कार्य व्यक्तियों की उन कठिनाइयों को दूर करने में सहायता देना है जो एक संगठित समूह की सेवाओं के प्रयोग से या उनके एक संगठित समूह के सदस्य के रूप में कार्य संपादन से संबंधित हैं।"

फिंक के शब्दों में– "समाज कार्य अकेले अथवा समूहों में व्यक्तियों को वर्तमान अथवा भावी (भविष्य की) ऐसी सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक बाधाओं, जो समाज में पूर्ण

अथवा प्रभावपूर्ण सहभागिता को रोकती है अथवा रोक सकती है, के विरुद्ध सहायता प्रदान करने हेतु प्रचलित सेवाओं का प्रावधान है।"

टिप्पणी

एलिस चेनी (1936) के अनुसार– "समाज कार्य में वे सभी ऐच्छिक प्रयास सम्मिलित हैं जिनका संबंध सामाजिक संबंधों से है और जो वैज्ञानिक ज्ञान व वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं।"

सुशील चन्द्र के मतानुसार– "समाज कार्य जीवन के मानदण्डों को उन्नत बनाने तथा समाज के सामाजिक विकास की किसी स्थिति में व्यक्ति, परिवार तथा समूह के सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कल्याण हेतु सामाजिक नीति के कार्यान्वयन में सार्वजनिक अथवा निजी प्रयास द्वारा की गई गतिशील क्रिया है।"

फ्रीडलैण्डर के अनुसार– "समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान एवं मानवीय संबंधों में निपुणता पर आधारित एक व्यावसायिक सेवा है जो व्यक्तियों की अकेले अथवा समूहों में सामाजिक एवं वैयक्तिक संतोष एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता करती है।"

बोएम (1959) के अनुसार– "समाज कार्य व्यक्तियों की व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिस्थिति में सामाजिक कार्यात्मकता को बढ़ाने के लिए ऐसी प्रक्रियाओं का प्रयोग करता है जिनका संबंध मनुष्य और उनके पर्यावरण के बीच परस्पर संबंधी क्रियाओं से है।" इन क्रियाओं को तीन कार्यों में विभाजित किया जा सकता है– विकृत योग्यता का पुर्नस्थापन, वैयक्तिक एवं सामाजिक साधनों की उपलब्धि एवं सामाजिक कार्य वैकल्प का निरोध।

स्ट्रूप (1960) के अनुसार– "समाज कार्य ऐसी कला है जिसमें विभिन्न साधनों का प्रयोग वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है और इसके लिए ऐसी वैधानिक प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जिसमें लोगों की सहायता की जाती है कि वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें।"

इण्डियन कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क के अनुसार– "समाज कार्य मानवतावादी दर्शन, वैधानिक ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित व्यक्तियों अथवा समूहों एवं समुदाय को एक सुखी एवं संपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करने हेतु एक कल्याणकारी किया है।"

कोनोपका (1958) के अनुसार– "समाज कार्य एक अस्तित्व है जिसके तीन स्पष्ट रूप से भिन्न परंतु परस्पर संबंधित भाग हैं, सामाजिक सेवाओं का एक जाल, सावधानी के साथ विकसित प्रणालियों एवं प्रक्रियाएं तथा सामाजिक नीति जो सामाजिक संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा प्रकट होती हैं। ये तीनों मनुष्यों के विषय में एक मत, उनके परस्पर संबंधों और उनके नैतिक कर्तव्यों पर आधारित है।

मिर्जा रफीउद्दीन अहमद के मतानुसार– "समाज कार्य मानवतावादी दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रविधिक निपुणताओं का प्रयोग करते हुए प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया के मार्ग में आने वाली समस्याओं से ग्रस्त लोगों की व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदायों के रूप में सहायता प्रदान करने की एक व्यावसायिक क्रिया है जो उन्हें आत्म सहायता करने के योग्य बनाती है।"

क्लार्क के अनुसार– "समाज कार्य व्यावसायिक सेवा का एक रूप है, जिसका आधार ज्ञान एवं निपुणताओं का ऐसा मिश्रण है, जिसका कुछ भाग समाज कार्य का

विशेष भाग है और कुछ नहीं, जो सामाजिक पर्यावरण में आवश्यकताओं की संतुष्टि करने में व्यक्ति की सहायता करने का प्रयास करता है कि जहां तक हो सके उन बाधाओं को दूर किया जा सके जो लोगों को सर्वोत्तम की प्राप्ति से रोकती हैं।"

टिप्पणी

यू.एन.ओ. (यूनाईटेड नेशन्स ऑर्गनाइजेशन) द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार– "समाज कार्य पीड़ितों को व्यैक्तिक रूप से दान देने, आर्थिक व भौतिक सहायता के माध्यम से योगदान पर आधारित है। यह भेदभाव रहित तथा समान रूप से विश्व व मानवता के कल्याण पर केन्द्रित है तथा विशिष्टता के साथ अनिवार्यतः किसी संगठन द्वारा दी जाती है।"

फ्रीडलैण्डर के मतानुसार– "समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणताओं (मानव संबंधों की) पर आधारित है। यह व्यक्तियों की अकेले या समूह में सहायता करता है, ताकि वे सामाजिक एवं व्यक्तिगत संतुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें।"

बी.जी. खेर (1947) के अनुसार– "समाज कार्य का उद्देश्य जैसा कि सामान्य रूप से समझा जाता है सामाजिक अन्याय को दूर करना, विपत्तियों को हटाना, दुखों को रोकना, समाज के कमजोर सदस्यों और उसके परिवारों के पुनर्वास में सहायता देना और संक्षिप्त में पांच दानव आकार बुराइयों– 1. भौतिक आवश्यकता, 2. रोग, 3 अज्ञानता, 4. मलिनता, 5. निष्क्रियता या अनुपयुक्तता – से संघर्ष करना है।"

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान, समाज कार्य अभ्यास एवं मान संबंधों में निपुणता पर आधारित है और जो व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से या समूह के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में और उन सामाजिक बाधाओं को दूर करने में दी जाती है जो उन्हें अपने कर्तव्य पालन से रोकती है।

इण्डियन कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क (1957) के अनुसार, "समाज कार्य एक कल्याणकारी क्रिया है जो मानवता–सेवी (लोक–उपकारी) दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित है, जिसका उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों या समुदाय की सहायता करना है, जिससे वे एक सुखी एवं संपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।"

इस परिभाषा के दो पक्ष हैं– एक, समाज कार्य को कल्याणकारी क्रिया माना है जो वैज्ञानिक ज्ञान और कार्यकर्ता की सहायता करने की प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित है। दूसरे, इन कल्याणकारी क्रियाओं का उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों या समुदाय के सदस्यों को सुखी और संपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करना है।

इस प्रकार समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं एवं मानवतावादी दर्शन का प्रयोग करते हुए मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त लोगों को वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक स्तर पर सहायता प्रदान करने की एक क्रिया है जो उनकी इन समस्याओं को पहचानने, उन पर ध्यान केंद्रित करने, उनके कारणों को जानने तथा उनका स्वतः समाधान करने की क्षमता को विकसित करती है तथा सामाजिक व्यवस्था की गड़बड़ियों को दूर करती हुई, इसमें वांछित परिवर्तन लाती है ताकि व्यक्ति की सामाजिक क्रिया प्रभावपूर्ण हो सके, उसका समायोजन संतोषजनक हो सके और उसे सुख शान्ति का अनुभव हो सके। साथ ही सामाजिक संघर्षों को कम करते हुए एकीकरण को प्रोत्साहित किया जा सके।

समाज कार्य का स्वरूप

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसमें सहायता मूलक कार्य किये जाते हैं जो वैज्ञानिक ज्ञान प्राविधिक निपूर्णताओं एवं मानव दर्शन का प्रयोग करते हुए व्यक्तियों की एक व्यक्ति समूह के सदस्य अथवा समुदाय के निवासी के रूप में उनकी मनोसामाजिक समस्या का अध्ययन एवं निदान करने के पश्चात परामर्श पर्यावरण में परिवर्तन तथा आवश्यक सेवाओं के माध्यम से सहायता करता है ताकि समस्याग्रस्त व्यक्ति अपनी समस्याओं को स्वयं समाधान करने के योग्य हो जाए। समाज कार्य के तीन प्रमुख अंग होते हैं– कार्यकर्ता, सेवार्थी तथा संस्था। समाज कार्य मुख्यतः चार प्रकार के कार्य करता है जो इस प्रकार से हैं– उपचारात्मक, सुधारात्मक, निरोधात्मक तथा विकासात्मक।

समाज कार्य के कार्य करने के क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हैं। इनमें कुछ इस प्रकार से हैं– बाल कल्याण, महिला सशक्तिकरण, विद्यालय समाज कार्य, युवा कल्याण, वृद्धों का कल्याण, श्रम कल्याण, बाधितों का कल्याण, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों का कल्याण, चिकित्सकीय एवं मनःचिकित्सकीय समाज कार्य, सामाजिक सुरक्षा आदि के क्षेत्र में कार्य करता है।

समाज कार्य मानवतावादी दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं का प्रयोग करते हुए प्रभावपूर्व सामाजिक क्रिया के मार्ग में आने वाली समस्याओं से ग्रस्त लोगों की व्यक्तियों, समूह अथवा समुदायों की रूप में सहायता प्रदान करने की एक व्यावसायिक क्रिया है जो आत्म सहायता करने के योग्य बनाती है।

समाज कार्य में वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं एवं मानवतावादी दर्शन का प्रयोग करते हुए मनो–सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त लोगों की वैयक्तिक, सामूहिक एवं समुदायिक स्तर पर सहायता प्रदान करने की एक क्रिया है जो उनकी समस्याओं को पहचानने, उनके कारणों को जानने व इन पर ध्यान केन्द्रित करने तथा इनका स्वतः समाधान करने की क्षमता को विकसित करता है। समाज कार्य की निम्न प्रकृति है–

1. समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है। इसमें विविध प्रकार के वैज्ञानिक ज्ञान, प्राविधिक निपुणताओं तथा दार्शनिक मूल्यों का प्रयोग किया जाता है।
2. समाज कार्य की सहायता, समस्याओं की मनो सामाजिक अध्ययन तथा निदानात्मक मूल्यांकन करने के पश्चात प्रदान की जाती है।
3. समाज कार्य समस्याग्रस्त व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने का कार्य है। ये समस्याएं व्यक्ति की सामाजिक क्रिया के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं। अपनी प्रकृति में ये समस्याएं मनो–सामाजिक होती हैं।
4. समाज कार्य में सहायता किसी अकेले व्यक्ति अथवा समुदाय को प्रदान की जा सकती है।
5. समाज कार्य का उद्देश्य समस्याग्रस्त सेवार्थी में आत्म सहायता प्रदान करने की क्षमता उत्पन्न करती है।

4.3.2 सामाजिक कार्य के अंतर्गत दर्शनशास्त्र

समाज कार्य में समाज कल्याण को मानवजाति के कल्याण के उद्देश्य से किया गया विभिन्न प्रकार का कार्य समझा जाता है। ऐसा कार्य दान, शिक्षण और प्रशिक्षण के

साधारण व्यक्तिगत कार्यों से लेकर समुदाय की बेहतरी के लिए की गई विभिन्न प्रकार की संगठित सेवा तक हो सकती है। बौद्ध धर्म एक अत्यंत व्यावहारिक धर्म है। इसका विश्वास है कि जिस संसार में हम रहते हैं वह दुःखों से भरा है और उससे पार पाना संभव है। यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म का सरोकार सबसे पहले इस दुख से मुक्ति पाने में है। इसी संदर्भ में बौद्ध धर्म में समाज कार्य का विचार महत्वपूर्ण हो जाता है।

टिप्पणी

किसी समुदाय, राष्ट्र अथवा देश के कल्याण, समृद्धि और सुख के लिए अनिवार्य सात स्थितियों का वर्णन दीर्घनिकाय के महापरि–निब्बान सुत में किया गया है। लोगों के क्रमिक विकास और कल्याण के लिए उनकी सेवा करने से पहले निम्न स्थितियों पर विचार करना चाहिए–

1. आवश्यक अवसरों पर समुदाय के मामलों पर विचार करने के लिए एकत्र होना।
2. सब कुछ आम सहमति से करना।
3. प्राचीन परंपराओं का सम्मान करना और उनका उल्लंघन न करना।
4. बड़ों और वरिष्ठों का सम्मान करना।
5. सभी धर्मों का आदर, उपासना और सम्मान करना।
6. सभी साधु जनों का सम्मान करना चाहिए वे किसी भी जाति, पंथ अथवा लिंग के हों।
7. महिलाओं का सम्मान करना।

समाज कार्य के दर्शन का तात्पर्य इसके अर्थ और ज्ञान का वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुतीकरण करते हुए इसके आदर्शों और मूल्यों का सही ढंग से निरूपण करना होता है। बुद्ध की शिक्षा का एक और अत्यंत रोचक पहलू यह था कि उन्होंने अपव्यय न करने तथा सरलता, संतोष, उदारता और दानशीलता का उपदेश दिया। बुद्ध की शिक्षा का यह पक्ष लाभ प्रेरित वैश्विक, अर्थव्यवस्था में अत्यधिक प्रासंगिक है जो बेलगाम विकास और भीमकायता और अपव्यय न करने से निर्देशित है। यह बताते हुए कि वैभव और प्रचुरता के पीछे अंधाधुंध भागना ही दुख का मूल कारण है, बौद्ध धर्म संयम बरतने, स्वेच्छा से सादगी अपनाने और संतोष को बढ़ावा देता है। बौद्ध शिक्षाओं के इस ढांचे के भीतर बौद्ध परंपरा में समाज कार्य के सिद्धांत और व्यवहार की समीक्षा का प्रयास किया गया है।

बौद्ध धर्म जाति आधारित सामाजिक असमानता के विरुद्ध है। बौद्ध धर्म का उपयोग इस सामाजिक असमानता के उन्मूलन के माध्यम के रूप में हुआ है। इसलिए भारत में नए युग के सबसे महत्वपूर्ण बौद्ध जन–जागरण का नेतृत्व अम्बेडकर ने किया। उन्हें बौद्ध धर्म में भारत में दलितों के उत्थान का संदेश दिखाई दिया। उन्होंने बौद्ध धर्म का उपयोग और उसकी व्याख्या उस विचारधारा के रूप में किया जो उत्पीड़ित जनसाधारण, विशेषकर अनुसूचित जातियों के लिए समानता और न्याय सुनिश्चित कर सकती थी। अनेक वर्षों की आध्यात्मिक खोज के बाद उन्हें विश्वास हो गया कि बौद्ध धर्म ही एक मात्र ऐसी विचारधारा है जो अंततः भारत में अछूतों को मुक्ति दिला सकती है। 14 अक्टूबर, 1956 को उन्होंने नागपुर, महाराष्ट्र में लोगों की विशाल संख्या में अनुसूचित जातियों की बौद्ध धर्म में दीक्षा करवाई। ये नए दीक्षित बौद्ध अधिकतर महार

टिप्पणी

अनुसूचित जाति के थे। इस सामूहिक धर्मांतरण (दीक्षा) का लक्ष्य था छुआछूत का अस्वीकार, और शोषक शक्तियों से उत्पीड़ित जातियों की मुक्ति हेतु और अधिक सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी। दीक्षा आंदोलन का एक पक्ष था हिंदू वर्चस्वशाली संस्कृति के ऊंच–नीच, शुद्धता और दूषण के सिद्धांतों का उन्मूलन। हिंदू संस्कृति की इस समझ ने महाराष्ट्र के दलितों में अस्वीकार का रुझान पैदा कर दिया।

पिछले कुछ दशकों में बौद्धों ने अपने धर्म की शिक्षाओं की पुनः समीक्षा की है और सामाजिक क्रिया का आधार तलाशने का प्रयास किया है। इसका उद्देश्य था युद्ध, नस्लवाद, शोषण, वाणिज्यीकरण और पर्यावरण के विनाश से निबटना। व्यवहार में बौद्ध धर्म दूसरों के कल्याण का ऐच्छिक प्रयास है। समाज कार्य के दर्शन की उत्पत्ति बौद्ध दर्शन और भारतीय संस्कृति में देखी जा सकती है। इस प्रकार प्रारंभिक बौद्ध परंपरा में समाज कार्य एक मनोनैतिक अवधारणा के रूप में मिलता है, जिसकी शुरुआत आध्यात्मिक और भौतिक उपलब्धियों के संतुलन और सुखद मिश्रण के साथ समाज में लोगों पर पूर्ण सद्भाव के अवतरण के लिए की गई थी। समाज कार्य के सिद्धांत का सीधा संबंध सामाजिक व्यवस्था के विचार से है जिसकी संकल्पना बुद्ध ने की थी। बुद्ध ने एक ऐसे सामाजिक ताने–बाने और व्यवस्था की संकल्पना की थी जहां विशुद्ध प्रेम और स्नेह की भूमि थी जो विश्व मैत्री, करुणा और आनंद की लहरों से आदेशित थी।

समाज सेवा सम्मान की अभिव्यक्ति है। यह पूरी दुनिया में कलाओं, संबंधों, धर, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, पर्यावरण समाज में समचिंतता को बढ़ावा और पोषण देने का एक महत्वपूर्ण साधन है। बौद्ध ध्यान का अभ्यास और अध्ययन सहिष्णुता और सेवा की गहरी समझ उतपन्न करता है। समाज कार्य के अंतर्गत सामाजिक क्रिया तो दान की क्रिया है, किंतु एक प्रत्यक्ष कर्म होता है जिसे हम दान कर्म कहते हैं। बुद्ध ने कहा था, जो "रोगियों की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है।" सहायता की कला पर लिखने वाले डेविड ब्रेडन हमें स्मरण कराते हैं कि सम्मान का अर्थ है दूसरे व्यक्ति में बुद्ध स्वभाव का दर्शन करना। वास्तव में समाज कार्य के अंतर्गत भारतीय समाज के सामुदायिक जीवन का निरंतर विकास होगा। समाज में व्याप्त बुराइयों पर बौद्ध दर्शन ने कठोर प्रहार किया एवं समाज के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। गांधी जी बौद्ध दर्शन से प्रभावित हुए इसी कारण उन्होंने समाज कार्य के आदर्श बौद्ध दर्शन के अनुरूप दिये हैं।

भारत के इतिहास का यदि हम अवलोकन करें तो पता चलता है कि समाज के निर्माण के साथ–साथ समाज सेवा के कार्य चलते रहे हैं। गरीबों, असहायों तथा अपंगों की सहायता करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य माना गया है। वैदिक काल में सामुदायिक जीवन का विकास हुआ तथा सामूहिक संपत्ति की परंपरा हुई।

ऋग्वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में पुरोहितों को एक कुशल समाज कार्यकर्ता के रूप में माना गया है। उपनिषद् एवं प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है कि प्राचीन समय में दान देना, धर्मशालाएं बनवाना, सड़कें बनावाना तथा दीन–दुखियों की सहायता करना राजा का कर्तव्य होता था। व्यक्ति को सदैव महत्व दिया गया तथा उसकी पीड़ा को दूर करने के निरंतर प्रयास होते रहे। सनातन धर्म के सबसे महत्वपूर्ण साहित्य रामायण, महाभारत, गीता आदि से पता चलता है कि इस काल में व्यक्ति तथा समुदाय की भौतिक सहायता ही केवल सेवार्थी की सेवा नहीं थी। क्योंकि इससे हीनता एवं

आश्रितता की भावना पनपने का भय था इसलिए उन्हें किसी न किसी उद्योग में लगाना भी कर्तव्य समझा जाता था।

टिप्पणी

बौद्धकाल में समाज कार्य के भारतीय दर्शन की एक झलक मिलती है। विद्यार्थियों में अपने जीवन यापन के लिए स्वयं साधक दृढ़ होते थे। विद्यादान पर विशेष बल दिया जाता था। युवकों में धार्मिक मनोवृत्ति के विकास के लिए अनेक मठों, मन्दिरों तथा धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की गई थी। सामाजिक संबंधों में सुधार करने के उद्देश्य से अनेक कार्य किये गए।

बीसवीं शताब्दी में गांधी जी के कार्यों का राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। अतः समाज कार्य के संदभ्र में गांधी दर्शन को समझना आवश्यक प्रतीत होता है। समाज कार्य का आधुनिक प्रत्यय मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त लोगों की इस प्रकार सहायता करता है कि वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें। गांधी जी ने नेतृत्व में पर्याप्त सामाजिक स्वीकृति प्राप्त की। अपना तथा दूसरों का आदर एवं सम्मान समाज कार्य में सभी प्रकार के संबंधों का आधार है। गांधी जी ने मानव प्रतिष्ठा पर जोर दिया है, और उसकी प्राप्ति के लिए देश को स्वतंत्र कराने का बीड़ा उठाया क्योंकि परतंत्रता की स्थिति में आत्म सम्मान तथा प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

गांधी जी ने अपने आंदोलन में कभी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के आधार पर भेदभाव नहीं आने दिया। उनके कार्यों, भाषणों तथा व्याख्यानों में सदैव जाति एवं वर्ग विहीन समाज की स्थापना का स्वरूप झलकता था। गांधी जी के लिए लोग महत्वपूर्ण थे न कि उनकी जाति, धर्म तथा पृष्ठभूमि। उन्होंने कभी भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों में आधार पर लोगों को समझने तथा उनकी सहायता करने का प्रयत्न नहीं किया। गांधी जी का मत था कि किसी को दूसरों पर अपना मत अथवा विचार नहीं थोपना चाहिए। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लोग अपने मन से ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करेंगे। दूसरों के विचार उन पर प्रभाव नहीं डाल सकते।

गांधी जी ने आत्म–अनुशासन को जीवन की शैली माना तथा इसका उन्होंने अपने जीवन में अभ्यास भी किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि नैतिक शक्ति के द्वारा बड़े साम्राज्य से टक्कर ली जा सकती है, और उसे हराया भी जा सकता है। उनके अनुसार सत्य और अहिंसा न केवल व्यक्ति के लिए आवश्यक है बल्कि समूहों, समुदायों तथा राष्ट्रों में विकास का आधार है। गांधी जी ने समाज कल्याण को सर्वोदय के रूप में समझा जिसका तात्पर्य सभी क्षेत्रों में सभी का कल्याण है, लेकिन साथ ही साथ भारतीय समाज के निर्बल एवं दुर्बल वर्ग के कल्याण पर विशेष बल दिया। इसलिए उन्होंने रचनात्मक कार्यों का शुभारंभ किया। गांधी जी ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए जन आंदोलन छेड़ा। उन्होंने जनमत तैयार किया तथा जन साधारण के स्तर से कार्यक्रमों को प्रारंभ किया।

गांधी जी सादा जीवन, उच्च विचार के समर्थक थे। उन्होंने अपने न्याय संहिता के सिद्धांत में यह प्रतिपादित किया कि जिन लोगों के पास अपनी तथा अपने आश्रितों की आवश्यकता की पूर्ति से अधिक धन, वस्तुएं हैं उन्हें आवश्यकता ग्रस्त लोगों की धरोहर के रूप में अपने पास रखना चाहिए, और इससे सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों की तुरंत सहायता करनी चाहिए।

टिप्पणी

गांधी जी का दर्शन 'श्रम की महत्ता' पर आधारित है, जो कि समाज कार्य दर्शन का महत्वपूर्ण अंग है। उनका श्रम की महत्ता में अटूट विश्वास था तथा उनका यह मत था कि जीविकोपार्जन का अधिकार सभी में मिलना चाहिए और इसे साकार करने का वे सदैव प्रयत्न करते रहे। उन्होंने अपने विचारों को दूसरों पर थोपने का प्रयास कभी नहीं किया। उनका यह प्रयास था कि लोगों में जागृति आये जिससे वे स्वयं परिवर्तन का प्रयास करें। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गांधी जी ने भारत में व्यावसायिक समाजकार्य की नींव रखी तथा समाज कार्य दर्शन में उनका महान योगदान रहा।

इस प्रकार हर्बट बिस्नो ने समाजकार्य के दर्शन को चार क्षेत्रों में विभाजित कर विस्तृत वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त भारत के संदर्भ में समाज कार्य के दर्शन की क्या भूमिका रही, इसकी भी विवेचना की गयी है। गांधी जी के कार्यों का भी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। अतः समाजकार्य के सन्दर्भ में गांधी दर्शन को समझना आवश्यक था। गांधी जी का दृढ़ विश्वास था कि स्वयं अपनी सहायता सबसे अच्छी सहायता है। लोग तभी सक्रियता एवं पूर्ण आस्था के साथ काम करेंगे, जब वे नियोजन एवं कार्यक्रम में भाग लेंगे। गांधी जी चाहे हरिजन के साथ कार्य करते थे या महिलाओं, के उनके सामाजिक स्तर को उठाने का कार्य करते थे तथा उन्हें यह अनुभव कराने का प्रयत्न करते थे कि उनकी भलाई उन्हीं में निहित है।

समाज कार्य के लक्ष्य

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसमें एक सामाजिक एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ता द्वारा समस्याग्रस्त व्यक्तियों को उनकी आवश्यकतानुसार मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान की जाती है। आज तक समाज कार्य के प्रति लोगों में भ्रांतियां फैली हैं। इस संबंध में भी विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। प्रो. राजाराम शास्त्री के शब्दों में समस्याग्रस्त व्यक्तियों के समस्या समाधान निदान और उपचार का जो नवीनतम तरीका विकसित हुआ है वही समाज कार्य है। आपके अनुसार इसी परिभाषा में जो भी कार्य विधि एवं जो भी उपकरण उपयोग किये जाते हैं वे सभी इसमें सम्मिलित किये जाते हैं। समाज कार्य वह है जो आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति को भौतिक सहायता प्रदान करता है ताकि आवश्यकतानुसार उसको मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान की जा सके। उसको इस योग्य बना दिया जाता है कि वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं करे समाज में समायोजन कर सके। इस प्रकार समाज कार्य का उद्देश्य पूर्ण भी हो जाएगा। यदि व्यक्ति स्वयं में संतुष्ट रहे तो एक ऐसे समाज का निर्माण हो सकता है जहां सभी समान अधिकार के साथ जीवनयापन कर सकेंगे। समाज कार्य का इतिहास बहुत ही पुराना है समाज कार्य का जन्म इंग्लैण्ड से माना जाता है और समाज कार्य के चलते इंग्लैण्ड ने प्रगति की। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जिस देश में समाज कार्य ने प्रगति की है उस देश का विकास हुआ है। इस प्रकार देश की प्रगति में समाज कार्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

उद्देश्य कुतुबनुमा के समान होते हैं जो हमें दिशा बोध करते हैं। समाज कार्य के उद्देश्य, समाज कार्यकर्ताओं को सेवाएं प्रदान करते समय उन्हें दिशा निर्देश करते हैं और इसलिए इनकी जानकारी आवश्यक है। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सामाजिक कार्य के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

ब्राउन ने समाज कार्य के 4 उद्देश्यों का उल्लेख किया है–

1. भौतिक सहायता करना।
2. समायोजन स्थापित करने में सहायता देना।
3. मानसिक समस्याओं का समाधान करना।
4. निर्बल वर्ग के लोगों को अच्छे जीवनस्तर की सुविधाएं उपलब्ध कराना।

फ्रिडलैण्ड ने दुखदायी सामाजिक दशाओं में परिवर्तन, रचनात्मक शक्तियों के विकास तथा प्रजातांत्रिक सिद्धांतों एवं मनोवांछित व्यवहारों के अवसरों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करने के तीन उद्देश्यों का उल्लेख किया है। हैमिल्टन ने स्वस्थ एवं अच्छे जीवन स्तर तथा सन्तोषजनक संबंधों एवं अनुभव के आधार पर सामाजिक वृद्धि के अवसर प्रदान किये जाने का उल्लेख किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार समाज कार्य व्यक्तियों, समूहों एवं समुदाय को सामाजिक मानसिक एवं शारीरिक कल्याण के एक उच्च स्तर पर पहुंचने में सहायता प्रदान करता है।

पिटमर के विचार में समाज कार्य के दो प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. व्यक्तियों की उन कठिनाइयों को दूर करना जिन्हें वे समुचित उपयोग में अनुभव करते हैं।
2. लोगों के कल्याण हेतु उपलब्ध सामुदायिक संसाधनों की व्याख्या करना।

ऐण्डरसन के मत में– समाज कार्य लोगों की विशिष्ट इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुसार तथा समुदाय की इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुकूल संतोषजनक संबंधों एवं जीवन के मानदण्डों को प्राप्त करने में व्यक्तियों अथवा समूहों के रूप में उनकी सहायता करने के उद्देश्य से प्रदान की गयी व्यावसायिक सेवा है।

विशिष्ट रूप से समाज कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. मनो–सामाजिक समस्याओं का समाधान करना।
2. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
3. सामाजिक संबंधों में सौहार्द्रपूर्ण मूल्यों का विकास करना।
4. व्यक्तित्व में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करना।
5. सामाजिक उन्नति एवं विकास के अवसर पर उपलब्ध कराना।
6. लोगों में सामाजिक चेतना जागृत करना।
7. पर्यावरण को स्वच्छ एवं विकास के अनुकूल बनाना।
8. सामाजिक विकास हेतु सामाजिक व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन करना।
9. स्वस्थ जनमत तैयार करना।
10. सामाजिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार विधानों का निर्माण कराना तथा वर्तमान विधानों में वांछित संशोधन कराना।
11. लोगों में सामंजस्य की क्षमता विकसित करना।
12. लोगों की सामाजिक क्रिया को प्रभावपूर्ण बनाना।
13. लोगों में आत्म सहायता करने की क्षमता विकसित करना।

टिप्पणी

14. लोगों को अनेक जीवन में सुख एवं शान्ति का अनुभव कराना।
15. समाज में शांति एवं व्यवस्था को प्रोत्साहित करना।
16. भौतिक सहायता प्रदान करना।
17. समायोजन स्थापित करने में सहायता देना।
18. मानसिक समस्याओं का समाधान करना।
19. निर्बल वर्ग के लोगों को अच्छे जीवन स्तर की सुविधा उपलब्ध करना।
20. लोगों के कल्याण हेतु उपलब्ध सामुदायिक संसाधनों की व्यवस्था करना।

समाज कार्य के सामान्य लक्ष्य

1. मनोसामाजिक समस्या का समाधान।
2. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति।
3. समायोजन संबंधी समस्याओं का समाधान।
4. आत्मनिर्भरता विकसित करना।
5. मधुर सामाजिक संबंधों को निर्मित करना तथा सशक्त बनाना।
6. सुधारात्मक एवं मनोरंजनात्मक सेवाओं का प्रावधान करना।
7. जनतांत्रिक मूल्यों का विकास करना।
8. विकास एवं वृद्धि हेतु अवसर प्रदान करना।
9. व्यक्ति की वृद्धि एवं विकास हेतु पर्यावरण में आवश्यक परिवर्तन करना।
10. सामाजिक विकास हेतु सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना।
11. सामाजिक वैधानिक सहायता उपलबध कराना।

4.3.3 समाज कार्य के सिद्धांत

सिद्धांत, मौलिक नियम अथवा दिशा निर्देश होते हैं जो कार्यकर्ता को अपने व्यवसाय में सक्षम बनाते हैं। इन सिद्धांतों को सतर्क और विचारशील विश्लेषण के साथ उपयोग में लाना चाहिए। शैफोर एवं होरेजसी (2003) ने अपनी पुस्तक 'टैक्नीक्स एंड गाइडलाइंस फॉर सोशल वर्क प्रैक्टिस' में 24 मौलिक सिद्धांतों को समझाया है जो सामाजिक कार्य प्रैक्टिस को मार्गदर्शित करते हैं। उन्होंने इन सिद्धांतों को दो भागों में विभाजित किया है। पहले छह सिद्धांत सामाजिक कार्यकर्ताओं पर केंद्रित हैं और शेष अठारह सिद्धांत सामाजिक कार्यकर्ता के सेवार्थी समूह जैसे व्यक्ति, परिवार, छोटा समूह, संगठन समुदाय अथवा बड़ी सामाजिक संरचना से भी सामाजिक कार्यकर्ता के परस्पर संवाद से संबंधित हैं। चलिए हम संक्षेप में इनमें से प्रत्येक सिद्धांत की प्रमुख विशेषताओं को बताते हैं।

सामाजिक कार्यकर्ता पर केंद्रित करने वाले सिद्धांत

1. **सामाजिक कार्यकर्ता को सामाजिक कार्य में प्रैक्टिस करनी चाहिए :** सामाजिक कार्य के विद्यार्थी को सामाजिक कार्य के ज्ञान, नैतिक मूल्यों, नीतियों और सिद्धांतों के विषय में सैद्धांतिक पाठ्यक्रम में पढ़ाया जाता है। अतः उनसे

टिप्पणी

अव्यावसायिक तरीके से व्यवहार करने की उम्मीद नहीं की जाती है। उदाहरण के लिए, किसी विद्यार्थी की किसी ऐसे सेवार्थी से मुलाकात हो सकती है जो किसी दुर्घटना का शिकार हो गया हो। जब वह सेवार्थी से मिलने जाता/जाती है तो वह भावुक हो सकता/सकती है। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता से यह उम्मीद नहीं की जाती है कि वह सेवार्थी से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करे (जैसे आँसू बहाने लगे)। नियंत्रित भावनात्मक संबंध के सिद्धांत को याद रखें। एक व्यावसायिक के रूप में आपको वह करना चाहिए जो कार्य आपको सौंपा गया है और जिसके लिए आपको प्रशिक्षित किया गया है। आपको अपने व्यावसायिक ज्ञान, मूल्यों और कौशलों का उपयोग दी गई स्थिति में सेवार्थी के लिए कार्य करने में करना चाहिए।

2. **सामाजिक कार्यकर्ता को स्व–विवेक का उपयोग करना चाहिए** : एक अर्ध–व्यावसायिक के रूप में, आपको अपनी दक्षताओं, सामर्थ्य और सीमाओं में कार्य करना चाहिए। न तो आपको सेवार्थी से झूठे वादे करने चाहिए और न ही सेवार्थी पर अपनी शैली और मान्यताओं, मूल्यों और सोच को थोपना चाहिए। एक व्यावसायिक के रूप में कार्यकर्ता को सेवार्थी के दिमाग में विश्वास और कल्याण/हित के भाव को विकसित करना चाहिए।

   उदाहरण के लिए, किसी समुदाय में रहने वाले विद्यार्थी के रूप में आपको समुदाय में कोई झूठे वादे नहीं करने चाहिए कि आप उन्हें नौकरी दिलवा देंगे, गांव में 'पक्की सड़क' बनवा देंगे अथवा कोई आय अर्जन का कार्य आरंभ करवा देंगे।

   कार्यकर्ता को अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि और संस्कृति को ध्यान में रखना चाहिए। चलिए हम एक अन्य उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए कार्यकर्ता शाकाहारी है और सेवार्थी मांसाहारी है। कार्यकर्ता को सेवार्थी पर अपनी जीवनशैली नहीं थोपनी चाहिए और न ही यह उम्मीद करनी चाहिए कि सेवार्थी उसकी जीवनशैली को अपनाएगा। कार्यकर्ता को अपनी निजी मान्यताओं, अनुभूतियों और व्यवहारों के विषय में सचेत और जागरूक होना चाहिए जिनका उनके व्यावसायिक संबंधों पर प्रभाव पड़ सकता है क्योंकि ये व्यक्तिगत विशेषताएं निश्चित रूप से सेवार्थी के लिए सहायक होने की क्षमता को प्रभावित करेंगी।

3. **सामाजिक कार्यकर्ता को व्यावसायिक वस्तुनिष्ठता को बनाए रखना चाहिए** : एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आपसे सेवार्थी के साथ व्यावसायिक तरीके से व्यवहार करने की उम्मीद की जाती है। आपको उनके साथ एक निश्चित दूरी बनाए रखनी चाहिए और व्यक्तिगत रूप से उनसे नहीं जुड़ना चाहिए। उदाहरण के लिए, कोई सेवार्थी कार्यकर्ता से अपनी बहन के विवाह के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने का आग्रह कर सकता/सकती है। ऐसी स्थिति में, आपको अपनी भूमिका और सीमाओं के विषय में बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए और स्थिति से कौशलपूर्वक निबटने के लिए व्यावसायिकता को बनाए रखना चाहिए।

4. **सामाजिक कार्यकर्ता को मानव विविधता का सम्मान करना चाहिए** : एक अर्धव्यवसायी के रूप में, आपको सेवार्थी के साथ उसकी सांस्कृतिक

टिप्पणी

पृष्ठभूमि, धर्म, लिंग, भौतिक और बौद्धिक क्षमताओं के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, कोई कार्यकर्ता ऐसे सेवार्थी के लिए कार्य करता है जो अल्पसंख्यक समुदाय का है। तब व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह सेवार्थी के परिवार से इसलिए मुलाकात करने से बचे क्योंकि उसे शेष समुदाय से नकारात्मक प्रतिक्रिया का डर है। सामाजिक कार्यकर्ता से यह उम्मीद की जाती है कि वह प्रत्येक सेवार्थी का बिना किसी निर्णायक सोच के एक मनुष्य के रूप में सम्मान करे। एक सामाजिक कार्यकर्ता को किसी समूह में भिन्नताओं को समझना चाहिए। उसे किसी व्यक्ति की सांस्कृतिक पहचान, मान्यताओं अथवा मूल्यों के विषय में व्यक्ति के बाहरी गुणों अथवा किसी विशेष जनसंख्या अथवा जनसांख्यिकीय समूह के सदस्य होने के आधार पर पूर्वानुमान करने से बचना चाहिए।

5. **सामाजिक कार्यकर्ता को सामाजिक अन्याय को चुनौती देनी चाहिए :** सामाजिक कार्यकर्ता यह मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ मौलिक अधिकार होते हैं जैसे कि संविधान अथवा संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी मानव अधिकारों पर सार्वजनिक घोषणा में बताए गए हैं। सभी सदस्यों के समान मौलिक अधिकार, सुरक्षा, अवसर, दायित्व और सामाजिक हित होते हैं। इसलिए, एक सामाजिक कार्यकर्ता को सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़कर सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक योगदान के लिए तैयार रहना चाहिए।

6. **सामाजिक कार्यकर्ता को व्यावसायिक क्षमता बढ़ाने के लिए प्रयास करना चाहिए** : सामाजिक कार्यकर्ता को यह मानकर अलग नहीं बैठ जाना चाहिए कि वह किसी भी विवादित मुद्दे पर सब कुछ जानता/जानती है। उसे विभिन्न लोगों के साथ बातचीत करके, उपलब्ध और अद्यतन साहित्य से जानकारी लेकर और वेब समेत संचार के सभी साधनों से सहायता लेकर अपनी जानकारी को बढ़ाना चाहिए। उसे वर्कशॉप, कॉन्फ्रेंस, रिफ्रेशर कोर्स आदि में भागीदारी करके और सामाजिक और अकादमिक कार्यों में भागीदारी द्वारा स्वं को नई अवधारणाओं और संकल्पनाओं से अद्यतन रखना चाहिए। वास्तव में प्रत्येक व्यवसाय यह मांग करता है कि व्यावसायिकों को सब बातों की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। सामाजिक कार्य व्यावसायिक भी इससे बच नहीं सकते हैं।

व्यक्तिगत सेवार्थी और सेवार्थी समूहों पर केंद्रित सिद्धांत

1. **सामाजिक कार्यकर्ता को किसी को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए :** एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आपको अपने सेवार्थी के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए कार्य करना चाहिए। इसलिए, आपको कार्यक्रमों अथवा क्रियाकलापों को इस तरीके से विकसित करना चाहिए कि वे सेवार्थी की भावनाओं और सकारात्मक जीवनशैली को कम न आंकें। आपका मुख्य ध्यान अपने सेवार्थी की देखभाल और कल्याण पर होना चाहिए।

2. **सामाजिक कार्यकर्ता को ज्ञान–आधारित व्यवहार करना चाहिए :** एक सामाजिक कार्यकर्ता से यह उम्मीद की जाती है कि वह सेवार्थी समूह से बातचीत करते समय स्वयं को नवीनतम और सबसे अधिक व्यावसायिक

टिप्पणी

जानकारी से पूर्ण रखे। इसलिए कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ पर्याप्त अध्ययन और वर्तमान संदर्भ में समस्या के विश्लेषण के बिना व्यवहार नहीं करना चाहिए। यह भारतीय संदर्भ में, अत्यधिक अनिवार्य है जहां हमारे पास सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक विविधता वाले अनेक समूह हैं।

3. **सामाजिक कार्यकर्ता को मूल्य आधारित और नैतिक प्रैक्टिस करनी चाहिए :** प्रत्येक मनुष्य के अपने निजी मूल्य होते हैं और उसे उन मूल्यों पर कार्य करना चाहिए। एक सामाजिक कार्यकर्ता को सदैव सेवार्थी की मूल्य प्रणाली को पहचानना चाहिए जिससे उसकी स्थिति में परिवर्तन किया जा सके। उसे अपनी मान्यताओं को सेवार्थी पर नहीं थोपना चाहिए। एक सामाजिक कार्यकर्ता को यह मानना चाहिए कि मूल्य मानव व्यवहार में शक्तिशाली बल है और उसे सामाजिक कार्य व्यवसाय के मूल्यों के अनुसार कार्य करना चाहिए।
4. **सामाजिक कार्यकर्ता को संपूर्ण व्यक्ति से सरोकार रखना चाहिए :** एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आपको संपूर्ण व्यक्ति से उसके जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आत्मिक पहलुओं समेत व्यवहार करना चाहिए न कि सिर्फ समस्या के एक पहलू का अध्ययन करना चाहिए। आपको सेवार्थी की समस्या को भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के परिप्रेक्ष्य से देखना चाहिए। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कोई बालक किसी फौजदारी के मामले में गिरफ्तार हो गया है। कार्यकर्ता बच्चे के पूर्व इतिहास, पारिवारिक पृष्ठभूमि, मित्र मंडली आदि के साथ ही कुछ ऐसे कारकों का भी अध्ययन करता है जिन्होंने उसे अपराधी बनाने में योगदान दिया है। एक कार्यकर्ता के रूप में आपको सेवार्थी और अन्य उन लोगों के लिए जो सेवार्थी के व्यवहार से प्रभावित हो सकते हैं परिवर्तन प्रक्रिया के अल्पावधि और दीर्घावधि प्रभावी दोनों पर ध्यान देना चाहिए।
5. **सामाजिक कार्यकर्ता को समाज के सबसे संवेदनशील सदस्यों के लिए कार्य करना चाहिए :** राष्ट्रीय सरकार और संयुक्त राष्ट्र दोनों के द्वारा समाज के संवेदनशील वर्ग के लिए अनेक कार्यक्रम आरंभ हुए हैं और नीतियां बनाई गई हैं। यद्यपि, अनेक संवेदनशील वर्ग ऐसे प्रावधानों से लाभ पाने में असमर्थ होते हैं, इसलिए सामाजिक कार्यकर्ता को इस वर्ग के लिए कार्य करना चाहिए और सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय के लिए उनके अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को ऐसे लोगों की वकालत करनी चाहिए जो गरीब, मानसिक अथवा शारीरिक रूप से विकलांग, अल्पसंख्यक जाति अथवा संस्कृति के हों अथवा जिन्हें कमतर माना जाता है। उन्हें सामाजिक परिवर्तन के लिए लड़ते समय प्रभावी समाज द्वारा अवसर भेदभाव, उत्पीड़न अरौर अवहेलना की विशेष चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।
6. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ मर्यादापूर्ण व्यवहार करना चाहिए :** प्रत्येक व्यक्ति के साथ मर्यादा, इज्जत और सम्मान के साथ व्यवहार करना चाहिए। एक सामाजिक कार्यकर्ता को किसी सेवार्थी को उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए जैसा कि वह वास्तव में है यानी उसकी सामर्थ्य और कमजोरियों, उसकी सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं, सोच और व्यवहार के लिए अनिर्णयकारी सोच के साथ। इसका यह अर्थ नहीं है कि आपको सेवार्थी

टिप्पणी

के हर व्यवहार को स्वीकार कर लेना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ ऐसे व्यक्ति के रूप में व्यवहार करना चाहिए जो महत्वपूर्ण है और उनकी सहायता करने की प्रक्रिया की अवधि में उनकी मर्यादा को बनाए रखना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता का अनिर्णयकारी रुख सेवार्थी के अन्य द्वारा परखे जाने के सामान्य डर को दूर करने में सहायक होता है। यह सेवार्थी द्वारा रक्षात्मक कार्रवाई की अपेक्षा सकारात्मक सहयोगी संबंध विकसित करने में सहायक होगा।

7. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ व्यक्तिगत रूप से व्यवहार करना चाहिए** : व्यक्तिगत व्यवहार प्रत्येक सेवार्थी के विशिष्ट गुणों को पहचानकर और समझकर प्रत्येक सेवार्थी के लिए सहायता करने में भिन्न सिद्धांतों और विधियों का उपयोग करना है, जिससे बेहतर सामंजस्य और परिवर्तनशील प्रक्रिया में भागीदारी हो सके। एक सामाजिक कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी से न सिर्फ एक मनुष्य के रूप में बल्कि व्यक्तिगत भिन्नताओं वाले मनुष्य के रूप में व्यवहार करना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को प्रत्येक सेवार्थी से वैयक्तिक रूप से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक सेवार्थी के लिए परिस्थितियां और समस्याएं विशिष्ट हो सकती हैं। जो पद्धति एक सेवार्थी के लिए सही हो वह दूसरे के लिए नहीं भी हो सकती है।
8. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के जीवन पर उनकी विशेषज्ञता का विचार करना चाहिए** : एक सामाजिक कार्यकर्ता में मानव व्यवहार की भले ही बहुत अधिक सैद्धांतिक जानकारी हो सकती है। जबकि, उसे सेवार्थी की वास्तविक स्थिति की सही जानकारी नहीं भी हो सकती है। इसलिए सहायताकारी संबंध में उसे सेवार्थी से परामर्श करना चाहिए, जो अपने जीवन का प्रमुख विशेषज्ञ होता/होती है। सेवार्थी अपने बारे में कार्यकर्ता से कहीं बेहतर जानता/जानती है। सेवार्थी कुछ जानकारी को अपने तक ही सीमित रखना चाह सकता/सकती है और संभवतः सभी तथ्यों की भागीदारी नहीं भी कर सकता/सकती है।
9. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी को दृष्टि देनी चाहिए** : सहायता करने की प्रक्रिया में, कार्यकर्ता सेवार्थी की वर्तमान समस्या के समाधान के लिए सकारात्मक आशा और स्पष्ट दृष्टि प्रदान करता है। कार्यकर्ता सेवार्थी को परिस्थिति से उबरने के लिए नए और बेहतर तरीके बता सकता है। यद्यपि, कार्यकर्ता को नई संभावनाओं/परिप्रेक्ष्यों को बताते समय सेवार्थी को उसकी सीमाओं के विषय में बता देना चाहिए। एक कार्यकर्ता के रूप में आपको सेवार्थी और अन्य उन लोगों के लिए जो सेवार्थी के व्यवहार से प्रभावित हो सकते हैं परिवर्तन प्रक्रिया के अल्पावधि और दीर्घावधि प्रभावी दोनों पर ध्यान देना चाहिए।
10. **सामाजिक कार्यकर्ता को समाज के सबसे संवेदनशील सदस्यों के लिए कार्य करना चाहिए** : राष्ट्रीय सरकार और संयुक्त राष्ट्र दोनों के द्वारा समाज के संवेदनशील वर्ग के लिए अनेक कार्यक्रम आरंभ हुए हैं और नीतियां बनाई गई हैं। यद्यपि अनेक संवेदनशील वर्ग ऐसे प्रावधानों से लाभ पाने में असमर्थ होते हैं। इसलिए सामाजिक कार्यकर्ता को इस वर्ग के लिए कार्य करना चाहिए और और सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय के लिए उनके अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को ऐसे लोगों की

टिप्पणी

वकालत करनी चाहिए जो गरीब, मानसिक अथवा शारीरिक रूप से विकलांग, अल्पसंख्यक जाति अथवा संस्कृति के हों अथवा जिन्हें कमतर माना जाता है। उन्हें सामाजिक परिवर्तन के लिए लड़ते समय प्रभावी समाज द्वारा अक्सर भेदभाव, उत्पीड़न और अवहेलना की विशेष चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

11. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ मर्यादापूर्ण व्यवहार करना चाहिए** : प्रत्येक व्यक्ति के साथ मर्यादा, इज्जत और सम्मान के साथ व्यवहार करना चाहिए। एक सामाजिक कार्यकर्ता को किसी सेवार्थी को उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए जैसा कि वह वास्तव में है यानी उसकी सामर्थ्य और कमजोरियों, उसकी सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं, सोच और व्यवहार के लिए अनिर्णयकारी सोच के साथ। इसका यह अर्थ नहीं है कि आपको सेवार्थी के हर व्यवहार को स्वीकार कर लेना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ ऐसे व्यक्ति के रूप में व्यवहार करना चाहिए जो महत्वपूर्ण है और उनकी सहायता करने की प्रक्रिया की अवधि में उनकी मर्यादा को बनाए रखना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता का अनिर्णयकारी रुख सेवार्थी के अन्य द्वारा परखे जाने के सामान्य डर को दूर करने में सहायक होता है। यह सेवार्थी द्वारा रक्षात्मक कार्रवाई की अपेक्षा सकारात्मक सहयोगी संबंध विकसित करने में सहायक होगा।
12. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ व्यक्तिगत रूप से व्यवहार करना चाहिए** : व्यक्तिगत व्यवहार प्रत्येक सेवार्थी के विशिष्ट गुणों को पहचानकर और समझकर प्रत्येक सेवार्थी के लिए सहायता करने में भिन्न सिद्धांतों और विधियों का उपयोग करना है जिससे बेहतर सामंजस्य और परिवर्तनशील प्रक्रिया में भागीदारी हो सके। एक सामाजिक कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी से न सिर्फ एक मनुष्य के रूप में बल्कि व्यक्तिगत भिन्नताओं वाले मनुष्य के रूप में व्यवहार करना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को प्रत्येक सेवार्थी से वैयक्तिक रूप से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक सेवार्थी के लिए परिस्थितियां और समस्याएं विशिष्ट हो सकती हैं। जो पद्धति एक सेवार्थी के लिए सही हो वह दूसरे के लिए नहीं भी हो सकती है।
13. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के जीवन पर उनकी विशेषज्ञता का विचार करना चाहिए** : एक सामाजिक कार्यकर्ता ने मानव व्यवहार की भले ही बहुत अधिक सैद्धांतिक जानकारी हो सकती है। जबकि, उसे सेवार्थी की वास्तविक स्थिति की सही जानकारी नहीं भी हो सकती है। इसलिए सहायताकारी संबंध में उसे सेवार्थी से परामर्श करना चाहिए, जो अपने जीवन का प्रमुख विशेषज्ञ होता/होती है। सेवार्थी अपने बारे में कार्यकर्ता से कहीं बेहतर जानता/जानती है। सेवार्थी कुछ जानकारी को अपने तक ही सीमित रखना चाह सकता/सकती है और संभवतः सभी तथ्यों की भागीदारी नहीं भी कर सकता/सकती है।
14. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी को दृष्टि देनी चाहिए** : सहायता करने की प्रक्रिया में, कार्यकर्ता सेवार्थी की वर्तमान समस्या के समाधान के लिए सकारात्मक आशा और स्पष्ट दृष्टि प्रदान करता है। कार्यकर्ता सेवार्थी को

टिप्पणी

परिस्थिति से उबरने के लिए नए और बेहतर तरीके बता सकता है। यद्यपि, कार्यकर्ता को नई संभावनाओं/परिप्रेक्ष्यों को बताते समय सेवार्थी को उसकी सीमाओं के विषय में बता देना चाहिए। ये नोट करना आवश्यक है कि सेवार्थियों को झूठे आश्वासन न दिए जाएं। सामाजिक कार्यकर्ता को सामाजिक परिवर्तन के लिए नई संभावनाओं, प्रोत्साहन, समर्थन और तकनीकों को प्रस्तुत करते समय सीमाओं और संभावनाओं के लिए यथार्थवादी और ईमानदार होना चाहिए।

15. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी की सामर्थ्य/शक्ति को बढ़ाना चाहिए** : प्रत्येक व्यक्ति में कुछ कमजोरियां और कुछ सामर्थ्य/शक्तियां होती हैं। कार्यकर्ता को नकारात्मक सोच को नहीं अपनाना चाहिए। कार्यकर्ता को सेवार्थी की सामर्थ्य, क्षमताओं और संभावनाओं को समझने का प्रयास करना चाहिए। उदाहरण के लिए, विकलांग सेवार्थी के मामले में, कार्यकर्ता को उसकी क्षमताओं को संबोधित करना चाहिए न कि यह सोचना चाहिए कि सेवार्थी विकलांग है और सिर्फ सीमित क्रियाकलापों को ही कर सकता है। आपको यह समझना चाहिए कि सेवार्थी की क्षमताएं और संभावनाएं ही हैं जो वांछित परिवर्तन करने के लिए सबसे अधिक सहायक होती हैं।

16. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी की भागीदारी को बढ़ाना चाहिए** : एक सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी को उसकी पूरी भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे अर्थपूर्ण और स्थायी परिवर्तन हो सके। एक अर्थपूर्ण परिवर्तन तभी होगा यदि सेवार्थी परिवर्तन की आवश्यकता को समझेगा और उस पर कार्यवाही करना चाहेगा और करने में समर्थ होगा। सेवार्थी की भागीदारी को बढ़ाने के लिए, सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ कार्य करना चाहिए उसके लिए नहीं।

17. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी की स्व–निर्धारण की क्षमता को बढ़ाना चाहिए** : एक सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी को अपनी निजी समस्या के लिए स्वतंत्र और उचित रूप से सोचने और अपने बारे में निर्णय लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। सेवार्थी वैधानिक रूप से अपने और दूसरों के लिए निर्णय लेने के संदर्भ में सक्षम होता है। यद्यपि, यह कहना करने से आसान होता है। इस अवस्था में पहुंचने के लिए, कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ काफी लंबी अवधि तक सतर्कतापूर्वक कार्य करना होता है। कार्यकर्ता का काम सेवार्थी को विकल्पों का पता लगाने में और परिणामों के प्रभावों का विश्लेषण करने में समर्थ बनाना है।

18. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी की स्व–निर्देशित समस्या सुलझाने के कौशलों में सहायता करनी चाहिए** : सेवार्थी को स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनाने के लिए कार्यकर्ता को सेवार्थी की स्व–निर्देशों और समस्या सुलझाने के कौशलों में सहायता करनी चाहिए। इन कौशलों को सीखने से सेवार्थी अपनी रोजमर्रा की समस्याओं को कार्यकर्ता पर निर्भरता के बिना सुलझा सकेगा। उदाहरण के लिए सामाजिक कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी को यह सिखाना चाहिए कि वह पारिवारिक सदस्यों, संबंधियों, मित्रों, नियोक्ता, सेवा समूहों आदि जैसे संसाधनों की कैसे पहचान करके उनका उपयोग करे, जो उसके निकटवर्ती परिवेश में पाए जाते हैं।

19. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी सशक्तीकरण को बढ़ाना चाहिए :** हमारे भारतीय समाज में आपको विभिन्न प्रकार के भेदभाव और उत्पीड़नों से पीड़ित व्यक्ति आसानी से मिल सकते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता के लिए यह संभव नहीं है कि वह सेवार्थी के साथ हर जगह हर समय उसे ऐसे चलनों से बचाने के लिए उपस्थित हो। इसलिए सेवार्थी को ऐसे भेदभाव के विरुद्ध लड़ने और भावी स्थितियों से स्वयं निबटने में सक्षम बनाना चाहिए। इसके लिए सामाजिक कार्यकर्ता को प्रयास करना चाहिए कि लोगों का अपने जीवन और परिस्थितियों पर नियंत्रण हो जिससे अत्यधिक आवश्यक जानकारी और संसाधन प्राप्त हो सके, निर्णय लेने के कौशल विकसित हो सकें, अधिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्यवाही कर सकें और अपने सामाजिक और राजनीतिक परिवेश को रूपांतरित कर सके। सेवार्थी को सशक्त करने के लिए, सामाजिक कार्यकर्ता को व्यावसायिक संबंध के भीतर प्रोत्साहन, शिक्षण, सुविधा, सहयोग और निर्णय लेने में भागीदारी पर जोर देना चाहिए।

20. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी की गोपनीयता की रक्षा करनी चाहिए :** गोपनीयता व्यावसायिक संबंध के लिए अनिवार्य है। यह सेवार्थी के साथ किसी सहयोगी संबंध के लिए आधार है। इसलिए कार्यकर्ता को उस जानकारी को गोपनीय रखना चाहिए जो सेवार्थी ने उसे दी हो। उस जानकारी को अनावश्यक रूप से बाहरी लोगों के साथ बांटने से कार्यकर्ता और सेवार्थी का संबंध आसानी से टूट सकता है। सिर्फ व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित कार्यकर्ता इस सिद्धांत को शब्द और व्यवहार में ला सकता है। उदाहरण के लिए, सामाजिक कार्यकर्ता को इस संबंध में सावधानी बरतनी चाहिए कि एजेंसी की फाइलों में क्या जानकारी दी गई है और एजेंसी में कार्य कर रहे लिपिकीय कर्मचारियों को किसी सामग्री जिसे वे टाइप करते हैं, फाइल अथवा अनजाने में सुनी हुई बातचीत की गोपनीय प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को साक्षात्कारों के स्थान की योजना सावधानी से बनानी चाहिए और व्यावसायिक परामर्श के काल में सभी जानकारी को अन्य व्यक्तियों और सेवा संगठनों को नहीं बताना चाहिए।

21. **सामाजिक कार्यकर्ता को सामान्यीकरण के दर्शन को अपनाना चाहिए** : एक सामाजिक कार्यकर्ता को ऐसे सेवार्थी के साथ भेदभाव अथवा उसे अलग नहीं करना चाहिए जो मानसिक अथवा शारीरिक रूप से कमजोर हो। इससे सेवार्थी को सामाजिक स्वीकार्यता प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न होती है। कार्यकर्ता को उन सेवार्थी के साथ भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह अन्य सेवार्थी के साथ करता/करती है जिससे वह स्वयं को अलग न महसूस करे।

22. **सामाजिक कार्यकर्ता को सतत रूप से परिवर्तन की प्रक्रिया की प्रगति का मूल्यांकन करना चाहिए :** मूल्यांकन किसी वांछित उद्देश्य को पूरा करने के लिए बनाई गई प्रक्रिया को प्रभावित करता है और मूल्य के निर्धारण अथवा निर्णय में मदद देता है। एक कार्यकर्ता को सतत रूप से परिवर्तन की प्रक्रिया का निगरानी और मूल्यांकन करते रहना चाहिए। मूल्यांकन कार्यकर्ता को इसका पता लगाने में समर्थ बनाता है कि किस हद तक उद्देश्य पूरे हो गए हैं।

टिप्पणी

सुनियोजित मूल्यांकन कार्यकर्ता को नए उद्देश्यों को बनाने और अनुपयुक्त उद्देश्यों को दूर करने में सहायता करते हैं।

23. **सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी, एजेंसी, समुदाय और सामाजिक कार्य व्यवसाय के लिए विश्वसनीय होना चाहिए** : सामाजिक कार्य की प्रैक्टिस में एक सामाजिक कार्यकर्ता को न सिर्फ सेवार्थी बल्कि उन सभी के लिए भी विशेष रूप से एजेंसी और समुदाय के लिए विश्वसनीय होना चाहिए जो सेवार्थी के साथ संबद्ध होते हैं।

    यद्यपि कार्यकर्ता को सभी पक्षों के लिए विश्वसनीय होना चाहिए, लेकिन सबसे अधिक प्राथमिकता सेवार्थी को दी जानी चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ताओं का यह दायित्व है कि वह सभी सेवार्थी को हर समय अपनी श्रेष्ठ सेवाएं प्रदान करे। उन्हें उन व्यक्तियों, परिवारों और समूहों के लिए विश्वसनीय होना चाहिए जिनके लिए वे प्रत्यक्ष रूप से कार्य करते हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं को अपनी नियोक्ता संस्थाओं के कार्य को जहां तक संभव हो सके कुशल तरीके से करके उनके प्रति विश्वसनीय होना चाहिए। व्यावसायिक एकाधिकार का अस्तित्व यह मांग करता है कि व्यवसाय के सदस्य समुदाय और स्वयं व्यवसाय के लिए भी विश्वसनीय हों।

4.3.4 समाज कार्य के कौशल

समाज कार्य की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि समाज कार्य मुख्यतः किसी भी मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों को व्यक्तिगत, सामूहिक एवं सामुदायिक स्तर पर सहायता प्रदान करता है। यह समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने, समस्याओं के कारणों का पता लगाने और समस्याओं के समाधान के लिए वातावरण में उपलब्ध साधनों पर ध्यान केन्द्रित करने में सहयोग देता है ताकि समस्याग्रस्त व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करने के योग्य हो जाए। समाज कार्य के कौशल इस प्रकार हैं–

1. मनो–सामाजिक समस्याओं का समाधान करना।
2. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
3. सामाजिक संबंधों को सौहार्द्रपूर्ण एवं मधुर बनाना।
4. व्यक्तित्व में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करना।
5. सामाजिक उन्नति एवं विकास के अवसर उपलब्ध कराना।
6. लोगों में सामाजिक चेतना जागृत करना।
7. पर्यावरण को स्वस्थ एवं विकास के अनुकूल बनाना।
8. सामाजिक विकास हेतु सामाजिक व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन करना।
9. स्वस्थ जनमत तैयार करना।
10. सामाजिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार विधानों का निर्माण करना तथा वर्तमान विधानों में वांछित संशोधन करना।
11. लोगों में सामंजस्य की क्षमता विकसित करना।

टिप्पणी

12. लोगों की सामाजिक क्रिया को प्रभावपूर्ण बनाना।
13. लोगों में आत्म–सहायता करने की क्षमता विकसित करना।
14. लोगों को उनके जीवन में सुख एवं शांति का अनुभव कराना।
15. समाज में शांति एवं व्यवस्था को प्रोत्साहित करना।

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान और मानवीय संबंधों की निपुणता पर आधारित है। इसमें व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से, समूह में या समुदाय में सहायता प्रदान की जाती है और सहायता इस प्रकार से भी की जाती है कि व्यक्ति, समूह, समुदाय या परिवार स्वयं सक्षम बन सकें।

समाज कल्याण की अवधारणा आधुनिक औद्योगिक समाज की विभिन्न समस्याओं के संबंध में विकसित हुई है। निर्धनता, रोग, सामाजिक विघटन आदि समस्याएं बढ़ी हैं एवं हमारी परम्परागत संस्थाएं– परिवार, पड़ोस, धार्मिक संस्थाएं आदि कमजोर पड़ गयी हैं, इनका स्थान नई सेवाओं ने लेना प्रारंभ कर दिया है यही समाज कल्याण सेवाएं हैं। समाज कल्याण में भौतिक सहायता प्रदान की जाती है साथ ही सामाजिक नीति एवं कानून लाकर सहायता की जाती है। समाज कल्याण का कार्य संस्थाओं के माध्यम से होता है।

समाज कल्याण के अनेक क्षेत्र हैं, जैसे– बाल कल्याण, श्रम कल्याण, अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण, श्रम कल्याण आदि। इसमें सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप नये–नये क्षेत्र भी जुड़ते जाते हैं जैसे– वृद्ध कल्याण, रोगी कल्याण आदि।

समाज कार्य तथा समाज कल्याण एक–दूसरे से भिन्न भी हैं और समान भी हैं। इनमें अंतर्सम्बन्ध कई आधारों पर है जिसमें मुख्य रूप से, वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज कल्याण सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

सामाजिक सेवाओं और समाज कार्य के विकास में समाज कार्यकर्ताओं द्वारा दी जाने वाली विभिन्न प्रकार की सेवाओं को समाज कार्य माना गया है। जन कल्याण के क्षेत्र में सेवार्थी को जन सहायता और सामाजिक सेवाएं दोनों एक ही व्यक्ति द्वारा दी जाती थीं जिसे समाज कार्यकर्ता कहा जाता था। वास्तव में इनमें से बहुत कम लोगों ने समाज कार्य में शिक्षा पाई थी। काफी अधिक समय तक इस आर्थिक सहायता को समाज कार्य का ही एक भाग माना जाता था और साधारण जनता समाज कार्यकर्ता को सहायता देने वाला कार्यकर्ता कहती थी। परंतु 1960 के आसपास यह धारणा कि वह व्यक्ति जिन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है चरित्र के दोष भी लिए होते हैं अस्वीकार कर दी गई। समाज कार्यकर्ताओं को इस आर्थिक सहायता के कार्य से अलग कर दिया गया। यद्यपि वह जन सहायता नीति और इस संबंधी प्रशासकीय निर्णय के स्तर पर भी कार्यरत थे। इसी समय इस बात की आवश्यकता समझी गयी कि समाज कार्य व्यवसाय और समाज सेवा की अवधारणाओं के विभेद को समझा जाए। अमेरिका में 1967 में यह स्वीकार करते हुए कि निर्धन व्यक्ति निर्धन होते ही चरित्र दोष ग्रहण नहीं कर लेता, जन सहायता को जन सामाजिक सेवाओं से अलग कर दिया गया। इसी के साथ एक समिति गठिन की गई जो काफी प्रयासों के बाद भी समाज सेवा की परिभाषा न दे सकी और केवल सामाजिक सेवाओं की व्याख्या और उनका वर्गीकरण ही कर पाई।

टिप्पणी

समाज सेवा पद से अर्थ व्यक्ति अथवा समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वैच्छिक समाज सेवकों द्वारा करना है। समाज सेवा के अंतर्गत न तो आवश्यकताओं का विधिवत अध्ययन किया जाता है, न ही साधनों पर विचार होता है और न ही ऐसे क्रियाकलाप द्वारा व्यक्ति की इस प्रकार सहायता की जाती है कि वह अपनी सहायता स्वयं कर सकने में सक्षम हो सके। समाज सेवा से तात्पर्य किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति की सेवा करना है, जो मात्र सेवा भाव से प्रेरित होकर की जाती है। इसमें न तो किसी प्रविधि का उपयोग किया जाता है और न ही समाज सेवक के किसी रूप में प्रशिक्षित होने की बात का महत्व है, अर्थात् समाज सेवा मात्र स्वेच्छा तथा मानव सेवा की भावनाओं से प्रदान की जाती है। उदाहरण, आग की लपटों में जलते हुए किसी भवन में फंसे लोगों को बचाने की प्रक्रिया अथवा सूखा क्षेत्र में खाने–पीने की सामग्री की व्यवस्था करना या सड़क पर चल रहे किसी नेत्र विहिन या अपाहिज को गंतव्य तक पहुंचाना आदि समाज सेवा के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं। इसकी व्याख्या के साथ ही सामाजिक सेवाओं का समाज कार्य से तुलनात्मक अध्ययन करना अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने समाज कल्याण व समाज कार्य की अवधारणाओं में उपस्थित भेद पर निम्नांकित रूप से प्रकाश डाला है– "समाज कार्य एक प्रक्रिया थी जिसका प्रयोग समाज कल्याण के फल की प्राप्ति हेतु किया गया था तथा सामाजिक कार्यकर्ता व व्यक्ति वे जो समाज कार्य के माध्यम से समाज कल्याण की प्राप्ति हेतु कार्यरत थे।"

समाज कार्य व्यवसाय की संवृद्धि समाज कल्याण संस्था में देखी जा सकती है और दोनों ही एक औद्योगिक समाज में जीवन की समस्याओं का समाधान करने के संगठित प्रयास के रूप में माने जा सकते हैं।

काम्पटन के अनुसार समाज कार्य व्यवसाय का विकास इस समाज कल्याण संस्था के विकसित हो रहे कल्याण कार्यक्रमों के संचालन के लिए कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होने के कारण ही हुआ। यद्यपि समाज कार्य केवल समाज कल्याण संस्थाओं तक ही सीमित नहीं है वह व्यक्तियों, समूहों, समुदायों और परिवारों को सेवा भी प्रदान करता है और संस्था की संवृद्धि के लिए भी कार्य करता है।

समाज कल्याण एक संस्था है और समाज कार्य एक प्रभावी व्यवसाय है जो उपभोक्ताओं को सामाजिक सेवाएं प्रदान करने का कार्य करता है।

समाज कल्याण सामाजिक सेवाओं एवं संस्थाओं का एक संगठित तंत्र है जो व्यक्तियों एवं समूहों को अच्छे जीवन स्तर, स्वास्थ्य एवं योग्यताओं को विकसित करने का तथा भलाई का अवसर प्रदान करता है। जबकि समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जो वैज्ञानिक ज्ञान और मानवीय संबंधों की निपुणता पर आधारित है और जो व्यक्तियों को अकेले या समूहों के माध्यम से सामाजिक एवं व्यक्तिगत संतुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।

समाज में संस्थागत संगठन के माध्यम से ही समाज कल्याण की प्राप्ति होती है, जबकि समाज कार्य के क्रियाकलाप व्यक्तियों को सामाजिक संस्थाओं का उपभोग करने में सहायता देने हेतु निर्देशित होते हैं।

टिप्पणी

समाज कल्याण में कमजोर एवं पिछड़े लोगों को आर्थिक सहायता, भौतिक पदार्थ उपलब्ध कराना, स्वास्थ्य संबंधी सेवाएं प्रदान करना आता है। जबकि समाज कार्य में व्यक्ति को स्वयं अपनी सहायता हेतु सक्षम बनाया जाता है। समाज कार्य में व्यक्तियों के आपसी संबंधों को भी बेहतर बनाकर परिवार, समुदाय व समूह को सुदृढ़ बनाया जाता है।

समाज कल्याण एक व्यवस्था है जिसमें आर्थिक व भौतिक सहायता प्रदान की जाती है जबकि समाज कार्य एक व्यवसाय है जिसमें कार्यकर्ता अपने ज्ञान व कौशल का उपयोग करके सेवार्थी को सक्षम बनाता है।

समाज सेवाएं वे सेवाएं हैं जो समाज द्वारा अपने सदस्यों की सुरक्षा तथा मानवीय साधनों के विकास के संदर्भ में प्रदत्त की जाती हैं। जिनके अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था सम्मिलित की जाती है। जबकि समाज कार्य का प्राथमिक कार्य समुदाय की इस प्रकार सहायता करना है कि वे समाज द्वारा प्रदत्त समाज सेवाओं का उपयोग इस प्रकार करें कि समुदाय के सामाजिक व आर्थिक कल्याण के न्यूनतम मानक स्तर की प्राप्ति कर सकें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निर्धनों के उचित स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास इत्यादि की समुचित व्यवस्था करना समाज सेवाएं हैं।

कैसिडी ने समाज सेवाओं के संदर्भ में अपने विचार निम्नलिखित रूप में प्रकट किया है– "समाज सेवाएं वे संगठित क्रियाएं हैं जो प्राथमिक एवं प्रत्यक्ष रूप से साधनों का संरक्षण करने, उसको सुरक्षित रखने तथा उनमें सुधार लाने से सम्बद्ध होती हैं।"

- सामाजिक सेवाओं के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा अपनी इच्छा से दूसरे व्यक्ति को सेवाभाव से प्रेरित होकर सेवा प्रदान की जाती है।
- इस कार्य हेतु न तो किसी प्रशिक्षण, न किसी प्रविधि के उपयोग की बात आती है बल्कि सामाजिक सेवा करने वाले व्यक्ति की भावना मानव सेवा से युक्त होती है और इसमें सेवा का भाव स्वयं आ जाता है।
- समाज द्वारा अपने सदस्यों की सुरक्षा व मानवीय संसाधनों के विकास के संबंध में दी जाने वाली सेवाएं सामाजिक सेवा है।
- सामान्यतया समाज सेवाओं के अंतर्गत वे सेवाएं आती हैं जो समस्त जन समुदाय की योग्यताओं और कुशलताओं को कायम रखने और विकास करने हेतु तथा आर्थिक और सामाजिक कल्याण के एक सामान्य स्तर को बनाए रखने हेतु अपेक्षित होती हैं।
- सामाजिक सेवाओं को परिभाषित करते हुए कैसिडी ने मानवीय साधनों के संरक्षण एवं उनमें सुधार लाने की बात कही है इसके साथ ही साथ इन सामाजिक सेवाओं में सामाजिक सहायता, बीमा, मानसिक स्वास्थ्य, जन स्वास्थ्य, बाल कल्याण, सुधार मनोरंजन, आवास तथा श्रम संरक्षण आदि सेवाओं को मान्यता प्रदान की जाती है।

मूर्थी (Moorthy) ने समाज कार्य एवं समाज सेवाओं का अंतर बहुत ही सूक्ष्म तरीके से करके दोनों के बीच में स्पष्ट रेखांकन कर दिया है। उनके कथनानुसार समाज कार्य तथा समाज सेवाओं के बीच वास्तविक एवं वैज्ञानिक अंतर है यह मात्र कल्पनाओं पर आधारित कुछ लोगों के निर्णयों के आधार पर किया गया मनमाना अंतर नहीं।

एम.वी. मूर्थी ने इन दोनों में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि "जब हम निःसहायों की सहायता करते है तो वह समाज सेवा है, निःसहायों को अपनी सहायता स्वयं करने में सहायता करना समाज सेवा है।"

टिप्पणी

- सभी सेवाएं समाज कार्य नहीं होतीं किंतु समाज कार्य द्वारा दी जाने वाली संपूर्ण सेवाएं सामाजिक सेवा होती हैं।
- समाज कार्य में वैज्ञानिक ज्ञान, विधियां एवं अभ्यास का होना महत्वपूर्ण है परंतु समाज सेवा में ऐसी कोई बात नहीं है।
- समाज कार्य केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो सम्यक प्रशिक्षण के द्वारा आवश्यक ज्ञान व कुशलताओं से युक्त हो परंतु सामाजिक सेवा के अंतर्गत कुछ सेवाएं ऐसी भी आती हैं जो सामान्य व्यक्ति बिना किसी प्रशिक्षण के भी कर सकता है।
- सामाजिक सेवाओं के अंतर्गत सामान्य जन की कुछ आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति का प्रयास किया जाता है और एक ही साथ बड़े पैमाने पर सेवार्थियों के साथ कार्य किया जाता है परंतु समाज कार्य के अंतर्गत सामान्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त विशिष्ट आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया जाता है तथा एक साथ एक व्यक्ति को लेकर और समूह को लेकर भी कार्य किया जा सकता है।
- सामाजिक सेवाओं के अंतर्गत प्रशासन और उपयोगिता पर तो अधिक जोर दिया जाता है परंतु समाज कार्य के अंतर्गत मानव मात्र से उचित संबंध स्थापित कर उसकी सेवा या सहायता इस प्रकार की जाती है कि भविष्य में चलकर वह अपनी सहायता स्वयं करने में समर्थ हो।
- सामाजिक सेवाओं का लक्ष्य बहुत अंश में एक पक्षीय होता है। हर प्रकार की सेवाओं के द्वारा किसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति होती है पर समाज कार्य सेवार्थी को सर्वांगीण रूप में स्वीकार करता है और उसकी सभी प्रकार की समस्याओं को यथासम्भव सुलझाने का प्रयास करता है।

अधिकांश लोगों को समाज कार्य के विषय में सही जानकारी न होने के कारण उनमें इसके विषय में अनेक प्रकार की भ्रांतिया पायी जाती हैं। कुछ प्रमुख भ्रान्तियां निम्नवत हैं–

1. **दान के रूप में समाज कार्य** : निर्धनों तथा अकिंचनों को दान देना प्राचीनकाल से चला आ रहा है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार दान के माध्यम से केवल अस्थायी रूप से दान वाले व्यक्ति की आर्थिक समस्या का समाधान किया जाता है। दान देने वाला व्यक्ति दूसरों पर निर्भर बना रहता है। समाज कार्य व्यक्ति की वैज्ञानिक ढंग से इस प्रकार सहायता प्रदान करता है कि समस्याग्रस्त व्यक्ति में समाधान करने की क्षमता उत्पन्न हो जाए और वह अपनी सहायता स्वयं करने के योग्य बन सके।
2. **श्रम दान के रूप में समाज कार्य** : समुदाय की सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए श्रम दान का प्रयोग किया जाता रहा है। यह श्रम दान, लोग ऐच्छिक रूप से करते रहे हैं। इसका सहारा लेते हुए सार्वजनिक मार्गों का निर्माण, तालाबों की खुदाई, सार्वजनिक सफाई जैसे अनेक प्रकार के कार्य किये

जाते हैं। श्रम दान समाज कार्य नहीं है। अथवा निपुणता का प्रयोग करते हुए सामान्य हित के कार्यों के लिए किया जा सकता है। जबकि समाज कार्य वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रविधिक निपुणताओं का प्रयोग करते हुए समस्याग्रस्त व्यक्तियों, समूह एवं समुदायों की मनो–सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए उन्हें आत्म–सहायता करने के योग्य बनाता है।

3. **समाज कल्याण के रूप में समाज कार्य** : समाज कल्याण सामाजिक सेवाओं एवं संस्थाओं की एवं संगठित व्यवस्था है, जो व्यक्तियों एवं समूहों को एवं संतोषजनक जीवन स्तर प्रदान करने के लिए बनायी जाती है। इसका उद्देश्य आर्थिक उन्नति के अवसर, अच्छा स्वास्थ्य एवं संतोषजनक जीवन स्तर प्रदान करना है। समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है, जिसमें मनो–सामाजिक समस्याओं का समाधान ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं का प्रयोग करते हुए किया जाता है। समाज कार्य व्यक्ति की सामाजिक क्रिया को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा जीवन को सुखमय एवं शांतिपूर्ण बनाता है।
4. **समाज सुधार के रूप में समाज कार्य** : समाज सुधार का अभिप्राय समाज की विचारधारा में परिवर्तन लाना है। ताकि प्रचलित कुरीतियों एवं बुराइयों को दूर किया जा सके। अस्पृश्यता, दहेज, बाल–विवाह जैसी बुराइयों को रोकने के लिए किए जाने वाले प्रयास समाज सुधार के अंतर्गत आते हैं।

समाज कार्य कौशलों की विशेषताएं

1. एक प्रभावी सहायक संबंध निर्मित करना

संबंध एक चैनल है जिसके द्वारा सेवार्थी की क्षमता को संभव बनाया जाता है। यह एक माध्यम भी है जिसके द्वारा सेवार्थी अपनी समस्या को बता पाता/पाती है और जिसके द्वारा समस्याओं पर ध्यान दिया जा सकता है। सहायक संबंध में सेवार्थी और कार्यकर्ता हस्तक्षेप के उद्देश्य से मिलते हैं। ऐसी बैठकों में सेवार्थी में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए उसे प्रोत्साहित किया जाता है। यद्यपि, ऐसा करना बहुत सरल नहीं होता है और सेवार्थी के लिए कुछ हद तक तनावपूर्ण हो सकता है। सहायक संबंध की प्रमुख विशेषताओं में सम्मिलित हैं–

सहानुभूति : इसका अर्थ अन्य व्यक्ति की मानसिक अवस्था में प्रवेश करके उसकी भावनाओं को समझने की क्षमता है। किसी व्यक्ति के साथ सहानुभूति एक दशा है जिसमें किसी स्थिति की इस प्रकार कल्पना की जाती है जैसे वह उसे देखता/देखती है और उसकी भावनाओं को समझकर उन विशेष भावनाओं को स्वयं में स्थानांतरण किया जाता है।

सकारात्मक सम्मान : सेवार्थी से कार्यकर्ता द्वारा एक नैसर्गिक महत्व के व्यक्ति के रूप में व्यवहार किया जाना चाहिए जो सकारात्मक परिवर्तन करने में समर्थ हो। उसे महत्व दिया जाना चाहिए, भले ही वह दिखने में चाहे जैसा हो या उसका व्यवहार, जीवन, परिस्थितियां अथवा सेवार्थी बनने के चाहे जो कारण हों। अन्य व्यक्तियों के व्यवहार के सही या गलत के निर्णय के लिए, सकारात्मक सम्मान बहुत महत्वपूर्ण है। प्रभावी सहायक संबंध को बनाए रखने के लिए निर्णय की सोच रखना प्रमुख बाधा है।

गर्मजोशी : व्यक्तिगत गर्मजोशी से, सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के लिए इस प्रकार प्रतिक्रिया करता है जिससे वे सुरक्षित और स्वीकृत महसूस करते हैं। ये अधिकार

अ–शाब्दिक संप्रेषण होता है जिसे मुस्कान, मृदु और सुखदायी वाणी, उचित क्षेत्र संपर्क और ऐसी भावभंगिमाओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है जो स्वीकार्यता और खुलेपन का भाव प्रेषित करती हैं।

खरापन/स्वाभाविकता : इसका अर्थ कार्यकर्ता के अंदर मौलिकता अथवा खरेपन का होना है। वह जो कुछ कहता/कहती है, का उससे मिलान होना चाहिए जो वह करता/करती है। जब कार्यकर्ता में सेवार्थी के व्यवहार के प्रति नकारात्मक भावना होती है तो वह स्व–अनुशासन को अपना सकता है जिससे वह व्यावसायिक संबंध को क्षति अथवा सेवार्थी को हानि न पहुंचाए।

2. शाब्दिक संप्रेषण के कौशल

स्पष्ट और सचेत रूप से बोलने की क्षमता और जानकारी को प्रेषित करना अथवा कोई राय बनाना अत्यधिक आवश्यक है। सामान्यतः कोई सामाजिक कार्यकर्ता संप्रेषण के कौशलों की दो व्यापक श्रेणियों का अक्सर उपयोग करता है–

- जो परस्पर पारस्परिक सहायता को सुगम बनाने के लिए होती है।
- जो किसी संस्था के भीतर, संस्थाओं के बीच अथवा व्यावसायिकों के बीच जानकारी के आदान–प्रदान को सुगम बनाने के लिए होती है।

शेफोर एवं होरेजसी के अनुसार अच्छे संप्रेषण के निम्न आधार हैं–

- पृथ्वी पर प्रत्येक मनुष्य विशिष्ट है इसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति घटनाओं और परस्पर वैयक्तिक आदान–प्रदान को विशिष्ट तरीके से अनुभव करता है। अतः कार्यकर्ता को कुछ हद तक गलतफहमी का अनुमान करके गलत संप्रेषण की समस्याओं को कम करने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए।
- अपने विचारों को इस प्रकार संगठित करने की इच्छा और अपने संदेश को इस प्रकार प्रस्तुत करना जिससे अन्य के लिए उसे समझना और उसका अनुसरण करना आसान हो जाए।
- अन्य व्यक्ति की बातों को ध्यानपूर्वक सुनने की और अपने हस्तक्षेप को कम करने की क्षमता जिससे आप यह सुन और समझ सकें कि दूसरे लोग क्या कह रहे हैं।
- अपने वक्तव्यों और व्यवहार की जिम्मेदारी लेने की क्षमता।
- प्रभाव रूप से बातचीत के लिए आवश्यक समय को लेने की इच्छा/क्षमता।

किसी का संदेश सुनने अथवा ग्रहण करते समय कार्यकर्ता को कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

- बात करना बंद करें। आप यदि बातचीत करते रहेंगे तो दूसरा क्या कह रहा है उसे सुन नहीं पाएंगे।
- शब्दों के अलावा अशाब्दिक रूप से यह प्रदर्शित कीजिए कि आप सुनना चाहते हैं। अपने ध्यान को प्रदर्शित कीजिए। व्यक्ति को यह पता चलना चाहिए कि आप वह जो कहना चाह रहा/रही है उस पर ध्यान दे रहे हैं।
- नम्र रहिए और खराब व्यवहार के लिए क्षमा मांगिए। यदि व्यक्ति तेज आवाज में बोले अथवा अपशब्द कहे तो शांत रहने और कौशल से स्थिति से निबटने का

टिप्पणी

प्रयास करें। किसी नकारात्मक कथन का समझदारी भरे कथन से जवाब दें जब तक कि व्यक्ति का गुस्सा शांत न हो जाए। कभी–कभी कोई व्यक्ति ऐसी बातें भी कह सकता है जो आपको बहुत आहत करे अथवा ऐसी भाषा का प्रयोग जो आपके सम्मान को ठेस पहुंचाए अथवा ऐसे तरीके से बात कर सकता है जो आपको पसंद न हो। ऐसे समय में, यह याद रखना महत्वपूर्ण होता है कि उनका अभिप्राय आपको व्यक्तिगत रूप से आहत करना नहीं है।

- हस्तक्षेप न करें। संदेशवाहक की बात धैर्य से सुनें।
- यदि आवश्यक हो तो प्रश्न पूछें जिससे उसका संदेश स्पष्ट हो सके।
- संदेशवाहक को सहज रहने दें। संदेश प्राप्त करते समय ऐसी चीजों को हटा दें जिनसे आपका ध्यान बंटता हो।

संदेश भेजते समय याद रखें कि–

- स्पष्ट और सरल भाषा का उपयोग करें, उच्चारण साफ हो और बहुत जल्दी–जल्दी न बोलें।
- ग्रहणकर्ता को अत्यधिक सूचनाएं देकर अतिभारित न करें।
- उपयुक्त नेत्र संपर्क बनाए रखें और भावभंगिमाओं का उपयोग करें।
- आपकी बात को ठीक से समझ लिया गया है, इसको जानने के लिए पूछें, प्रश्न करें अथवा औरों से जानकारी प्राप्त करें।

3. अ–शाब्दिक संप्रेषण कौशल

चेहरे की भावभंगिमाओं, आंखों की गति, मुद्राओं और वाणी के गुण जैसे टोन, पिच और अनुनाद अ–शाब्दिक संप्रेषण के दायरे में आते हैं जो मुख्य रूप से आमने–सामने बातचीत का कारण होता है। अशाब्दिक व्यवहार को देखकर कार्यकर्ता को यह भी पता चल सकता है कि सेवार्थी जो कह रहा है क्या वह वास्तव में उसके विचारों और भावनाओं को प्रदर्शित कर रहा है।

नेत्र संपर्क

नेत्र संपर्क हमारी भावनात्मक स्थिति और तत्काल स्थिति को समझने की हमारी समझ और संवेदनशीलता के विषय में बहुत कुछ बता देता है।

अभिवादन की मुद्राएं

सामाजिक कार्यकर्ता को अभिवादन की मुद्राओं के उपयोग में सांस्कृतिक भिन्नताओं के लिए सचेत रहना चाहिए। उदाहरण के लिए, दृढ़ता से हाथ मिलाना एशिया और मध्य पूर्व के लोगों के लिए आक्रामकता को दिखाता है। जापान और थाईलैंड के लोगों के बीच, झुककर अभिवादन उपयुक्त होता है जबकि भारत में हाथ जोड़कर अभिवादन करना प्रचलित है।

शरीर की मुद्रा

यह अक्सर आपकी सोच और इच्छा को बताता है। सेवार्थी से 900 के कोण पर अभिमुख होना सुरक्षा और खुलेपन को प्रदर्शित करता है जबकि सीधे अभिमुख होना आक्रामकता को प्रदर्शित कर सकता है। सेवार्थी की ओर थोड़ा झुकना आपकी उसमें दिलचस्पी और स्वीकार्यता को प्रदर्शित करता है।

टिप्पणी

चेहरे के हावभाव और अन्य गतिविधियां

अक्सर चेहरे के हावभाव कार्यकर्ता के सेवार्थी के लिए असहमति को प्रदर्शित कर देते हैं, भले ही कार्यकर्ता अनिर्णायक/निष्पक्ष होने की कितनी भी कोशिश कर रहा हो। मुस्कराना, भवें तानना, थपथपाना और सिर हिलाना तथा होंठों का कम्पन हमारे विचारों और भावनाओं को बताता है। पैर पर पैर रखना, बांहों का वक्ष पर क्रॉस बनाते हुए मुड़ी होना और शरीर की दृढ़ता सामान्यतः बचाव की मुद्रा को दर्शाते हैं जबकि बाहें और हाथों का शरीर के पार्श्व में होना अथवा सीधी खड़ी मुद्रा अन्य के लिए खुलेपन को दर्शाती है।

वाणी का स्वर, पहनावा और प्रगटन

जोर से प्रबल आवाज में बोलना, आक्रामकता, नियंत्रण और ताकत को बताता है जबकि एकस्वरी अथवा सपाट वाणी दिलचस्पी के अभाव को प्रदर्शित करती है। इसी प्रकार, पहनावा भी अशाब्दिक संप्रेषण का एक महत्वपूर्ण रूप है। एक सामाजिक कार्यकर्ता को अपने कपड़ों और केशसज्जा के प्रति ध्यान देना चाहिए। उसे स्थिति के अनुसार वस्त्र पहनने चाहिए। उदाहरण के लिए, किशोर सेवार्थियों के लिए स्वीकार्य पहनावा वृद्धजनों के लिए आपत्तिजनक हो सकता है। कभी–कभी ऐसे मुद्दों पर मार्गदर्शन के लिए सुपरवाइजर से सलाह लेना सही रहता है।

4. सहायक कौशल

सहायक कौशल का अर्थ प्रेक्टिशनर द्वारा सेवार्थी को दिया जाने वाला संदेश है जिसका सेवार्थी की सोच, भावना और व्यवहार पर लाभदायक प्रभाव होता है। इन मौलिक कौशलों को शैफोर एवं होरेजसी द्वारा निम्नलिखित बिंदुओं में समझाया गया है–

तैयार होना : सेवार्थी के साथ मुलाकात से पहले कार्यकर्ता को यह कल्पना कर लेनी चाहिए कि सेवार्थी क्या सोच अथवा महसूस कर रहा है। ऐसे विचारों की कल्पना करने से कार्यकर्ता सेवार्थी की आरंभिक भावनाओं जैसे क्रोध, डर, संदेह आदि को संबोधित करने के लिए तैयार हो जाता है और सेवार्थी के साथ सहायक संबंध के लिए पहल के तरीकों की पहचान कर लेता है।

आरंभ करना : कार्यकर्ता को मिलने के उद्देश्य और कार्यकर्ता की भूमिका के विषय में परिवर्तन की प्रक्रिया के अंतर्ग्रहण और संलिप्तता की प्रावस्था के काल में और प्रत्येक सत्र के आरंभ में सेवार्थी को मिलने पर स्पष्ट कर देना चाहिए। सेवार्थी के साथ प्रत्येक सत्र की तीन अवधियां होती हैं–

1. आरंभ करना।
2. सत्र का मुख्य कार्य।
3. सत्र का समापन करना।

प्रश्न पूछना : सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछता है और अपनी भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने में सहायता करता है। वह मुक्त और गोपनीय प्रश्न पूछ सकता/सकती है। परामर्श सत्र के दौरान, कार्यकर्ता सामान्यतः खुले प्रश्न पूछता है। सामाजिक कार्यकर्ता को यह

याद रखना चाहिए कि सेवार्थी के व्यवहार और स्थिति के विषय में क्यों की बजाय ऐसे प्रश्न पूछे जो क्या, कहां, कब और कैसे पर केंद्रित हों।

ध्यानपूर्वक सुनना : ध्यानपूर्वक सुनने में कार्यकर्ता सेवार्थी के शाब्दिक और अशाब्दिक व्यवहार दोनों को देखता है और सेवार्थी के पास वापस आकर उसे यह बताता/बताती है कि उसकी बात को अच्छी तरह समझ लिया गया है। प्रोत्साहन, स्पष्टीकरण, पराकथन, परिलक्षण संक्षेपीकरण और शांति बनाए रखना ध्यानपूर्वक सुनने के कुछ कौशल हैं।

प्रोत्साहक का अर्थ एकल शब्दों, छोटे वाक्यों और अशाब्दिक भावभंगिमाओं से है जो सेवार्थी को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए प्रोत्साहित करती है। पराकथन नामक कौशल का अर्थ सेवार्थी के कथन के शाब्दिक अर्थ को दोहराना है जबकि परिलक्षण नामक कौशल संदेश के भावनात्मक घटक की अभिव्यक्ति है। संपेक्षीकरण के कौशल का अर्थ अनेक संदेशों की विषयवस्तु और प्रभावी घटकों को एक साथ लाना और सेवार्थी की चुप्पी का पता लगाने का अर्थ नम्रतापूर्वक उसके चुप रहने का कारण पता करना है। उदाहरण के लिए, यदि सेवार्थी कुछ सोचते हुए चुप बैठा है तो कार्यकर्ता यह कहते हुए चुप्पी तोड़ सकता है आप किसी कारण से परेशान लग रहे हैं। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि आप क्या सोच रहे हैं? यदि चुप्पी काफी लंबी हो तो कार्यकर्ता को चुप्पी तोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

इस संदर्भ में याद रखे जाने वाले महत्वपूर्ण कौशल निम्न हैं–

- समझने के कौशल के प्रदर्शन का अर्थ ऐसे शाब्दिक और अशाब्दिक संप्रेषण से है जो यह प्रदर्शित करने के लिए होता है कि सामाजिक कार्यकर्ता ने उसकी बात समझ ली है और वह सेवार्थी के विचारों और भावनाओं को समझ सकता है।
- सेवार्थी की भावनाओं को शब्दों में व्यक्त करने के कौशल का अर्थ सेवार्थी जो महसूस कर रहा है लेकिन उन्हें शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा है, उसे समझाना है।
- अपने बारे में बताने का अभिप्राय कार्यकर्ता के ऐसे कथनों से है जो उसके कुछ निजी विचारों, भावनाओं अथवा जीवन के अनुभवों को बताते हैं। सामान्य नियम के अनुसार सामाजिक कार्यकर्ता को संबंध बनाने की आरंभिक अवस्थाओं में अपने बारे में बताने से बचना चाहिए और उन्हें बाद में कभी बताना चाहिए।
- सेवार्थी के साथ व्यवहार करते समय सेवार्थी को प्रेरित करना अथवा उसे बनाए रखना बहुत महत्वपूर्ण होता है जिसे उसके वर्तमान व्यवहार अथवा स्थिति में परिवर्तन किया जा सके।

परिवर्तन की प्रक्रिया में जो कौशल सम्मिलित हैं उनमें हैं–

खंडों में विभाजित करने का कौशल : इसका अर्थ है कि किसी अनसुलझी समस्या को छोटे और प्रबंधकीय भागों में खंडित करना।

पथ पर बने रहने का कौशल : इसका अर्थ सेवार्थी के ध्यान को विशिष्ट सरोकार पर केंद्रित रखना है। इसके अतिरिक्त, संप्रेषण लिंक निर्मित करने का कौशल जिसमें कार्यकर्ता सेवार्थी और उस व्यक्ति के बीच संबंध स्थापित करता है जिसके साथ वह

बात करना चाहता है। सेवार्थी के परिवर्तन से बचने की चुनौती का कौशल जो सेवार्थी के प्रतिरोध को बताता है, और प्रगति की राह में भावनात्मक अवरोधों की पहचान करने का कौशल कार्यकर्ता द्वारा उपयोग किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण कौशल हैं।

5. मैं के कथन

मैं के कथन स्पष्ट, सीधा संदेश भेजने को संभव बनाते हैं और इस संभावना को कम करते हैं कि संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति बचाव की मुद्रा में न आए। यह विरोधी स्थितियों में काफी उपयोगी होता है क्योंकि यह प्रेषक द्वारा नाराजगी, क्रोध अथवा अवसाद की अभिव्यक्ति को संभव बनाता है और बातचीत के व्यर्थ विवाद में बदलने की संभावना को कम करता है। अधिकतर हम संदेश को ऐसे कथनों के साथ भेजते हैं, "आपको अपने कपड़े धो लेने चाहिए", "आपको कठिन परिश्रम करना चाहिए" अथवा आदेश देते हैं जैसे "बेहतर होगा कि आप इस विचार को भूल जाएं और मेरी सलाह को अपनाएं" और सबसे अधिक गलत तरीका है, यदि ऐसा नहीं किया तो धमकी यानी "यदि आप मेरा अनुसरण नहीं करेंगे... तो मैं ... "प्रेषक का विचार भले ही दूसरे व्यक्ति के मुख्य व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना हो, लेकिन इससे अक्सर परिवर्तन के लिए प्रतिरोध बढ़ जाता है। आपके कथन के उपयोग की बजाय कार्यकर्ता को मैं के कथन का उपयोग करना चाहिए, जो आरोप नहीं लगाता है। उदाहरण के लिए "मैं ऐसा महसूस करता हूं", "मुझे आप पर भरोसा है", "कृपया आप ये निर्णय लें कि इस मामले में क्या कार्यवाई की जाए" आदि।

6. भावनाओं और उद्‌गारों को समझना और बचाव के संप्रेषण के लिए प्रतिक्रिया करना

सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न प्रकार की समस्याओं वाले भिन्न विद्यार्थियों से मिलता है। उसमें मानव भावनाओं और उद्‌गारों को यथार्थ रूप से पढ़ने और समझने की क्षमता होनी चाहिए। सेवार्थी के साथ व्यवहार करते समय, कार्यकर्ता को कोई ऐसा सेवार्थी मिल सकता है जो बहुत भ्रमित, डरा हुआ अथवा अपनी भावनाओं से अभिभूत हो। कभी–कभी यह भी होता है कि सेवार्थी अपनी भावनाओं को सही तरीके से अभिव्यक्त नहीं कर पाता है। इसलिए कार्यकर्ता को भावनाओं की प्रकृति को इस प्रकार बताना चाहिए कि सेवार्थी उन्हें समझ सकें और ऐसे तरीके जो सेवार्थी की यह सीखने में मदद करें कि परेशान करने वाली भावनाओं, उद्‌गारों पर कैसे बेहतर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

कभी–कभी सेवार्थी सामाजिक कार्यकर्ता से दूरी बनाने अथवा उससे बचने या कम से कम बातचीत करने के लिए अनेक बचाव के तरीकों का उपयोग करता है, क्योंकि वह गुस्से में, घबराया हुआ अथवा डरा हुआ महसूस करता है अथवा उसे कार्यकर्ता का व्यवहार या शैली अच्छी नहीं लगती है। सेवार्थी द्वारा उपयोग किए जाने वाले बचाव के तरीकों में सम्मिलित हैं, मना करना, उकसाना, आरोप लगाना चिन्हित करना, बचना, असहायता संकट अथवा विपणन का उपयोग अथवा कमजोर पड़ जाना/टूट जाना। एक सामाजिक कार्यकर्ता निम्नलिखित दिशा–निर्देशों को अपनाकर सेवार्थी की प्रतिरक्षात्मकता को कम कर सकता है–

(i) कार्यकर्ता को यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि सेवार्थी के अंर्तनिहित डर क्या हैं? वह किस कारण डरा हुआ महसूस कर रहा है और उस कारण को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। एक सक्रिय श्रोता बनें जिससे सेवार्थी अपनी भावनाओं को आसानी से व्यक्त कर सके।

टिप्पणी

(ii) कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी के रक्षात्मक व्यवहार के लिए सहनशील होना चाहिए क्योंकि उसके वर्तमान व्यवहार के पीछे कोई पूर्व इतिहास संबद्ध हो सकता है जैसे माता–पिता द्वारा तिरस्कार, व्यक्ति के परिवार का विघटन, प्रियजनों से बिछोह अथवा कोई प्रमुख व्यक्तिगत समस्या, पारिवारिक हिंसा अथवा कोई ऐसी बीमारी जिससे जान का खतरा हो।

(iii) कार्यकर्ता को ऐसे सेवार्थी के साथ छाया तकनीकों का उपयोग करना चाहिए। उसे सेवार्थी के अनुसार और उस तरीके से बात करनी चाहिए जो उसके अशाब्दिक व्यवहार के अनुरूप हो।

(iv) कार्यकर्ता को ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए जो सेवार्थी के सूचना ग्रहण करने के प्रभावी तरीके से मिलते हों, जो दृश्य, श्रव्य और शाब्दिक हैं। उदाहरण के लिए, "क्या मैं जो सुझाव दे रहा हूं उसकी आपके पास स्पष्ट तस्वीर है?" (दृश्य)। "क्या यह योजना आपके लिए ठीक है?" (श्रव्य) अथवा "मेरे ख्याल से जो योजना आपने सुझाई वह ऐसी है जिसे हम दोनों समझ सकते हैं" (स्पर्श)। सेवार्थी को विकल्प चुनने का अवसर देना चाहिए और उसके जीवन में क्या हो रहा है उस पर उसका नियंत्रण रहना चाहिए। एक कार्यकर्ता सदैव हम, एक साथ, हम सब आदि शब्दों का उपयोग सेवार्थी के साथ करता है।

(v) अपने सेवार्थी को चिन्हित अथवा श्रेणीकृत मत कीजिए। अपने कार्यालय और अपनी स्थिति को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि सेवार्थी स्वयं को फंसा हुआ न महसूस करे।

(vi) कुछ स्थितियों में जहां प्रतिरोधी सेवार्थी के साथ संलिप्तता अति आवश्यक हो जैसे बाल गृहों में कार्यकर्ता को दृढ़ निर्णायक होना चाहिए और मुद्दे से सीधे निबटना चाहिए। यदि आपका सेवार्थी अपमानजनक भाषा का उपयोग करता है तो आपको आक्रामक नहीं होना चाहिए, बल्कि शांत रहना चाहिए और इस प्रकार प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए जिससे उसका व्यवहार और उग्र हो।

7. व्यावसायिक व्यवहार के घटक और नैतिक निर्णय लेना

सामाजिक कार्यकर्ता के लिए अपने प्रदर्शन की निरंतर जांच करते रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिससे यह पता चल सके कि उसका व्यवहार व्यावसायिक प्रकृति का है अथवा नहीं। कार्यकर्ता का निम्नलिखित व्यावसायिक व्यवहार हो सकता है–

1. एक सामाजिक कार्यकर्ता को अपने व्यावसायिक मूल्यों और कार्यों के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। उसका व्यवहार औपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण की प्रक्रिया पर आधारित ज्ञान और तथ्यों, विश्लेषण और गहन विमर्श/सोच पर आधारित निर्णयों के आधार पर होता है।
2. वह नैतिक मुद्दों की पहचान करने और उनके समाधान के लिए व्यावसायिक मूल्यों, सिद्धांतों और नैतिक आचार संहिता का उपयोग करता/करती है। वह अपने ज्ञान और कौशलों को निरंतर अद्यतन करता रहता है जिससे सेवार्थी के लिए सेवाएं बेहतर हो सकें और निर्णयों और कार्यों का यथार्थ और पूर्ण रिकार्ड रहे।

टिप्पणी

3. कार्य संबंधित संबंधों में उसका प्रमुख सरोकार अपनी निजी आवश्यकताओं को पूरा करने की बजाय सेवार्थी की जरूरतों को पूरा करना और कल्याण होना चाहिए। वह सेवार्थी के साथ उद्देश्यपूर्ण और लक्ष्य आधारित संबंध विकसित करता है।
4. एक सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या, उसके अवसाद और क्रोध के मूल कारण को समझने का प्रयास करता है। लेकिन उसकी नकारात्मक भावनाओं को व्यक्तिगत रूप से नहीं लेना चाहिए। वह अपनी भावनाओं को नियंत्रण में रखता/रखती है और आत्म–अनुशासन को अपनाता/अपनाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक कार्यकर्ता नैतिक मुद्दों को स्पष्ट करता है और ऐसे प्रैक्टिस विकल्प बनाता है जो सामाजिक कार्य के नैतिक सिद्धांतों और व्यावसायिक मूल्यों के अनुरूप होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. गलत कथन पहचानिए–
   (क) मानवीय पीड़ा वांछनीय है
   (ख) जन्म के समय मनुष्य असामाजिक होता है
   (ग) सीखने में अनुभव आवश्यक है
   (घ) मानव व्यवहार जैविकीय अवयव का परिणाम है
4. समाज कार्य में वे सभी ऐच्छिक प्रयास शामिल हैं जिनका संबंध सामाजिक संबंधों से है और जो वैज्ञानिक ज्ञान व वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं।''– यह परिभाषा किसकी है?
   (क) फिंक (ख) सुशील चंद्र
   (ग) एलिस चेनी (घ) कोनोपका

4.4 समाज कार्य के प्रकार्य

समाज कार्य के अंतर्गत व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने का दायित्व ग्रहण किया जाता है। समाज कार्यकर्ता, समाज कार्य व्यवसाय के अंतर्निहित ज्ञान एवं कुशलताओं के आधार पर सामाजिक समस्याओं का बहुआयामी समाधान करता है। जिसमें मनोसामाजिक एवं मनोशारीरिक समस्याओं के समाधान के साथ–साथ सामाजिक विकास की आवश्यकताओं की भी पूर्ति की जाती है।

समाज कार्य एक सहायतामूलक व्यावसायिक सेवा है। इसका संबंध ऐसे व्यक्तियों की सहायता करने से है जिनहें सहायता की आवश्यकता है। जिससे वे अपनी समस्याओं का हल स्वयं कर सकें एवं स्वयं सक्षम बन सकें। समाज कार्य मानव समाज से संबंधित है और वह समाज की समस्याओं के समाधान को कम करने का प्रयास करता है। समाज कार्य मानव समाज की समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न सामाजिक एवं व्यावहारिक विज्ञानों से ज्ञान, सिद्धांत एवं कुशलताओं को ग्रहण करता है एवं उनका उपयोग अपने सेवार्थियों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निदान एवं

समाधान में करता है। समाज कार्य की विषयवस्तु समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, जीव विज्ञान, मनोरोग विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान सभी से ली गई है। ये सभी विद्या उपागम मानव व्यवहार एवं मनोविज्ञान को समझने में सहायक हैं।

टिप्पणी

इस प्रकार सामाजिक कार्यकर्ता, समाज कार्य व्यवसाय में अन्तर्निहित ज्ञान एवं कुशलताओं के आधार पर सामाजिक समस्याओं का बहुआयामी समाधान करता है। प्रमुख रूप से समाज कार्य के द्वारा चार क्षेत्रों में सेवाएं प्रदान की जाती हैं जिनके अपने विशिष्ट सामाजिक स्रोत भी हैं जैसे शारीरिक संबंधी समस्याओं के लिए उपचारात्मक प्रकार्य, सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र की समस्याओं के लिए सुधारात्मक प्रकार्य, मनोवैज्ञानिक समस्याओं के क्षेत्र में पुर्नवासन से संबंधित सेवाएं तथा विकासात्मक क्षेत्र में कार्य करने के लिए निरोधात्मक सेवाएं प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार से इन सभी क्षेत्रों को समाज कार्य के प्रमुख प्रकार्य के रूप में देखा जा सकता है–

1. **सुधारात्मक प्रकार्य** : समाज कार्य व्यवसाय में व्यक्ति और उसके पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले संबंधों पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। यदि व्यक्ति का अपने पर्यावरण के साथ अन्तःक्रियात्मक संबंध ठीक है तो वह समायोजन का अनुभव करेगा अन्यथा उसे अपनी सामाजिक भूमिकाओं के निर्वाह में समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए समाज कार्य के द्वारा विचलनपूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार में आवश्यक सुधार लाकर उनकी अन्तःक्रिया करने की क्षमता में वृद्धि की जाती है और उन्हें समाज के अनुसार व्यवहार करने के लायक बनाया जाता है।

   समाज कार्य के द्वारा सुधारात्मक कार्य प्रमुखतः अपराधी सुधार संस्थाओं में किया जाता है जहां पर वैयक्तिक सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा मुख्य रूप से सेवाएं प्रदान की जाती हैं। यहां पर कार्यकर्ता का दायित्व संवासियों में संतोषजनक समायोजन उत्पन्न करने के साथ–साथ उन्हें पुनर्वास के लिए तैयार करना भी है।

   वस्तुतः सुधार वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आधुनिक समाज कानून तोड़ने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने तथा उनकी जीवन–शैली को सामाजिक नियमों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है। सुधारात्मक समाज कार्य के अंतर्गत व्यक्ति के विचलित व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसी सहायक प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन लाने का कार्य किया जाता है जो उसके व्यक्तिगत समायोजन में सहायक सिद्ध होता हो। इसके माध्यम से अपराधी व्यक्ति के पर्यावरण एवं परिस्थितियों में परिवर्तन तथा संशोधन द्वारा तथा अनेक प्रकार के निरोधात्मक एवं सुधारात्मक साधनों की उपलब्ध करवाकर उनमें परिवर्तन लाते हैं। सुधारात्मक समाज कार्य उन व्यक्तियों को सामाजिक आचरणों के पालन करने में सहायता देता है जो विचलनपूर्ण व्यवहार करने लगते हैं। इसमें सामाजिक कार्यकर्ता अन्य सुधार कार्यकर्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों के साथ मिलकर कार्य करता है। कार्यकर्ता के द्वारा विचलनपूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के बारे में जांच–पड़ताल करके उनके सामाजिक–आर्थिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में ऐसी जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है जिससे अपराधी सुधार संस्थाओं के अधिकारी किसी सुधारवादी निर्णय को ले सकें।

टिप्पणी

2. **निरोधात्मक प्रकार्य** : निरोधात्मक प्रकार्य से आशय उन परिस्थितियों का निषेध करना है जो व्यक्ति के जीवन में सामाजिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न करती हैं या कर सकती हैं। निरोधात्मक प्रकार्यों के अंतर्गत सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामुदायिक जीवन में हस्तक्षेप करके उन्हें ऐसी परिस्थितियों के प्रति सावधान एवं जागरूक किया जाता है जो उनके जीवन में विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न करती हैं या कर सकती हैं। इसलिए सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा समुदायों में निरोधात्मक सेवाओं का संचालन किया जाता है जैसे लोगों को स्वास्थ्य रक्षा हेतु साफ–सफाई एवं स्वच्छता की जानकारी देना, टीकाकरण कार्यक्रमों को समुदाय में लागू करवाना, शिशु स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रमों का लाभ दिलवाना आदि।
3. **विकासात्मक प्रकार्य** : विकासात्मक प्रकार्यों के अंतर्गत सामाजिक कार्यकर्ता समुदायों के लिए विकास संबंधी कार्यक्रमों को बनाने में उनकी मदद करते हैं। वे समुदाय को अपनी विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों की व्यवस्था करने और आवश्यकता एवं संसाधनों में उचित सामंजस्य स्थापित करने में मदद करते हैं। इन प्रकार्यों में प्रमुखतः विकास एवं रोजगार से संबंधित कार्यक्रमों का निर्माण करना एवं उनका संचालन करना सामेकित है जैसे युवाओं व महिलाओं के लिए रोजगारपरक व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का आयोजन करना, समुदाय आधारित पेयजल कार्यक्रम बनाना, ऊर्जा के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संबंधी कार्य आदि। सामाजिक कार्यकर्ता विकासात्मक कार्यक्रमों के निर्माण में भी विभिन्न संगठनों के लिए सलाहकारी सेवाएं प्रदान करते हैं एवं उनके अंतर्गत विभिन्न पदों पर कार्य भी करते हैं जैसे योजना आयोग आदि।
4. **उपचारात्मक प्रकार्य** : इन कार्यों के अंतर्गत समस्या की प्रकृति के अनुसार चिकित्सीय सेवाओं, स्वास्थ्य सेवाओं, मनोचिकित्सकीय एवं मानसिक आरोग्य से संबंधित सेवाओं, अपंग एवं निरोग व्यक्तियों के लिए सेवाओं तथा पुनरस्थापना संबंधी सेवाओं को सम्मिलित किया जा सकता है, जैसे चिकित्सा संबंधी कल्याणकारी कार्य तथा विद्यालय संबंधित समाज कार्य आदि।
5. **चिकित्सा संबंधी कल्याण कार्य** : बहुधा शारीरिक और मानसिक रोगों के कारणों में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारण भी सम्मिलित होते हैं। रोग के कारण भी अनेक समायोजन संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं और व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं का संपादन संतोषजनक रूप से नहीं कर पाता। फिर चिकित्सालय में भी उसके समायोजन की समस्या होती है। समाज कार्यकर्ता इन समस्याओं को सुलझाने के लिए मुख्य रूप से वैयक्तिक कार्य प्रणाली का प्रयोग करता है।
6. **विद्यालय संबंधी समाज कार्य** : इस क्षेत्र में विद्यार्थियों की विद्यालयों में समायोजन संबंधी समस्याएं आती हैं भगोड़ापन एवं बाल अपराध की समस्याएं इस क्षेत्र से संबंधित हैं। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए वैयक्तिक सेवा कार्य एवं सामूहिक सेवा कार्य का प्रयोग होता है।

7. **पिछड़ी जाति एवं आदिम जाति कल्याण संबंधी कार्य** : भारत में अनेक पिछड़ी और आदिम जातियां रहती हैं और इनमें से अधिकतर अविकसित हैं। इनकी समस्याओं को सुलझाने के लिए समाज कार्य अपनी तीनों प्रमुख प्रणालियों का प्रयोग करता है।

4.4.1 सामाजिक कार्य के प्रकार्यों की कल्याणकारी पृष्ठभूमि

शिशु कल्याण : इस क्षेत्र में अनाथ, निराश्रित और बाल अपराधी बच्चों की समस्याएं आती हैं। अनाथ या निराश्रित बच्चों के लिए या तो किसी संस्था का प्रबंध करना होता है या फिर उनके लिए दत्तक ग्रहण या प्रतिपोषक सेवा की सुविधाएं उपलब्ध की जाती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों और उनके संरक्षकों की योग्यताओं और प्रेरणाओं का अध्ययन करता है और अपने ज्ञान और निपुणताओं का प्रयोग समस्या के समाधान के लिए करता है मुख्य रूप से इस क्षेत्र में वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग होता है।

युवा कल्याण : इस क्षेत्र में युवाओं के मनोरंजन एवं उनके समायोजन संबंधी समस्याएं आती हैं। युवाओं की शक्तियों का रचनात्मक प्रकटन उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यावश्यक है। इसके लिए मुख्य रूप से सामाजिक सामूहिक कार्य का प्रयोग किया जाता है और युवाओं को ऐसी सुविधाएं उपलब्ध की जाती हैं जिनसे उन्हें सामूहिक जीवन में रचनात्मक रूप से आत्म प्रकटन का अवसर मिल सके।

महिला कल्याण : जैसा कि हम जानते हैं हमारे देश में स्त्रियों की दशा अभी तक संतोषजनक नहीं है। बहुधा उनका आर्थिक एवं सामाजिक रूप से शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक परिस्थितियों में पति या पिता की मृत्यु के कारण वे अभावग्रस्त तथा बेसहारा हो जाति हैं। इन सब समस्याओं को सुलझाने के लिए अनेक संस्थाएं समाज कार्य सेवाओं का प्रयोग करती हैं। महिलाओं के पुनर्वास के लिए आवश्यक है कि उनका समायोजन संतोषजनक हो। इस क्षेत्र में वैयक्तिक समाज कार्य और सामूहिक समाज कार्य दोनों ही प्रणालियों का प्रयोग होता है।

वृद्धावस्था कल्याण : वृद्धावस्था में मनुष्य को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारत में तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण और नगरीकरण की गति के कारण संयुक्त परिवार की परम्परा टूटती जा रही है और इससे वृद्ध व्यक्तियों की समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए मुख्य रूप से वैयक्तिक समाज कार्य और सामूहिक समाज कार्य का प्रयोग किया जाता है।

परिवार कल्याण : समाज कार्य में परिवार रूपी संस्था को बहुत महत्व दिया जाता है। परिवार एक ऐसी संस्था है जो मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। प्राचीन काल में परिवार एक ऐसी संस्था थी जिसे कल्याणकारी कार्यों का मुख्य साधन कहा जा सकता था। अब यह संस्था स्वयं कल्याण की प्रत्याशी होती जा रही है। अर्थात वर्तमान समय में परिवार रूपी संस्था अपने सदस्यों के कल्याण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति में जब असफल होती है, तो इसके लिए उसे समाज की अन्य संस्थाओं का सहारा लेना पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह एक चिकित्सक से एक रोगी बनने की दिशा में बढ़ रही है। बहुधा सामाजिक परिस्थिति के परिवर्तन के कारण परिवार के सामाजिक संबंधों में प्रतिकूलता आ जाती है और परिवार के सदस्यों में

टिप्पणी

समायोजन का अभाव उत्पन्न हो जाता है। समायोजन की समस्या पति–पत्नी या माता–पिता और संतान या भाई–बहन या परिवार के अन्य सदस्यों के बीच उत्पन्न हो सकती है। इस क्षेत्र में भी समाज कार्य प्रमुख रूप से वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग करता है।

श्रम कल्याण : इस क्षेत्र में श्रमिकों की समायोजन संबंधी समस्याएं आती हैं बहुधा वैयक्तिक असंतुलन के कारण श्रमिक कारखानों में समायोजन प्राप्त नहीं कर पाते और इस कारण संघर्ष और तनाव उत्पन्न होता है। श्रमिकों की वैयक्तिक समायोजन संबंधी समस्याओं को सुलझाने के लिए बहुधा वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता है परंतु सामूहिक सेवा कार्य का भी विस्तृत प्रयोग होता है।

ग्रामीण कल्याण : इनमें विशेष प्रकार से ग्रामीण साधनों के विकास और ग्रामीण व्यक्तियों को संगठित करने का प्रयास किया जाता है। समाज कार्य इसमें मुख्य रूप से सामुदायिक संगठन प्रणाली का प्रयोग करता है।

शोधन कार्य : इसका संबंध अपराधियों एवं बाल अपराधियों के सुधार या चिकित्सा से है। इस क्षेत्र में प्रमुख प्रणाली तो वैयक्तिक समाज कार्य है परंतु सामूहिक समाज कार्य एवं सामुदायिक संगठन का भी पर्याप्त प्रयोग किया जाता है।

समाज कार्य का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। उनमें से कुछ अन्य इस प्रकार हैं–

1. **बाल विकास :** 1974 में घोषित राष्ट्रीय बाल नीति में इस बात की घोषणा की गयी कि बच्चे राष्ट्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संपत्ति हैं। इनका पालन–पोषण एवं देखरेख हमारा उत्तरदायित्व है। इस नीति के अधीन बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए सरकार के विभिन्न विभागों एवं स्वयंसेवी संगठनों द्वारा विविध प्रकार के कार्यक्रम चलाये गये हैं। इस कार्यक्रम में मातृ एवं शिशु कल्याण, सेवाओं, पुष्टाहार सेवाओं, पूर्व माध्यमिक शिक्षा, विद्यालय समाज कार्य मुख्य हैं। बाल कल्याण के क्षेत्र में मानव संसाधन मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा समेकित बाल विकास सेवायोजना, पूरक पोषाहार की व्यवस्था उपचार, 3–5 वर्ष के बच्चों के लिए बालबाड़ी, 3–6 वर्ष के बच्चों के लिए प्राथमिक बाल्यावस्था, शिक्षा हेतु स्वैच्छिक संगठनों की सहायता की योजना चलाई गयी है। 1986 में बच्चों को खिलौना बैंक द्वारा आंगनबाड़ियों में खिलौनों का वितरण किया गया।
2. **महिला सशक्तिकरण** : संपूर्ण भारत में महिलाओं की संख्या 49 प्रतिशत है। 78 महिलाएं गांवों में रहती हैं। 75.18 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं। महिलाओं के विकास हेतु भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास द्वारा कार्यक्रम जैसे श्रमजीवी महिलाओं के लिए छात्रावासों, कमजोर महिलाओं को प्रशिक्षण, रोजगार की व्यवस्था, पुनर्वास की व्यवस्था, आवास गृह, अपराधों को रोकने के लिए भी अनेक कार्यक्रम चलाए गए। भारत सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं को आरक्षण, विशेष स्कूल कॉलेजों की व्यवस्था, महिला समाख्या कार्यक्रम जिसमें 10 जिलों में 2000 गांवों में महिला कार्यक्रम की स्थापना की गई और इनमें प्रतिपूर्ति की व्यवस्था की गयी। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग ने राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम चलाये जिनमें महिलाओं के लिए गर्भ समापन, लेप्रोस्कोपी, शिशु जन्म से पूर्व, जन्म के समय व जन्म के पश्चात शिशु व माँ के

टिप्पणी

लिए अनेक चिकित्सकीय सेवाओं का प्रावधान किया गया। केन्द्रीय कल्याण बोर्ड द्वारा भी महिलाओं के कल्याण के लिए शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षित, अवकाश, शिविर, महिला मण्डल, शिशु गृह कार्यक्रम प्रशिक्षित कल्याण विस्तार योजना, छात्रावास आदि अनेक कार्यक्रम चलाए गए।

3. **विद्यालय समाज कार्य** : विद्यालय समाज कार्य, समाज कार्य का वह क्षेत्र है जो विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले समस्याग्रस्त छात्रों एवं शिक्षकों और छात्रों के अभिभावकों की सहायता करता है। इसका उद्देश्य समस्याग्रस्त छात्रों की समस्याओं का समाधान करने हेतु आवश्यक सहायता प्रदान करने हेतु आवश्यक सहायता प्रदान करते हुए विद्यालय में उनका सामंजस्य स्थापित करना है।

4. **युवा कल्याण** : युवकों के कल्याण के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय युवा नीति की घोषणा 1989 में की जिसका उद्देश्य युवकों में निहित सिद्धांतों एवं मूल्यों की जागरूकता एवं सम्मान पैदा करना, राष्ट्रीय एकीकरक, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद के प्रति वचनबद्धता, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के प्रति चेतना, पर्यावरण संरक्षण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि है। युवकों को खेल–कूद के लिए नेताजी सुभाष राष्ट्रीय खेल संस्थान, अखिल भारतीय ग्रामीण खेल प्रतियोगिता और स्कूल व कॉलेजों में विभिन्न प्रकार के प्रतियोगी खेल, युवा प्रतिनिधि मण्डल, युवा सम्मेलन आदि का विकास किया गया।

5. **वृद्धि का कल्याण** : वर्तमान समय में आधुनिकरण, नगरीकरण आदि के कारण वृद्धि की समस्याएं शारीरिक, मानसिक सामाजिक तथा नैतिक सभी स्तरों पर गंभीर है। सरकार के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रावीडेन्ट फण्डों, पेंशन, ग्रेच्युटी, बीमा योजनाओं इत्यादि के माध्यम से सेवानिवृत्त हुए कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ स्व–सेवायोजित व्यक्तियों को वृद्धावस्था में सुरक्षा का अनुभव कराने हेतु जीवन बीमा, समाज कल्याण सेवा, स्वयं सेवी संस्था द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाये जाते हैं।

6. **श्रम कल्याण** : भारत सरकार ने श्रम कल्याण को प्रोत्साहित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 19(5), 23, 24, 39(क), 39(ग), 39(घ), 39(50), 41, 42, 43 तथा 43(क) के अंतर्गत किये गये प्रावधानों के अतिरिक्त निम्नलिखित कानूनों में विशिष्ट प्रावधान किये हैं। अभ्रक खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1946, कोयला खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1949, श्रमिक कल्याण कोष अधिनियम, 1976, लौह खनिज, मैंगनीज खनिज तथा खनिज श्रम कल्याण अधिनियम 1951, मोटर परिवहन श्रमिक अधिनियम 1961 आदि संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों के अतिरिक्त भारत सरकार ने विभिन्न राज्य सरकारों, मालिकों, श्रमिक संघों तथा अन्य समाज कल्याण संबंधी कार्यक्रम आयोजित किये। इनके अधीन कार्यस्थल पर समुचित स्वास्थ्य एवं कार्य की परिस्थितियों को सुनिश्चित करने के साथ–साथ उनकी बस्तियों में साफ–सफाई की व्यवस्था की गई।

7. **बाधितों का कल्याण** : भारत सरकार ने विभिन्न प्रकार के बाधितों के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चलाए। दृष्टि से बाधितों के लिए राष्ट्रीय संस्थान देहरादून, मानसिक बाधितों के लिए राष्ट्रीय संस्थान सिकन्दराबाद, अलीयावर जंग

टिप्पणी

श्रवण बाधितों के लिए राष्ट्रीय संस्थान कलकत्ता में खोला गया। अपने से संबंधित क्षेत्रों में विकलांगों के लिए शिक्षा, जनशक्ति का विकास, व्यावसायिक मार्गदर्शन, परामर्श, अनुसंधान, सेवा के उपयुक्त मॉडलों का विकास किया। बाधितों के लिए जन संस्थान दिल्ली में खोला गया। यहां पर फिजियोथिरैपी, प्रास्थेटिक व आर्थोटिक डिप्लोमा चलाये जाते हैं। इसके अलावा सरकार बाधितों को कृत्रिम उपकरण जैसे– हाथ, पैर, सुनने की मशीनें, साइकिल आदि सहायता देती है। इस क्षेत्र में अनेक नए–नए आविष्कार किए जा रहे हैं।

8. **अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण** : भारत सरकार संविधान के प्रावधान के अनुसार अनुसूचित जाति को 21% और जनजाति को 2% आरक्षण की व्यवस्था दी गई जिससे उनको हर क्षेत्रों में आगे बढ़ने का मौका दिया जा रहा है। इनके लिए सस्ते दर की शिक्षा, छात्रावासों, छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई।
9. **चिकित्सकीय एवं मनः चिकित्सकीय समाज कार्य** : शारीरिक बीमारियों से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए चिकित्सकीय समाज कार्य तथा मानसिक बीमारियों के शिकार व्यक्तियों के साथ चिकित्सकीय समाज कार्य किया जाता है। कार्यकर्ता रोग से ग्रसित व्यक्तियों के सभी पक्षों का मूल्यांकन करता है और विभिन्न क्षेत्रों से जानकारी प्राप्त करके ही समस्या का समाधान करता है और आवश्यकता अनुसार उपचार का परामर्श देता है।
10. **ग्राम्य विकास** : ग्रामों के विकास के लिए समेकित ग्राम्य विकास कार्यक्रम तथा इसकी उपयोजनाओं के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों के विकास की योजना तथा रोजगार हेतु ग्रामीण युवकों का प्रशिक्षण, जवाहर रोजगार योजना, ग्रामीण जल आपूर्ति, सफाई, स्वास्थ्य, खेती आदि से संबंधित अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।
11. **सामाजिक प्रतिरक्षा अपराधी सुधार** : सरकार ने आपराधिक कार्य को रोकने के लिए अनेक ठोस कदम उठाये हैं, जैसे बाल अपराध, अपेक्षित किशोरों, वृद्धों, अनैक्षिक व्यापार में लगी महिलाओं और लड़कियों, मद्यपान, शिक्षा आदि के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, ताकि अनेक प्रकार के अपराधों को रोका जा सके।
12. **सामाजिक सुरक्षा** : सामाजिक सुरक्षा से अभिप्राय समाज द्वारा कुछ विशिष्ट योजनाओं एवं कार्यक्रमों को चलाते हुए ऐसी विभिन्न प्रकार की आकस्मिकताओं के शिकार व्यक्तियों को अनेक अधिकार के रूप में संरक्षण प्रदान करना है, जो कार्य करने वाले व्यक्तियों के कार्य करने की क्षमता को छति पहुंचाती है। इसमें सामाजिक बीमा, जन सहायता व जन सेवा प्रमुख हैं। सरकार ने अनेक प्रकार के सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम चलाए श्रमिकों के लिए कर्मकार आपूर्ति योजना, कर्मचारी राज्य बीमा योजना, कर्मचारी प्रावीडेन्ट फण्ड योजना, पारिवारिक पेन्शन, जीवन बीमा योजना, ग्रेच्युटी नौकरी, फसल बीमा योजना आदि अनेक क्षेत्रों में चलाए गये।

4.4.2 समाज कार्य के नये एवं उभरते क्षेत्र

टिप्पणी

(अ) युवा कल्याण (Youth Welfare)

युवा से आशय बचपन और किशोरावस्था की संक्रमण की अवस्था से बाद की अवस्था से है। जिसमें महत्वपूर्ण ढंग से मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति का न केवल पूर्ण सांवेगिक विकास होता है, अपितु उसे अपनी भूमिकाओं को पूर्ण रूप से निर्वाह करने का प्रशिक्षण भी प्राप्त होता है। इस अवस्था में व्यक्ति विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रशिक्षणों को प्राप्त करता है बल्कि वयस्कता की स्थिति में स्वायत्त ढंग से बहुत सी नवीन प्रस्थितियों को प्राप्त करता है। युवा अवस्था में व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति के अनुरूप भूमिकाओं का निर्वाह करना सीखता है। युवा के रूप में व्यक्ति की अपनी कुछ विशिष्ट आवश्यकताएं होती हैं, जिनकी पूर्ति का प्रयास विभिन्न प्रकार से किया जाता है।

युवा कल्याण के उद्देश्य

युवा कल्याण के उद्देश्य समाज कार्य के उद्देश्य के अनुरूप हैं। जिसमें युवाओं की आवश्यकताओं और समाज कार्य की आवश्यकताओं में समन्वय की स्थिति देखी जाती है। ये उद्देश्य निम्नवत हैं–

1. युवाओं को ऐसे अवसर उपलबध कराना जिनके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व संबंधी तथा शैक्षणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को उन्नत कर सकें।
2. युवाओं में अनुशासन त्याग और रचनात्मक योगदान की भावनाएं जागृत करना।
3. युवाओं में जीवन के प्रति वास्तविक और प्रबुद्ध दृष्टिकोण विकसित करना जिससे उनमें जागरूक होकर निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो सके।

युवाओं के कल्याण की प्रमुख सेवाएं निम्न क्षेत्रों में प्रदान की जाती हैं–

युवा शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जहां पर युवा ग्रामीण या नगरीय परिक्षेत्र में प्रभावी ढंग से कार्य कर सकते हैं। समाज कार्य के दृष्टिकोण से युवाओं की शिक्षा इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्तिगत या सामूहिक प्रयासों के माध्यम से समुदाय के संसाधनों का उपयोग व्यक्ति के जीवन स्तर में वृद्धि करता है।

युवा शिक्षा से संबंधित सेवाओं के माध्यम से युवाओं के मस्तिष्क के विभिन्न प्रकार की समस्याओं से समायोजन स्थापित करने में मदद की जाती है जिससे कि उनके अंदर नेतृत्व क्षमता का विकास किया जा सके। युवा शिक्षा से संबंधित कार्यक्रमों के अंतर्गत साक्षरता और साक्षरता के पश्चात शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, मनोरंजनात्मक गतिविधियां, हस्तशिल्प, रेडियो, फिल्म, कठपुतली का नृत्य आदि माध्यमों के रूप में कार्य करते हैं। युवाओं के शिक्षा के कार्यक्रमों में अनौपचारिक शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम होते हैं, जिसमें कि ग्रामीण युवाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाता है।

शारीरिक शिक्षा से संबंधित सेवाएं

युवा कल्याण के अंतर्गत उनके स्वास्थ्य में अभिवृद्धि करने के लिए विभिन्न संस्थानों की स्थापना की गयी जैसे ग्वालियर स्थित शारीरिक शिक्षा का राष्ट्रीय कालेज, पटियाला स्थित खेलकूद संस्थान आदि। इसके अलावा स्काउट, एन.सी.सी. आदि संस्थाओं के माध्यम से शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि हेतु अनेक कार्यक्रम चलाए जाते हैं।

टिप्पणी

परामर्श से संबंधित सेवाएं : युवाओं को अपनी भूमिकाओं के निर्वाह के संबंध में विभिन्न प्रकार के निर्देशनों की आवश्यकता होती है। बिना पर्याप्त सलाह और दिशा–निर्देश के युवाओं को अपने परिवार, व्यक्तित्व, समूह, विद्यालय, व्यवसाय और विपरीत लिंग के व्यक्ति के साथ समायोजन में समस्या हो सकती है।

मनोरंजन से संबंधित सेवाएं : मनोरंजन युवाओं के जीवन का एक अभिन्न भाग है। मनोरंजन एक ऐसी गतिविधि है जिसे प्रायः अवकाश के समय किया जाता है जो प्रारंभिक रूप से इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली संतुष्टि तथा आनंद से प्रेरित होती है। मनोरंजन मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम करने वाले युवाओं के लिए अत्यंत आवश्यक होता है जिससे कि उन्हें अपने कार्य में ऊर्जा का अनुभव होता है और मानसिक विकास का अवसर प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय युवा समिति : युवाओं के संपूर्ण कल्याण को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय युवा नीति की घोषणा सरकार के द्वारा सन् 1988 में की गयी। युवाओं की जनसंख्या देश की संपूर्ण जनसंख्या का लगभग एक तिहाई है। इसी को ध्यान में रखकर युवाओं के कल्याण से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम बनाये गये। इन कार्यक्रमों को युवाओं से संबंधित नीतियों में विशिष्ट स्थान दिया गया।

(ब) वृद्ध कल्याण (Welfare of Aged)

भारत वर्ष में वृद्ध व्यक्तियों को आदर एवं सम्मान से देखा जाता रहा है। वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक क्षेत्र में शिथिल पड़ जाता है। उसके रक्तसंचार, पाचन तंत्र मलमूत्र बर्हिगमन आदि की क्रियाएं अशक्त हो जाती हैं। प्रजनन की क्षमता समाप्त हो जाती है। व्यक्ति हठ और मानसिक प्रतिरक्षाओं के प्रयोग की ओर झुक जाता है। उसमें आत्मविश्वास की भावनाएं समाप्त होने लगती हैं। वह आर्थिक प्रयासों में अक्षम होने लगता है और अर्थोपार्जन के लिए अपेक्षित शक्ति के अभाव में आर्थिक कठिनाइयों का शिकार हो जाता है।

भारतीय समाज में वृद्ध व्यक्तियों का स्थान उच्च और आदरपूर्ण रहा है। सामान्यतः इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति और इनकी देखभाल परिवार में होती रही है। परिवार की यह एक महत्वपूर्ण भूमिका और उत्तरदायित्व समझा गया है। भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था में वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती थी साथ ही इनकी पूरी देखभाल तथा सभी आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती थी। परिवार के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति की प्रस्थिति सबसे उच्च तथा सम्मानित थी। वे परिवार के बजट पर नियंत्रण रखते थे तथा न केवल परिवार के द्वारा पारिवारिक मामलों में उनका परामर्श लिया जाता था अपितु गांव के मामलों में भी समुदाय द्वारा परामर्श लिया जाता था।

औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण उत्पन्न सामाजिक संरचना एवं अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारंभ हो गया है। जहां एक ओर जनसंख्या, महंगाई, बेरोजगारी तथा गरीबी में निरंतर वृद्धि के कारण एक परिवार अपना निर्वाह अच्छी प्रकार करने की स्थिति में नहीं रहा, वहीं दूसरी ओर समाज में मूल्यों तथा संस्कारों के पतन के कारण परिवार के सदस्यों में वृद्धों के प्रति अपने दायित्व एवं सम्मान की भावना समाप्त हो गयी है। दो पीढ़ियों के मध्य का अंतर बढ़ता जा रहा है। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण तथा नवीन भौतिकवादी साधनों के

पीछे अंधाधुंध दौड़ के कारण वृद्धों के लिए न तो नयी पीढ़ी के पास समय है न ही उन्हें उनकी परवाह है। ऐसे में वृद्धों को स्वयं ही अपनी देखभाल करनी होती है।

टिप्पणी

वृद्धों का कल्याण

हमारे समाज की यह परंपरा रही है कि पुत्र अपने वृद्ध माता–पिता की देखभाल करते हैं। इस परम्परावादी व्यवस्था के होते हुए भी कुछ परिवार ऐसे होते हैं जहां वृद्धों को पर्याप्त और आवश्यक देखभाल और सहायता नहीं मिल पाती है। इसके कारण वे दुखी और विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त हो जाते हैं। कुछ परिवारों में आर्थिक साधनों के अभाव तथा परस्पर मतभेद के कारण वृद्धों की उपेक्षा होती है। जब वृद्ध शारीरिक तथा आर्थिक रूप से अक्षम होते हैं तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। परिवार आर्थिक दृष्टि से जितना अधिक संकट में होता है उतना ही बुरा प्रभाव वृद्धों की स्थिति पर पड़ता है।

वृद्धों को दी जाने वाली सेवाओं की व्यवस्थाओं और प्रावधानों की दृष्टि से वृद्धों की समस्या के दो पहलू हैं– प्रथम वे सेवाएं और कार्यक्रम जो उन वृद्धों के हितों के लिए आयोजित किए जाएं जो अपने परिवारों में रहते हैं और दूसरी वे सुविधाएं और सेवाएं जो ऐसे वृद्धों के लिए उपलब्ध हों जो अपने परिवारों से दूर हैं या जिनके अपने परिवार नहीं हैं।

कुछ देशों में वृद्धों को उचित सम्मान दिया जाता है तथा उनकी उचित देखभाल की जाती है। उदाहरण जापान में 15 सितम्बर को 'दादा दिवस' के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मई का मास 'वृद्ध अमेरिकन माह' घोषित किया गया है। कनाडा में जून माह 'वरिष्ठ नागरिक माह' मनाया जाता है।

वृद्धों को प्राप्त संरक्षण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–41 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत देश की विभिन्न राज्य सरकारों तथा संघीय क्षेत्रों ने वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने की दृष्टि से अपने राज्यों में वृद्धावस्था पेंशन योजनाएं प्रारंभ की हैं तथा इसका संचालन हो रहा है। वृद्ध अभिभावक के भरण–पोषण के संबंध में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में अनुच्छेद 125(1) (क) तथा हिन्दू अंगीकरण एवं भरण–पोषण अधिनियम के अनुच्छेद 20(3) में प्रावधान किए गए हैं।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति : सन् 1999 में राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई। इस नीति का प्रमुख विषय युवाओं एवं वृद्धों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करना तथा वृद्धों की देखभाल करने के लिए परिवारों की क्षमताओं में वृद्धि के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक सहायता व्यवस्था को विकसित करना है। इस नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि वृद्ध व्यक्तियों के पास उपलब्ध संसाधनों को एकत्रित किया जाए ताकि एक तरफ वृद्ध व्यक्तियों के अनुभव एवं विशेषता का लाभ समाज को हो सके तथा दूसरी तरफ वृद्ध व्यक्ति एक सक्रिय जीवन व्यतीत कर सकें। इस नीति में निम्नलिखित विषयों पर बल दिया गया–

1. वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत गैर–सरकारी क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए इसके क्षेत्र को बढ़ाया गया।
2. गैर–सरकारी क्षेत्रों की सहायता से वृद्ध व्यक्तियों को छूट युक्त स्वास्थ्य संरक्षण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।

टिप्पणी

3. वरिष्ठ नागरिकों के लिए मानक कर कटौतियों को बढ़ाने की व्यवस्था की गयी।
4. पेंशन कोषों का अनुश्रवण करने के लिए नियामक प्राधिकरण के गठन का प्रस्ताव किया गया।
5. पेंशनधारी व्यक्तियों के लिए आवासीय ऋण प्राप्त करने को सरल बनाया गया।
6. वृद्ध व्यक्तियों को अपने बच्चों द्वारा देखभाल प्राप्त करने के अधिकार को उपलब्ध कराने के लिए विधान बनाने को कहा गया।

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय परिषद

केन्द्र सरकार द्वारा वृद्धों के लिए बनाई गई नीतियों तथा लाए गए कार्यक्रमों का समय–समय पर पुनरावलोकन करने के लिए इस परिषद का गठन किया गया।

कार्य समूह का गठन

इस परिषद के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक कार्य समूह का गठन किया गया। इस कार्य समूह के प्रमुख कार्य वित्तीय सुरक्षा, स्वास्थ्य संरक्षण, पोषक आहार, आश्रय, शिक्षा, जीवन और संपत्ति का संरक्षण तथा वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति में वर्णित क्रियात्मक रणनीतियों से भी संबंधित होंगे।

वृद्ध कल्याण सेवाएं

वृद्ध एवं असक्त आश्रम– भारत वर्ष में इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास 1840 में किया गया जब बंगलौर की 'फ्रैण्ड इन नीड सोसाइटी' ने वृद्धों और निसहाय व्यक्तियों के लिए सेवाएं आयोजित कीं। इसके बारे में डेविड सेन्सन असाइलम पूना में खोला गया जहां वृद्धों के लिए भोजन, रहने और कपड़ों की व्यवस्था की गई। इसके बाद कलकत्ता, मद्रास, बंगलौर, सिकन्दराबाद, सूरत आदि में आश्रम खोले गए। इस समय देश के बड़े–बड़े नगरों में वृद्ध एवं अशक्त व्यक्तियों के लिए आश्रम खोले गए हैं जिनमें परिवार रहित अथवा परिवार से दुखी वृद्ध और अशक्त रहते हैं। इन आश्रमों में निम्नलिखित सेवाओं का प्रावधान किया जाता है–

1. वृद्धों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खाने, कपड़े, चिकित्सा तथा रहने की व्यवस्था करना।
2. वृद्धों का मनोरंजन तथा मनो–विनोद की सुविधाएं उपलब्ध कराना ताकि वे जीवन को सार्थकता के साथ व्यतीत कर सकें। व्यक्तिगत एवं संवेगात्मक समस्याओं से ग्रस्त वृद्धों को मंत्रणा तथा मनोवैज्ञानिक सहायता उपलब्ध कराना ताकि उनके जीवन में आवश्यक सामन्जस्य स्थापित हो सके।
3. वृद्धों को उपयुक्त व्यवसायों में लगाना ताकि उनकी कुछ आमदनी भी हो सके।
4. वृद्धों के घरों के अंदर धार्मिक एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों का आयोजन करना ताकि वृद्धों में सामूहिक जीवन की उपयोगिता की भावना बनी रहे।

वृद्धावस्था पेंशन योजनाएं : वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा उपलबध कराने के उद्देश्य से राज्य सरकारों द्वारा वृद्धावस्था पेंशन योजनाएं चलाई जा रही हैं।

पेंशन भोगी वृद्ध : संविधान की धारा 309 में व्यवस्था है कि संघ अथवा राज्यगत विषयों के प्रशासन हेतु नियुक्त कार्मिकों की सेवा शर्तों एवं भर्ती संबंधित नियम विधान मंडल द्वारा नियमित की जा सकती हैं। सरकारें समय–समय पर अपने कार्मिकों की

सेवा शर्त जिसमें सेवानिवृत्ति लाभ सम्मिलित हैं, निर्धारित करने के लिए नियमों एवं विनियमों का निर्माण करती रहती हैं। सेवानिवृत्ति के समय सरकारी कर्मचारियों को उपलब्ध सुविधाओं में पेंशन योजना एवं अंशदायी भविष्य निधि योजना सम्मिलित हैं। सर्वोच्च न्यायालय का भी कथन है कि पेंशन कोई कृपा की वस्तु नहीं है। यह कर्मचारी का ठोस अधिकार है। पेंशन भूतकाल में प्रदत्त की सेवाओं का भुगतान है। यह उनके लिए है जिन्होंने अपने जीवन के सुन्दर दिनों में अथक परिश्रम किया, इस आश्वासन पर कि वृद्धायु में उन्हें मध्य सागर में छोड़ नहीं दिया जाएगा। सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्ति को अर्जित अवकाश के बदलने नकद भुगतान, चिकित्सा भत्ता, निर्धारित दरों अथवा चिकित्सा पर हुए व्यय की प्रतिपूर्ति, अवकाश यात्रा सुविधा अथवा दो वर्षों में एक बार एक मास की पेंशन के बराबर राशि, चश्में का मूल्य जैसी सुविधाएं भी मिलती हैं।

वृद्धावस्था की पात्रता

1. 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के सभी व्यक्ति को वृद्धावस्था पेंशन मिलती है जिनकी मासिक आय कम हो।
2. पति–पत्नी में से केवल एक ही व्यक्ति पेंशन पाने का पात्र होता है। इसमें महिलाओं को वरीयता देने का प्रावधान है।
3. किसी अन्य स्रोत से पेंशन प्राप्त होने की दशा में इस पेंशन का लाभ नहीं मिल सकता।

   निराश्रित व्यक्ति उसे माना जाएगा जिसकी आय का कोई साधन नहीं है तथा जिसका 20 वर्ष या उससे अधिक आयु का पुत्र या पौत्र जीवित नहीं है।

किसान पेंशन योजना

इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लाभार्थी अब वृद्धावस्था पेंशन के बजाए किसान पेंशन योजना के अंतर्गत लाभान्वित होंगे।

पेंशन न्याय कोष : चतुर्थ वेतन आयोग ने यह सुझाव दिया था कि एक पेंशन न्याय कोष की स्थापना की जाए जिसमें सरकारी कर्मचारी की सेवा अवधि के अनुपात में पेंशन का अनुवर्ती भुगतान किया जाए अथवा सेवानिवृत्ति पर उसकी कुल पेंशन का भुगतान किया जाए। यह कोष कम से कम 10 प्रतिशत ब्याज की गारन्टी देगा जो पेंशन भोगी मासिक भुगतान के रूप में प्राप्त करेगा। कोष का प्रबंध न्याय मण्डल द्वारा किया जाएगा जिसमें ख्याति प्राप्त एवं अनुभवी व्यक्ति सम्मिलित होंगे। निवेशों से प्राप्त लाभ प्रत्येक वर्ष पेंशन भोगी को भुगतान किया जाएगा। पेंशन भोगी की मृत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी पेंशन भोगी के खाते में जमा संपूर्ण धनराशि का अधिकारी होगा।

वृद्धों की देखभाल के स्वयंसेवी संगठन : इन स्वैच्छिक संगठनों में 'हेल्पेज इण्डिया' तथा 'एक केयर इण्डिया' का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। हेल्पेज इण्डिया की स्थापना इंग्लैण्ड में 'हेल्प द ऐजेड सोसायटी' के रूप में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य वृद्धों के हितों का संरक्षण तथा इनकी देखभाल करना है इसके प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं–

- युवा पीढ़ी में वृद्धों की आवश्यकताओं के विषय में जागरूकता उत्पन्न करना। इसके लिए हेल्पेज इण्डिया द्वारा विविध प्रकार की प्रतियोगिताओं चित्रकला

टिप्पणी

प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता, दादा–दादी समारोह इत्यादि का आयोजन किया जाता है।

- वृद्धों के लिए घरों, निवास केंद्रों, वृद्ध वार्डों, इलाज के लिए चलती–फिरती चिकित्सकीय इकाइयों इत्यादि का संचालन करना। नेत्रहीन वृद्धों, शारीरिक रूप से बाधित तथा कुष्ठ रोगों से ग्रस्त वृद्धों एवं मोतियाबिन्द के शिकार वृद्धों के लिए इलाज की व्यवस्था करना तथा इनका पुनर्वासन करना।

'एज केयर इण्डिया' नामक संस्था की स्थापना के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. वृद्ध पुरुषों एवं स्त्रियों को आवासीय एवं संस्थागत सुविधाओं के माध्यम से शैक्षिक, मनोरंजनात्मक, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेवाएं प्रदान करना।
2. वृद्धों को चिकित्सकीय सुविधाएं उपलबध कराना।
3. वृद्धों के लिए आंशकालिक रोजगार तथा उनकी आयवृद्धि के कार्यक्रम चलाना।
4. वृद्धों के लिए भ्रमणों एवं यात्राओं की व्यवस्था करना।
5. करों, शुल्कों, संपत्तियों, पेंशनों एवं अन्य आर्थिक तथा वित्तीय आवश्यकताओं के लिए परामर्श सेवाएं उपलब्ध कराना।
6. वृद्धों की समस्याओं के बारे में अध्ययन तथा शोध कराना और अध्ययन केंद्रों, गोष्ठियों, मनोरंजन समारोहों, रैलियों आदि की व्यवस्था कराना।
7. वृद्धों तथा युवा पीढ़ी के मध्य सामाजिक एकीकरण एवं सद्भावना के लिए उचित वातावरण तैयार करना।

(स) बाल कल्याण (Child Welfare)

विकास दरअसल मानव शरीर में होने वाले परिवर्तनों का एक क्रम है। जो मानव के जन्म से प्रारंभ होकर मृत्योपरान्त तक चलता रहता है। मानव कल्याण का अध्ययन मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है उसे प्रारम्भ में बाल मनोविज्ञान तथा बाद में बाल कल्याण कहा जाने लगा। मनोविज्ञान की यह एक अपेक्षाकृत नवीन शाखा है जिसका विकास पिछले पचास वर्षों में एक विकास अवस्था से दूसरी विकास अवस्था में पदार्पण करते समय होता है। इनमें कुछ परिवर्तन के कारणों का अध्ययन भी होता है, साथ ही साथ यह परिवर्तन कब और किस प्रकार घटित होता है, इसका भी अध्ययन किया जाता है। बाल कल्याण के अर्थ को समझाते हुए विभिन्न मनोविज्ञानियों ने इसकी परिभाषा दी है–

हशलॉक के अनुसार– (1978) "आज बाल–कल्याण में मुख्यतः बालक के व्यवहार, रुचियों में होने वाले उन विशिष्ट परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जाता है, जो उसके एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासात्मक अवस्था में पदार्पण करते समय होते हैं। ये परिवर्तन कब होते हैं, इनके क्या कारण हैं और यह वैयक्तिक हैं या सार्वभौमिक आदि ज्ञात किया जाता है।"

मेसेन और उनके साथियों (1974) के अनुसार– "आज भी बाल कल्याण के अनेक अध्ययनों का संबंध आयु प्रवृत्ति की ओर है। यह आयु प्रवृत्ति संबंधी अध्ययन विशेष रूप से चिंतन समस्या समाधान, सृजनात्मकता, नैतिकता तथा व्यवहार, अभिवृत्तियां

और मत आदि क्षेत्रों में किये जाते हैं। बाल विकास में सर्वाधिक शोध विकास परिवर्तनों में अन्तर्निहित प्रक्रियाओं के मैकेनिज्म पर हो रहे हैं। अर्थात यह जानने का प्रयास किया जाता रहा है कि विकास परिवर्तन किस प्रकार और किन कारणों से हो रहे हैं।"

जेस्टन ड्रेबर (1968) क्रो और क्रो (1958) के अनुसार "बाल–मनोविज्ञान वह वैज्ञानिक अध्ययन है, जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक करता है।"

बाल कल्याण की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाल कल्याण बालक के गर्भकाल से लेकर उसकी परिपक्व अवस्था तक उसके शारीरिक, मानसिक, सृजनात्मक, व्यवहार, अभिरुचियां तथा मत आदि के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन है।

बाल कल्यण में रुचियों के परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। बाल विकास में रुचियों से संबंधित मुख्यतः निम्न समस्याओं का अध्ययन किया जाता है–

1. विकास की विभिन्न अवस्थाओं में रुचियां किस प्रकार विकसित होती हैं?
2. भिन्न–भिन्न रुचियों का विकास किन–किन अवस्थाओं में और कब प्रारम्भ होता है?
3. भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में रुचियों के विकास के क्या–क्या कारण हैं?
4. किन–किन रुचियों का विकास व्यक्तिगत है और किन–किन रुचियों का विकास सार्वभौमिक परिवर्तनों के रूप में होता है।
5. क्या रुचियों का विकास हमेशा रचनात्मक ही होता है अथवा ह्रास सूचक भी होता है?
6. विभिन्न रुचियों के विकास की गति और दिशा क्या है?

बाल कल्याण विषय की पद्धति

बाल कल्याण विषय की पद्धति को कई दृष्टिकोणों के आधार पर समझा जा सकता है।

(क) **मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा के रूप में बाल कल्याण** : मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में बाल विकास एक महत्वपूर्ण, उपयोगी तथा समाज और राष्ट्र के लिए कल्याणकारी शाखा है। मनोविज्ञान की इस शाखा में गर्भावस्था से लेकर युवावस्था तक मानव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

(ख) **मनोविज्ञान में विशिष्ट उपागम के रूप में बाल विकास विषय** : मानव व्यवहारों के अध्ययन के लिए बाल विकास विषय ने कई विशिष्ट उपागम या विचार पद्धतियों का उपयोग किया जाता है इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

1. **प्रयोगात्मक उपागम** : इस उपागम के द्वारा बाल कल्याण की विभिन्न समस्याओं के अध्ययन में कार्यकारण संबंध को जानने का प्रयास किया जाता है। इस उपागम के द्वारा एक विशिष्ट व्यवहार किस परिस्थिति में उत्पन्न होता है, इसका अध्ययन किया जाता है।
2. **दैहिक उपागम** : बाल विकास को एक दैहिक शास्त्र के ज्ञान के द्वारा भी समझा जा सकता है क्योंकि जैविक तथा मानसिक आत्मा एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित होती है। गर्भकालीन शिशु और नवजात शिशुओं

टिप्पणी

के व्यवहार से संबंधित समस्याओं का समाधान मुख्य रूप से इस उपागम द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

3. **विकासात्मक उपागम :** बालक के विकास अवस्था में पहुंचने के दौरान उसमें कुछ नई रुचियों, नई अभिवृत्तियों तथा कुछ नये लक्षणों का विकास या निर्माण होता है। अतः इस प्रकार की समस्याओं को समझने में यह उपागम उपयोगी है।
4. **व्यक्तित्व संबंधी उपागम :** बाल कल्याण के इस उपागम में बालक के व्यक्तित्व का अध्ययन इस आधार पर किया जाता है कि प्रत्येक बालक का व्यवहार उस बालक के व्यक्तित्व को किसी न किसी तरह व्यक्त करता है। व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर उसके समायोजन तथा अभिवृत्तियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

बाल कल्याण का क्षेत्र और समस्याएं

बाल कल्याण के क्षेत्र में गर्भावस्था से युवावस्था तक के मानव की सभी व्यवहार संबंधी समस्याएं सम्मिलित हैं। इस अवस्था के सभी मानव व्यवहार संबंधी समस्याओं के अध्ययन में विकासात्मक दृष्टिकोण मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन अध्ययनों में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न विकास अवस्थाओं में कौन–कौन से क्रमिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किन कारणों से कब और क्यों होते हैं तथा इन क्रमिक परिवर्तनों में कौन–कौन सी अंतर्निहित प्रक्रियाएं हैं आदि। बाल कल्याण का क्षेत्र दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

कारमाइकेल, 1968 ने बाल विकास समस्याओं का उल्लेख करते हुए कहा कि, बाल मनोवैज्ञानिक मुख्यतः निम्न सात समस्याओं का अध्ययन करते हैं–

1. विकासशील मानव की मौलिक प्रक्रिया और गतिशीलता।
2. बालक का वातावरण पर प्रभाव।
3. वातावरण का बालक पर प्रभाव।
4. विकासात्मक प्रक्रियाओं का क्रमिक समकालीन वर्णन।
5. विकासात्मक प्रक्रियाओं की दीर्घकालीन प्रणाली द्वारा वर्णन।
6. व्यक्ति को किसी भी आयु–स्तर पर मापना।
7. व्यक्ति का सम्पूर्ण पृष्ठभूमि में उसका जेनेटिक लेखा–जोखा प्राप्त करना।

समेकित बाल विकास सेवा योजना (ICDS): इस योजना को राष्ट्रीय बाल कल्याण योजना में सन् 2000 तक प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति का अब सर्वाधिक सक्षम साधन माना जाता है। इसमें अन्य बातों के साथ–साथ शिशु मृत्यु दर की प्रति 1000 पर 60, प्रति हजार बाल मृत्यु दर में 50 प्रतिशत की कमी करना, 5 वर्ष से छोटे बच्चों के कुपोषण में 50 प्रतिशत की कमी करना आदि है।

आई.सी.डी.एस. के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. बच्चों के उचित शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास की नींव रखना।
2. एक से छः वर्ष तक के बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं के आहार एवं स्वास्थ्य में सुधार लाना।

टिप्पणी

3. बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों की नीति और कार्यों में प्रभावी सामंजस्य स्थापित करना।
4. मृत्यु, रोग, कुपोषण और स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को कम करना।
5. पोषण तथा स्वास्थ्य–शिक्षा द्वारा माताओं में स्वास्थ्य और पोषण संबंधी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता में वृद्धि करना।

आई.सी.डी.एस. के अंतर्गत छः वर्ष के बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं की विभिन्न उपलब्ध सेवाएं हैं– 1. पोषाहार एवं स्वास्थ्य सेवाएं, 2. सहायक सेवाएं, 3. स्वास्थ्य परीक्षण, 4. बीमारियों से मुक्ति, 5. शाला–पूर्व शिक्षा, 6. विशेषज्ञ सुविधाएं।

भारत वर्ष में 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या 16 वर्ष के नीचे के बालकों की है। आर्थिक दशा एवं पारिवारिक क्रियाकलापों में परिवर्तन के कारण बालक के विकास की अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। इन समस्याओं और समस्याग्रस्त बालकों की समस्याओं का निराकरण करने के लिए अनेक संस्थागत और असंस्थागत संस्थाएं कार्य कर रही हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. बाल एवं शिशु विद्यालय।
2. बाल पुस्तकालय।
3. मातृ–शिशु रक्षा केन्द्र।
4. दिवस शिशु पालनगृह।
5. अनाथाश्रम।
6. मूक–बधिर विद्यालय।
7. विकलांग आश्रम।
8. बाल चिकित्सालय।
9. बाल परामर्श।
10. बाल अपराधी सुधारगृह।
11. मानसिक रूप से मंद बालकों के लिये विद्यालय।

इन सभी क्षेत्रों में बालक और उसके पर्यावरण में समायोजन की समस्या होती है। वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता इन समस्याओं को सुलझाने में अपनी मदद करता है।

बाल कल्याण के क्षेत्र में गर्भावस्था से युवावस्था तक के मानव की सभी व्यवहार संबंधी समस्याएं सम्मिलित हैं। इस अवस्था के सभी मानव व्यवहार संबंधी समस्याओं के अध्ययन में विकासात्मक दृष्टिकोण मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन अध्ययनों में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न विकास अवस्थाओं में कौन–कौन से क्रमिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किन कारणों से कब और क्यों होते हैं तथा इन क्रमिक परिवर्तनों में कौन–कौन–सी अंतरनिहित प्रक्रियाएं हैं। बाल कल्याण का क्षेत्र दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है।

हमारे देश में संविधान के अनुच्छेद 39 में बच्चों की दशा सुधारने के लिए विशेष प्रावधान है। इसी प्रकार अनुच्छेद 24 में कहा गया है कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी कारखाने अथवा अन्य किसी संकटमय उद्योग में न लगाया जाय।

टिप्पणी

अनुच्छेद 45 के अनुसार राज्य 14 वर्ष की आयु पूरी होने तक सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 150 मिलियन बच्चे हैं जो भारत की जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत हैं। ये बच्चे 0–6 वर्ष की आयु के हैं। इनमें से बहुत से बच्चे ऐसे आर्थिक और सामाजिक वातावरण में रहते हैं जिसमें बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इन परिस्थितियों में निर्धनता, पर्यावरणीय अस्वच्छता, बीमारी, संक्रमण, अपर्याप्त प्राथमिक सेवाएं, पोषण प्रयास शामिल हैं।

(द) महिला कल्याण

महिला कल्याण के अंतर्गत वे सब कार्यक्रम आते हैं जो महिलाओं की विशेष समस्याओं के निवारण, उनके पिछड़ेपन को दूर करने तथा उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर एवं स्थिति को उन्नत करने की दृष्टि से आयोजित किये जाते हैं। आर्थिक पराधीनता से स्वतंत्रता, सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्ति एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन एवं पुनर्गठन, महिला कार्यक्रम के मुख्य पक्ष हैं।

महिला कल्याण के उद्देश्य

महिला कल्याण के दृष्टिकोण से एवं विशेष परिस्थितियों के आधार पर महिलाओं को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। शिक्षित कामकाजी महिलाएं, अशिक्षित ग्रामीण महिलाएं, निम्न आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग की महिलाएं, शिक्षित नगरीय महिलाएं, असहाय, निर्बल, शोषित और विचलित महिलाएं इत्यादि। इन सब महिलाओं की समस्याओं की प्रकृति और विशेषताएं अलग–अलग हैं। इसलिए महिला कल्याण कार्यक्रम ऐसे व्यापक और विस्तृत होने चाहिए जो महिलाओं के संपूर्ण वर्ग को लाभान्वित कर सकें एवं उनमें स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता एवं सामंजस्य को विकसित करने में सहायक हों।

विशिष्टतया महिला कल्याण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) महिला कल्याण कार्यक्रम का एक मुख्य उद्देश्य उनकी इस खोई स्थिति को फिर से समाज में प्रतिस्थापित करना है जो उनको पुरातन वैदिक काल में प्राप्त थी। उनको आदर, सम्मान तथा उनके अधिकार प्रदान करना है जो हमारे संविधान में अंकित राज्य के निर्देशक सिद्धांतों का भी एक महत्वपूर्ण अंग है।

(ब) दूसरा उद्देश्य राष्ट्रीय विकास में उनकी भूमिका और स्थान से सम्बद्ध है। महिला कल्याण कार्यक्रम द्वारा उनकी विकास और योगदान के ऐसे अवसर उपलब्ध कराना है जिनके द्वारा वे राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा की आंतरिक अंग बनकर राष्ट्रीय विकास में अपना योगदान दे सकें।

(स) जैवकीय दृष्टिकोण से भी महिलाओं की अपने विशेष स्थिति और समस्याएं होती हैं। भावी माताओं और बालकों को दूध पिलाने वाली माताओं की देखभाल और सुरक्षा के कार्यक्रम महिला कल्याण का एक आवश्यक अंग है। इन महिलाओं को उपयुक्त और पर्याप्त आहार, स्वास्थ्य एवं मातृत्व कल्याण सेवाओं को उपलब्ध कराना जिससे उनके स्वास्थ्य और बालकों के स्वास्थ्य स्तर को ऊंचा उठाया जा सके, महिला कल्याण का एक मूल लक्ष्य रहा है।

(द) ऐसे अवसर और कार्यक्रमों का आयोजन करना जिनसे न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाओं को समान स्तर और समानता प्रदान की जा सके ताकि अंतर्राष्ट्रीय विकास कार्यों में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। महिला कल्याण को आधुनिक युग में एक प्रगतिशील उद्देश्य समझा जाता है।

महिलाओं की समस्याएं

हमारे देश में महिलाओं को आज भी विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे अब भी शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से पुरुषों से बहुत पीछे हैं। कुछ श्रेणियों में महिलाओं की स्थिति अब भी दयनीय बनी हुई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लगभग पांच दशक बीत जाने के बाद आम लोगों के बीच महिलाओं के संबंध में जो धारणाएं हैं उनमें कुछ परिवर्तन हुआ है। यद्यपि मूल स्थिति यथावत है। भारतीय समाज में महिलाओं की मूलभूत समस्याओं को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. **पारिवारिक समस्याएं** : हमारा समाज एक पुरुष प्रधान समाज है। भारत में परंपरागत रूप से पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था पायी जाती है। जिसमें परिवार के पुरुष सदस्यों को तो अनेक अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त हैं किन्तु स्त्रियों को उनसे वंचित किया गया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था में स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा होती है। वे दासी की तरह जीवन व्यतीत करती हैं। उनका जीवन खाना बनाने, बच्चों को जन्म देने, उनकी देखरेख एवं परिवार के सदस्यों की सेवा में ही व्यतीत हो जाता है। स्त्री को मनोरंजन का साधन समझा जाता है। शिक्षा एवं बाहरी संसार से अलगाव के कारण वह सार्वजनिक जीवन से अनभिज्ञ बनी रहती है और उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता है।
2. **वैवाहिक समस्याएं** : भारत में विवाह को अनिवार्य माना जाता है, विशेषकर एक स्त्री के लिए। भारतीय स्त्रियों की वैवाहिक समस्याएं भी गम्भीर हैं। स्त्रियों की वैवाहिक प्रस्थिति से संबंधित कुछ समस्याएं हैं– बाल विवाह, तलाक, विधवा पुनर्विवाह का अभाव, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह का अभाव, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज के लिए हत्या, बेमेल विवाह आदि।
3. **वेश्यावृत्ति** ' यह एक सामाजिक बुराई के रूप में अति प्राचीन काल से प्रचलित है जो स्त्री जाति के लिए अभिशाप है। यौन पवित्रता पर बल, बाल विवाह, विधवा विवाह का अभाव, दहेज, जीवन स्तर को ऊंचा उठाने की इच्छा, नारी की आर्थिक पराश्रितता, दुखी वैवाहिक जीवन एवं स्त्रियों के लिए रोजगार के अपर्याप्त अवसर आदि ऐसे कारण हैं जिन्होंने इस बुराई को फैलाने में योगदान दिया है।
4. **स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं** : चूंकि भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज है, अतः परिवार में पुरुषों के स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य की तरफ समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। इसी कारण भारतीय स्त्रियों में कुपोषण, खून की कमी, मृत्यु–दर की अधिकता एवं निम्न जीवन–दर आदि समस्याएं व्याप्त हैं।
5. **शैक्षणिक समस्याएं** : भारत में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। स्त्रियों में तो यह प्रतिशत और भी कम है। स्कूल में बालिकाओं का निम्न नामांकन,

बालिकाओं का बीच में पढ़ाई छोड़ देना, उच्च तथा तकनीकी शिक्षा के मामले में बालिकाओं के साथ भेद—भाव आदि शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की प्रमुख समस्याएं हैं।

6. **आर्थिक पराश्रितता** : भारतीय समाज में सामान्यतः महिलाओं में आर्थिक स्वावलंबन का अभाव होता है अर्थात वे आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर होती हैं या आर्थिक मामलों में उन्हें पुरुषों के निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता है। उनके जीवन के समस्त निर्णय अधिकांशतः पुरुषों द्वारा लिए जाते हैं, वह पुरुष उसका पिता, भाई, पति या पुत्र हो सकता है। इसलिए उनका कार्य क्षेत्र घर की दीवारों में ही सिमटकर रह गया है।
7. **कामकाजी महिलाओं का शोषण** : कामकाजी महिलाओं की एक महत्वपूर्ण समस्या उनकी दोहरी भूमिका है। परिवार के बाहर पति के समान ही तथा कई बार पति से अधिक आर्थिक उत्पादन करने के बावजूद गृहस्थी के समस्त कार्यों का संपादन महिलाओं को ही करना पड़ता है। पुरुष घरेलू कार्यों में हाथ नहीं बंटाता। इस प्रकार घर से बाहर और घर के अंदर दोहरी भूमिका निर्वाह करने के बाद भी उन्हें पुरुषों के समकक्ष नहीं माना जाता है। उन्हें समाज के द्वितीयक श्रेणी का नागरिक अर्थात गौण स्थान प्रदान किया जाता है। कार्य स्थल पर भी उन्हें उनकी इच्छानुरूप कार्य नहीं दिया जाता तथा उनका शारीरिक एवं आर्थिक शोषण भी किया जाता है।
8. **राजनीतिक समस्याएं** : महिलाओं की समस्याओं में एक प्रमुख समस्या राजनीतिक क्षेत्र में उनका पिछड़ापन है। राजनीतिक क्षेत्र में उनकी सक्रियता न होने के पीछे अनेक कारण महत्वपूर्ण रहे हैं प्रथम तो भारतीय पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी के अंदर माना जाता रहा है। अतः घर से बाहर उसकी सक्रियता संभव नहीं रही है। द्वितीय पुरुष प्रधान भारतीय समाज में पुरुष वर्ग महिलाओं को अपने समकक्ष न मानकर द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में मान्यता देता रहा है। अतः शासन एवं राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध रहा है। तृतीय महिलाओं में आज भी पुरुषों की तुलना में राजनीतिक जागरूकता बहुत कम है। चतुर्थ आर्थिक स्वावलंबन के अभाव में आज के चुनावों के खर्च को उठाना उसके लिए संभव नहीं होता है। पांचवा वर्तमान दौर के चुनावों में बढ़ती हुई हिंसा, चरित्र हनन आदि के कारण उनका चुनावों में भाग लेना संभव नहीं हो पाता। छठे शिक्षा प्रसार के कारण शिक्षित महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता बढ़ रही है और वे राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय होना चाहती हैं, किन्तु पुरुष वर्ग इस क्षेत्र में अपना एकाधिकार मानकर स्त्रियों की सहभागिता को टालना चाहता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है वर्तमान समय में हमारे देश में राजनीति में महिलाओं के आरक्षण कानून का पास न हो पाना। उल्लेखनीय है कि कई वर्षों में यह विधेयक राजनीतिक क्षेत्र में चर्चा का मुद्दा बना हुआ है। किंतु इस मुद्दे को सभी राजनीतिक दल इस या उस बहाने से टालते रहे हैं।
9. **महिलाओं के विरुद्ध हिंसा** : पूरे जीवन चक्र में महिलाओं के प्रति हिंसा चक्र निम्नवत रूप में घटित होता है—

जन्म से पूर्व : कन्या भ्रूण हत्या।

शैशवकाल में : बालिका शिशु हत्या; परिवार के सदस्यों से प्यार–दुलार तथा पर्याप्त पोषण नहीं मिलना।

बाल्यकाल : बाल विवाह, अपरिचित तथा परिवार के सदस्यों द्वारा यौन शोषण, पर्याप्त पोषण तथा स्वास्थ्य सुविधा नहीं मिलना, बाल मजदूरी, बाल वेश्यावृत्ति।

किशोरावस्था : डेटिंग तथा कोर्टशिप, हिंसा, काम करने के जगहों पर यौन शोषण, बलात्कार, प्रताड़ित करना, वेश्यावृत्ति के किये मजबूर करना, तेजाब फेंकना।

वयस्क अवस्था : वैवाहिक बलात्कार, दहेज के कारण शोषण और हत्या, मनोवैज्ञानिक शोषण, काम करने की जगह पर यौन शोषण, बलात्कार।

बुढ़ापा : विधवाओं का शोषण, परिवार के सदस्यों द्वारा शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नारी आज भी विभिन्न प्रकार की पारिवारिक, वैवाहिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य संबंधी, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से ग्रस्त है। इन समस्याओं से मुक्ति के बिना समानता के इस युग में स्त्रियों को उनकी सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने हेतु अनेक सुधार आंदोलन हुए है और सरकारी व गैर–सरकारी स्तर पर कल्याण कार्य भी किए गए हैं।

संवैधानिक प्रयास : स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने और राष्ट्रीय विकास में उनकी पूरी भागीदारी के लिए बहुत से कानून बनाये गये। यह कानून वास्तव में सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। इनमें से निम्नलिखित प्रयास उल्लेखनीय हैं–

1. विधवा पुनर्विवाह अधिनियम– 1856।
2. सती प्रथा को अवैध घोषित करने के लिए बंगाल सती अधिनियम 1829।
3. विशेष विवाह अधिनियम, 1954।
4. भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 (संशोधन, 2001)।
5. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955।
6. विवाहित महिलाओं का संपत्ति अधिनियम, 1974।
7. हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम, 1956 (वैयक्तिक कानून संशोधन अधिनियम, 2010)।
8. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (संशोधन 2005)।
9. बाल विवाह निरोध अधिनियम, 1929।
10. हिन्दू स्त्रियों की सम्पत्ति अधिकार अधिनियम, 1937।
11. दहेज निरोधक अधिनियम 1961 (संशोधन 1976)।
12. दहेज निरोधक (सुधार) अधिनियम, 1984।
13. जन्म पूर्व लिंग निदान तकनीकी (नियमन व दुरुपयोग–निषेध) अधिनियम 1994।

14. महिलाओं तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम, 1956।
15. अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम 1986।
16. घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005।

टिप्पणी

(य) श्रम कल्याण

श्रम कल्याण अत्यधिक व्यापक शब्द है और इसमें श्रमिक समुदाय के आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक अथवा नैतिक लाभ से संबंधित विविध प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं। भारत के राष्ट्रीय श्रम–आयोग (1969) के अनुसार, "श्रम कल्याण का विचार आवश्यक रूप से प्रगतिशील है, जिसका अर्थ देश में से समय–समय पर यहां तक कि उस देश में ही उसके मूल्यांकन, सामाजिक संस्थाओं, औद्योगीकरण की मात्रा व सामाजिक तथा आर्थिक विकास के स्तर से भिन्न–भिन्न होता है।" इस प्रकार श्रम कल्याण शब्द को एक निश्चित सीमा में नहीं बांधा जा सकता।

श्रम कल्याण की परिभाषा

अंतर्राष्ट्रीय श्रम–संगठन की रिपोर्ट में कहा गया है, "श्रम कल्याण से आशय ऐसी सेवाओं तथा सुविधाओं के अर्थ में समझा जा सकता है जो कारखाने के अंदर या निकटवर्ती स्थानों में स्थापित की गयी हो ताकि उनमें काम करने वाले कर्मचारी स्वस्थ तथा शक्तिपूर्ण परिस्थितियों में अपना कार्य कर सकें और अपने स्वास्थ्य तथा नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने का कार्य कर सकें।"

सर एडवर्ड पेंटन के अनुसार, "श्रम कल्याण का अर्थ श्रमिकों को सुख, स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए उपलब्ध की जाने वाली संस्थाओं से है।"

सामाजिक विज्ञानों के विश्व कोष के अनुसार, "श्रम कल्याण का अर्थ कानून औद्योगिक प्रथा और बाजार की दशाओं के अतिरिक्त मालिकों द्वारा वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के अंतर्गत श्रमिकों के काम करने और कभी–कभी जीवन निर्वाह और सांस्कृतिक दशाओं को उपलब्ध करने का ऐच्छिक प्रयत्न है।"

इन परिभाषाओं से यह ज्ञात होता है कि श्रम कल्याण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. श्रम कल्याण मजदूरी के अतिरिक्त दिया जाने वाला लाभ है।
2. श्रम कल्याण के अंतर्गत वे सुविधाएं नहीं आती जो कानूनन उन्हें देना अनिवार्य है।
3. श्रम कल्याण मजदूरों को उनका जीवन स्तर ऊंचा उठाने और उनके सर्वांगीण विकास के लिए उपलब्ध की जाने वाली सुविधाओं और सेवाओं को कहते हैं।
4. ये सुविधाएं श्रमिकों, सेवायोजकों तथा समाजसेवी संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती हैं।

श्रम कल्याण के अंतर्गत श्रमिकों के आवास की व्यवस्था, स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी सुविधाएं, आहार सुविधाएं (कैंटीन को भी सम्मिलित करते हुए), आराम तथा खेल–कूद की व्यवस्था, सहकारी समितियां, स्वच्छता की व्यवस्था, वेतन सहित अवकाश, मालिकों द्वारा अकेले ऐच्छिक रूप से अथवा श्रमिकों के सहयोग से चलाई गई सामाजिक बीमा व्यवस्था, प्राविडेण्ट फण्ड और पेंशन इत्यादि को सम्मिलित कर सकते हैं।

श्रम कल्याण कार्यों का वर्गीकरण

कल्याण संबंधी कार्यों का क्षेत्र काफी व्यापक है। इन कार्यों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

स्थान के आधार पर वर्गीकरण–

डा. बउटन ने स्थान के आधार पर श्रम कल्याण कार्यों को दो वर्गों में बांटा है–

(क) कारखाने के भीतर के कल्याण कार्य जो कि निम्नलिखित हैं–

- श्रमिकों की वैज्ञानिक ढंग से भर्ती करना।
- विभिन्न कारखानों में विशिष्ट कार्यों का प्रशिक्षण।
- स्वच्छता, प्रकाश तथा वायु का प्रबंध करना।
- दुर्घटनाओं की रोकथाम का प्रबंध करना।
- कैंटीन, थकावट दूर करने तथा आराम की व्यवस्था करना।

(ख) कारखाने के बाहर के कल्याण, जो निम्नलिखित हैं–

- सस्ते एवं पौष्टिक आहार की व्यवस्था करना।
- श्रमिकों के मनोरंजन की व्यवस्था करना।
- शिक्षण की व्यवस्था करना जैसे कि प्रौढ़ शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा आदि।
- निःशुल्क उपचार की व्यवस्था करना।

प्रबंध के आधार पर श्रम कल्याण कार्यों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है–

1. वैधानिक कल्याण कार्य के अंतर्गत वे कार्य आते हैं जिनको सरकार के द्वारा बनाए गए कुछ कानूनों के कारण मालिकों को करना पड़ता है। ये कार्य की दशाओं, कार्य के घण्टे, प्रकाश, स्वास्थ्य एवं सफाई आदि से संबंधित हो सकते हैं। श्रमिकों के कल्याण के लिए इस प्रकार का राज्य द्वारा हस्तक्षेप दिन–प्रतिदिन सब देशों में अधिक होता जा रहा है।
2. ऐच्छिक कल्याण कार्यों के अंतर्गत वे कार्य आते हैं, जो कि मालिक अपने श्रमिकों के लिए सम्पादित करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो ये कार्य परोपकार के दृष्टिकोण से होते हैं, परंतु यदि हम इनकी गहराई में जाएं तो पता चलेगा कि इस प्रकार के कार्यों पर धन व्यय करना उद्योग में निवेश माना जाना चाहिए, क्योंकि कल्याण कार्य न केवल श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं, अपितु संघर्ष उत्पन्न होने की संभावना को भी बहुत कम कर देते हैं। ऐच्छिक कल्याण कार्य वाई.एम.सी.ए. जैसी कुछ सामाजिक संस्थाओं द्वारा भी किये जाते हैं।
3. पारस्परिक कल्याण कार्य श्रमिकों द्वारा किये गए वे कार्य हैं, जो कि वे परस्पर सहयोग से अपने कल्याण के लिए करते हैं। इस उद्देश्य से श्रमिक संघ श्रमिकों के कल्याण के लिए अनेक कार्य करते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. राष्ट्रीय बाल नीति कब घोषित हुई?

(क) 1947 में (ख) 1950 में

(ग) 1974 में (घ) 1980 में

6. संपूर्ण भारत में महिलाओं की संख्या का प्रतिशत है–

(क) 40 (ख) 49

(ग) 52 (घ) 60

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (घ)
3. (क)
4. (ग)
5. (ग)
6. (ख)

4.6 सारांश

समाज कार्य 'सामाजिक डार्विनवाद' और सर्वाधिक योग्य के ही जीवित रहने' के सिद्धांत के विरुद्ध है, इसका अर्थ है कि समाज कार्य इस बात में विश्वास नहीं रखता कि केवल शक्तिशाली ही समाज में जीवित रहेगा और कमजोर का शीघ्रविनाश होगा। जो लोग कमजोर हैं, अक्षम हैं और/या जिन्हें देखभाल की आवश्यकता है वे सभी समान रूप से समाज कार्यकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति को उसकी सम्पूर्णता के साथ समझा जाता है, जिसका अर्थ है उसके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं की विभिन्नताओं के बावजूद उसके महत्व एवं गरिमा का ध्यान रखा जाता है। समाज कार्यकर्ता व्यक्ति की क्षमता में विश्वास करता है और व्यक्तियों की विभिन्नताओं को मान्यता देता है। व्यक्ति के आत्म–निर्णय को महत्व दिया जाता है। उसे परिवार और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी समझने का प्रयास करना चाहिए।

समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसमें सहायता मूलक कार्य किये जाते हैं जो वैज्ञानिक ज्ञान प्राविधिक निपूर्णताओं एवं मानव दर्शन का प्रयोग करते हुए व्यक्तियों की एक व्यक्ति समूह के सदस्य अथवा समुदाय के निवासी के रूप में उनकी मनोसामाजिक समस्या का अध्ययन एवं निदान करने के पश्चात परामर्श पर्यावरण में परिवर्तन तथा आवश्यक सेवाओं के माध्यम से सहायता करता है ताकि समस्याग्रस्त व्यक्ति अपनी समस्याओं को स्वयं समाधान करने के योग्य हो जाए। समाज कार्य के तीन प्रमुख अंग होते हैं– कार्यकर्ता, सेवार्थी तथा संस्था। समाज कार्य मुख्यतः चार

टिप्पणी

प्रकार के कार्य करता है जो इस प्रकार से हैं– उपचारात्मक, सुधारात्मक, निरोधात्मक तथा विकासात्मक।

एक सामाजिक कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी से न सिर्फ एक मनुष्य के रूप में बल्कि व्यक्तिगत भिन्नताओं वाले मनुष्य के रूप में व्यवहार करना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को प्रत्येक सेवार्थी से वैयक्तिक रूप से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक सेवार्थी के लिए परिस्थितियां और समस्याएं विशिष्ट हो सकती हैं।

सुधारात्मक समाज कार्य के अंतर्गत व्यक्ति के विचलित व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसी सहायक प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन लाने का कार्य किया जाता है जो उसके व्यक्तिगत समायोजन में सहायक सिद्ध होता हो। इसके माध्यम से अपराधी व्यक्ति के पर्यावरण एवं परिस्थितियों में परिवर्तन तथा संशोधन द्वारा तथा अनेक प्रकार के निरोधात्मक एवं सुधारात्मक साधनों को उपलब्ध करवाकर उनमें परिवर्तन लाते हैं। सुधारात्मक समाज कार्य उन व्यक्तियों को सामाजिक आचरणों के पालन करने में सहायता देते हैं जो विचलनपूर्ण व्यवहार करने लगते हैं। इसमें सामाजिक कार्यकर्ता अन्य सुधार कार्यकर्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों के साथ मिलकर कार्य करता है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **आचार संहिता** : नियमावली।
- **मानदण्ड** : कसौटी।
- **अवांछनीय** : अनेपक्षित।
- **वेत्ता** : जानकार।
- **क्रियाकलाप** : गतिविधि।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. समाज कार्य का वैज्ञानिक आधार क्या है?
2. सामुदायिक मान्यता एवं अनुमोदन से क्या आशय है?
3. क्षेत्र कार्य के उद्देश्य क्या हैं?
4. ब्राउन ने समाज कार्य के क्या उद्देश्य बताए हैं?
5. अ–शाब्दिक संप्रेषण कौशल से क्या आशय है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. समाज कार्य की प्रकृति स्पष्ट करते हुए इसके क्षेत्रों पर प्रकाश डालिए।
2. 21वीं शताब्दी में समाज कार्य का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
3. भारत में सामाजिक कार्य का दर्शन रेखांकित कीजिए।

4. सामाजिक कार्य के विविध सिद्धांतों का उल्लेख कीजिए।
5. सामाजिक कार्य के प्रकार्यों पर प्रकाश डालिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: Routledge Falmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 5 मानव अधिकार और समाज कार्य

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मानव अधिकार : अर्थवत्ता एवं ऐतिहासिकता
5.2.1 मानवीय अधिकार के सिद्धांत या मत
5.2.2 मानव अधिकारों का घोषणा पत्र (गाथा)
5.2.3 मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा
5.2.4 पश्चिम बनाम तीसरी दुनिया
5.2.5 मानव अधिकारों की अविभाज्यता और अन्योन्याश्रयता
5.2.6 भारत में मानवाधिकार : कुछ मुद्दे
5.3 स्वैच्छिक संगठन एवं समाज कार्य
5.3.1 स्वैच्छिक संगठनों की अवधारणा
5.3.2 गैर–सरकारी संगठनों की क्षमता, चुनौतियां, पारंपरिकता एवं विशिष्टता
5.3.3 भारत में स्वैच्छिक सेवाओं का प्रचलन
5.3.4 गैर–सरकारी संगठन
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

मानव अधिकार मनुष्य की एक ऐसे जीवन के लिये बढ़ती हुई मांग पर आधारित है जिसमें मानव में अन्तर्निहित गरिमा तथा गुण का सम्मान हो तथा उसे संरक्षण प्रदान किया जाय।

मानव अधिकारों को कभी–कभी मौलिक या मूल नैसर्गिक अधिकार भी कहते हैं क्योंकि ये वे अधिकार हैं जिन्हें किसी विधायनी या सरकार के किसी कृत्य द्वारा छीना जा सकता है तथा बहुधा उनका वर्णन या उल्लेख संविधान में किया जाता है। नैसर्गिक अधिकारों के रूप में उन्हें ऐसे अधिकारों के रूप में देखा जाता है जो प्रकृति से ही पुरुषों एवं महिलाओं के हैं। उनका वर्णन 'सामान्य अधिकारों' (Commomn Rights) में किया जाता है, जो विश्व के पुरुष एवं महिलाओं के समान रूप से उसी प्रकार होंगे जैसे उदाहरण के लिये इंग्लैण्ड का कॉमन लॉ विधि (Common Law) जो स्थानीय प्रथाओं से भिन्न ऐसे नियमों तथा प्रथाओं का समूह है जो पूरे देश को नियंत्रित करता है या उस पर लागू होता है।

प्रस्तुत इकाई में हम मानवाधिकार की अर्थवत्ता स्पष्ट करते हुए इसके विविध पक्षों का विवेचन करेंगे और साथ ही स्वैच्छिक संगठन एवं समाज कार्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

टिप्पणी

- मानव अधिकार क्या है? यह समझ पाएंगे;
- भारत में मानवाधिकार का स्वरूप स्पष्ट कर पाएंगे;
- स्वैच्छिक संगठन एवं समाज कार्य का विषय–विश्लेषण कर पाएंगे;

5.2 मानव अधिकार : अर्थवत्ता एवं ऐतिहासिकता

मानव अधिकारों से अभिप्राय मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है जिसके सभी मानव प्राणी हकदार हैं। अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के उदाहरण के रूप में जिनकी गणना की जाती है, उनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकार सम्मिलित सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार हैं जैसे कि जीवन और आजाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानून के सामने समानता एवं आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकारों के साथ ही साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार।

डी.डी. बसु के अनुसार ''वे न्यूनतम अधिकार जो प्रत्येक मनुष्य के पास होने चाहिए, मानवाधिकार कहलाते हैं।''

स्थूल रूप से मानव अधिकार वे मौलिक तथा अन्यसंक्राम्य (inalienable) अधिकार हैं जो मनुष्यों के जीवन के लिए आवश्यक हैं। मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव के हैं क्योंकि वह मानव है, चाहे वह किसी भी राष्ट्रीयता, प्रजाति या नस्ल, धर्म, लिंग का हो। अतः मानव अधिकार वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है तथा जिनके बिना हम मानवों की भांति जीवित नहीं रह सकते हैं। मानवीय अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताएं हमें गुणों, ज्ञान, प्रतिभा तथा अन्तर्विवेक का विकास करने में सहाययक होते हैं, जिससे हम भौतिक, आध्यात्मिक तथा अन्य आवश्यकताओं की संतुष्टि कर सकें।

भारतीय संविधान में मानव अधिकार

मानवाधिकार प्रत्येक मानव को प्रदत्त की जानेवाली वे आर्थिक, राजनीतिक शक्तियां हैं, जिनके द्वारा वह मानवोचित जीवन जी सके, सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

सब सुखी रहें, किसी को भी दुख न हो का उद्घोष करने वाले भारत में आज इसकी बहुत बड़ी जनसंख्या मानवाधिकारों से वंचित है। आये दिए पीड़ित, प्रताड़ितों के पक्ष में राष्ट्रीय एवं राज्य मानवाधिकार आयोग से संबंधित अभिकरण अपना अभिमत पहुंचाते हैं। पीड़ितों को न्याय दिये जाने की वकालत करते हैं। ये मानवाधिकार देश में भी सभी को मिले, यह सरकारी एवं गैर–सरकारी सभी संगठनों की मंशा भी है। इन मानवाधिकारों को दिलाने हेतु देश की कार्यपालिका एवं न्यायपालिका ने समय–समय पर उचित कदम भी उठाए हैं। इस सबके बावजूद मानवाधिकारों की प्राप्ति समाज के हर वर्ग, हर सदस्य को न होना, बहुत बड़ी चिंता का विषय है। यहां विचारणीय यह है कि मानव अधिकारों की बात विश्व स्तर पर कब, कहां शुरू हुई। इस दिशा में क्या वैधानिक कदम उठाए गये? भारत में मानवाधिकारों की दिशा में क्या प्रयास हुए हैं? मानवाधिकार सीाी को मिले, इस दिशा में शिक्षा–क्षेत्र में क्या अपेक्षाएं हैं? आदि–आदि।

टिप्पणी

10 दिसंबर को प्रति वर्ष मानवाधिकार दिवस मानया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1995–2004 के दशक को 'मानवाधिकार दशक' घोषित किया और सभी देशों का मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आह्वान किया। इतना सब होने पर भी मानवाधिकारों के हनन की ढेर सारी घटनाएं सामने आ रही हैं। इन घटनाओं से यह तो लगता है कि इस 'मानवाधिकार दिवस' की औपचारिकताएं पूरी की जा रही हैं। इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाते, क्रियान्वित नहीं करते, यह कथन विश्व में घटी निम्नांकित घटनाओं से पुष्ट होता है, जो यह बताती है कि मानवाधिकार के उल्लंघन की स्थिति बहुत भयावह है।

मानवाधिकार संगठनों के आंदोलनों को नैतिक बल प्राप्त हो रहा है। अधिकांश देशों की सरकारें यह मानने लगी हैं कि इन आंदोलनों को दबाना कठिन है। मानवाधिकार की रक्षा के समथ्रन में जनमत बना रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी एजेंसी भी इनके पक्ष में खड़ी है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय मानवाधिकारों के उल्लंघन का संज्ञान ले रहा है। विभिन्न उपचारात्मक उपाय भी सुझाये गये हैं। विभिन्न देशों ने भी अपने–अपने देश में मानवाधिकार आयोगों का गठन किया है। सारांश यह है कि आयोग गठन, अधिकारों की परिभाषा, व्याख्या आदि का काम पूरा हो गया। अब अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों के पक्ष में वातावरण बन रहा है, किंतु सत्तानशीनों, सत्ता के केंद्रों, धन–बलियों एवं बाहुवलियों पर अभी कोई दबाव नहीं बन पाया है। परिणामतः अभी मानवाधिकार की बात कुछ जाग्रत मानव–समूहों तक सीमित है। यही कारण है कि विश्व की एवं विभिन्न देशों की जनता अभी भी मानवाधिकारों से वंचित है। आज भी जातीय भेद–भाव, आतंकवादी दबाववादी गतिविधियां, सैनिक शासन, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, क्षेत्रीयता, राष्ट्रवाद एवं प्राचीन सामाजिक परंपराएं मानवाधिकारों के मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ी हुई हैं।

भारत के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु प्रयास

प्राचीन भारतीय समाज–व्यवस्था जो गुण–कर्म आधारित खुली समाज–व्यवस्था थी। उसमें प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के आरंभ में अपना कर्म–क्षेत्र अपने गुणानुसार चुनने का अधिकार था। चूंकि कर्म का आधार गुण था, अतः विकास के पूरे अवसर थे। लिंग–भेद व्यवधान नहीं उपस्थित करता था। पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं की रक्षा का दायित्व सभी का था। संकीर्णता नहीं थी, तथाकथित क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद नहीं था। सारी बसुधा को कुटुम्ब मानने की बात व्यवहार में थी। हम सभी के सुख की कामना एवं प्रयास करते थे। दुर्भाग्य यह है कि हमारा यह अतीत अब हमारे देश में कहीं देखने को नहीं मिलता। लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व से हम जिन दौरों से गुजरे, उन्होंने हमारे राष्ट्र को पूर्णतः समाप्त कर दिया। आज हम जाति, संप्रदाय, अमीर–गरीब, शहरी–ग्रामीण, शिक्षित–अशिक्षित, सबल–निर्बल के वर्गों में बंटे हुए हैं। हमारी स्थिति बहुत से विकसित देशों से जाति, वर्ग आदि के मामले में बदतर है। आज वैश्विक विषयों में नेतृत्व पश्चिम का है। वहां कोई उपक्रम होता है, हम सभी उसका अनुसरण करते हैं। मानवाधिकारों के क्षेत्र में भी यही स्थिति है।

भारतीय संविधान एवं मानवाधिकार

आजादी के बाद हमने जिस भारतीय संविधान को 26 जनवरी, 1950 में लागू किया उसमें उन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों को सम्मिलित किया गया है,

टिप्पणी

जिनका उल्लेख संयुक्त राष्ट्र संघ के 1948 के घोषणा–पत्र में किया गया है। इन्हें मौलिक अधिकारों के रूप में भारतीय संविधान में विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इन अधिकारों के हनन होने पर कोई भी नागरिक इन्हें प्राप्त करने के लिए न्यायपालिका का दरवाजा खटखटा सकता है।

मानवाधिकारों के लिए समाज कार्य द्वारा उठाये जाने वाले कदम

आज देश में प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंधन सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत स्थानीय समुदाय को सौंप दिया गया है। प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय समुदाय की स्थानीय समुदाय द्वारा प्रबंधित क्रिया है। स्थानीय समुदाय के लोग इसकी योजना बनाते हैं, उसका क्रियान्वित करते हैं और इसका अनुसरण करते हैं। इसके पाठ्यक्रम निर्माण में भी उनका योगदान रहता है। ऐसी संस्थिति में मानवाधिकारों के संरक्षण की जानकारी स्थानीय समुदाय के स्तर पर स्थानीय विद्यालय में, स्थानीय समुदाय के प्रौढ़ लोगों को दी जानी चाहिए।

यह कार्यक्रम साक्षरता एवं प्रारंभिक शिक्षा के कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बने, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस दिशा में निम्नांकित कदम बढ़ाये जा सकते हैं–

1. स्थानीय समुदाय के जागरूक शिक्षित समाज सेवारत एवं सेवानिवृत्त व्यक्तियों के लिए मानवाधिकार संरक्षण संबंधी आमुखीकरण कार्यशालाओं का आयोजन किया जाये।
2. ये कार्यशालएं एक–दो दिवसीय हों। संकुल–खण्ड स्तर पर कार्यरत लोगों को आमुखीकरण, प्रशिक्षण का दायित्व सौंपा जाए।
3. उपयुक्त रूप में प्रशिक्षित व्यक्तियों का समूह मानवाधिकार संरक्षण सप्ताह के अंतर्गत मानवाधिकार संबंधी ज्ञान एवं क्रियाओं से आप जनता को अवगत कराएं।
4. ग्राम स्तर पर ग्राम–संकुल स्तर पर मानवाधिकार संरक्षण दल का गठन हो। दल के व्यक्तियों का पूर्ण प्रशिक्षण हो।

मानवाधिकार–संरक्षण को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाना

अभी हाल में जिस तरह उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर पर्यावरण अध्ययन को कक्षा 1 से 12 तक पाठ्यक्रम में एक अनिवार्य विषय का दर्जा दिया गया है, उसी तरह 'मानवाधिकार अध्ययन' विषय को भी सामाजिक विज्ञान विषयान्तर्गत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाए। शिक्षा का राष्ट्रीय अभिकरण एन.सी.ई.आर.टी. कक्षा 1 से 12 तक के लिए मॉडल पाठ्यक्रम तैयार करें और राज्य सरकारें उन्हें अपनी परिस्थितियों के अनुरूप बनाकर लागू करें। यह पाठ्यक्रम शैक्षिक सन् 2005–2006 से लागू कर दिया जाना चाहिए। इससे देश की भावी पीढ़ी के नागरिक मानवाधिकारों सत्र के विषयों में परिचित होकर उनके संरक्षण हेतु कार्यवाही कर सकेंगे।

स्वयंसेवी संगठनों एवं मीडिया की सक्रियता हेतु प्रशिक्षित कार्यक्रमों का आयोजन

राजय सरकारों के शिक्षा विभाग, स्वयं सेवी संगठनों एवं मीडिया के लोगों के लिए लक्ष्यबद्ध प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करें। इनके द्वारा चलाए जा रहे अभियानों में शिक्षिक एवं शिक्षार्थियों की सहभागिता सुनिश्चित करें। शिक्षक–शिक्षार्थी ऐसे अभियानों के अभिन्न अंग बनें।

टिप्पणी

पुलिसकर्मियों अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण शिविर

पुलिस का काम संरक्षण का है, रक्षा का है। अतः पुलिसकर्मियों एवं अधिकारियों के लिए तहसली स्तर से जिला स्तर तक मानव अधिकारों के संरक्षण संबंधी प्रशिक्षण शिविर लगाए जाएं। इन शिविरों का आयोजन शिक्षा विभाग, राज्य मानवाधिकार आयोग के सहयोग से करें। प्रतिष्ठित स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधियों एवं जागरूक नागरिकों को भी इन प्रशिक्षण शिविरों में सहयोगी बनाया जा सकता है।

सारांश यह है कि 'मानवाधिकारों की शिक्षा' औपचारिक, अनौपचारिक, शिक्षा प्रक्रिया का सहज अनिवार्य अंग बने। समाज के सभी वर्गों को मानवाधिकारों एवं उनके संरक्षण की प्रक्रिया से अवगत कराया जाए सभी संब; विभागों के कर्मचारी, अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाएं। मानवाधिकारों की शिक्षा हमारे जीवन का सहज अभिन्न अंग बन जाए। इसके लिए इनकी शिक्षा–संबंधी प्रक्रिया को अनौपचारिक, क्रियात्मक एवं रुचिकर बनाना होगा। औपचारिकताओं के निर्वहन से काम नहीं बनेगा। इसके लिए शिक्षा–विभाग में पृथक प्रकोष्ठ स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकोष्ठ में प्रतिबद्ध, निष्ठावान शिक्षकों को रखा जाए।

डॉ. अम्बेडकर के समाज कार्य से संबंधित हमारी संघीय व्यवस्था दुनिया में अनूठी इसलिए भी है कि हमने कार्यपालिका, न्यायपालिका व विधायिका के क्षेत्रों का विधिवत बंटवारा किया है। राष्ट्र की एकता के लिए हमने मूलभूत मामलों में समानता दर्शायी है।

डॉ. अम्बेडकर ने नीति निर्देशक तत्वों को संविधान में समाविष्ठ किये जाने को अद्भुत उदाहरण बताते हुए कहा कि केवल आयरिश संविधान में इस तरह की बात है। उन्होंने इस अन्याय के समावेश का बचाव करते हुए कहा कि इसमें कानूनी बंदिशें भले न हों लेकिन यह इंस्ट्रूमेंट ऑफ इंस्ट्रक्शन है। यह विधायिका और कार्यपालिका को इंस्ट्रक्शन है, जिसका स्वागत होना चाहिए। जहां कहीं भी समान्यतः अच्छी सरकार शांति और व्यवस्था धारक सरकार की बात हो वहां जरूरी है कि उसके सुचारु रूप से संचालन के लिए एक दिशा–निर्देश भी हो। इसमें लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप एक निर्देश तैयार किया गया है। इन निर्देशों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसा करने पर न्यायपालिका के समक्ष जवाबदेही होगी। वे शक्तियां जो संविधान के अनुसार सत्ता में होंगी इन निर्देशों की उपेक्षा करने पर जनता के प्रति जवाबदेही होंगी। इसमें केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के अधिकारों के बीच एक संतुलन स्थापित किया गया है। इस संविधान के देशी रियासतों और केन्द्र के बीच संबंधों को लेकर होने वाली आलोचना का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, हमने इन्हें अपनी सभा बनाने की छूट दी है। वे अपना संविधान बना लें, यद्यपि यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए मेरे पास कोई बचाव नहीं है। यह स्थिति भारत के भविष्य के लिए चुनौती है और खतरनाक है। जब तक राज्यों के अधिकार के मामले में दोहरी व्यवस्था रहेगी यह राज्यों के लिए ठीक नहीं है।

समान कार्य में नागरिकों के लिए नागरिक स्वतंत्रता की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए संवैधानिक गारंटी और सुरक्षा प्रदान की गई है, जिसमें धर्म की आजादी छुआछूत को खत्म करना और भेदभाव के सभी रूपों का उल्लंघन करना शामिल है। डॉ. अम्बेडकर ने महिलाओं के लिए व्यापक आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए तर्क दिया और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्ग के

टिप्पणी

सदस्यों के लिए नागरिक सेवाओं, स्कूलों और कॉलेजों में नौकरियों के आरक्षण की व्यवस्था शुरू करने के लिए असेंबली का समर्थन जीता जो एक सकारात्मक कदम था। भारत के सांसदों ने इन उपायों के माध्यम से भारत के निराश वर्गों के लिए सामाजिक–आर्थिक असमानताओं और अवसरों की कमी को खत्म करने की उम्मीद प्रदान की। संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर, 1949 को संविधान अपनाया गया था। अपने काम को पूरा करने के बाद डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा, "मैं महसूस करता हूं कि संविधान साध्य है। यह लचीला है पर साथ ही यह इतना मजबूत भी है कि देश को शांति और युद्ध दोनों के समय जोड़कर रख सके।

डॉ. अम्बेडकर का जीवन भारत के सामाजिक सुधारों के लिए समर्पित था। उन्होंने जातिवाद और अस्पृश्यता के निवारण के लिए जीवन भर कार्य किया। वे राष्ट्रवादी तथा देशभक्त थे और वे भारतीय स्वाधीनता के प्रबल समर्थक थे। परुं स्वाधीनता के राजनीतिक पक्ष को सुदृढ़ करने पर जोर देते थे। उनके अनुसार राजनीतिक स्वाधीनता से पूर्व सामाजिक सुधार आवश्यक है। वे सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन चाहते थे। उन्हें जीवन में अनेक बार अपमान सहना पड़ा था। वस्तुतः जीवन के प्रारंभ में उन्हें घोर अपमान और अमानवीय व्यवहार भुगतना पड़ा था। इससे उनके मन में सवर्णों के प्रति कटुता उत्पन्न हो गई थी। उन्हें हिन्दुओं के व्यवहार और ब्रिटिश शासन की नीति से यह पूर्ण ज्ञान हो गया था कि सभी अछूतों के प्रति उदासीन हैं और अछूत सभी प्रकार से कमजोर हैं ओर वे सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में सवर्णों का मुकाबला करने में असमर्थ हैं। इसलिए अछूतों के उद्धार एवं उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। इसलिए उन्हें दलितों का मसीहा कहा जाता है। अम्बेडकर ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण किया तथा यह कहकर आलोचना की कि यह व्यवस्था असमानता पर आधारित है। जाति, वर्ग, कुल तथा वंश के आधार पर इस पिरामिड रूपी व्यवस्था के शीर्ष पर एक वर्ग अपना आधिपत्य तथा वर्चस्व स्थापित किये हुए है, जिसके कारण अन्य वर्ग अपने सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित हैं। यही उनके शोषण का भी कारण है। इस प्रवृत्ति के कारण हिन्दू समाज का निरंतर विघटन हो रहा है। आपसी द्वेष तथा तनाव के कारण संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है जो राष्ट्रीय एकता के लिए एक गंभीर खतरा उत्पन्न कर रही है। अतः अम्बेडकर ने इस दिशा में चिंतन किया तथा जातिगत भेदभाव को समाप्त करके राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में महान प्रयत्न किये।

डॉ. अम्बेडकर ने श्रमिकों के हितों को भी महत्वपूर्ण समझा और उन्हें मिल–मालिकों के शोषण से बचाया। उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए श्रमिकों का एक स्वतंत्र दल बनाया।

डॉ. अम्बेडकर के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि वे अछूत तथा दलितों के लिए समर्पित सामाजिक और राजनीतिक विचारक थे। उनका उद्देश्य अछूतों, दलितों तथा श्रमिकों का उत्थान करना था तथा वे सामाजिक और राजनीतिक भेदभाव मिटाकर समानता स्थापित करना चाहते थे। संवधान में धर्म निरपेक्ष राज्य तथा अस्पृश्यता अपराध अधिनियम उन्हीं की देन है। वे प्रबल देशभक्त थे तथा राष्ट्र की एकता के लिए प्रबल समर्थक थे। वे प्रारंभ से ही राजनीतिक स्वतंत्रता के भी समर्थ रहे परंतु उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य अछूतों के लिए सम्मानपूर्ण जीवन की परिस्थितियां उत्पन्न करना

तथा समाज को समानता के आधार पर व्यवस्थित करना था, जिससे समाज में व्याप्त ऊंच–नीच की भावना समाप्त हो और जाति के आधार पर भेदभाव तथा शोषण न हो।

डॉ. वी.पी. वर्मा के अनुसार, "इसमें संदेह नहीं कि वे देशभक्त थे और राष्ट्रीय एकीकरण के विरोधी नहीं थे। उनके विचारों और कार्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि वे अछूतों तथा दलितों के मसीहा थे।"

डॉ. अम्बेडकर सैद्धांतिक राजनीतिक चिंतक नहीं थे। वे एक कर्मयोगी थे तथा भारतीय दलित वर्गों के राजनीतिक नेता थे। वे उदारवादी व्यक्ति थे और उनकी आस्था उदारवादी विचारधारा में थी। वे व्यक्तिगत संपत्ति और संसदीय व्यवस्था को व्यक्तित्व निर्माण के लिए अनिवार्य मानते थे एवं समाज कल्याण के लिए सामाजिक कार्य को महत्वपूर्ण मानते थे।

डॉ. अम्बेडकर राज्य को एक आवश्यक राजनीतिक संगठन मानते हैं परंतु वे इसे समाज से सर्वोच्च नहीं मानते हैं। उनके अनुसार राज्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करता है तथा वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषमताओं को दूर करता है। वह आंतरिक व्यवस्था करता है तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा करता है। राज्य ही विचार अभिव्यक्ति की सुविधान प्रदान करता है तथा धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करता है। उनके अनुसार राज्य तो समाज सेवा का एक साधन है।

इतिहास

अनेक प्राचीन दस्तावेजों एवं बाद की धार्मिक और दार्शनिक पुस्तकों में ऐसी अनेक अवधारणाएं हैं जिन्हें मानवाधिकार के रूप में चिन्हित किया जा सकता है। ऐसे प्रलेखों में उल्लेखनीय है अशोक के आदेश पत्र, मुहम्मद द्वारा निर्मित मदीना का संविधान (meesak-e-madeena) आदि।

आधुनिक मानवाधिकार कानून तथा मानवाधिकार की अधिकांश अपेक्षाकृत व्यवस्थाएं समसामयिक इतिहास से संबंधित हैं। द ट्वेल्व आर्टिकल्स ऑफ द ब्लैक फॉरेस्ट (1525) को यूरोप में मानवाधिकारों का सर्वप्रथम दस्तावेज माना जाता है। वह जर्मनी के किसान विद्रोह (Peasant's ar) में स्वाबियन संघ के समक्ष उठाई गई किसानों की मांग का ही एक हिस्सा है। ब्रिटिश बिल ऑफ राइट्स ने युनाइटेड किंगडम में सिलसिलेवार तरीके से सरकारी दमनकारी कार्रवाइयों को अवैध करार दिया। 1776 में संयुक्त राज्य में और 1789 में फ्रांस में 18वीं शताब्दी के दौरान दो प्रमुख क्रांतियां हुईं, जिनके फलस्वरूप क्रमशः संयुक्त राज्य की स्वतंत्रता की घोषणा एवं फ्रांसीसी मनुष्य की मानव तथा नागरिकों के अधिकारों की घोषणा का अभिग्रहण हुआ। इन दोनों क्रांतियों ने ही कुछ निश्चित कानूनी अधिकारों की स्थापना की। कई देशों में अपने 'मानवाधिकारों' को लेकर अक्सर विवाद बना रहता है। यह समझ पाना मुश्किल हो जाता है कि क्या वाकई में मानवाधिकारों की सार्थकता है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि तमाम प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर सरकारी और गैरसरकारी मानवाधिकार संगठनों के बावजूद मानवाधिकारों का परिदृश्य तमाम तरह की विसंगतियों और विद्रूपताओं से भरा पड़ा है। किसी भी इंसान की जिंदगी, आजादी, बराबरी और सम्मान का अधिकार है। भारतीय संविधान इस अधिकार की न सिर्फ गारंटी देता है, बल्कि इसे तोड़ने वाले को अदालत सजा देती है।

टिप्पणी

5.2.1 मानवीय अधिकार के सिद्धांत या मत

भूतकाल में व्यक्तियों के अधिकारों जैसे मनुष्य जाति के अधिकार, नैसर्गिक अधिकार या मानवीय अधिकार को स्पष्ट करने हेतु कुछ मत या सिद्धांतों (Theories) को प्रभावित किया गया। इन सिद्धांतों को संक्षेप में यहां दिया जा रहा है–

1. **नैसर्गिक विधि सिद्धांत (Natural Law Theory):** डायस (Dias) ने उचित ही लिखा है कि नैसर्गिक विधि सिद्धांत के साथ इतने महान् व्यक्ति सम्बद्ध हैं, जितने और किसी भी सि़द्धांत के साथ नहीं हैं क्योंकि इस सिद्धांत ने सभी युगों के कुछ महानतम विचारकों को अपनी ओर आकर्षित किया है। नैसर्गिक विधि को जन्म देने का श्रेय ग्रीक लोगों को जाता है। इस सिद्धांत ने ग्रीस के महान विद्वानों–सोफोक्लीज (Sophocles) तथा अरस्तु (Aristotle) जैसे महान विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया है। ग्रीक विद्वानों के पश्चात रोमन लोगों ने एक अन्य विविध प्रणाली का विकास किया, जिसे जस जेन्टियम (Jus Gentium) कहा गया। इस प्रणाली को सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाली प्रणाली कहा गया। रोम के गणतंत्रीय युग में जस जेन्टियम की नैसर्गिक विधि द्वारा इसे पुनः अर्जित गया। नैसर्गिक विधि को रोम में जस नैचुरेल (Jus Naturale) भी कहा जाता था। ब्राइरली के अनुसार, रोमन लोगों के अनुसार, ''जस नैचुरेल'' का तात्पर्य ऐसे सिद्धांतों के समूह से था जिन्हें मानव आचरण को नियंत्रित करना चाहिए क्योंकि वह मनुष्य की प्रकृति, एक तर्कसंगत एवं सामाजिक जीव के रूप में निहित है। नैसर्गिक विधि उस बात की अभिव्यक्ति है जो सही है उसके विरुद्ध जो केवल समीचीन या कालौचित्य एक विशिष्ट समय या स्थान के लिए है; यह वह है जो युक्तियुक्त है उसके विरुद्ध जो मनमाना है; यह वह है जो नैसर्गिक या स्वाभाविक है उसके विरुद्ध जो सुविधाजनक है, तथा जो सामाजिक अच्छाई या भलाई के लिये है उसके विरुद्ध जो व्यक्तिगत इच्छानुसार है। अतः प्राकृतिक या नैसर्गिक विधि मनुष्य की प्रकृति की तार्किक एवं युक्तियुक्त आवश्यकताओं पर आधारित थी। दूसरे शब्दों में, उक्त सिद्धांत प्रकृति के अनुसार थे तथा वे अपरिवर्तनीय तथा शाश्वत थे।

   प्राकृतिक अधिकार का सिद्धांत उपर्युक्त प्राकृतिक विधि के सिद्धांत से निकाला गया है। प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत आधुनिक मानवीय अधिकारों से निकट रूप से संबंधित है। इसके मुख्य प्रर्वतक जान लॉक (John Locke) थे। उनके अनुसार, जब मनुष्य प्राकृतिक दशा में था तब महिलाएं एवं पुरुष स्वतंत्र स्थिति में थे तथा अपने कृत्यों को निर्धारित करने के लिये योग्य थे तथा समानता की दशा में थे। लॉक ने यह भी कल्पना की कि ऐसी प्राकृतिक दशा में कोई भी किसी अन्य की इच्छा या प्राधिकार के अधीन नहीं था। तत्पश्चात् प्राकृतिक दशा में जोखिमों एवं असुविधाओं से बचने के लिये उन्होंने एक समुदाय तथा राजनीतिक निकाय स्थापित किया। परन्तु उन्होंने कुछ प्राकृतिक अधिकार जैसे जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार तथा सम्पत्ति का अधिकार अपने पास रखे। यह सरकार का कर्तव्य था कि वह अपने नागरिकों के प्राकृतिक अधिकारों का सम्मान एवं संरक्षण करे। वह सरकार जो इसमें असफल रही या जिसने अपने कर्तव्य में उपेक्षा बरती अपने पद या कार्यालय की वैधता खो दी।

यहां पर नोट करना वांछनीय होगा कि प्राकृतिक विधि एवं प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत की धारणा में भी विभिन्न समयों में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन आया।

टिप्पणी

2. **अस्तित्ववाद या राज्य के प्राधिकार का सिद्धांत (Positivism or the Theory of the Authority of State):** अस्तित्ववादियों ने अधिकारों के विषय में एक भिन्न मत अपनाया। अस्तित्ववाद अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दियों में प्रचलित था। अस्तित्ववादी यह विश्वास करते थे कि यदि विधि उपयुक्त विधायनी या प्रभुत्वसम्पन्न शासक द्वारा निर्मित की गयी है तो लोग उसे मानने को बाध्य होंगे चाहे वह युक्तियुक्त या अयुक्तियुक्त हो। अस्तित्ववादी इस विधि को लॉ पाजिटिवम (Law Positivum) अर्थात् ऐसी विधि कहते थे जो वास्तव या तथ्य में, विधि है न कि ऐसी विधि जिसे होना चाहिए (ought) था। बायन्कर शोएक (Bynker Shoek) इस विचारधारा के एक प्रमुख प्रर्वतक थे। अस्तित्ववादियों के अनुसार, मानवीय अधिकारों का स्रोत ऐसी विधिक प्रणाली है, जिसमें अनुशास्ति होती है। उन्होंने 'है' (is) और 'होना चाहिए' (ought) के अन्तर पर बहुत बल दिया तथा प्राकृतिक विधि के प्रवर्तकों की आलोचना की, जिन्होंने उस अन्तर का भुला दिया। अस्तित्ववादी मत के एक आधुनिक प्रर्वतक प्रो.एच.एल.ए. हार्ट (Prof. H.L.A. Hart) हैं। उनके अनुसार, विधि की अवैधता तथा विधि कि नैतिकता में अन्तर होता है। यही प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत तथा अस्तित्ववादी सिद्धांत में मूल अंतर है। अस्तित्ववादियों के अनुसार, विधि के वैध होने के लिये यह आवश्यक है कि उसे एक उपयुक्त विधायनी प्राधिकार या शक्ति द्वारा अधिनियमित किया जाये। ऐसी विधि वैध रहेगी चाहे वह अनैतिक ही क्यों न हो।

3. **मार्क्सवादी सिद्धांत (Marxist Theory):** व्यक्तियों के अधिकारों के बारे में मार्क्सवादियों की धारणा है कि व्यक्तियों के अधिकार पूर्ण समुदाय के अधिकारों से पृथ्क नहीं होते हैं। उनके अनुसार केवल समुदाय या समाज के उत्थान से ही व्यक्तियों को उच्च स्वतंत्रताएं प्राप्त हो सकती हैं। इस सिद्धांत के. दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्तियों की मूल आवश्यकताओं की संतुष्टि भी सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के अधीन है। उनके अनुसार, व्यक्तियों के अधिकारों की धारणा एक पूंजीवादी भ्रम है। उनके अनुसार, विधि, नैतिकता, प्रजातंत्र, स्वतंत्रता आदि की धारणाएं ऐतिहासिक कोटियों में आती हैं तथा जिनकी अन्तर्वस्तु या विषयवस्तु समाज या समुदाय के जीवन की दशाओं से निर्धारित होती है। धारणाओं एवं विचारों में परिवर्तन समाज में रहने वाले लोगों के जीवन में होने वाले परिवर्तनों के साथ होते हैं। पिछले दो दशकों में मार्क्सवादियों की धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

4. **न्याय पर आधारित सिद्धांत (Theories based on Justice):** इस सिद्धांत के मुख्य प्रवर्तक जॉन राल (John Rawl) हैं। उनके अनुसार, सामाजिक संस्था का प्रथम गुण न्याय है। उसके मतानुसार, मानवीय अधिकारों को समझने के लिये न्याय की भूमिका निर्णायक है। वास्तव में मानवीय अधिकार न्याय का लक्ष्य है। न्याय के सिद्धांतों द्वारा समाज की मूल संस्थाओं में अधिकारों एवं कर्तव्यों को समनुदेशित किया जाता है तथा इसके द्वारा सामाजिक सहयोग के लाभ एवं भार

टिप्पणी

उपयुक्त रूप से विभाजित किये जा सकते हैं। न्याय के सिद्धांतों के पीछे न्याय की सामान्य धारणा औचित्य की है। न्याय पर आधारित सिद्धांत औचित्य (Fairness) की धारणा से ओतप्रोत है। न्याय एवं औचित्य की धारणाएं सामाजिक लक्ष्यों जैसे स्वतंत्रता एवं अवसर, आय तथा धन तथा आत्म–सम्मान के आधार जो समान रूप से विभाजित किये जाएं जब तक कि सबसे कम अनुग्रहित (Least favoured) के लाभ के लिए कोई अपवाद न किया जाये, को निर्धारित करने में सहायक होते हैं।

5. **समानता के सम्मान तथा चिंता पर आधारित सिद्धांत (Theory based on equality of Respect and concern):** मानव अधिकारों का यह सिद्धांत समानता के सम्मान तथा चिंता पर आधारित है। इस सिद्धांत के प्रवर्तक डोवोरकिन (Dovorkin) हैं। इस सिद्धांत का आधार यह भी है कि सरकार को अपने सभी नागरिकों की समान चिंता तथा सम्मान करना चाहिए। डोवोरकिन ने उपयोगिता के सिद्धांतों (Utilitarian principles) का अनुमोदन करते हुए कहा है कि प्रत्येक को एक गिना जा सकता है तथा किसी को भी एक से अधिक नहीं गिना जा सकता है। उन्होंने सामाजिक कल्याण के लिये राज्य हस्तक्षेप के विचार का भी अनुमोदन किया। उनके मतानुसार, स्वतंत्रता का अधिकार बहुत ही अस्पष्ट है परन्तु कुछ विनिर्दिष्ट स्वतंत्रताएं हैं जैसे व्यक्त करने का अधिकार, पूजा करने का अधिकार तथा व्यक्तिगत तथा लैंगिक सम्बधों के सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध विशेष संरक्षण की आवश्यकता है। यदि स्वतंत्रताओं की उपयोगिता की गणना या बिना नियंत्रित गणना के लिये छोड़ दिया जाये तो संतुलन सामान्य हित के बजाय नियंत्रित या परिसीमन के पक्ष में होगा।

5.2.2 मानव अधिकारों का घोषणा पत्र (गाथा)

मानवाधिकारों की अवधारणा इतिहास की लंबी अवधि में विकसित हुई। यह अवधारणा सत्ता के स्वेच्छाचारी इस्तेमाल को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुई। आरंभ में यह राज्यों के भीतर ही लागू होती थी, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे लागू करने की आवश्यकता थी। राज्यों के भीतर भी यह उच्च वर्गो के अधिकारों तक सीमित लगती थी। वर्ग और नस्ल का ख्याल किये बिना सभी मनुष्यों के अधिकारों के रूप में इस अवधारणा के विकसित होने में लंबा समय लगा। 13वीं सदी का प्रसिद्ध मैग्ना कार्टा राजा व सामंतशाही के बीच का एक समझौता था। हालांकि इसमें कुछ ऐसी धाराएं भी थीं, जो आम लोगों के लिये भी लागू होती थीं, पर इसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन के सामंतों के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों की रक्षा करना था। मानवाधिकारों की इससे अधिक विस्तृत अवधारणा ब्रिटिश क्रांतिकारियों ने पेश की, जब 1989 में राजा को पदच्युत करने तथा उसे मौत के घाट उतारने के बिल ऑफ राइट्स (अधिकार–पत्र) में उन्होंने सभी नागरिकों के न्यूनतम अधिकारों का वर्णन किया। लगभग एक सदी के बाद 1776 में अमेरिकी क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश राजा की दासता से ''अरहमीय'' मानवाधिकारों को शामिल किया। इनमें ''जीवन, स्वतंत्रता और खुशी की तलाश'' के अधिकार शामिल थे। इसके कुछ ही समय उपरांत फ्रांसीसी क्रांतिकारियों को हटाने और मौत के बाद मनुष्य के अधिकारों का घोषणा–पत्र तैयार किया। इसमें उन्होंने घोषित किया कि मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेते रहते हैं और उनके अधिकार बराबर हैं तथा किसी राजनीतिक संघ

टिप्पणी

का उद्देश्य ''स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा और दमन के विरोध'' के मानवाधिकारों की पुष्टि है। इस प्रकार मानवाधिकारों की अवधारणा हमेशा ही क्रांतिकारी अवधारणा रही है।

इस धारणा में एक नया आयाम तब जुड़ा जब धीरे–धीरे और कुछ अंतरालों पर यह महसूस किया जाने लगा कि मानवाधिकारों की रक्षा सिर्फ उन राज्यों की चिंता का विषय नहीं है, जहां इनका उल्लंघन होता है, बल्कि पूरी दुनिया में मानवाधिकारों के संरक्षण और प्रोत्साहन को सुनिश्चित करना समूची मानवता की चिंता का विषय है। मानवाधिकारों के लिए यह अंतर्राष्ट्रीय चिंता हाल का विकास है और संचार के विकास के साथ दुनिया के सिकुड़ने का परिणाम है। इसके निहितार्थों को अभी पूरी तरह समझा नहीं गया है।

मानवाधिकारों की रक्षा, अंतर्राष्ट्रीय प्रयास की सबसे स्पष्ट मिसाल संभवतः दास–प्रथा की समाप्ति के लिए आंदोलन में मिलती है। दास–व्यापार की समाप्ति (यह दास–प्रथा की समाप्ति से अलग है) के उपाय कई देशों ने किये। इसका आरंभ उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन, डेनमार्क और फ्रांस ने किया। बाद में 1833 में सभी ब्रिटिश क्षेत्रों में दास प्रथा की समाप्ति के लिए ब्रिटिश संसद ने एक विधेयक पारित किया। इसके बाद ऐसे ही उपाय अन्य देशों में किये गये और दास प्रथा की समाप्ति के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझौते हुए।

राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशन्स) के तत्वाधान में मानवाधिकारों की रक्षा एवं इन्हें बढ़ावा देने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयास कई गुना बढ़ गये। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर जब राष्ट्र संघ की स्थापना हुई, तब आरंभ में मानवाधिकारों का अर्थ समझा जाता था व्यक्ति की स्वतंत्रता पर से प्रतिबंधों को हटाना। मानवाधिकारों के समर्थक अल्पतम राज्य चाहते थे। एक ऐसा राज्य जो कानून–व्यवस्था को बनाये रखना अपना मुख्य कर्तव्य माने और जो मनमानी गिरफ्तारी, मनमानी तलाशी और संपत्ति की जब्ती तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन की स्वतंत्रता एवं धार्मिक आस्था की स्वतंत्रता पर मनमाना प्रतिबन्ध लगाने से बाज आये। बहरहाल, आमूल परिवर्तनवादी, विचारों के प्रभाव से मानवाधिकारों की अवधारणा में कई सकारात्मक मानवीय आवश्यकताएं शामिल होने लगीं, जिन्हें कभी–कभी गरीबी से मुक्ति, असुरक्षा से मुक्ति और अज्ञान से मुक्ति जैसे रूपों में नकारात्मक ढंग से व्यक्त किया गया। पर इनसे मुक्ति सकारात्मक अधिकार थे मसलन न्यूनतम शिक्षा, लाभदायक रोजगार, बेरोजगारी से सुरक्षा और चिकित्सा पाने के अधिकार। राज्य उचित कदम उठाकर इन अधिकारों को सुरक्षित कर सकता है।

मानवाधिकारों की रक्षा और उन्हें आगे बढ़ाने की दृष्टि से राष्ट्र संघ ने बहुमूल्य कार्य किए। राष्ट्र संघ ने स्त्रियों का व्यापार रोकने, विवाह की आयु बढ़ाने, विभिन्न देशों में बाल कल्याण को सुनिश्चित करने तथा हजारों शरणार्थियों के पुनर्वास के कदम उठाए, लेकिन मानवाधिकारों को आगे बढ़ाने की दृष्टि से राष्ट्रसंघ का मुख्य कार्य अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के जरिये हुआ। जो लोग दोनों विश्व युद्धों के बीच भारतीय मजदूर आंदोलन से जुड़े थे, वे काम के घण्टे सीमित करने, कारखानों में सुरक्षा एवं स्वास्थ्य की स्थितियां सुनिश्चित करने, महिलाओं और बच्चों को काम करने की मानवीय स्थितियां मुहैया कराने तथा आमतौर पर मजदूरों के बारे में उदार सहाकरी नीतियों को आगे बढ़ाने में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के बहुमूल्य कार्यों को जानते हैं।

दोनों विश्व युद्धों के बीच के काल में इटली और जर्मनी में फासिस्टवाद के आधार से लोकतंत्र एवं निजी स्वतंत्रता का गंभीर खतरा पैदा हुआ। फासिस्टवादी देशों के उग्र

टिप्पणी

राष्ट्रवाद ने अपने देश में मानवाधिकारों को नष्ट कर दिया और विदेशों में भी इन्हें नष्ट करने का खतरा पैदा कर दिया। इसके परिणामस्वरूप मित्र–देशों एवं फासिस्टवादी शक्तियों के बीच हुआ सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य रूप से फासिस्टवाद विरोधी युद्ध था। यह स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र की रक्षा के लिए युद्ध था। युद्ध में फासिस्टवादी ताकतों की हार का परिणाम, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक क्रांति के रूप में होना अपरिहार्य था। वास्तव में 1945 में फासिस्टवाद की हार से जो क्रांति आयी, वह विश्व क्रांति थी। इसका दायरा और महत्व फ्रांसीसी तथा रूसी क्रांतियों से अधिक बड़ा था। युद्ध के बाद विश्व के अधिकांश भागों में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का खात्मा हो गया तथा एशिया एवं अफ्रीका के बहुत से अविकसित देशों को आजादी मिली। इस रूप में इतिहास ने फासिस्टवाद–विरोधी शक्तियों के युद्ध–प्रयासों का समर्थन करने वाले लोगों को असली क्रांतिकारी तथा स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र का वास्तविक सेनानी साबित किया है।

युद्ध के फासिस्टवाद–विरोधी चरित्र को देखते हुए मानवाधिकारों की रक्षा तथा इन्हें आगे बढ़ाना मित्र–शक्तियों का मुख्य युद्ध–उद्देश्य होना स्वाभाविक था। जनवरी 1941 में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने घोषणा की कि ''दुनिया में हर जगह'' चार स्वतंत्रताओं– भाषण की स्वतंत्रता, उपासना की स्वतंत्रता, अभाव से स्वतंत्रता, तथा भय से स्वतंत्रता का होना शांति की आवश्यक शर्त है। उसी साल बाद में रूजवेल्ट और चर्चिल ने अटलांटिक घोषणा–पत्र में इसी युद्ध–उद्देश्य की घोषणा की। 1944 में चार बड़ी शक्तियों–अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत संघ और चीन ने डुम्बार्टन ओक्स के प्रस्तावों से सहमति जतायी, जिसमें संयुक्त राष्ट्र के गठन का सपना देखा गया था। उन्होंने फैसला किया कि इस अंतर्राष्ट्रीय संगठन का एक उद्देश्य मानवाधिकारों के सम्मान तथा मौलिक स्वतंत्रताओं को बढ़ावा देना होगा।

युद्ध के बाद सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र घोषणा–पत्र को अंगीकार किया गया। इसमें मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य को प्रमुखता दी गयी। इस घोषणा–पत्र की प्रस्तावना में घोषित किया गया'– ''हमें बुनियादी मानवाधिकारों, व्यक्तियों की गरिमा एवं मूल्यों, बड़े तथा छोटे सभी राष्ट्रों के पुरुषों एवं स्त्रियों के समान अधिकारों की पुनर्पुष्टि के लिए कृतसंकल्प संयुक्त राष्ट्र में शामिल देशों के लोग इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मिलकर प्रयास करने का संकल्प करते हैं।'' घोषणा–पत्र की पहली धारा में ही संयुक्त राष्ट्र के घोषित उद्देश्यों में प्रमुख मानवाधिकारों के लिए सम्मान बढ़ाने तथा प्रोत्साहित करने के निए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तैयार करना बताया गया है। इसके अन्य उद्देश्य हैं– आंतरिक शांति कायम रखना और राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण रिश्तों का विकास। घोषणा–पत्र की धारा 68 में कई आयोगों के गठन का प्रावधान है, जिनमें एक मानवाधिकारों को आगे बढ़ाने के लिए भी है।

इसके अनुरूप 1946 में श्रीमती एलीन रूजवेल्ट की अध्यक्षता में विधिवत मानवाधिकार आयोग बना। पूर्व और पश्चिम में बढ़ते तनाव के बावजूद आयोग ने काम जारी रखा और मानवाधिकार घोषणा–पत्र का प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप को सितंबर 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा को सौंपा गया। प्रारूप में कुछ संसोधन के बाद महासभा ने उसी वर्ष 10 दिसंबर को मानवाधिकारों के विश्व–घोषणा–पत्र को अंगीकार कर लिया। किसी ने इससे असहमति नहीं जतायी। हालांकि साम्यवादी खेमे के देशों, साउदी अरब और दक्षिण अफ्रीका ने मतदान में भाग नहीं लिया।

टिप्पणी

मानवाधिकारों का विश्व–घोषणा–पत्र महासभा द्वारा एक ऐसे रूप में ग्रहण किया गया, जिसे सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के बीच हासिल किया जाना था। आरंभ में इस घोषणा–पत्र के व्यावहारिक महत्व को लेकर गंभीर शंका प्रकट की गई। शंका जताने वालों में वे भी थे, जो मानवाधिकारों के बुनियादी महत्व को स्वीकार करते थे। पिछले दशकों के अनुभवों से यह शंका अवश्य दूर हो गयी होगी। महासभा और संयुक्त राष्ट्र के दूसरे अंगों ने बार–बार घोषणा–पत्र में निहित सिद्धांतों को लागू किया है और उसके अनुरूप कार्यवाही की है। प्रतिस्पर्धी ''घरेलू क्षेत्राधिकार'' का सिद्धांत महासभा को उन मामलों में हस्तक्षेप करने या हस्तक्षेप का प्रयास करने से रोक नहीं सके हैं, जहां मानवाधिकारों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन हुआ है। महासभा ने दक्षिण अफ्रिका में रंगभेद की नीति के प्रति जो रुख अपनाया, वह इस बात की अच्छी मिसाल है।

अब तक घोषणा–पत्र को व्यावहारिक सत्ता–प्राप्त हो चुकी है, जिससे कुछ लोग यह विश्वास करने लगे हैं कि यह लगभग अंतर्राष्ट्रीय कानून का हिस्सा बन चुका है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषणा–पत्र को अंगीकार करने पर टिप्पणी करते हुए प्रो.जोन.पी. हम्फ्रे ने (इवान लुआई संपादित ''द इंटरनेशनल प्रोटेक्सन ऑफ ह्यूमन राइट्स'' में) लिखा, ''हमारे समय के चिंतन पर संयुक्त राष्ट्र के किसी अन्य कानून का इतना प्रभाव नहीं पड़ा। इसमें सर्वोत्तम आकांक्षाए निहित एवं घोषित हैं। संभव है कि यह इतिहास में मुख्य रूप से महान नैतिक सिद्धांतों के व्यक्तव्य के रूप में जीवित रहे। किसी भी अन्य राजनीतिक दस्तावेज या कानूनी उपकरण की तुलना में इसका प्रभाव अधिक गहरा एवं स्थायी है।''

घोषणा–पत्र को जो भी राजनीतिक और कानूनी शक्ति प्राप्त हुई, वह इसकी नैतिक–सत्ता से निकली है और इसकी नैतिक–सत्ता अंतर्राष्ट्रीय जनमत के समर्थन से उपजी है। अंतिम विश्लेषण में कहा जा सकता है कि घोषणा–पत्र में निहित मानवाधिकारों को प्रोत्साहित करने का रास्ता इसके समर्थन में अधिक से अधिक जनमत बनाना ही है।

भारत में आवश्यक मानवाधिकारों को संविधान में मौलिक अधिकारों एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों वाले हिस्सों में शामिल किया गया है। ये अधिकार आज चरम दक्षिणपंथियों के हमले का निशाना हैं। लोकतंत्र समर्थकों और मानवतावादियों के लिए भारत में मानवाधिकार–दिवस मनाने का सर्वोत्तम तरीका यही है वे लोगों को मौलिक अधिकारों और नीति–निर्देशक तत्वों को समझाएं और इन पर अमल के लिए समर्थन जुटाएं।

प्रमुख मानवाधिकार निम्नलिखित हैं–

(1) समानता का अधिकार : समानता का अधिकार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार है और इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति होने के नाते सम्मान और महत्व प्राप्त होना चाहिए और जाति, धर्म व आर्थिक स्थिति के भेद के बिना सभी व्यक्तियों को अपने जीवन का विकास करने के लिए समान सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए। समानता का अधिकार प्रजातन्त्र की आत्मा है और इसके निम्न भेद हैं–

(क) राजनीतिक समानता का अधिकार : इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार बिना किसी पक्षपात के देश के शासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। इस राजनीतिक समानता की प्राप्ति प्रजातन्त्रात्मक

शासन की स्थापना और वयस्क मताधिकार की व्यवस्था द्वारा ही सम्भव है। इसी में यह बात भी शामिल है कि न्याय और कानून की दृष्टि से भी सभी व्यक्ति समान समझे जाने चाहिए।

टिप्पणी

(ख) **सामाजिक समानता का अधिकार** : इसका तात्पर्य यह है कि समाज में धर्म, जाति, भाषा, सम्पत्ति, वर्ण या लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए और व्यक्ति होने के नाते ही समाज में सम्मान प्राप्त होना चाहिए।

(ग) **आर्थिक समानता का अधिकार** : वर्तमान समय में आर्थिक समानता का तात्पर्य यह लिया जाता है कि मानव के आर्थिक स्तर में गंभीर विषमताएं नहीं होनी चाहिए और सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों का न्यायसंगत वितरण किया जाना चाहिए। टॉनी के शब्दों में, ''आर्थिक समानता का अर्थ एक ऐसी विषमता के अभाव से है, जिसका उपयोग आर्थिक दबाव के रूप में किया जा सके।''

(2) स्वतंत्रता का अधिकार—स्वतंत्रता का अधिकार जीवन के लिए परम आवश्यक है क्योंकि इस अधिकार के बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समाज का विकास सम्भव नहीं है। स्वतंत्रता का तात्पर्य उच्छृंखल या नियन्त्रणहीनता न होकर व्यक्ति को अपने विकास के लिए पूर्ण अवसरों की प्राप्ति है। लॉस्की के शब्दों में, ''इसका तात्पर्य उस शक्ति से होता है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने तरीके से बिना किसी बाहरी बन्धन के अपने जीवन का विकास कर सके।''

स्वतंत्रता के अधिकार के भेद निम्नलिखित हैं—

(क) **व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार** : व्यक्तिगत स्वतंत्रता का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपना जीवन विवेक के अनुसार व्यतीत कर सकें। इसके अन्तर्गत यह बात भी सम्मिलित है कि कानून का उल्लंघन किये बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता और न्यायालय द्वारा अभियोग की पुष्टि के बिना उसे बन्दी नहीं बनाया जा सकता। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सबसे बड़ा प्रतिपादक जे. एस. मिल है। उसके शब्दों में, ''स्वयं अपने ऊपर, अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा पर व्यक्ति सम्प्रभु होता है।''

(ख) **विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार** : मानव एक विवेकशील प्राणी है और विचार स्वातन्त्रय मानसिक तथा नैतिक उन्नति की सर्वोच्च शर्त है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इव्छानुसार विचार रखने हैं। भाषण, लेख, आदि के माध्यम से इन विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। सुकरात ने विचार स्वातन्त्रय त्यागने की अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर समझा था और मिल्टन, मिल, बाल्टेयर, लॉस्की आदि सभी विद्वानों ने विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का महत्व स्वीकार किया है।

(ग) **अन्तःकरण की स्वतंत्रता का अधिकार** : अन्तःकरण की स्वतन्त्रा या धर्मिक स्वतंत्रता का अभिप्राय है कि व्यक्ति को अपने विवेक के अनुसार धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतन्त्रा होनी चाहिए और एक व्यक्ति पर उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी प्रकार का धर्म नहीं लादा जा सकता है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के अंतःकरण से होता है और इस कारण इस संबंध में किसी

टिप्पणी

प्रकार का बाहरी दबाव नितान्त अनुचित है, किन्तु धार्मिकता की आड़ में अनाचार, अत्याचार या धार्मिक असहिष्णुता की आज्ञा नहीं दी जा सकती है।

(घ) **समुदाय निर्माण की स्वतंत्रता का अधिकार** : 'संगठन ही मानव जीवन की उन्नति का मूल मंत्र है' इसलिए व्यक्ति को अपने समान विचार वाले व्यक्तियों के साथ मिलकर संगठन निर्माण करने की स्वतन्त्रा होनी चाहिए। व्यक्ति को इस बात का अधिकार होना चाहिए कि वह जीवन के विविध क्षेत्रों में उन्नति करने के लिए राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समुदायों का निर्माण कर सके, लेकिन इस प्रकार के किसी भी संगठन को समाज–विरोधी या अनैतिक कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है।

(ङ) **नैतिक स्वतंत्रता** :एक व्यक्ति के पास उपर्युक्त सभी स्वतंत्रताएं होने पर भी यदि उसे नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है तो उसकी स्थिति दयनीय हो जाती है। नैतिक स्वतंत्रता का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने विवेक और आत्मा के आदेशानुसार बिना किसी अनुचित लोभ–लालच के कार्य कर सके। नैतिक स्वतंत्रता नींव के उस पत्थर के समान है जिस पर जीवन का सम्पूर्ण भवन आधारित होता है।

(3) सम्पत्ति का अधिकार : मानव जीवन के लिए सम्पत्ति आवश्यक है। सम्पत्ति के अधिकार का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने द्वारा कमाए गये धन को चाहे तो आज की आवश्यकताओं पर खर्च कर सकता है या अर्जित करके रख सकता है और धन, जमीन–जायदाद के रूप में व्यक्ति द्वारा रक्षित इस सम्पत्ति को बिना मुआवजा दिये उसे छीना नहीं जा सकता। लेकिन वर्तमान समय में सम्पत्ति के अधिकार को अनियंत्रित रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। जनकल्याण की दृष्टि से सम्पत्ति के अधिकार को सीमित किया जा सकता है।

(4) रोजगार का अधिकार : व्यक्ति को स्वयं अपने परिवार के भरण–पोषण, आवास एवं शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता होती है और व्यक्ति यह आर्थिक शक्ति किसी न किसी प्रकार का काम करके प्राप्त कर सकता है। अतः वर्तमान समय में यह आवश्यक समझा जाता है कि व्यक्ति को काम प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए और इस काम के बदले में व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक प्राप्त होना चाहिए।

(5) शिक्षा का अधिकार : शिक्षा मानव की मानसिक एवं आध्यात्मिक खुराक है और शिक्षा के आधार पर ही व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। अतः वर्तमान समाज में यह बात सर्वमान्य है कि नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा की अनिवार्य तथा निःशुल्क रूप में व्यवस्था की जानी चाहिए।

(6) जीवन का अधिकार : मानव के सभी अधिकारों में जीवन का अधिकार सबसे मौलिक व आधारभूत अधिकार है, क्योंकि इस अधिकार के बिना अन्य किसी भी अधिकार की कल्पना नहीं की जा सकती है। जीवन के अधिकार का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार हैं और राज्य इस बात की व्यवस्था करेगा कि कोई दूसरा व्यक्ति या राज्य व्यक्ति के जीवन का अन्त न का सके।

जीवन के अधिकार के अन्तर्गत ही आत्मरक्षा का अधिकार भी निहित है, इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति के जीवन पर आघात किया जाता है तो सम्बन्धित

टिप्पणी

व्यक्ति अपनी आत्मरक्षा के लिए आवश्यक कार्यवाही कर सकता है और आत्मरक्षा के निमित्त की गयी यह कार्यवाही अपराध की श्रेणी में नहीं आती है।

(7) परिवार का अधिकार : राज्य के समान ही परिवार भी मानव जीवन के लिए अनिवार्य संस्था रही है और मानव जाति के विकास में परिवार का योगदान किसी भी दूसरी संस्था से कम नहीं है। अतः व्यक्ति को विवाह कर परिवार का निर्माण करने और संन्तान के पालन–पोषण का अधिकार होना चाहिए तथा राज्य को इस सम्बन्ध में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

राजनीतिक अधिकार (Political Rights)

राजनीतिक अधिकारों का तात्पर्य उन अधिकारों से है जो व्यक्ति के राजनीतिक जीवन के विकास के लिए आवश्यक होते हैं और जिनके माध्यम से व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन प्रबन्ध में भाग लेते हैं। साधारणतया एक प्रजातन्त्रात्मक राज्य के द्वारा अपने नागरिकों को निम्नलिखित राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जाते हैं–

(1) **मत देने का अधिकार** : जनता मताधिकार के माध्यम से ही देश के शासन में भाग लेती है और मतदान को प्रजातन्त्र की आधारशिला कहा जा सकता है। वर्तमान समय की प्रवृत्ति मताधिकार को अधिकाधिक व्यापक बनाने की है और इसलिए अधिकांश देशों में वयस्क मताधिकार को अपना लिया गया है।

(2) **निर्वाचित होने का अधिकार** : प्रजातन्त्र में शासक और शासित का कोई भेद नहीं होता और योग्यता सम्बन्धी कुछ प्रतिबन्धों के साथ सभी नागरिकों को जनता के प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित होने को अधिकार होता है। इसी अधिकार के माध्यम से व्यक्ति देश की उन्नति में सक्रिय रूप से भाग ले सकता है।

(3) **सार्वजनिक पद ग्रहण करने का अधिकार** : व्यक्ति को सभी सार्वजनिक पद ग्रहण करने का अधिकार होना चाहिए और इस सम्बन्ध में योग्यता के अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर भेद नहीं किया जाना चाहिए।

(4) **आवेदन–पत्र और सम्मति देने का अधिकार** : लोकतन्त्र का आदर्श यह है कि शासन का संचालन जनहित के लिए किया जाय। अतः नागरिकों को अपनी शिकायतें दूर करने या शासन को आवश्यक सम्मति प्रदान करने के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कार्यपालिका या व्यवस्थापिका अधिकारियों को प्रार्थनापत्र देने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इसके अन्तर्गत ही शासन की आलोचना का अधिकार भी सम्मिलित किया जाता है।

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का उल्लेख अनुच्छेदों 22 से 27 तक में किया गया है। ये अधिकार निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक सुरक्षा का अधिकार तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, अधिकार जो व्यक्ति की गरिमा, विकास तथा व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिए अपरिहार्य हैं।
2. कार्य करने (अथवा नियोजन) का स्वतंत्र चयन, कार्य करने की अनुकूल दशाएं तथा बेकारी के विरुद्ध संरक्षण।

3. समान कार्य के लिये समान वेतन पाने अधिकार।
4. उचित एवं अनुकूल वेतन पाने का अधिकार।
5. व्यवसाय संघ बनाने एवं सदस्य बनाने का अधिकार।
6. आराम करने एवं खाली समय का अधिकार।
7. जीविका का अधिकार जो अपने एवं अपने परिवार के स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त हो।
8. सभी बच्चों का समान सामाजिक संरक्षण उपयोग करने का अधिकार।
9. शिक्षा का अधिकार।
10. अपने बच्चों की शिक्षा का प्रकार चुनने का माता–पिता का अधिकार।
11. समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार।
12. वैज्ञानिक, साहित्यिक कार्य के लेखक का उक्त कार्य के फलस्वरूप हितों के नैतिक एवं भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार।

विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित अधिकार

उल्लिखित मानव अधिकार : भारतीय संविधान के अन्तर्गत मानव अधिकारों का एक अन्य वर्गीकरण है कि कुछ मानव अधिकार विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित हैं तथा अन्य अ–उल्लिखित हैं। सामान्यतः लिखित संविधानों में मौलिक अधिकारों का विनिर्दिष्ट रूप से तथा स्पष्टतः उल्लेख होता है। इसी स्वरूप का अनुसरण भारतीय संविधान में किया गया है। परन्तु देखना यह होगा कि क्या उल्लेख पूर्ण (exhaustive) है या कुछ ऐसे भी मौलिक अधिकार हैं, जो विद्यमान मौलिक अधिकारों से निकाले जा सकते हैं।

न्यायमूर्ति भगवती ने कहा था कि अनुच्छेद 21 में शब्द ''व्यक्तिगत स्वतंत्रता'' बहुत ही व्यापक है तथा इसमें विभिन्न प्रकार के अधिकार सम्मिलित हैं जिनसे मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता बनती है। इनमें से कुछ अधिकारों को निश्चित मौलिक अधिकारों की प्रास्थिति प्रदान की गई है तथा कुछ को अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत अतिरिक्त संरक्षण प्रदान किया गया।

न्यायमूर्ति कृष्णा अययर ने भी उक्त निर्णय से अपनी सहमति प्रकट की थी। उन्होंने अपने निर्णय में कहा कि विदेश यात्रा करने का अधिकार ''व्यक्तिगत स्वतंत्रता'' का एक पहलू है। इसकी निषिद्ध या प्रतिबन्धन केवल विधि द्वारा स्थपित प्रक्रिया द्वारा ही हो सकता है।

इसी प्रकार के न्यायिक निर्वचन की प्रक्रिया में विद्यमान मौलिक अधिकारों से निम्नलिखित अधिकार निकाले (emanate) गये हैं–

(i) विदेश यात्रा का अधिकार (अनुच्छेद 21);

(ii) गुप्तता का अधिकार (अनुच्छेद 21 तथा अनुच्छेद 19(1) (घ));

(iii) एकान्त कारावास के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 21);

(iv) बेड़ियों (bar fetters) के विरुद्ध अधिकार (मानव गरिमा का अधिकार– अनुच्छेद 21, 14 एवं 19);

(v) आपराधिक परीक्षण (Criminal Traial) में निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार (अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 39–अ);

टिप्पणी

(vi) शीघ्र परीक्षण (Speedy Trail) का अधिकार (अनुच्छेद 21);

(vii) हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 21);

(viii) फांसी के दंड के निलम्बन के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 21);

(ix) हिरासत में होने वाली हिंसा के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 21);

(x) लोक फांसी या लोक स्थान पर फांसी के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 21);

(xi) स्वास्थ्य की देखभाल या डाक्टर की सहायता का अधिकार (अनुच्छेद 21);

(xii) आश्रय का अधिकार (अनुच्छेद 21);

(xiii) स्वतंत्र पर्यावरण को दूषित करने के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 21);

(xiv) 14 वर्ष तक के बच्चों का निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार (अनुच्छेद 21, 45 एवं 41);

(xv) प्रेस की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21 (क)) का अधिकार;

(xvi) जानने या सूचना प्राप्त करने का अधिकार (अनुच्छेद 21);

(xvii) बंधुवा श्रमिक या मजदूर का मुक्ति एवं पुनर्वास का अधिकार (अनुच्छेद 21);

(xviii) संरक्षण गृहों में रहने वालों के अधिकार (अनुच्छेद 21);

उपर्युक्त सूची केवल उदाहरणार्थ है, इसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान के भाग 3 में उल्लिखित अधिकारों से कुछ अन्य मौलिक अधिकारों का निर्गम हुआ है।

5.2.3 मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

मानवाधिकारों की सार्वभैमिक घोषणा को, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणा पत्र भी कहा जाता है, न्यायाधीश लास्टर पेंट अपनी पुस्तक 'इन्टरनेशनल लॉ एण्ड ह्यूमन राइट्स' में विश्व की एक महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। यह एक ऐतिहासिक घटना तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की महानतम उपलब्धि है।

सन् 1945 में जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी तब उनका एक चार्टर तैयार किया गया था। चार्टर के अनुच्छेद 68 के अन्तर्गत मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए प्रारूप तैयार करने हेतु सन् 1946 में श्रीमती एलोनोर रूजवेल्ट की अध्सक्षता में एक मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। आयोग ने जून 1948 में मानवाधिकारों की एक विश्वव्यापी घोषणा तैयार की जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 10 दिसम्बर को अंगीकृत किया गया। यही कारण है कि 10 दिसम्बर को सम्पूर्ण विश्व मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाता है।

मानवाधिकार घोषणा पत्र, 1948 में कुल 30 अनुच्छेद हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र में गरिमायुक्त जीवनयापन के सभी बिन्दुओं को समाहित किया गया है।

1. सभी मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए हैं तथा प्रतिष्ठा एवं अधिकारों में समान हैं।
2. सभी मनुष्यों में तर्क शक्ति एवं विवेक है। उनमें पारस्परिक बन्धुत्व का व्यवहार होना चाहिए।
3. प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा का अधिकार है।

4. विधि के समक्ष सभी व्यक्ति समान होंगे।
5. किसी भी व्यक्ति को दास अथवा गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकेगा।
6. किसी भी व्यक्ति के साथ न तो अमानवीय व्यवहार किया जाएगा और न ही क्रूरतम दण्ड दिया जाएगा।
7. प्रत्येक व्यक्ति को विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी।
8. भ्रमण, शान्तिपूर्ण सम्मेलन, व्यापार, व्यवसाय, वृत्ति अथवा पेशा करने की स्वतंत्रता होगी।
9. प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के समुचित अवसर उपलब्द्ध होंगे।
10. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार होगा तथा प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क होगी।
11. प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति रखने तथा उसका इच्छानुसार व्यय करने का अधिकार होगा।
12. अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसके विरुद्ध आरोप साबित नहीं हो पाता।

13 प्रत्येक व्यक्ति को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा।

14. किसी भी व्यक्ति को मनमाने तौर पर कैदी नहीं बनाया जाएगा।
15. समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाएगा।
16. वयस्क पुरुष एवं स्त्रियों को राष्ट्रत्व तथा धर्म के बिना विवाह करने तथा कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार होगा।
17. प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों का उपयोग एवं स्वतंत्रताओं का उपयोग इस तरह करेगा कि उससे अन्य व्यक्तियों के अधिकारों एवं उनकी स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप न हो।

मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणा का मूल पाठ इस प्रकार है–

अनुच्छेद 1 : सभी मानव प्राणी गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र और समान जन्में हैं उन्हें बुद्धि और अन्तरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर भाईचारे के प्रभाव से कार्य करना चाहिए।

अनुच्छेद 2 : सभी को इस घोषणा में निहित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं को प्राप्त करने का हक है और इस मामले में जाति, वर्ग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार प्रणाली, किसी देश या समाज विशेष में ज्न्म, संपत्ति या अन्य प्रकार की मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाएगा।

और भी चाहे कोई स्वतन्त्र देश या प्रदेश हो, न्याय हो, स्वशासनरहित हो या सीमित सम्प्रभुता वाला हो, उस देश या प्रदेश की राजनीतिक, क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहां के निवासियों के प्रति कोई फर्क न किया जाएगा।

अनुच्छेद 3 : प्रत्येक को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

टिप्पणी

अनुच्छेद 4 : किसी को भी दासता या सेवत्व (Slavery or Servitude) में नहीं रखा जाएगा। दासता और दास व्यापार अपने सभी रूपों में निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद 5 : किसी को भी यातना (Torture) नहीं दी जाएगी और किसी को क्रूर अमानवीय और निम्नकारी उपचार (Treatment) या सजा (Punishment) नहीं दी जाएगी।

अनुच्छेद 6 : हर किसी को हर जगह कानून की निगााह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति (recognition) प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 7 : कानून के समक्ष सब समान हैं और सभी बिना भेदभाव के कानूनी सुरक्षा के अधिकारी हैं। यदि इस घोषणा का उल्लंघन करके कोई भेदभाव किया जाये या भेदभाव को किसी प्रकार से उकसाया जाये, तो उसके विरुद्ध समान संरक्षण का अधिकार सभी को प्राप्त है।

अनुच्छेद 8 : सभी को संविधान या कानून द्वारा प्राप्त मूल अधिकारों (Fundamental Rights) का उल्लंघन करने वाले कार्यों के विरुद्ध समुचित राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों (Tribunals) की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद 9 : किसी को भी मनमाने (Arbitrary) ढ़ंग से गिरफ्तार, नजरबन्द या देश निष्कासन न किया जाएगा।

अनुच्छेद 10 : सभी को पूर्णतः समान हक है कि उनके अधिकारों व कर्तव्यों का निश्चय करने में और उनके विरुद्ध आपराधिक आरोप में स्वतन्त्र और निष्पक्ष अदालत में न्यायपूर्ण और सार्वजनिक सुनवाई (Fare and Public hearing) हो।

अनुच्छेद 11 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया है तब तक निर्दोष माना जाएगा, जब तक कि उसे ऐसी खुली अदालत में जहां उसे अपनी प्रतिरक्षा की आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया गया है।

(2) कोई भी, किसी कार्य (Act) या कार्यलोप (Omission) के आधार पर अपराधी नहीं ठहराया जाएगा, जो उस समय अपराध नहीं बनता था, जिस समय कार्य किया किया गया था। उस दण्ड की बजाय भारी दण्ड नहीं लागू किया जाएगा, जो कि अपराध किये जाने के समय लागू था।

अनुच्छेद 12 : किसी व्यक्ति की एकान्ता (Privacy), परिवार, घर या पत्र–व्यवहार में कोई मनमाना हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, न किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेप के विरुद्ध प्रत्येक को कानूनी संरक्षण का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमा के अन्दर आने–जाने व बसने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने या अन्य देश को छोड़ने और अपने देश में वापस आने का अधिकार है।

टिप्पणी

अनुच्छेद 14 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देश में शरण लेने और रहने का अधिकार है।

(2) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा, जो वास्तव में गैर–राजनीतिक अपराधों से संबंधित हैं, या जो संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य हैं।

अनुच्छेद 15 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र विशेष की नागरिकता (Nationality) का अधिकार है।

(2) किसी को भी मनमाने ढंग से अनपे राष्ट्र की नागरीकता से वंचित न किया जाएगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 16 :

(1) वयस्क स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रुकावटों के आपस में विवाह करने और परिवार की स्थापना करने का अधिकार है। उन्हें विवाह के विषय में, वैवाहिक जीवन में तथा विवाह–विच्छेद के बारे में समान अधिकार है।

(2) विवाह का इरादा रखने वाली स्त्री–पुरुषों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा।

(3) परिवार, समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद 17 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर सम्पत्ति रखने का अधिकार है।

(2) किसी को भी मनमाने तरीके से उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 18 : प्रत्येक व्यक्ति को विचार (Thought), अन्तरात्मा (Conscience) और धर्म (Religion) की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपना धर्म और विश्वास बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तौर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतंत्रता है।

अनुच्छेद 19 : प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इसके अन्तर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिये तथा सीमाओं की परवाह न करके किसी भी सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान भी शामिल है।

अनुच्छेद 20 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्ण सभा (Assembly) करने और समिति (association) बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार है।

(2) किसी को भी किसी संस्था का सदस्य बनने के लिये मजबूर नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी

अनुच्छेद 21 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतंत्र रूप से चुने गये प्रतिनिधियों के जरिये हिस्सा लेने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है।

(3) सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। इस इच्छा का प्रकटन समय–समय पर और असली चुनावों द्वारा होगा। ये चुनाव सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या अन्य समान स्वतंत्र मतदान पद्धति द्वारा कराये जाएंगे।

अनुच्छेद 22 : समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास और गौरव के लिये जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन और साधनों के अनुकूल हो– अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का हक है।

अनुच्छेद 23 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छानुसार रोजगार का चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों को प्राप्त करने और बेकारी से संरक्षण पाने का हक है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिये बिना किसी भेदभाव के समान मजदूरी पाने का अधिकार है।

(3) प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतनी उचित और अनुकूल मजदूरी पाये, जिससे वह अपने लिये और अपने परिवार के लिये ऐसी आजीविका का प्रबन्ध कर सके, जो मानवीय गरिमा के योग्य हो तथा आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक संरक्षणों द्वारा हो सके।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिये श्रमजीवी संघ (Trade Union) बनाने और उसमें भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद 24 : प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम (Rest) व अवकाश का अधिकार है, इसके अन्तर्गत काम के घण्टों की उचित सीमाबन्दी और समय–समय पर वेतन सहित छुटियां शामिल हैं।

अनुच्छेद 25 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है, जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिये प्राप्त हो। इसके अन्तर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा सुविधा और आवश्यक सामाजिक सेवाएं शामिल हैं। सभी को बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढ़ापे या अन्य ऐसी स्थिति में आजिविका का साधन न होने पर, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है।

(2) जच्चा और बच्चा (Motherhood and Childhood) को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह विवाहित माता से जन्मा हो या अविवाहित माता से, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होगा।

टिप्पणी

अनुच्छेद 26 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंम्भिक और बुनियादी स्तरों पर निःशुल्क होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। यान्त्रिक और व्यावसायिक शिक्षा साधरण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी।

(2) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानवाधिकार व मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की पुष्टि। सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शान्ति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों को आगे बढ़ाया जाएगा।

(3) माता–पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जाएगी।

अनुच्छेद 27 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने का, कला का आनन्द लेने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का हक है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है जिसका रचयिता वह खुद हो।

अनुच्छेद 28 : प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का हक है, जिसमें घोषणा में लिखित अधिकारों व स्वतंत्रताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद 29 :

(1) प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्तव्य है, जिसमें रह कर उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास सम्भव हो।

(2) अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओं द्वारा बद्ध होगा जो कानून द्वारा निश्चित की जाएगी और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरों के अधिकार और स्वतंत्रता के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूर्ण करना होगा।

(3) इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी संयुक्त राष्ट्र के सिद्धांतों और उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30 : इस घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयास में लगने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताये गये अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का भी विनाश करना है।

उपरोक्त वर्णित सभी अधिकार सार्वभौमिक अधिकार हैं और हमारे भारतीय संविधान के भाग तीन में मूल अधिकारों के रूप में शामिल किए गए हैं।

टिप्पणी

भारत के संविधान में सार्वभौमिक घोषणा के तत्व निम्नानुसार समाहित किए गए हैं–

	अधिकार	**सार्वभौमिक घोषणा**	**भारत का संविधान**
1.	विधि के समक्ष समानता	अनुच्छेद 7	अनुच्छेद 14
2.	भेदभाव की समानता	अनुच्छेद 7	अनुच्छेद 15(1)
3.	अवसर की समानता	अनुच्छेद 21(2)	अनुच्छेद 16(1)
4.	विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 19	अनुच्छेद 19(1) (क)
5.	शांतिपूर्ण सभा की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 20(1)	अनुच्छेद 19(1) (ख)
6.	संगठन अथवा संघ बनाने की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 23(4)	अनुच्छेद 19(1) (ग)
7.	संचरण का अधिकार	अनुच्छेद 13(1)	अनुच्छेद 19(1) (घ)
8.	दोषसिद्धि के विरूद्ध संरक्षण	अनुच्छेद 11(2)	अनुच्छेद 20(1)
9.	प्रांण एवं दैहिक स्वतंत्रता	अनुच्छेद 3	अनुच्छेद 21
10.	दासता एवं बलात्श्रम से संरक्षण	अनुच्छेद 4	अनुच्छेद 23
11.	धर्म की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 18	अनुच्छेद 25(1)
12.	संवैधानिक उपचार	अनुच्छेद 8	अनुच्छेद 32

5.2.4 पश्चिम बनाम तीसरी दुनिया

राज्य ही अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विषय नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति और मानव अधिकार भी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विधि इस धारणा पर आधारित है कि एक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय है और इस धारणा से जो नियम निकलते हैं, उनको अन्तर्राष्ट्रीय विधि कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में राज्य के साथ ही साथ व्यक्ति भी अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विषय हो गया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। राजनीतिक दृष्टि से राज्य एक संगठित समाज है। समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए कतिपय अधिकारों की आवश्यकता होती है, जिसके अभाव में उसके व्यक्तित्व का विकास समाज में असम्भव है, इन्हीं को मानव अधिकार कहा जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से राज्य कार्यवाई द्वारा मानव अधिकारों का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे राज्य कार्यवाई पर निर्बंधन अधिरोपित करते हैं और सीमित सरकार की परिकल्पना करते हैं। मानव अधिकार मूल अधिकार के रूप में सर्वोच्च हैं, क्योंकि उनका अतिक्रमण राज्य द्वारा नहीं किया जा सकता है और इस दृष्टि से वे मानव के अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार हैं। 'मानव अधिकारों' पद का मूल अन्तर्राष्ट्रीय विधि में पाया जाता है, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि–पद्धति में व्यक्ति की प्रास्थिति (Standing) से संबंधित है, यद्यपि मूलतः यह प्रभुता सम्पन्न राज्यों के संबंधों से ही संबंधित थी, क्योंकि पुरातन काल में अन्तर्राष्ट्रीय विधि में राज्यों को ही केवल व्यक्ति माना जाता था। व्यवहारिक दृष्टि से मानव अधिकार के इस अन्तर्राष्ट्रीय पहलू की उत्पत्ति द्वितीय विश्व युद्ध से प्राचीन नहीं है, यद्यपि प्रभुता सम्पन्न राज्य के विरुद्ध कतिपय अन्य–असंक्राम्य अधिकार रखने वाले व्यक्ति की संकल्पना का मूल प्राकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांतों में पुरातन काल से पाया जाता है। मानव अधिकारों की संकल्पना में अपने ही राज्य के विरुद्ध न्यूनतम अधिकार से सम्पन्न व्यक्ति की धारणा उतनी प्राचीन है, जितना राजनीतिक दर्शन। व्यक्तिवाद व्यक्ति को स्वायत्त इकाई के रूप में देखता है और उदारतावाद इसका आदर्शीकरण मानव अधिकारों के

टिप्पणी

रूप में करता है। मानव अधिकारों की संकल्पना को मूर्त और वाद–योग्य रूप तब प्राप्त हुआा, जब इस वैयक्तिक अधिकारों को राज्य के विरुद्ध लिखित संविधानों में प्रत्याभूत कर दिया गया, जिन्हें 1787 में संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के समय से अंगीकार किया गया, जिसके साथ औपचारिक रूप से अधिकार पत्र (Bill of Rights) को 1991 में जोड़ा गया। एक लिखित संविधान में वैयक्तिक अधिकारों को अधिकार–पत्र के रूप में सम्मिलित किये जाने का प्रभाव राज्य के विरुद्ध ही विधितः प्रवर्तनीय करना है, क्योंकि राज्य कार्यवाई को जिसके द्वारा संविधान में व्यथित व्यक्ति के प्रत्याभूत मानव अधिकारों का अतिक्रमण किया गया है, उसको न्यायालय द्वारा अविधिमान्य कर दिया जाता है। जब मानव अधिकारों को लिखित संविधान द्वारा प्रत्याभूत किया जाता है, तब उन्हें 'मूल अधिकार' कहा जाता है, क्योंकि संविधान राज्य की मूल विधि है।

मानवाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय विधि की देन है, फिर भी मानव अधिकार के क्षेत्र में राष्ट्रीय विधि की सराहनीय भूमिका है। इस परिप्रेक्ष्य में संविधान का स्थान सर्वोच्च है क्योंकि उसके द्वारा संविधानवाद का प्रतिपादन किया जाता है। विश्व में अनेक राष्ट्रों के संविधन में मानवाधिकार को मान्यता दी गई है। संविधान के अतिरिक्त राष्ट्र की अन्य विधियों, अधिनियमों, कानूनों और भारी भरकम संख्या में न्यायिक निर्णयों में मानवाधिकार का निरूपण और प्रतिपादन किया गया है। न्यायिक निर्णयों की स्थिति यह है कि अमरीकी संविधान वह है जो न्यायधीश कहते हैं, जैसा कि चार्ल्स इवान्स ह्यूजेज कहते हैं। इंगलैण्ड में संसदीय सर्वोच्चता है, अमेरिका में न्यायिक सर्वोच्चता और भारत में सांविधानिक सर्वोच्चता।

(i) **प्राकृतिक विधि की संकल्पना** : प्राकृतिक विधि की अवधारणा को दार्शनिक विचारधारा कहा जाता है। प्राकृतिक विधि को 'सर्वोच्च विधि', 'उच्च विधि', 'श्रेष्ठ विधि' (Universal Law), 'ईश्वरीय विधि' (Law of God), 'शाश्वत विधि' (Eternal Law), 'मानवीय विधि' (Law of Mankind) एवं 'वैवेकिक विधि' (Law of reason) कहा जाता है। यहां जिस भी शीर्षक का प्रयोग किया गया है, उसके पीछे एक वैचारिकता (ideology) है। फिंच के अनुसार, प्राकृतिक विधि का प्रयोग, विभिन्न समयों पर लगभग किसी भी वैचारिकता (ideology) के समर्थन में किया गया है। इसकी अन्तर्वस्तु प्रत्येक काल में अपने नये–नये नमूने और विशेषताओं के साथ बदलती रही है। इस विधि को हम प्राचीनतम और आधुनिकतम दोनों कह सकते हैं, क्योंकि यह वैचारिक सोच चाहे वह राजनीति हो, धर्म हो, सामाजिक दर्शन हो सब पर सतत् छाई रही है। इसकी संजीवनी शक्ति का इस बात से पता चलता है कि यह 19वीं सदी में भी अपने पराभव के बाद भी दूसरी शक्ति से फलफूल रही है।

(ii) **प्राकृतिक अधिकार** : प्राकृतिक अधिकार मनुष्य के व्यक्तित्व में निहित अधिकार है। मनुष्य का समाज में विकास प्राकृतिक अधिकारों के अनुसार होता है। प्राकृतिक विधि के सिद्धांतों के ही फलस्वरूप प्राकृतिक अधिकारों का आविर्भाव हुआ है। आज विश्व में 'वैयक्तिक स्वतंत्रता' की महिमा प्राकृतिक विधि के सिद्धांतों के ही कारण है। सभी मूल अधिकार और मानव अधिकार जिनका समावेश लिखित संविधानों में किया गया है, प्राकृतिक अधिकार हैं, जैसे कि आत्मसंरक्षण का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार आदि।

टिप्पणी

मानव अधिकारों के लिए सामाजिक समझौते का सिद्धांत

मानव अधिकारों के दर्शन का निरूपण सामाजिक समझौते के सिद्धांत के आधार पर किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी के गृह युद्ध के दौरान इंग्लैण्ड में एक ओर से राजा और दूसरी ओर से पार्लियामेंट के परस्पर विरोधी पक्षों के समर्थन में काफी तर्कपूर्ण साहित्य का सृजन हुआ और विशेषकर कई सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। राजा चार्ल्स प्रथम एवं उसके समर्थकों ने 'राजत्व के ईश्वरीय अधिकार' नामक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार प्रकृति या ईश्वर ने अपने अंश से मानव जाति के शासन और कल्याण के लिए राजा की रचना की है, अतः राजा के अधिकार ईश्वर प्रदत्त हैं और ईश्वर ही उन्हें वापस ले सकता है। मनुष्य न तो उन अधिकारों को छीन सकता है और न ही उन्हें परिसीमित कर सकता है। उनका प्रयोग और परिसीमन दोनों ही राज्य के विवेक और उसकी इच्छा पर निर्भर करते हैं। उधर, पार्लियामेंट के समर्थकों ने भी कई सिद्धांत प्रतिपादित किये, जिनमें से एक, जो आगे चलकर विशेष रूप से अमेरिका में बहुत लोकप्रिय और प्रभावशाली सिद्ध हुआ, जॉन लॉक नाम के दार्शनिक द्वारा चलाया गया सोशल काण्ट्रैक्ट अथवा सामाजिक समझौते का सिद्धांत था। इस सिद्धांत के अनुसार प्रकृति या ईश्वर ने व्यक्ति को जन्म से प्रभुता सम्पन्न बनाया है।

अतः जहां तक प्रकृति का संबंध है, व्यक्ति पर कोइ बंधन नहीं है और उस पर शासन करने का किसी दूसरे व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है। सभी व्यक्ति जन्म से समान हैं और पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, परन्तु इस स्वतंत्रता का उपयोग मानव तभी कर सकता है, जबकि उसे सुरक्षा प्राप्त हो तथा दूसरों का सहयोग प्राप्त हो। इसीलिए, प्रकृति द्वारा दिये हुए वरदानों का अधिक अच्छा और पूर्ण लाभ उठाने के लिए तथा अपने आस–पास के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए तथा अपने लिए सुरक्षा उत्पन्न करने के लिए ही इन प्रभुतासम्पन्न व्यक्तियों ने सोशल काण्ट्रैक्ट या सामाजिक समझौता किया। इस समझौते द्वारा प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी स्वेच्छा से अपनी प्रभुता का एक छोटा सा अंश देकर एक सरकार की स्थापना की, जो उसकी सुरक्षा के लिए उत्तरदायी बनायी गयी तथा जिसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को एक–दूसरे का सहयोग प्राप्त हो सका तथा अनेक अलग–अलग व्यक्तियों की जगह एक समाज की उत्पत्ति हो सकी।

जॉन लॉक की सोशल काण्ट्रैक्ट की कलपना ने इंगलैण्ड में पार्लियामेंटवादियों को स्वाभाविक रूप से प्रभावित किया, क्योंकि इस कल्पना द्वारा वे राजा चार्ल्स प्रथम की 'राजत्व के ईश्वरीय अधिकार' की कल्पना का सामना कर सके। इस कल्पना के अनुसार सरकार को केवल वे ही अधिकार प्राप्त थे और हो सकते थे, जो व्यक्ति ने सोशल काण्ट्रेक्ट द्वारा उसे समर्पित किये हैं। इसका अर्थ एक ओर तो यह है कि प्रत्येक सरकार सीमित अधिकारों की सरकार होती है, दूसरे यह कि जो अधिकार व्यक्ति सोशल काण्ट्रेक्ट द्वारा सरकार को समर्पित नहीं कर सकता वे ही अधिकार मानव के मूल अधिकार हैं।

संधियों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मानवाधिकार का विस्तार हुआ। मानवाधिकार से संबंधित उपबन्ध अनेक संधियों में पाए जाते हैं–आगसबर्ग की संधि, 1553 में धार्मिक स्वतंत्रता की बात की गई, वेस्टफालिया की शांति संधि, 1648 में ईसाई पंथ की धर्मिक स्वतंत्रता हेतु उपबंध किया गया, निमेजेन और रिसविक की संधियों में क्रमशः 1678 और 1679 में छोड़े गए क्षेत्र की धार्मिक स्वतंत्रता की व्यवस्था की गई, ओलौवा की संधि, 1660 में भी छोड़े गए तथा क्षेत्र की स्वतंत्रता की बात की गई। इसी

टिप्पणी

प्रकार मानव अधिकार के सम्बन्ध में अन्य संधियां हैं– कुचुक केनारजी की संधि, 1774, कांग्रेस ऑफ वियना नामक संधि, 1815, वियना की संधि, 1815, पेरिस की संधि, 1815, जेनेवा अभिसमय, 1864, बर्लिन की संधि 1878, पेरिस की संधि, 1898, हेग अभिसमय, 1899, 1907 आदि जिनमें मानवाधिकार की झलक परिलक्षित होती है।

मानवाधिकार और राष्ट्र संघ (Human Rights and League of Nations): प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में मानवाधिकार के बारे में चेतना जागृत हुई। यह बात विचार में आई कि मानवाधिकार के बारे में स्थायी और संस्थागत व्यवस्था की जानी चाहिए। तद्नुसार राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा तैयार की गई, लेकिन इसमें मानव अधिकार के बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं किया गया। अल्पसंख्यकों और मैनडेट सिस्टेम से अलग राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में मानवाधिकार का स्थान गौण रहा। फिर भी राष्ट्र संघ के व्यवहार, में आत्मनिर्णय के अधिकार और अल्पसंख्यकों के अधिकार के बारे में साक्ष्य पाए जाते हैं, परन्तु इनके बारे में यह उल्लेखनीय है कि इन अधिकारों को किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं माना जा सकता, क्यांकि ये सामूहिक अधिकार हैं जो किसी समुदाय विशेष या उसके एक अंश को प्राप्त हैं।

मानव अधिकार और संयुक्त राष्ट्र (United Nations): संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत मानव अधिकार को सराहनीय स्थान दिया गया है। चार्टर की उद्देशिका (Peamble) में मानव के मूल अधिकारों के प्रति श्रद्धा और विकास प्रकट किया गया है। संयुक्त राष्ट्र का यह उद्देश्य है कि मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रता को बिना जाति, भाषा, लिंग, धर्म आदि के विभेद के प्रोत्साहित करें। संयुक्त राष्ट्र की महासभा को अधिकृत किया गया हैं कि वह मानव अधिकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन मौलिक स्वतंत्रता के निए अध्ययन करवाए तथा अपने सुझाव प्रस्तुत करे। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 65 में उपबन्ध किया गया है कि स्थायित्व तथा भलाई की दशाएं उत्पन्न करने के लिए संयुक्त राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के विभेद के बिना मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं के सार्वभौम आदर तथा उनके पालन को प्रोत्साहन दें। इस उपबन्ध कि शक्ति तथा इसके महत्व को अनुच्छेद 56 और आगे बढ़ा देता है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत सभी सदस्यों ने संकल्प किया है कि वे अनुच्छेद 55 में कथित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संस्था के सहयोग से पृथक तथा संयुक्त कार्रवाई करेंगे। इस प्रकार अनुच्छेद 55 तथ 56 के अन्तर्गत सदस्य राज्यों के मानव अधिकारों के बारे में दायित्व हैं।

अन्तर्राज्यीय न्यायालय ने यही मत दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका के मामले में अपने सलाहकारी निर्णय में व्यक्त किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यह मत अन्तर्राष्ट्रीय प्रास्थिति (standing) वाले क्षेत्र हेतु व्यक्त किया था। परन्तु इस मत का व्यापक महत्व है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। अस्तु चार्टर के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तथा सामाजिक सहयोग के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समयानुक्रम में पोलैण्ड के साथ 1919 में की गई अल्पसंख्यक संधि जो आस्ट्रिया, बुलगेरिया, चेकोस्लोवाकिया, ग्रीस, रूमानिया, टर्की और युगोस्लेविया के साथ की गई संधियों का एक नमूना प्रस्तुत किया। इसमें यह उल्लेख किया गया है कि वे उपबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय दिलचस्पी की बाध्यता का निर्माण करते हैं और इसे राष्ट्र संघ के व्यवहार ने प्रभुता सम्पन्न सरकारों के अधिकार पर संस्थागत रोकथाम का मार्ग प्रशस्त किया।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र बिना जाति, भाषा या धर्म के विभेद के सार्वभौम रूप से मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं को प्रवर्तित करवायेगा। संयुक्त चार्टर ने आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं को प्रोत्साहित करने के बारे में अधिकार प्रदान किये हैं। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् इस विषय में कमीशन नियुक्त कर सकती है।

पूर्वोक्त उपबंधों के अतिरिक्त संयुक्त चार्टर की प्रन्यासी प्रणाली (trusteeship system) का उत्तरदायित्व है कि मानव तथा मूल स्वतंत्रताओं को प्रन्यासी क्षेत्रों में लागू करवाने का प्रयत्न करें। लुइस हेन्किन का मत है, ''संयुक्त राष्ट्र की किसी भी कक्षा में मानव अधिकारों का महत्वपूर्ण स्थान होगा।'' संयुक्त राष्ट्र चार्टर के मानव अधिकारों से संबंधित उपबन्ध मानव अधिकारों हेतु एक आधारशिला है तथा उसके विकास को प्रोत्साहन देते हैं।

संयुक्त राष्ट्र का एक उद्देश्य मानवीय अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान को प्रोन्नति देना है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों का नैतिक कर्तव्य है कि वे इस उद्देश्य के समर्थन हेतु कार्य करें।

एक समय था कि राष्ट्र पूर्णतः स्वतंत्र थे साथ ही वे अपने नागरिकों से जैसा चाहें वैसा व्यवहार करें। परन्तु अब यह स्थिति बदल गई है। अब यह बात अधिकतर लोग मानते हैं कि अपने नागरिकों के प्रति व्यवहार के मामले में राज्यों के स्वविवेक या स्वतंत्रता की कुछ सीमाएं हैं। भूतकाल में जब कोई राष्ट्र अपने नागरिकों के साथ निर्दयता का व्यवहार करता था या उनके साथ अत्याचार करता था अथवा उन्हें उनके मौलिक अधिकार तथा स्वतंत्रता को नहीं देता था तो मानवता के हित में ऐसे राज्यों के मामलों में दूसरे राज्यों द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता था। न्यायाधीश लाटर पैट के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों के मामले में राज्यों पर कुछ उत्तरदायित्व अधिरोपित करता है। प्रो. जान हम्फ्री के अनुसार संयुक्त राष्ट्र ने मानव अधिकारों के विषय में कुछ नियम तथा मानदण्ड स्थपित किये हैं और राज्यों का यह उत्तरदायित्व है कि वे इस विषय में सहयोग करें, परन्तु जहां तक मानव अधिकारों को लागू करने की बात है, अन्तर्राष्ट्रीय विधि में ऐसी प्रभावी संस्था का अभाव है।

प्रोफेसर ओपेन हाइम का मत है, '' मूल मानव अधिकारों की प्रवर्तनीयता के मामले में अभी प्रारम्भिक व्यवस्था है।'' इस विषय में सबसे पहली रुकावट यह है कि संयुक्त राष्ट्र राज्यों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। बहुधा मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में राज्य इस उपबंध का हवाला देते हैं, परन्तु उल्लेखनीय है कि राज्यों के घरेलू मामलों का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। जैसे–जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विकास हो रहा है, अनेक मामले, जो पहले राज्यों के घरेलू मामलों के अन्तर्गत थे, अब उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय विषय माना जाता है। अब यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि मानव अधिकारों को कार्यान्वित करने में घरेलू मामलों में अनुच्छेद 2(7) का अपवाद लागू नहीं होगा। बांगलादेश में होने वाले मानव अधिकारों के अप्रत्याशित उल्लंघन के प्रति संयुक्त राष्ट्र की उदासीनता तथा अकर्मण्यता खेद का विषय है। यदि मानव अधिकारों के उल्लंघन से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सुरक्षा को खतरा पैदा होता है तो संयुक्त राष्ट्र हस्तक्षेप कर सकता है। बांगलादेश के अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर के मानव अधिकारों को प्रोत्साहित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखने के मध्य अटूट सम्बन्ध हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र

में प्रत्येक नई घटना नये नियमों को जन्म देने की क्षमता रखती है। बांगलादेश के उदाहरण से इस क्षेत्र में उपयुक्त विधि के विकास की आशा करना अनुचित न होगा। भारत द्वारा की गयी कार्यवाही से भी राज्यों के व्यवहार में परिवर्तन आने की संभावना है। मानव अधिकारों को प्रोत्साहित करने के लिए तथा भविष्य में मानव अधिकारों के उल्लंघनों को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली को और भी अधिक सुदृढ़ बनाया जाये। विश्व स्तर पर मानवीय विधिक नीति को निर्धारित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

इसके अतिरिक्त एक अन्य क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय दिलचस्पी दृष्टिगोचर होने लगी जिसका प्रभाव वैयक्तिक अधिकारों की सुरक्षा पर पड़ा। यह क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का है जिसकी स्थापना 1919 में एक स्वायत्त निकाय के रूप में की गई थी और यह अन्तर्राष्ट्रीय संघ से सम्बद्ध था। इसका संविधान वारसाई की शांति संधि, 1919 का एक भाग था। दिसम्बर 14, 1946 से यह संगठन एक संविदा द्वारा जो इस संगठन और संयुक्त राष्ट्र के बीच किया गया संयुक्त राष्ट्र का अंग बन गया। इस संगठन का एक बहुत पुराना और महत्वपूर्ण कार्य रहा है अधिसमयों और संस्तुतियों को अंगीकार करना। कई महत्वपूर्ण अभिसमयों को अंगीकार करके इस संगठन ने मानवाधिकार के विस्तारण में बहुमूल्य योगदान किया है। इसके द्वारा अंगीकृत किए गए अभिसमयों में बलात् या अनिवार्य श्रम से संबंधित अभिसमय, 1930, बलात् श्रम के समापन से संबंधित अभिसमय, 1957, संघ बनाने की स्वतंत्रता और संगठित होने के अधिकार से संबंधित अभिसमय, 1947, संरक्षण से संबंधित अभिसमय, 1948, संगठित होने का अधिकार और सामूहिक सौदेबाजी अभिसयम, 1949, समान पारिश्रमिक अभिसमय, 1951, विभेद (नियोजन एवं उपजीविका) अभिसमय, 1958, समानता का व्यवहार (सामाजिक सुरक्षा) अभिसमय, 1964 आदि प्रमुख हैं। इनका संबंध सामाजिक अधिकारों के विस्तारण से जुड़ा है।

मानव अधिकार मानव कल्याण हेतु परिकल्पित होने के साथ ही साथ विश्व कल्याण और विश्व शान्ति के लिए परिकल्पित होने लगे। वास्तविक अर्थों में मानव अधिकार का सार्वभौमीकरण द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने पर प्रारम्भ हुआ। मानवीय स्वतंत्रता के प्रति विश्व समुदाय अन्तर्चेतना द्वितीय विश्व के दौरान जग गई। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने सभी लोगों के मानवाधिकार और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर को मान्यता प्रदान की।

कांग्रेस को दिए गए अपने 6 जनवरी 1941 के संदेश में अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चार स्वतंत्रताओं की विश्वव्यापकता की संकल्पना को स्पष्ट एवं दृढ़ता से अभिव्यक्त किया तथा अपेक्षा की कि इन्हें भावी विश्व का आधार बनाया जाए। ये स्वतंत्रताएं हैं– वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रत्येक व्यक्ति को अपने तरीके से ईश्वर की पूजा करने की स्वतंत्रता, भय और अभावों से स्वतंत्रता। ये स्वतंत्रताएं, विश्व में सभी जगह सभी लोगों के लिए होनी चाहिए। ये हमें मानव अधिकार की घोषणा की याद दिलाते हैं। यह घोषणा, अन्तर्राष्ट्रीय विधि की संस्था ने 12 अक्टूबर 1929 को वैरियाडिफ, न्यूयार्क में अंगीकृत किया था। इस घोषणा में कुल 6 अनुच्छेद हैं। इस घोषणा में विभिन्न प्रकार के अधिकारों की बात कही गई है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा कांग्रेस को दिए गये चार स्वतंत्रताओं का संदेश एटलांटिक चार्टर में सामाजिक और

टिप्पणी

युद्ध सम्बन्धी ध्येय का प्रेरक बना। संयुक्त राष्ट्र संघ का 1 जनवरी 1942 का घोषणा पत्र राष्ट्रपति रूजवेल्ट की चार स्वतंत्रताओं से प्रभावित था।

प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध ने मानव जीवन के मूल्य को लेकर नयी चेतना का जागरण किया और यह नई चेतना संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के विभिन्न उपबन्धों में परिलक्षित हुई। चार्टर मानवाधिकार के प्रति गहरे लगाव से ओत–प्रोत है। चार्टर जिसका उद्देश्य आगे आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाना और मानव गरिमा और मानवता के महत्व को मान्यता प्रदान करना है, कहता है कि–

"हम संयुक्त राष्ट्र संघ के लोग आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की ज्वाला से रक्षा करने के लिए, जिसके कारण मानव जाति को हमारे जीवन काल में दो बार अकथनीय दुःख भोगना पड़ा है, और मूल मानव अधिकारों के प्रति, पुरुषों तथा स्त्रियों तथा बड़े और छोटे राष्ट्रों के समान अधिकारों के प्रति निष्ठा को पुनः अभिपुष्ट करने के लिए दृढ़ निश्चय करते हैं।''

"मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति विश्वव्यापी आदर उसके पालन की अभिवृद्धि हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य संगठन के सहयोग से संयुक्त या पृथक रूप से कारवाई करने की प्रतिज्ञा करते हैं।"

अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार विधि के स्रोत से अभिप्रायः उन पद्धतियों एवं तत्वों से है, जिससे इस विधि के नियमों का निर्माण हुआ है, किन्तु ऐसे कौन–कौन से तरीके हैं, जिसे इस विधि का निर्माण हुआ है। यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है क्योंकि इस विषय में कोई संहिताबद्ध नियम नहीं है। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार विधि कई स्रोतों से निर्मित हुई हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. सन्धियाँ (Treaties) : सन्धियाँ अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों की सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। वर्तमान समय में मानव अधिकारों से संबंधित अनेक बहुपक्षीय सन्धियाँ विद्यमान हैं, जो विधितः उन राज्यों पर आंबद्धकर होती हैं जो उनके पक्षकार बन गये हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण संधि संयुक्त राष्ट्र चार्टर राज्यों पर ही है, जो विश्व के सभी राज्यों पर आबद्धकर है और मानव अधिकारों का सम्मान तथा प्रोत्साहन करने के लिए कम से कम सामान्य बाध्यताओं का सृजन करती है। चार्टर के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र एवं उसके विशिष्ट अभिकरणों के तत्वावधान में अन्य कई बहुपक्षीय मानव अधिकार संधियों का निर्माण किया गया है जो पक्षकारों के लिए बाध्यताओं का सृजन करती है। उदाहरण के लिए, यातना तथा अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दण्ड पर अभिसमय (1984) (Convention on Torture and other Cruel, Inhuman or Degrading Treatment of punishment), अन्तर्राष्ट्रीय रंगभेद, अपराध दमन और अभिसमय (1973) (International Convention on the Suppression and Punishment of Crime of Aparthied (1973), महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय (1979), (Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women) (1979)।

मानवाधिकारों पर क्षेत्रीय संधियाँ जैसे कि यूरोपीय मानव अधिकार अभिसमय, मानव अधिकारों पर अमेरिकी अभिसमय तथा मानव और व्यक्तियों के अधिकारों पर अफ्रीकी चार्टर भी विधितः संविदाकारी राज्यों पर आबद्धकर होती है और इसीलिए वे भी अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार विधि के स्रोत हैं।

टिप्पणी

2. रूढ़ि (Custom) : कई मानव अधिकारों का सभी राज्यों द्वारा उनको व्यापक रूप से प्रयोग में लाए जाने के कारण रुढ़िजन्य अन्तर्राष्ट्रीय विधि की प्रास्थिति प्राप्त हो चुकी है। इसीलिए वे सभी राज्यों पर आबद्धकर होते हैं, चाहे उन्होंने उस संबंध में अभिव्यक्त रूप से सहमति दी है अथवा नहीं। संयुक्त राज्य के विदेशी संबंध विधि के वर्ष 1987 के पुनः विवरण (तृतीय) (Restatement (Third) of the Foreign Relations Law of the United States) में यह मत अपनाया गया है कि रूढ़िगत अन्तर्राष्ट्रीय विधि कम से कम कुछ निश्चित मौलिक मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करती है। पुनः विवरण की धारा 702 में यह उपबन्ध किया गया है कि, यदि कोई राज्य अपनी राजनीति के रूप में (क) नरसंहार, (ख) दासत्व अथवा दास व्यापार, (ग) हत्या अतवा व्यक्तियों का विलोप, (ङ) लम्बे समय तक मनमाना विरोध, (च) क्रमबद्ध जातीय भेदभाव अथवा, (छ) अन्तर्राष्ट्रीय रूप में मान्यता प्राप्त मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन करता है या उसे प्रोत्साहन देता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन माना जाएगा। यद्यपि ऐसे मानव अधिकारों की उपरोक्त सूची पूर्ण नहीं हो सकती है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय विधि को रुढ़िगत नियम की प्रास्थिति को अर्जित करने वाले मानव अधिकारों की उपरोक्त सूची से असहमति भी हो सकती है लेकिन फिर भी इस बात पर व्यापक सहमति प्रतीत होती है, कि वर्तमान समय में अनेक अधिकार रुढ़िगत अन्तर्राष्ट्रीय विधि की परिधि में सम्मिलित किये जा चुके हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे अन्तर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत हैं। यह वांछनीय है कि उन मानव अधिकारों की सूची तैयार करने के लिए अध्ययन किया जाये जिन्होंने रूढ़िगत विधियों की प्रास्थिति अर्जित कर ली है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, राज्यों तथा उनके नयायालयों को काफी सहायता मिलेगी क्योंकि उन्हें इस संबंध में जानकारी प्राप्त हो जाएगी।

3. अन्य अन्तर्राष्ट्रीय लिखत (Other Interfnational instruments) : संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में मानव अधिकारों से संबंधित अनेक अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं, संकल्पों तथा सिफारिशों को अंगीकार किया जा चुका है, जिसमें मानव अधिकारों के मुद्दों के संबंध में व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त मानकों को स्थापित किया गया है, इसके बावजूद कि वे राज्यों पर विधितः आबद्धकर नहीं हैं। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषणा 1948 की मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा है जिसका राज्यों के ऊपर नैतिक तथा राजनीतिक प्रभाव है और जो राज्यों के शासकीय अधिकारों को मानव अधिकारों के मानकों का पालन करने के लिए प्रेरित करने में सहायक होती है या उनमें निर्दिष्ट कुछ अधिकारों ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम की प्रास्थिति अर्जित कर ली है।

4. न्यायिक निर्णय (Judicial Decisions): विभिन्न न्यायिक निकायों के निर्णय मानव अधिकारों के मुद्दों पर नियमों के अवधारण में सुसंगत हैं। यद्यपि मानव अधिकार के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा कार्यवाही परिसीमित ही रही है, मानव अधिकारों के यूरोपीय न्यायालय– वर्ष 1960 में लाते (Lawless) के बाद को निर्णित किये जाने के समय से बहुत से विवादों का सफलतापूर्वक न्यायनिर्णयन हुआ है। बढ़ते हुए वादों के भार के परिणामस्वरूप 1 नवम्बर, 1998 को मानव अधिकारों के एक नये यूरोपीय न्यायालय का सृजन हुआ। यद्यपि मानव अधिकारों के अन्तर–अमेरिकी नयायालय के समक्ष कुछ वादों को लाया गया है। लेकिन फिर भी अमेरिकी अभिसमय के अधीन निर्णयन विधि अभी भी अपनी शैशवावस्था में ही है तथा अभी तक अमेरिकी चार्टर के समक्ष किसी भी वाद को नहीं लाया गया है। मानव अधिकारों के मुद्दों पर

टिप्पणी

राष्ट्रीय न्यायालयों के निर्णयों से भी अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार विधि के विकास में अत्यधिक योगदान प्राप्त हुआ है।

5. शासकीय अभिलेख (Official Documentations) : संयुक्त राष्ट्र तथा उसके सहायक निकायों के शासकीय अभिलेखों में मानव अधिकार संबंधी मामलों से संबंधित भारी मात्रा में अभिलेखीय प्रमाणन का प्रस्तुतीकरण हुआ है। ह्यूमैन राइट्स रिव्यू (Human Rights Review) तथा यूरोपियन लॉ रिव्यू (European Law Review) एवं अन्तर्राष्ट्रीय निकायों के तत्वावधान में किये गये सामूहिक कार्य काफी महत्वपूर्ण हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि कई राज्यों ने उन्नीसवीं सदी तक अपने–अपने संविधानों में मानव के अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रावधान बना लिये थे, किन्तु उन अधिकारों को मानव अधिकार नहीं कहा जाता था। मानव अधिकार शब्द सर्वप्रथम थामस पेन (Thomas Paine) द्वारा इस्तेमाल किया गया जो फ्रांसीसी घोषणा में पुरुषों के अधिकारों (Rights of Man) का अंग्रेजी अनुवाद है। मानव अधिकार शब्द पुरुष के अधिकार शब्द से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि पुरुषों के अधिकार में महिलाओं के अधिकार शामिल होने का आभास नहीं होता।

मानव अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए होने के कारण एक अर्थ में यह अंतर्राष्ट्रीय है। यद्यपि, मानव अधिकार विधि मुख्य रूप से राज्यों की उनकी अधिकारिता के अंदर बाध्यताओं को निर्दिष्ट करता है, किंतु जब राज्य अपनी अधिकारिता के अंदर मानव अधिकारों के अनुपालन करने का आश्वासन देने में असफल रहते हैं तब अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार से, वैयक्तिक मानवाधिकारों को उपलब्ध कराने की बाध्यता मुख्य रूप से अंतःदेशीय (Intra-national) एवं कुछ मामलों में अंतर्राष्ट्रीय (International) है।

मानव अधिकार विधि को निर्मित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि व्यक्तियों को राज्यों और उनके सरकारों के मनमानी तरीकों से किए जाने वाले व्यवहार से संरक्षित किया जा सके। यह विचार कि मानव अधिकारों को राष्ट्रीय विधि के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा संरक्षित किया जा सकता है, धीरे–धीरे विकसित हुआ क्योंकि राज्य प्रभुत्व संपन्नता जो सत्रहवीं शताब्दी में अपने प्रादुर्भाव से अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूलभूत सिद्धांत के रूप में विद्यमान थी, व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करने हेतु राज्यों पर अंतर्राष्ट्रीय विधिक बाध्यता अधिरोपित करने के प्रयासों में अवरोधक सिद्ध हुआ। राज्य प्रभुता का सिद्धांत उन्नीसवीं शताब्दी में भी रहा तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अभिभावी रहा, जिसमें मानव अधिकार के मामलों के मुद्दों को अनेक राज्य के अपने आंतरिक क्षेत्राधिकार के भीतर आने वाले मामले ही माना गया तथा वे अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा विनिमयन हेतु पूर्णतः असमुचित थे। निःसंदेह, उपरोक्त नियम के अपवाद भी थे, जिसमें वर्ष 1926 के दासत्व अभिसमय का ग्रहण किया जाना एवं वर्ष 1919 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना तथा उसके पश्चातवर्ती क्रियाकलाप सम्मिलित थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात राष्ट्र संघ की स्थापना की गई, किंतु उसके प्रसंविदा में मानव अधिकारों की अभिवृद्धि तथा संरक्षण के लिए कोई प्रावधान नहीं बनाया गया। प्रसंविदा के अनुच्छेद 22 में आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए मैनडेट (Mandate) व्यवस्था बनाई गयी थी जिसके अनुसार उपनिदेश में रहने वाली जनसंख्या को सामूहिक अधिकार प्रदान किया गया था, किंतु इस अधिकार को किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं कहा जा

सकता क्योंकि जनसंख्या के आत्मनिर्णय का अभिप्राय राज्य के आत्मनिर्णय से होता है। साधारण भाषा में आत्मनिर्णय का संबंध स्वतंत्र राज्य से है।

टिप्पणी

मानव अधिकारों को लागू करने के लिए विश्वस्तर पर कई सराहनीय प्रयास किए गए। यही कारण है कि सर्वप्रथम इसके लिए राज्य के 6 कर्तव्यों का अभिकथन किया गया, जो निम्न प्रकार हैं–

1. प्रत्येक व्यक्ति के प्राण, स्वतंत्रता एवं संपत्ति के अधिकार को मान्यता दिया जाना और अपने राज्य क्षेत्र के भीतर सभी को राष्ट्रीयता, लिंग, मूल वंश, भाषा अथवा धर्म के किसी भेदभाव के बिना उनके अधिकारों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करना।
2. प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आस्था, धर्म अथवा विश्ववास के अधिकार को व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक रूप से मान्यता देना।
3. प्रत्येक व्यक्ति को उसकी अपनी भाषा के स्वतंत्र प्रयोग और उस भाषा के शिक्षण के अधिकार की मान्यता देना।
4. यह मान्यता देना कि लिंग, मूल, वंश, भाषा अथवा धर्म के भेदभाव पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कोई भी ऐसा कार्य न करें जो राज्य के अपने किसी भी राष्ट्रीय के व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक अधिकारों को अस्वीकार करता हो।
5. यह मान्यता देना कि समानता नाम मात्र की न होकर प्रभावी हो।
6. यह मान्यता देना कि इसके सामान्य विभाजन पर आधारित हेतुओं के सिवाय किसी भी राज्य को यह अधिकार नहीं होगा कि वह उनसे उनकी राष्ट्रीयता, लिंग, मूल, वंश, भाषा अथवा धर्म के कारणों को वापस कर ले, उसे इस घोषणा में अनुध्यात प्रत्याभूति से वंचित नहीं करना चाहिए। घोषणा एक प्रकार से संस्थान के सदस्यों की इच्छा थी और इसी कारण राज्यों पर किसी भी प्रकार की बाध्यता का अधिरोपण नहीं करती। फिर भी इसके द्वारा सभी राष्ट्रों के लिए, अपने स्वयं के राष्ट्रों सहित, सभी व्यक्तियों के आचरण के मानक का अधिकथन किया गया है। इस घोषणा को मानव अधिकारों के सर्वाभौमीकरण के प्रति प्रथम प्रयास माना जा सकता है।

यह ध्यान देने की बात है कि रूढ़ियां तथा संधियां अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य नियमों की तरह अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार विधि के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। मानवाधिकार विधि राज्यों के ऊपर मुख्य रूप में इसलिए बाध्यकारी है क्योंकि वह संधि रूप में अथवा रूढ़ि विधि से निगमित होती है। यद्यपि मानवाधिकार विधि का बाध्यकारी स्रोत रूढ़ि और संधि हैं, किंतु इस पर मानव का नैतिकता, न्याय और गरिमा का विशेष प्रभाव होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि मानवाधिकार के स्रोतों की उपर्युक्त सूची किसी भी प्रकार से परिपूर्ण नहीं है। बहुत–सी अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संस्थाएं जो मुख्य रूप से अन्य विषयों से संबंधित हैं वे भी मानव अधिकारों के संरक्षण में योगदान करती हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के अंगों तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा की गई विभिन्न प्रकार की कार्यवाहियों ने भी मानव अधिकारों के संरक्षण संबंधी विशिष्ट प्रयासों का समर्थन किया है। अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार विधि गतिशील है तथा समय के साथ इसमें तीव्रता से परिवर्तन हो रहा है। इन्हीं परिवर्तनों के साथ इस विधि के निर्माण की नई पद्धतियां भी इस विधि का स्रोत हो जाएंगी।

टिप्पणी

भारतीय संविधान में मानव अधिकार एवं मानव कल्याण की प्राथमिकता भारतीय संविधान की आधारशिला है। भारत के संविधान में मानव अधिकार एवं मानव कल्याण की स्थापना से संबद्ध महत्वपूर्ण उपबंध है। भारतीय संविधान के निर्माताओं में से एक डॉ. भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारतीय समाजकार्य के चिंतन विशेषज्ञों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। भारत के संविधान निर्माण में उनकी महती भूमिका और एकनिष्ठ समर्पण के कारण ही हम आज उन्हें भारतीय संविधान का निर्माता कह कर श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं, उनकी समूची बहुमुखी विद्वता एकल ज्ञान साधना की जगह मानव–मुक्ति एवं मानव–कल्याण के लिए थी, यह बात वह अपने चिंतन और क्रिया के क्षणों से बराबर साबित करते रहे और संविधान में मानव अधिकार एवं मानव कल्याण के यथार्थ के प्रयोजन में शामिल करने में वे सफल भी हुए।

भारतीय संविधान अपनी विधि तथा संप्रभुता का प्रतीक है तथा अपनी संरचना, सुदृढ़ता और लोकतांत्रिक मूल्यों के कारण निश्चित ही सर्वोत्कृष्ट है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने देश के संविधान में कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल दिया ताकि मानव कल्याण हेतु मूल धारणाओं, आय दर ओर प्रतिष्ठा में असमानता की समाप्ति हो तथा गैर–बराबरी का निषेध हो। इसके लिए आर्थिक समानता ओर आय के समान वितरण को प्रभावी प्रारूप दिया गया। संविधान में मानव अधिकारों के अंतर्गत समानता का अधिकार, जिसमें विधि के समक्ष समानता तथा विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14), धर्म मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिवेध (अनुच्छेद 15), लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता (अनुच्छेद 16), अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अंत (अनुच्छेद 17 और 18), आदि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके भाग–3 के अनुच्छेद–12 से अनुच्छेद 30 तक तथा 32 और 35 (कुल 23 अनुच्छेद) में व्यक्तियों के मूल अधिकारों के संबंध में इतना व्यापक वर्णन किया गया है, जितना विश्व के किसी भी लिखित संविधान में नहीं किया गया है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने इन अधिकारों को संविधान की मूल आत्मा कहा है। भारतीय संविधान में जिन अधिकारों का समावेश किया गया है, उनका वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–

1. समानता का अधिकार।
2. स्वतंत्रता का अधिकार।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार।
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार।
5. सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक अधिकार।
6. संपत्ति का अधिकार।
7. संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

भारतीय संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा अनुच्छेद 19(क), (च) तथा 31 का एक महत्वपूर्ण मूल अधिकार अर्थात संपत्ति का अधिकार लुप्त कर दिया गया। इस अनुच्छेद 31(1) के उपलबंध उसी संशोधन द्वारा एक नये अनुच्छेद 30(क) में रख दिये हैं। यह संविधान के भाग–3 के बाहर है तथा इसे भाग 12 के अध्याय 4 के रूप में दर्शाया गया है, जो कि मूल अधिकार नहीं है अर्थात यह अब वित्त संविदाओं, संपत्ति और वाद के बारे में है।

टिप्पणी

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने मानवीय गरिमा के संरक्षण को मानव कल्याण का सर्वोपरि उद्देश्य माना है। मानव कल्याण के संरक्षण पर आधारित दृष्टिकोण अपनाते हुए उनका मत है कि मानव अधिकार, नैसर्गिक अधिकार है अर्थात मानव अधिकारों को किसी विधायनी ने निर्मित नहीं किया है। सभी सभ्य देश या संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्था या निकाय उन्हें मान्यता देते हैं या स्वीकार करते हैं।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का मत है कि समाजकार्य का उद्देश्य व्यक्ति, समूह व समुदाय को उन्नत बनाना है, परंतु विकास तथा उन्नति में सदैव बाधाएं, कमियां तथा कठिनाइयां आती रहती हैं। इन सभी बातों को सुलझाने तथा दूर करने का कार्य समाज कार्य अपने निश्चित तरीकों तथा प्रणालियों द्वारा करता है। व्यक्ति एवं समूह का समाज में सही ढंग से व्यवस्थापन होना अत्यंत आवश्यक होता है। समाज कार्य सदैव यह प्रयत्न करता है कि व्यक्ति स्वयं समूह के माध्यम से अपना उचित समायोजन तथा व्यवस्थापन करने में सक्षम हो।

अतः सामाजिक शक्तियों में हस्तक्षेप करना आवश्यक होता है। बाधित पारस्परिक, अंतःक्रिया समस्या का कारण होती है। अतः समाज कार्य का मुख्य केन्द्र अंतःक्रियाएं होती हैं। समाज कार्य में मानव—कल्याण की शिक्षा एवं ज्ञान का प्रत्यक्ष संबंध व्यक्ति एवं समाज से होता है।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने मानव कल्याण के उद्देश्य से सामाजिक न्याय की संविधान में उचित व्यवस्था की है, जिसके अंतर्गत सब नागरिकों को बोलने, भावों को व्यक्त करने, आंदोलन चलाने, व्यापार तथा कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है। अस्पृश्यता को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया। संविधान के अनुसार कानून तथा न्याय की दृष्टि से सभी व्यक्ति समान हैं, न कोई ऊंचा है न ही कोई नीचा है। इसके साथ—साथ वे कहीं भी किसी भी राज्य में कार्य के लिए जाने को स्वतंत्र हैं। संविधान में लिखित रूप में कहा गया है कि 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए राज्य द्वारा निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी और अनुसूचित जातियों को ऊपर उठाने के लिए विशेष प्रयत्न किया जाएगा। राज्य उनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में विकास के लिए हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराएगा। डॉ. अम्बेडकर के समानता के इस जयघोष ने भारतीय सामाजिक संगठन की नींव पूर्णतः हिला कर रख दी। यही कारण है कि अगर शिक्षा, जन स्वास्थ्य, स्त्रियों की दशा, श्रमिकों की स्थिति व निम्न जातियों की ओर दृष्टिपात करें तो वहां हमें गहन परिवर्तन दिखाई देगा। भारतीय संविधान की मानव कल्याण की अभूतपूर्व विशेषताओं के कारण ही निम्न विशेषताएं परिलक्षित होने लगी हैं—

1. जमींदारी प्रथा का उन्मूलन।
2. स्त्रियों की शिक्षा में बढ़ोत्तरी।
3. वैश्यावृत्ति पर अधिनियम 1958 से रोक।
4. निम्न वर्गों का उत्थान (अस्पृश्यता अधिनियम 1956)।
5. यातायात एवं संचार साधन उपलब्धता।
6. शिक्षा एवं स्वास्थ्य की उपलब्धता।
7. लोकतांत्रिक चेतना।

टिप्पणी

8. रहन–सहन व जीवन स्तर में उन्नति।
9. रूढ़िवादिता एवं कुप्रथाओं का दमन।
10. दहेज कुप्रथा का दमन।
11. जेल सुधार कार्यक्रम।
12. नसबंदी कार्यक्रम।
13. भूदान योजना।
14. बाल विकास सुविधाएं।
15. नगरीकरण।
16. राजतंत्रीय व्यवस्था का अंत।

देश की जनता की खुशहाली तथा लोक कल्याण के लिए डॉ. बी.आरत्र अम्बेडकर ने संविधान के माध्यम से राज्य व केन्द्र को मानव कल्याण की कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण के लिए अग्रसर किया है।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के अनुसार समकालीन भारतीय समाज विभिन्न सामाजिक कुरीतियों से ग्रसित है। इस कारण इन कुरीतियों को दूर करने हेतु जो भी सामाजिक विधान पारित किया जाएगा, वह वस्तुतः लाभप्रद सिद्ध होगा। नारी की गिरी हुई स्थिति, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, बाल–विवाह, अंतर्जातीय विवाह पर प्रतिबंध, विवाह विच्छेद का अधिकार न होना, दहेज प्रथा, बहु पत्नी, जाति प्रथा पर आधारित समाज का असमान खंड विभाजन और सामाजिक विषमता, अस्पृश्यता, पिछड़े कमजोर एवं शोषित वर्गों की समस्या, स्त्रियों–बच्चों का अनैतिक व्यापार, स्त्रियों का पिता की संपत्ति पर अधिकार न होना, बेगारी एवं बंधुआ श्रम की बाधाएं सदैव मानव कल्याण में बाधक रही हैं। भारत के संविधान से स्पष्ट होता है कि भारत का अंतिम लक्ष्य समाजवादी तरीके से एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना होना चाहिए जिसमें मानव अधिकार एवं मानव कल्याण की भावना सर्वोपरि होनी चाहिए।

5.2.5 मानव अधिकारों की अविभाज्यता और अन्योन्याश्रयता

मानव अधिकार अविभाज्य (Indivisible) एवं अन्योन्याश्रित (Interdependent) होते हैं, इसीलिए संक्षिप्त रूप में भिन्न–भिन्न प्रकार के मानव अधिकार नहीं हो सकते हैं। सभी प्रकार के मानव अधिकार समान महत्व के होते हैं और वे सभी मानव प्राणियों में अंतर्निहित होते हैं। अतः मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा में मानव अधिकारों को विभिन्न कोटियों में नहीं बांटा गया है। सामान्यतया भिन्न–भिन्न अनुच्छेद में इनकी गणना की गई है। फिर भी, संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के अंतर्गत मानव अधिकार के क्षेत्र में किए गए विकास से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव अधिकारों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है– (1) सिविल एवं राजनीतिक अधिकार और (2) आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार।

1. सिविल एवं राजनीतिक अधिकार (Civil and Political Rights): सिविल अधिकारों अथवा स्वतंत्रताओं से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता (Personal Liberty) के संरक्षण से संबंधित होते हैं। ये सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक होते हैं, जिससे कि वे अपना गरिमामय जीवन बिता सकें। इस प्रकार के

टिप्पणी

अधिकारों में प्राण, स्वतंत्रता एवं व्यक्तियों की सुरक्षा, एकान्तता का अधिकार, गृह एवं पत्राचार, संपत्ति रखने का अधिकार, उत्पीड़न से स्वतंत्रता, अमानवीय एवं अपमानजनक व्यवहार से स्वतंत्रता का अधिकार, विचार, अंतर्रात्मा एवं धर्म तथा आवागमन की स्वतंत्रता आदि के अधिकार शामिल होते हैं।

राजनीतिक अधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो किसी व्यक्ति को राज्य की सरकार में भागीदारी करने की स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार से मत देने का अधिकार, सामयिक निर्वाचनों में निर्वाचित होने का अधिकार, लोक कार्यों में प्रत्यक्षतः अथवा चयनित प्रतिनिधियों के माध्यम से भाग लेने के अधिकार राजनीतिक अधिकारों के उदाहरण हैं।

यह उल्लेखनीय है कि सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की प्रकृति भिन्न–भिन्न हो सकती है, किंतु वे एक–दूसरे से संबंधित होते हैं और इसीलिए उनमें भेद करना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। इसलिए इन दोनों अधिकारों अर्थात सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों को एक ही प्रसंविदा में अंतर्विष्ट करते हुए एक प्रसंविदा का गठन किया गया, जिसे अंतर्राष्ट्र सिविल एवं राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा (International Convent on Civil and Political Rights) कहा जाता है। इन अधिकारों को पहली पीढ़ी अधिकार (Rights of the First Generation) भी कहा जाता है। इन अधिकारों के संबंध में सरकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन क्रियाकलापों को नहीं करेगी, जिससे इनका उल्लंघन हो।

2. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार (Economic, Social and Cultural Rights): आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का संबंध मानव के लिए जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं उपलब्ध करवाने से है। इन अधिकारों के अभाव में मानव प्राणियों के अस्तित्व के खतरे में पड़ने की संभावना रहती है। पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास एवं जीवन के समुचित स्तर तथा भूख से स्वतंत्रता, काम के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार इस कोटि में सम्मिलित होते हैं। इन सभी अधिकारों को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रसंविदा (International Convenent on Economic, Social and Cultural Rights) में शामिल किया गया है। इन अधिकारों को दूसरी पीढ़ी के अधिकार (Rights of the second generation) भी कहा जाता है। इन अधिकारों में राज्यों की ओर से सक्रिय हस्तक्षेप की अपेक्षा की जाती है। इन अधिकारों को उपलब्ध कराने में राज्यों को काफी संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है और इसलिए इन अधिकारों की उपलब्धता इतनी तत्कालिक नहीं हो सकती जितनी की सिविल और राजनीतिक अधिकारों की होती है।

इन दोनों प्रकार के मानव अधिकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के अधिकार भी होते हैं जिन्हें व्यक्ति सामूहिक रूप से प्राप्त करते हैं, जैसे– आत्म–निर्णय (Self determination) का अधिकार। इन्हें सामूहिक अधिकार (Collective rights) भी कहा जाता है।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र ने दो पृथक–पृथक प्रसंविदाओं में अधिकार के इन दो प्रकारों को मान्यता दी है, फिर भी इनमें आपस में घनिष्ठ संबंध है। यह अनुभूति, विशेष रूप से विकासशील देशों द्वारा उचित ही की गई है कि सिविल एवं राजनीतिक अधिकार तब तक अर्थहीन हैं, जब तक कि उनके साथ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक

टिप्पणी

अधिकार सम्बद्ध न कर दिए जाएं। इस प्रकार से अधिकारों की ये दोनों ही चोटियां समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और जहां सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों का अस्तित्व नहीं होता, वहां आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों एवं इसके विपर्यय (Vice-versa) की पूर्णरूपेण प्राप्ति नहीं हो सकती है। अधिकारों की दोनों कोटियों के बीच संबंध की मान्यता 1968 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार सम्मेलन में दी गई थी जिसकी अंतिम घोषणा में यह कहा गया था कि– चूंकि मानव अधिकार एवं मूलभूत स्वतंत्रताएं अविभाज्य हैं, इसलिए आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के उपभोग के बिना सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति असंगत है।

महासभा ने 1977 में यह कहा था कि सभी प्रकार के मानव अधिकार एवं मूलभूत स्वतंत्रताएं अविभाज्य एवं अन्योन्याश्रित होते हैं तथा सिविल एवं राजनीतिक तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही अधिकारों के क्रियान्वयन, अभिवृद्धि एवं संरक्षण पर बराबरी से विचार किया जाना चाहिए। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि सिविल एवं राजनीतिक अधिकार व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के साधन हैं। 1993 के वियना सम्मेलन में पुनः इस बात पर जोर दिया गया था कि "अधिकारों के इन दोनों समूहों पर कोई भेद नहीं है। सभी मानव अधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य, अन्योन्याश्रित एवं अंतर्संबंधित हैं। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को मानव अधिकारों को वैश्विक रूप से समान आधार एवं समान तरीके से समझना चाहिए।"

3. सामूहिक अधिकार (Collective Rights): सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा मानव के अधिकारों को अभिकथित करते हैं जो कि उनके द्वारा वैयक्तिक रूप से उनके मानवीय होने के कारण उपभोग किए जा सकते हैं। दोनों प्रसंविदाएं मानव के लिए अधिकार प्रदान करते हैं, किंतु दोनों के लिए भिन्न अनुच्छेदों में भिन्न–भिन्न शब्दों जैसे– 'प्रत्येक को' (everyone), 'प्रत्येक मानव को' (every human being) और 'समस्त व्यक्तियों' (all persons) जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो यह इंगित करता है कि जो अधिकार प्रसंविदाओं में वर्णित हैं वे उनमें निहित हैं। इन अधिकारों को पारंपरिक अधिकारों के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है। इन अधिकारों के अतिरिक्त, कुछ अन्य ऐसे अधिकार हैं, जिन्हें सामूहिक अधिकार के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है।

सामूहिक अधिकार इस अवधारणा पर आधारित हैं कि कुछ ऐसे अधिकार हैं जिनका संरक्षण पृथ्वी पर मानव अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अवश्य किया जाना चाहिए। ये ऐसे अधिकार हैं जो सभी व्यक्तियों से संबंधित हैं, जिससे समस्त समूहों के सदस्य उनका उपभोग कर सकें। कुछ ऐसे अधिकार हैं जो कि उनमें अंतर्निहित नहीं होते हैं और न ही उनके द्वारा पारंपरिक अधिकारों की तरह अकेले उपयोग किए जाते हैं। सामूहिक अधिकारों का उपभोग अलग–अलग न करके संयुक्त रूप से किया जाता है, किंतु व्यक्तिगत रूप से लोग हिताधिकारी होते हैं। इसलिए राज्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे समस्त जनसंख्या के कल्याण के लिए सामूहिक अधिकारों के कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपयुक्त वातावरण बनाएं। राज्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि सामूहिक अधिकारों के कार्यान्वयन में आने वाली बाधाओं को एक–दूसरे के सहयोग से समाप्त करे।

सामूहिक अधिकार पारंपरिक अधिकार से इस अर्थ में भिन्न हैं कि पारंपरिक अधिकार समूह के प्रत्येक सदस्य में वैयक्तिक रूप से अंतर्निहित होते हैं, जबकि सामूहिक अधिकार उनमें अंतर्निहित नहीं होते हैं। उनका उपभोग जैसे और जब

सरकार उपलब्ध कराए, समाज के समूह के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। फिर भी पारंपरिक एवं सामूहिक अधिकार के मध्य अंतर्संबंध है। कुछ ऐसे पारंपरिक अधिकार हैं, जिनका सामूहिक संदर्भ के बाहर उपभोग नहीं किया जा सकता तथा कुछ ऐसे व्यक्तिगत अधिकार हैं जिनका उपभोग सामूहिक अधिकारों के संरक्षण के माध्यम से किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि सामूहिक अधिकार विशेषतया उन पारंपरिक अधिकारों से विकसित हुए हैं जो मानवाधिकारों को सार्वभौमिक घोषणा में दो अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में वर्णित है। इस प्रकार से यह कहना गलत नहीं होगा कि सामूहिक अधिकारों की जड़ें सार्वभौमिक घोषणा में पाई जाती है।

सामूहिक अधिकारों की तीसरी पीढ़ी (Third generation) का अधिकार या पारस्परिक निर्भरता (Inter-dependence) का अधिकार या नए अधिकार (New rights) भी कहा जाता है। उन्हें नए अधिकार इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनका प्रवर्तन विद्यमान अंतर्राष्ट्रीय प्रशासनिक तंत्र द्वारा नहीं किया जा सकता। ऐसे अधिकारों में विकास का अधिकार (Right to development), शांति का अधिकार (Right to peace), सामान्य विरासत का अधिकार (Right to common heritage), आत्म–निर्णय (Self-determination) का अधिकार एवं सुरक्षित वातावरण (Save environment) के अधिकार सम्मिलित हैं। उपरोक्त सामूहिक अधिकारों से आत्मनिर्णय के अधिकार को छोड़कर कोई भी अधिकार ऐसा नहीं है, जो प्रसंविदाओं में उल्लेखित हो।

मौलिक अधिकारों का वर्गीकरण

सार्वभौमिक अधिकार

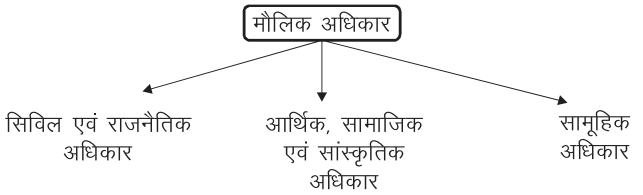

मानव अधिकारों पद का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जनवरी 16, 1941 में कांग्रेस को संबोधित अपने प्रसिद्ध संदेश में किया था, जिसमें उन्होंने चार मर्मभूत स्वतंत्रताओं पर आधारित विश्व की घोषण की थी। इनको उन्होंने इस प्रकार सूचीबद्ध किया था– 1. वाक् स्वातंत्र्य, 2. धर्म स्वातंत्र्य, 3. गरीबी से मुक्ति और 4. भय से स्वातंत्र्य। चार स्वातंत्र्य संदेश के अनुक्रम में राष्ट्रपति ने घोषणा की, "स्वातंत्र्य से हर जगह मानव अधिकारों की सर्वोच्चता अभिप्रेत है, हमारा समर्थन उन्हीं को है, जो इन अधिकारों को पाने के लिए या बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं।" मानव अधिकारों पद का प्रयोग फिर अटलांटिक चार्टर में किया गया था। तद्नुरूप मानव अधिकारों का लिखित प्रयोग संयुक्त राष्ट्र चार्टर में पाया जाता है, जिसको द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात सैनफ्रांसिस्को में 25 जून, 1945 को अंगीकृत किया गया था। उसी वर्ष के अक्टूबर माह में बहुसंख्या में हस्ताक्षरकर्ताओं ने इसका अनुसमर्थन कर दिया। संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उद्देशिका में घोषणा की गई थी कि अन्य बातों के साथ–साथ संयुक्त राष्ट्र का उद्देश्य मूल मानव अधिकारों के प्रति निष्ठा को पुनः अभिपुष्ट करना. ..." होगा। तदुपरांत संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजन.... मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना मानव

टिप्पणी

अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग... प्राप्त करने होंगे।

स्टार्क का मत है कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर आबद्धकर लिखत नहीं था और इसमें आदर्श का कथन किया गया है, इसे बाद में अभिकरणों और अंगों द्वारा विकसित किया जाना है।

1. **मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा** : अनेक मानव अधिकारों के निर्माण करने में पहला ठोस कदम संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसंबर 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंगीकृत करके किया। आशय यह था कि इसका अनुसरण अंतर्राष्ट्रीय बिल ऑफ राइस द्वारा होगा, जो कि प्रसंविदा करने वाले पक्षकारों पर वैध रूप से आबद्धकर होगा।
2. **1966 की अनुच्छेद प्रसंविदाएं** : कुछ भी हो, सार्वभौम घोषणा केवल आदर्शों के कथन के रूप में क्रियाशील रही, जिसका स्वरूप वैध रूप से आबद्धकर प्रसंविदा के रूप में नहीं था और इसके प्रवर्तन के लिए कोई तंत्र नहीं था। इस कमी को दूर करने का प्रयास संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसंबर, 1966 में मानव अधिकारों के पालन के लिए दो प्रसंविदाएं अंगीकृत करके किया–

   (क) सिविल और राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा,

   (ख) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा।

   दोनों प्रसंविदाएं दिसंबर, 1976 में प्रवृत्त हुईं, जब अपेक्षित संख्या में 35 सदस्य राज्यों ने उनका अनुसमर्थन कर दिया। 1981 के अंत तक 69 राज्यों ने इसका अनुसमर्थन कर दिया। ये प्रसंविदाएं अनुसमर्थन करने वाले राज्यों पर वैध रूप आबद्धकर हैं। इस बात पर अति खेद है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने जो कि मानव अधिकारों पर प्रसंविदाएं तैयार करने का आदर्श था तथा जिसने मानव अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीयकरण में अत्यधिक रुचि ली थी, अभी तक अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं, 1966 का अनुसमर्थन नहीं किया है।

   ऐसे अनुसमर्थन का प्रभाव यह है कि अनुसमर्थन करने वाला राज्य प्रसंविदा को कार्यान्वित करने के लिए विधायी उपाय अपनाए जिससे प्रसंविदा में वर्णित अधिकारों को प्रवर्तित किया जाए, तथापि सुसंगत विधान में समाविष्ट अधिकार घरेलू न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।
3. **यूरोपीय अभिसमय** : सर्वाभौम घोषणा और 196 की दोनों अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं के बीच में सार्वभौम घोषणा का सामूहिक कार्यान्वयन राज्यों के एक समूह द्वारा जो यूरोप की परिषद के सदस्य थे, मानव अधिकार के संरक्षण के लिए 1950 में मानव अधिकार पर यूरोपीय अभिसमय को अंगीकार करके किया था। यह अभिसमय उन राज्यों पर वैध रूप से आबद्धकर है, जिन्होंने इसका अनुसमर्थन किया है। ऐसे अनुसमर्थन के बाद यह 1953 में प्रवृत्त हुआ।

   यद्यपि यूरोप के बाहर के लोग यूरोपीय अभिसमय के कार्यकरण में प्रत्यक्ष रूप से हितबद्ध नहीं हैं, तथापि मानव अधिकार के सांविधानिक संरक्षण में हितबद्ध संपूर्ण विश्व के लिए इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि अभिसमय ने 1959 में मानव

अधिकार यूरोपीय न्यायालय की स्थापना की है। इस न्यायालय का कृत्य अभिसमय के प्रवर्तन में होने वाले विवादों का निस्तारण करना है और इसके विनिश्चय वैध निर्णय के रूप में सुनाए जाते हैं।

टिप्पणी

4. **मानव अधिकार अमेरिकी अभिसमय, 1969** : मानव अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सामूहिक तंत्र का निर्माण लैटिन अमेरिका के राज्यों द्वारा किया गया है, जिन्होंने अमेरिकी राज्यों का संगठन बनाया है। संगठन ने 1969 में मानव अधिकार पर अभिसमय अंगीकार किया है, जिसकी बाध्यताएं अभिसमय के पक्षकारों पर आबद्धकर है। संगठन ने अंतर–अमेरिकी मानव अधिकार आयोग भी स्थापित किया है, जिसका उद्देश्य मानव अधिकारों के समान ही अभिवृद्धि करना है, जिनको मानव अधिकार और कर्तव्य की अमेरिकी घोषणा, 1948 में घोषित किया गया था।
5. **कॉमनवेल्थ के भीतर विकास** : अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसंविदाओं के अंगीकरण ने कॉमनवेल्थ के भीतर भी जो कि एक आभासी अंतर्राष्ट्रीय संगठन है मानव अधिकार के संरक्षण के लिए प्रेरित किया। इस बात का अनुभव किया गया कि कॉमनवेल्थ संगठन के आदर्शों की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब जाति भेद को सदस्य राष्ट्रों द्वारा पूर्ण रूप से उनके राज्य क्षेत्रों में तथा पारस्परिक संबंधों में अवैध घोषित कर दिया जाए।

सिंगापुर घोषणा : इस उद्देश्य से प्रेरित होकर कॉमनवेल्थ देशों की सरकारों के अध्यक्षों ने सिंगापुर में जनवरी, 1971 में एकत्र होकर एक बैठक में अन्य बातों के साथ घोषणा की–

1. हम जातीय पक्षपात को मानव जाति के स्वस्थ विकास को... जोखिम में डालने वाली भयावह बीमारी मानते हैं.... हममें से प्रत्येक अपने राष्ट्र में इस बुराई का प्रबल रूप से विरोध करेगा।
2. हम सब प्रकार के औपनिवेशिक प्रभुत्व और जातीय दमन का विरोध करते हैं और मानव गरिमा तथा समानता के सिद्धांत के लिए प्रतिबद्ध हैं।
3. हम सर्वत्र मानवीय समानता और गरिमा को प्रोत्साहित करने के लिए अपना पूर्ण प्रयास करेंगे।

लुसाका घोषणा : कॉमनवेल्थ सरकार के अध्यक्षों ने अगस्त, 1979 में लुसाका की बैठक में दक्षिण अफ्रीका में 'अपार्थीड' व्यवहार की तरफ ध्यान दिया और अन्य बातों के साथ घोषणा की–

".... हम एपार्थीड को बनाए रखने की परिकल्पित सभी नीतियों को अमानवीय मानकर स्वीकार करते हैं कि जो कि इन सिद्धांतों पर आधारित हैं कि जातीय वर्ग अंतर्निहित रूप से वरिष्ठ या निकृष्ट होते हैं या हो सकते हैं। कॉमनवेल्थ को विशिष्ट रूप से उन अन्य संगठनों से अपने कार्यकलाप में समन्वय बढ़ाना चाहिए, जो उसी प्रकार मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं की अभिवृद्धि और संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध हैं।"

इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव अधिकारों की आधुनिक रूप में उत्पत्ति अंतर्राष्ट्रीय विधि में हुई है।

टिप्पणी

मानव अधिकार अथवा मौलिक अधिकार

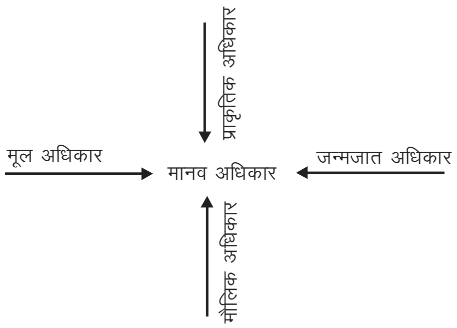

मानव की गरिमा : प्रकृति की सबसे सुंदर कृति मानव है। इसलिए मानव को जो प्रकृति प्रदत्त अधिकार हैं, उनका संरक्षण करना, उनका संवर्धन करना, मानव की गरिमा कहलाता है। मानवाधिकारों की जो सार्वभौमिक घोषणा है, उसका सम्मान करना मानव की गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक माना गया है।

5.2.6 भारत में मानवाधिकार : कुछ मुद्दे

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के II से IV अध्याय राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से सरोकार रखते हैं। इन अध्यायों में आयोग के विभिन्न पहलुओं के बारे में उपबंध किए गए हैं। आयोग की धारा 3 में कहा गया है कि भारत सरकार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के रूप में जानी जाने वाली एक संस्था का, इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में तथा उसे समनुदेशित कार्यों को निष्पादित करने के लिए गठन करेगी। आयोग में एक अध्यक्ष और सात सदस्य होंगे जिनका विवरण इस प्रकार है–

(क) अध्यक्ष जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है;

(ख) एक सदस्य जो उच्चतम न्यायालय का सदस्य है या सदस्य रहा है;

(ग) एक सदस्य जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश है या मुख्य न्यायाधीश रहा है;

(घ) दो सदस्य जिनकी नियुक्ति उन व्यक्तियों में से की जाएगी जिन्हें मानव अधिकारों से संबंधित मामलों का ज्ञान हो या उसमें व्यावहारिक अनुभव हो;

(ङ) अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग और महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्षों को आयोग का सदस्य समझा जाएगा। ये तीन सदस्य पदेन होंगे।

आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। परंतु वह ऐसी नियुक्तियां स्वप्रेरणा से नहीं कर सकता है। वह ऐसी नियुक्तियां तदर्थ निर्मित समिति की सिफारिश पर ही कर सकता है। ऐसी समिति का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार का होगा–

(क) प्रधानमंत्री	: अध्यक्ष
(ख) लोकसभा अध्यक्ष	: सदस्य
(ग) भारत सरकार के गृह मंत्रालय का मंत्री	: सदस्य
(घ) लोकसभा के विपक्ष का नेता	: सदस्य

(ङ) राज्य सभा के विक्षप का नेता : सदस्य

(च) राज्य सभा के उपसभापति : सदस्य

टिप्पणी

ऐसा जान पड़ता है कि साधारणतया उच्चतम न्यायालय के किसी आसीन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के आसीन मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति आयोग में नहीं की जाएगी, और यदि ऐसी नियुक्ति आवश्यक समझी जाती है तो यह भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात की जा सकती है। अध्यक्ष या सदस्यों की नियुक्ति केवल समिति में रिक्ति होने के कारण अमान्य होगी। अधिनियम की धारा 3(4) के अनुसार आयोग में एक महासचिव होगा जो आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा तथा वह आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग एवं ऐसे कार्यों का निर्वहन करेगा जो उसे प्रत्यायोजित करेगा।

इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, भारत सरकार आयोग के लिए निम्न उपलब्ध कराएगी–

1. भारत सरकार के सचिव के रैंक का एक अधिकारी जो आयोग का महासचिव होगा, एवं
2. एक ऐसे अधिकारी के अधीन, जो महानिदेशक, पुलिस के रैंक से नीचे का नहीं होगा, ऐसी पुलिस एवं अन्वेषणकर्ता कर्मचारी एवं ऐसे अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी जो आयोग के कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादित करने के लिए आवश्यक हों।

ऐसे नियमों के अधीन जो इस संबंध में भारत सरकार द्वारा बनाए जाएंगे, आयोग ऐसे अन्य प्रशासनिक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक स्टाफ नियुक्त करेगा जिसे वह आवश्यक समझे। इस प्रकार नियुक्त अधिकारियों एवं अन्य कर्मचारियों के वेतन, भत्ते एवं उनकी सेवा की शर्तों वे होंगी जो निर्धारित की जाएं। धारा 3(5) के अनुसार आयोग का मुख्य कार्यालय दिल्ली में होगा तथा आयोग भारत सरकार की पूर्व अनुमति से, भारत में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित करेगा।

पद की अवधि

आयोग के अध्यक्ष और नामित सदस्यों की पदावधि उस दिनांक से जब वह अपने पद पर प्रवेश करेगा पांच वर्ष की अवधि के लिए या जब तक वह सत्तर वर्ष आयु का नहीं होता है, इनमें से जो पूर्व में हो, पद को धारित करेगा। आयोग का सदस्य पुनर्नियुक्ति का पात्र होगा परंतु यह कि उसकी आयु सत्तर वर्ष की नहीं हो गई हो। परंतु अध्यक्ष दूसरी अवधि के लिए पात्र नहीं होगा।

अध्यक्ष की मृत्यु होने, त्यागपत्र देने के कारण या अन्यथा उसका पद रिक्त होने की दशा में, राष्ट्रपति अधिसूचना द्वारा, सदस्यों में से किसी एक को अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए, उस रिक्ति को भरने के लिए नए अध्यक्ष की नियुक्ति किए जाने तक के लिए, प्राधिकृत करेगा। जब अध्यक्ष अवकाश पर अनुपस्थिति के कारण या अन्यथा अपने कार्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो, उन सदस्यों में से ऐसा एक, जिसे राष्ट्रपति अधिसूचना द्वारा, इस संबंध में प्राधिकृत करे, अध्यक्ष के कार्यों का निर्वहन उस दिनांक तक करेगा, जिसको कि अध्यक्ष अपने कार्यों का पुनर्ग्रहण करेगा। अधिनियम की धारा के अनुसार पद पर नहीं रहने पर, अध्यक्ष या सदस्य भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन आगे और नियुक्ति के लिए अपात्र होगा।

टिप्पणी

अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, सदस्यों को संदेय वेतन एवं भत्ते एवं उनकी सेवा की अन्य शर्तों व निबंधन, वे होंगी जो विहित की जाएंगी।

(घ) पदों को हटाया जाना

आयोग का अध्यक्ष या किसी सदस्य को उसके पद से, राष्ट्रपति के आदेश द्वारा, उनके उच्चतम न्यायालय को निर्देश दिए जाने पर, उच्चतम न्यायालय के द्वारा उस संबंध में विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जांच पर यह रिपोर्ट देने के बाद कि अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य यथास्थिति को किसी ऐसे सिद्ध कदाचार या अक्षमता के आधार पर हटाया जाना चाहिए, हटाया जाएगा। राष्ट्रपति निम्नलिखित बातों में से किसी एक के आधार पर अध्यक्ष या किसी सदस्य को हटा सकता है, जो–

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया गया है; या

(ख) अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी वैतनिक रोजगार में अपने कार्यकाल में लगता है; या

(ग) मस्तिष्क या शरीर की दुर्बलता के कारण पद पर बने रहने के लिए अयोग्य है; या

(घ) विकृत चित्त का है एवं सक्षम न्यायालय द्वारा इस प्रकार घोषित कर दिया गया है; या

(ङ) किसी अपराध के लिए जो राष्ट्रपति की राय में नैतिक पतन वाला है, सिद्धदोष हो गया है एवं उसे कारागार की सजा दे दी गई है।

कर्तव्यों का निर्वहन

आयोग निम्नलिखित कृत्यों का निर्वहन करेगा–

- स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा उसे प्रस्तुत याचिका पर,
    1. मानव अधिकारों के उल्लंघन या उसके अपशमन की; या
    2. किसी लोक सेवक द्वारा उस उल्लंघन को रोकने में उपेक्षा; की शिकायत की जांच करेगा।
- किसी न्यायालय के समक्ष लंबित मानव अधिकारों के उल्लंघन के किसी अभिकथन वाली किसी कार्रवाई में उस न्यायालय की अनुमति से हस्तक्षेप करेगा।
- राज्य सरकार को सूचना देने के अध्यधीन, राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, जहां पर उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनार्थ व्यक्तियों को निरुद्ध किया जाता है या रखा जाता है, निवास करने वालों के जीवन की दशाओं का अध्ययन करने एवं उस पर सिफारिशें करने के लिए निरीक्षण करेगा।
- मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी कानून द्वारा या उसके अधीन प्रावधानिक सुरक्षाओं का पुनर्विलोकन करेगा तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन करने के लिए सिफारिश करेगा।

टिप्पणी

- उन कारकों का, जिसमें उग्रवाद के कृत्य भी हैं, मानव अधिकारों के उपभोग में बाधा डालते हैं, पुनर्विलोकन करेगा एवं उपयुक्त उपचारात्मक उपायों की सिफारिश करेगा।
- मानव अधिकारों पर संधियों एवं अन्य अंतर्राष्ट्रीय लेखों का अध्ययन करेगा तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिश करेगा।
- मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान एवं उसे प्रोन्नत करेगा।
- समाज के विभिन्न खंडों में मानव अधिकार साक्षरता का प्रसार करेगा तथा प्रकाशकों, साधनों (मीडिया), सेमिनारों एवं अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध सुरक्षाओं के प्रति जागरूकता को विकसित करेगा।
- मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्य करने वाले गैर–सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देगा।
- ऐसे अन्य कृत्य करेगा जिन्हें वह मानव अधिकारों के संवर्धन के लिए आवश्यक समझेगा।

इस प्रकार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की परिधि में सभी कार्य आ जाते हैं जो किसी न किसी रूप में मानव अधिकारों से जुड़े हुए हैं। वस्तुतः आयोग का कार्य केवल मानव अधिकारों का संरक्षण ही करना नहीं है बल्कि मानव अधिकारों के प्रति जनसाधारण में चेतना जागृत करना तथा इस क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं को प्रोत्साहित करना भी है। आयोग भारत सरकार एवं संबंधित राज्य सरकार की एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा तथा किसी भी समय किसी भी मामले पर, जो उसकी राय में, इतनी आवश्यकता एवं महत्व का है कि वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक उसे अस्थगित नहीं रखा जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

भारत सरकार या राज्य सरकार, यथास्थिति आयोग के वार्षिक एवं विशेष रिपोर्टों को, आयोग की सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन एवं उन सिफारिशों को स्वीकार नहीं करने के कारणों, यदि कोई हो, के साथ संसद के प्रत्येक सदन या राज्य विधान सभा के समक्ष यथास्थिति, प्रस्तुत कराएगी।

आयोग की शक्तियां

1. जांच करने की शक्ति : आयोग को मानव अधिकारों के उल्लंघन के बारे में की गई सभी शिकायतों की सुनवाई करने या जांच करने की शक्ति दी गई है। आयोग द्वारा प्राप्त की गई शिकायतों को पंजीकृत किया जाता है और उन्हें एक संख्या दे दी जाती है। तदुपरांत उन्हें दो सप्ताह के भीतर आयोग की पीठ के समक्ष ग्रहण करने के लिए रखा जाता है।

साधारणतया, आयोग किसी शिकायत को ग्रहण नहीं करेगा– (क) ऐसे मामले पर जो शिकायत करने की तारीख से एक वर्ष पहले की घटना से संबंधित है; (ख) न्यायाधीश मामले पर; (ग) अस्पष्ट अनाम या छद्मनाम वाले मामले पर; (घ) मामले जो तुच्छ हैं; (ङ) मामले जो आयोग की परिधि के बाहर हैं।

टिप्पणी

शिकायतों पर कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। शिकायतों की जांच करते समय, आयोग, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत वाद का तथा विशेष रूप से निम्न मामलों के संबंध में विचारण करते हुए सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां रखेगा–

- साक्षियों को बुलाना तथा उनकी उपस्थिति प्रवर्तित करना तथा शपथ पर उनकी परीक्षा करना।
- किसी भी दस्तावेज को खोजना एवं प्रस्तुत करना।
- हलफनामों पर साक्ष्य प्राप्त करना।
- किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति के लिए अभियाचना करना।
- साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना।
- अन्य कोई मामला जो विहित किया जाएगा।

आयोग को किसी व्यक्ति से, किसी विशेषाधिकार के अध्यधीन रहते हुए जिसे उस व्यक्ति द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अंतर्गत दावा किया जाएगा, ऐसे बिंदुओं या मामलों पर, जो आयोग की राय में जांच के विषय के लिए उपयोगी होंगे, या उससे ससंगत होंगे, सूचना प्रस्तुत करने के लिए कहने की शक्ति प्राप्त होगी तथा इस प्रकार के उपेक्षा किए गए व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 179 एवं धारा 177 के अर्थांतर्गत ऐसी सूचना देने के लिए बाध्य हुआ समझा जाएगा।

आयोग या कोई अन्य अधिकारी जो राजपत्रित अधिकारी के नीचे के रैंक का नहीं होगा एवं आयोग द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से प्राधिकृत किया गया है, किसी ऐसे भवन या स्थान में प्रवेश करेगा जहां पर आयोग कारणों से यह विश्वास करता है कि जांच के विषय में संबंधित कोई दस्तावेज पाया जा सकेगा तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 100 के, जहां तक यह प्रयोज्य है, उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए ऐसे दस्तावेज का अधिग्रहण कर सकेगा या उससे उद्धरण या प्रतिलिपियां ले सकेगा। आयोग को सिविल न्यायालय होने के रूप में समझा जाएगा एवं जब कोई अपराध जो भारतीय दंड संहिता की धारा 175, धारा 178, धरा 179, धारा 190 या धारा 228 में वर्णित है, आयोग के मत में या उसकी उपस्थिति में किया जाता है, तो अपराध का गठन करने वाले तथ्यों को तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में यथा उपबंधित अभियुक्त के बयानों को लेखबद्ध करने के बाद, उस मामले को, उस पर विचारण करने का क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट को अग्रेसित करेगा तथा मजिस्ट्रेट, जिसे यह मामला अग्रेसित किया जाएगा, उस अभियुक्त के विरुद्ध शिकायत को सुनने की कार्रवाई उसी तरह करेगा जैसे मानो वह मामला उसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 346 के अंतर्गत अग्रेसित किया गया है।

आयोग के समक्ष की सभी कार्यवाहियां न्यायिक कार्यवाहियां समझी जाएंगी।

2. अन्वेषण करने की शक्ति : आयोग को अन्वेषण की भी शक्तियां हैं। आयोग का स्वयं अपना ही अन्वेषण तंत्र है जिसकी अध्यक्षता पुलिस महानिदेशक के रैंक के अधिकारी द्वारा की जाती है जिसकी नियुक्ति स्वयं आयोग द्वारा की जाती है। पुलिस महानिदेशक के साथ पुलिस उत्क्रम में अभिप्राय नमूने पर विभिन्न वर्ग के अधिकारियों की टीम सहयुक्त होती है। अन्वेषण में, आयोग को बाहरी व्यक्तियों को सहायुक्त करने की शक्ति प्राप्त है।

टिप्पणी

अन्वेषण शक्ति का प्रयोग करते समय आयोग, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार की सहमति से केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी या अन्वेषण एजेंसी की सेवा का उपयोग कर सकता है। आयोग द्वारा निदेशित अधिकारी या अन्वेषण एजेंसी मामले में जब अन्वेषण करती है, तो वह–

(क) किसी व्यक्ति को समन कर सकेगी तथा उसकी उपस्थिति को प्रवर्तित कर सकेगी एवं उसकी परीक्षा कर सकेगी।

(ख) किसी दस्तावेज की खोज करने एवं प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगी।

(ग) किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति के लिए अभियाचना कर सकेगी।

आयोग अपने विवेक से शिकायत लेता है। शिकायत संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित की गई किसी भाषा में की जा सकती है। आयोग स्वप्रेरणा से कार्रवाई प्रारंभ कर सकता है।

आयोग शिकायत करने वाले को और विवरण या अतिरिक्त सूचना देने के लिए कह सकता है और शिकायत के समर्थन में हलफनामा दायर करने के लिए भी कह सकता है, जब भी आयोग को ऐसा किया जाना आवश्यक जान पड़ता है।

कोई शिकायत आरंभ में ही बर्खास्त की जा सकती है।

एक बार जब शिकायत सुनवाई के लिए ग्रहण कर ली जाती है, तो आयोग मामले को जांच या अन्वेषण के लिए रख देता है जैसा उसे उचित जान पड़े। आयोग अपने विवेक से शिकायत करने वाले की या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति की व्यक्तिगत सुनवाई कर सकता है।

अभी तक शिकायत का कोई प्रारूप विहित नहीं किया गया है, जब तक प्रारूप निर्धारित नहीं किया जाता है, महासचिव ने सुझाव दिया है कि शिकायत में निम्नलिखित ब्योरे दिए जाने चाहिए–

1. परिवादी का नाम, पता, लिंग, आयु, व्यथित व्यक्ति से संबंध, यदि परिवादी व्यथित नहीं है।
2. व्यथित व्यक्तियों के बारे में ब्योरा– नाम, पता, आयु, आश्रित, लिंग, क्या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से संबंधित।
3. मानव अधिकार के उल्लंघन के बारे में ब्योरे– तारीख, स्थान, राज्य, मानव अधिकार का उल्लंघन करने वाली घटना का संक्षिप्त विवरण, गवाहों के नाम, यदि कोई हों।
4. क्या मामला न्यायालय या किसी अन्य मंच में लंबित है?

आयोग के समक्ष अभिकथन करने वाले व्यक्ति को संरक्षण प्राप्त है। ऐसा व्यक्ति आयोग के समक्ष अभिकथन किए जाने के लिए किसी सिविल कार्यवाही या आपराधिक अभियोजन के अध्यधीन नहीं होगा। उस व्यक्ति को सुने जाने का अवसर दिया जाएगा जो जांच के कारण प्रतिकूल रूप से संभाव्यतः प्रभावित होने वाला है।

आयोग ने अपने सत्रह महीने के कार्यकरण के दौरान मानव अधिकार के उल्लंघन के बारे में विभिन्न राज्यों से लगभग 7800 शिकायतें प्राप्त की हैं। इनमें से

टिप्पणी

2500 शिकायतों का अब तक अन्वेषण के बाद निस्तारण कर दिया गया है। आयोग देश भर से लगभग 300 शिकायतें प्रति सप्ताह प्राप्त करता है।

आयोग की शिकायतों की जांच करने की क्रिया विधि

आयोग मानव अधिकारों के उल्लंघन की शिकायतों की जांच करते समय–

(1) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या उसके अधीनस्थ किसी अन्य प्राधिकारी या संगठन से सूचना या प्रतिवेदन ऐसे समय के भीतर मंगवाएगा जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाएगा, परंतु यह कि–

(क) यदि वह सूचना या प्रतिवेदन आयोग द्वारा निर्धारित समय के भीतर प्राप्त नहीं होता है तो वह स्वयं शिकायत की जांच करने के लिए कार्रवाई करेगा।

(ख) यदि सूचना या प्रतिवेदन के प्राप्त होने पर आयोग का इससे समाधान हो जाता है कि या तो आगे और जांच करना अपेक्षित नहीं है या संबंधित सरकार या प्राधिकारी द्वारा अपेक्षित कार्रवाई प्रारंभ कर दी गई है या कर ली गई है, तो वह शिकायत पर कार्रवाई नहीं करेगा तथा तद्नुसार शिकायतकर्ता को सूचना देगा।

(2) खंड (1) में अंतर्विष्ट किसी बात पर प्रतिकूल प्रभाव डाने बिना, यदि शिकायत की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, आवश्यक समझे तो जांच प्रारंभ कर सकेगा।

आयोग द्वारा कार्रवाई : जब आयोग द्वारा जांच का कार्य समाप्त हो जाता है और आयोग जांच से इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मानव अधिकारों का उल्लंघन हुआ है, तो वह स्वयं दोष को अकृत करवाने के लिए कोई कदम नहीं उठा सकता है बल्कि निम्नलिखित कदमों को उठा सकता है–

- जहां जांच मानव अधिकारों का उल्लंघन करने को या किसी लोक सेवक द्वारा मानव अधिकारों के उल्लंघन के निवारण की उपेक्षा प्रकट करती है तो वह सरकार या प्राधिकारी को अभियोजन की कार्रवाई या ऐसी अन्य कार्रवाई प्रारंभ करने की सिफारिश करेगा जिसे आयोग संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध उचित समझेगा।
- उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय में ऐसे निदेश, आदेश या रिटो के लिए जाएगा जो वह न्यायालय आवश्यक समझेगा।
- पीड़ित या उसके परिवार के सदस्य को ऐसी तुरंत राहत, जिसे आयोग आवश्यक समझेगा, प्रदान करने की संबंधित सरकार या प्राधिकारी को सिफारिश करेगा।

आयोग से संबंधित सरकार या प्राधिकारी को अपनी सिफारिशों के साथ जांच रिपोर्ट की एक प्रति भेजने की अपेक्षा की गई है और संबंधित सरकार या प्राधिकारी एक महीने के भीतर या ऐसे समय और समय के भीतर जिसे आयोग स्वीकृत करेगा, उस रिपोर्ट पर अपने अभिमत, उस पर की गई या की जाने हेतु प्रस्तावित कार्रवाई के साथ आयोग को अग्रेषित करेगा। आयोग जांच रिपोर्ट की एक प्रति याची या उसके प्रतिनिधि को भी देगा।

आयोग से यह भी अपेक्षा की गई है कि वह अपनी जांच रिपोर्ट संबंधित सरकार या प्राधिकारी के अभिमतों, यदि कोई हो तथा आयोग की सिफारिशों पर संबंधित

टिप्पणी

सरकार या प्राधिकारी द्वारा की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई को प्रकाशित कराएगा।

आयोग की सशस्त्र बलों के सदस्यों के विरुद्ध मानव अधिकारों के उल्लंघनों की शिकायतें जांच करने की क्रियाविधि

जब कभी मानव अधिकार के उल्लंघन की शिकायत सशस्त्र बलों के किसी सदस्य के विरुद्ध की जाती है तो आयोग विभिन्न प्रक्रिया का अनुसरण करता है। प्रक्रिया इस प्रकार है–

(क) वह या तो स्वप्रेरणा से या प्रार्थना के प्राप्त होने पर, भारत सरकार से एक रिपोर्ट मंगवाएगा।

(ख) रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद वह या तो शिकायत पर कार्रवाई नहीं करेगा या यथास्थिति उस सरकार को अपनी सिफारिशें करेगा।

आयोग की रिपोर्ट पर, केंद्रीय सरकार उन सिफारिशों पर की गई कार्रवाई की सूचना आयोग को तीन माह या ऐसे और समय के भीतर देगी जो आयोग स्वीकृत करेगा। तदुपरांत, आयोग से अपेक्षा की गई है कि वह अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को की गई अपनी सिफारिशों एवं उन सिफारिशों पर उस सरकार द्वारा की गई कार्रवाई के साथ प्रकाशित करेगा।

आयोग इस प्रकार प्रकाशित की गई रिपोर्टों की एक प्रति याची या उसके प्रतिनिधि को देगा।

मानव अधिकार और राष्ट्रीय आयोग

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अंतर्गत 'मानव अधिकार' की परिभाषा इस प्रकार की गई है– 'मानव अधिकार' से अभिप्राय संविधान द्वारा प्रत्याभूति तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित एवं भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय व्यक्तियों के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से है। इस परिभाषा में 'मानव अधिकार' की परिधि संविधान में समाविष्ट 'मानव अधिकार' से अधिक व्यापक है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सूचीबद्ध अधिकारों को भी अंतर्विष्ट किया गया है। दोनों प्रसंविदाएं इसमें स्पष्ट रूप से सन्निविष्ट हैं। निर्बंधन केवल इस बात का है कि ऐसे अधिकार भारतीय न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हों।

राज्य न्यायालयों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रवर्तन का प्रश्न विचार के लिए भारत ग्रामोफोन कंपनी बनाम वीरेंद्र बहादुर पांडेय में आया, जहां कतिपय अभिलेखों और विल्ला के प्रतिलिप्याधिकार का प्रश्न अंतर्ग्रस्त था जो लूटे गए थे और विदेश से भारत होकर नेपाल को अभिवहन में थे। इसमें स्थल–निरुद्ध राज्यों को पारगमन व्यापार के बारे में अभिसमय, 1965 के साथ भारत और नेपाल के बीच संधि का अवलंब लिया गया था। इस प्रश्न पर कि अभिसमय प्रवर्तनीय है कि नहीं विचार प्रकट करते हुए न्यायमूर्ति ओत्र चिन्नप्पा रेड्डी ने कहा कि इस पर कोई प्रश्न नहीं हो सकता है कि राष्ट्रों को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ चलना चाहिए। राज्य विधि को अंतर्राष्ट्रीय विधि का सम्मान भी करना चाहिए जैसे राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय मत का सम्मान करते हैं। राष्ट्र सौजन्य अपेक्षा करता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को राज्य विधि में बिना अभिव्यक्त विधायी अनुशासित के समायोजित किया जाना चाहिए परंतु यह तब जब कि वे संसद

टिप्पणी

के अधिनियमों के विरुद्ध न जाते हों। परंतु जब वे इस विरोध में जाते हैं तो गणराज्य की प्रभुता और अखंडता और विधियों के बनाने में गठित विधानमंडलों की सर्वोच्चता बाह्य नियमों के अध्यधीन उसके सिवाय अन्यथा नहीं किया जा सकता जहां तक कि वैध रूपसे गठित विधान मंडलों ने स्वीकृत किया है। यह बात भी मानी जाती है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित हैं और राष्ट्रीय विधि के भाग समझे जाते हैं, जब तक वे संसद के अधिनियम के विरुद्ध नहीं है। यह बात भी मानी जाती है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित हैं और राष्ट्रीय विधि के भाग समझे जाते हैं, जब तक वे संसद के अधिनियम के विरुद्ध नहीं हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मानव अधिकार की परिभाषा में अधिनियम अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं को सम्मिलित करता है। फिर भी इसे ध्यान में रखता है कि प्रसंविदाएं भारतीय विधि का भाग नहीं हैं और यदि भारतीय विधि और प्रसंविदाओं के उपबंधों में विरोध होना है तो पूर्ववर्ती ही अभिभावी होगा।

भारतीय मानव अधिकार आयोग उस प्रकार से निर्णय नहीं देता है जैसे कि न्यायालय देता है। परंतु मेरी समझ में इससे आयोग अशक्त नहीं होता है जहां तक इसकी सिफारिशें सम्मानित की जाती हैं। इससे भी अधिक प्रभाव यह है कि इसकी सिफारिशों का प्रभाव मानव अधिकार के अतिक्रामकों पर पड़ता है और इसकी कार्रवाइयों के व्यापक प्रचार का प्रभाव अधिकारों के संरक्षण पर पड़ना स्वयं एक बड़ा अभिलाभ है। इसकी कार्रवाइयों, आंदोलनों और सिफारिशों का राजनीतिक और सामाजिक रूप से बहुत भारी प्रभाव है। टाडा के विरुद्ध प्रचार करने में इसकी भूमिका वर्णन करने योग्य है। भारत सरकार ने अधिनियम एक अस्थायी विधान को 23 मई, 1995 के आगे बढ़ाने का निश्चय किया था जब इसका समाप्त होना नियत था। परंतु आयोग द्वारा लिए गए प्रभावयुक्त मोर्चा के कारण यह कठिन हो गया और अधिनियम व्यपगत हो गया। सरकार के लिए प्रतिस्थानी विधान भी संसद द्वारा नहीं निकाला जा सका।

शासकीय और गैर–सरकारी मानव अधिकार अभिकरणों के साथ मानव अधिकार आंदोलन भारत में सही दिशा में चल रहा है। किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव अधिकार के गंतव्य तक पहुंचने की सड़क बहुत लंबी, चक्कर और धूल–धक्कड़ से भरी है। फिर भी मानवता को उस गंतव्य तक पहुंचना है। इस सड़क में एक बहुत बड़ी ठोकर गरीबी है और गरीबी का शोषण करने की प्रवृत्ति तथा प्रलोभन विश्व भर में प्रबल है। मानव अधिकार भूखे व्यक्ति के लिए निरर्थक है।

इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में आयोग का लक्ष्य न केवल दोषी व्यक्तियों को दंडित करना है अपितु पीड़ित व्यक्तियों को तत्काल राहत की आवश्यकता होती है। नारी उत्पीड़न (बलात्कार, अपहरण, व्यपहरण, शील–भंग, दहेज प्रताड़ना आदि) के मामले और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के साथ शोषण और अत्याचार के मामले ऐसे हैं जिसमें तत्काल राहत की बड़ी अपेक्षा होती है।

मानव अधिकार संबंधी मुद्दे

(1) मानवाधिकारों का उल्लंघन कई रूपों में होता है। परिवार में मानव अधिकारों का उल्लंघन कई प्रकार से होता है। परिवार में मानव अधिकारों के उल्लंघन से तात्पर्य

टिप्पणी

गाली–गलौज और धमकी भरे व्यवहार से है। इसमें शारीरिक, आर्थिक, मानसिक एवं सेक्सुअल हिंसा शामिल है। इसमें धमकी, अलगाव आदि भी शामिल है। घरेलू हिंसा का मकसद दूसरे पर धाक जमाना होता है। प्रायः पुरुष इसका उपयोग अपनी महिला पार्टनर के साथ करता है। घरेलू हिंसा को दोहराया जाता है। डर और धमकी द्वारा घरेलू हिंसा में पीड़ित पर कंट्रोल किया जाता है। यह सामाजिक विश्वास कि पुरुष को महिला को कंट्रोल करने का हक है। उसे कंट्रोल सुरक्षित या स्थाई बनाने के लिए जोर देने का हक है, घरेलू हिंसा को बढ़ावा देता है।

पुरुष महिला से श्रेष्ठ है, यह एक मानसिक बीमारी है। रिश्तों में महिलाएं पुरुष पर निर्भर रहती हैं। यह भी एक मानसिक बीमारी है। ये घरेलू हिंसा को बढ़ाती है। महिलाओं द्वारा खुद को अबला समझा जाना घरेलू हिंसा में बढ़ोत्तरी का एक कारण है। पारंपरिक रूप से पुरुषों के पास महिलाओं से ज्यादा अधिकार होता है जो घरेलू हिंसा को बढ़ावा देता है। महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा नहीं मिलना भी प्रमुख कारण है।

घरेलू हिंसा में शारीरिक हिंसा, सेक्सुअल हिंसा, आर्थिक कंट्रोल और मानसिक तनाव आदि को शामिल किया जा सकता है। धमकी, शारीरिक हानि, संपत्ति पर हमला, अलगाव, भावनात्मक गाली, कंट्रोल करने के लिए बच्चों का उपयोग आदि भी घरेलू हिंसा के प्रकार हैं। घरेलू हिंसा वास्तव में शक्ति एवं नियंत्रण के कारण होती है।

सर्वप्रथम सन 1946 में महिलाओं के मुद्दों का निबटारा करने के लिए महिलाओं की प्रस्थिति पर आयोग की स्थापना की गई थी। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में भेदभाव की अग्राह्यता के सिद्धांत को अभिपुष्ट कर दिया था और यह उद्घोषणा की थी कि सभी मानव गरिमा एवं अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र एवं समान पैदा हुए हैं और हर व्यक्ति उसमें उपविर्णत सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का, लिंग पर आधारित भेदभाव सहित किसी भी प्रकार के बिना किसी भेदभाव के हकदार है। फिर भी महिलाओं के विरुद्ध व्यापक भेदभाव विद्यमान हैं, मुख्यतः इसलिए क्योंकि महिलाओं एवं लड़कियों को समाज द्वारा अधिरोपित अनेक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है, न कि विधि द्वारा अधिरोपित प्रतिबंधों का। इससे अधिकारों की समानता तथा मानव अधिकारों के सम्मान के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है।

महासभा ने 7 नवंबर, 1967 को महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति की घोषणा (Declaration on the Elimination of Discrimination Against Women) को अंगीकार किया और घोषणा में प्रस्तावित सिद्धांतों के कार्यान्वयन के लिए महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय (Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women) 18 दिसंबर, 1979 को महासभा द्वारा अंगीकार किया गया। अभिसमय 1981 को प्रवृत्त हुआ और 30 अप्रैल, 2011 तक इसके 187 राज्य पक्षकार बन चुके हैं।

महिलाओं के विरुद्ध भेद–भाव की परिभाषा (Definition of Discrimination Against Women)

महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव शब्द से आशय लिंग के आधार पर किया गया ऐसा कोई भेद, अपवर्जन या प्रतिबंध है, जिसका प्रभाव अथवा उद्देश्य महिलाओं द्वारा उनकी वैवाहिक प्रास्थिति पर बिना विचार किए हुए राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सिविल अथवा किसी अन्य क्षेत्र में पुरुष एवं स्त्री की समानता के आधार पर महिलाओं द्वारा समान स्तर पर उपभोग अथवा प्रयोग करने से वंचित करती है।

टिप्पणी

अभिसमय द्वारा अनुच्छेद 1 के अंतर्गत महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव शब्द की परिभाषा लिंग के आधार पर किए गए किसी भी ऐसे भेदभाव अपवर्जन (Excution) अथवा प्रतिबंध के रूप में की गई है जिसका प्रभाव अथवा उद्देश्य महिलाओं द्वारा अपनी वैवाहिक प्रास्थिति से बिना कोई संबंध रखे हुए पुरुष एवं महिलाओं की समानता, मानव अधिकारों एवं राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सिविल (नागरिक) अथवा किसी अन्य क्षेत्र में मूलभूत स्वतंत्रताओं के आधार पर मान्यता उपभोग अथवा प्रयोग का ह्रास अथवा अकृत करना है।

भाग 3 के अंतर्गत अभिसमय ने कई क्षेत्रों का प्रतिपादन किया है जहां राज्य पक्षकारों के लिए महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव दूर करने के लिए कहा गया है, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं–

1. शिक्षा
2. नियोजन
3. स्वास्थ्य सुरक्षा
4. आर्थिक तथा सामाजिक जीवन
5. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं
6. विधि के समक्ष समानताएं
7. विवाह तथा परिवार संबंध

(2) समाज आरंभ से ही दो वर्गों में विभक्त रहा है– संपन्न लोगों का वर्ग एवं पिछड़ा वर्ग। पिछड़े वर्ग में सामान्यतया अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग माने जाते हैं। यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से कमजोर रहा है। इन पर सवर्ण एवं संपन्न लोगों द्वारा नाना प्रकार के अत्याचार भी किए जाते रहे हैं। एक लंबे समय तक यह वर्ग इन सभी अत्याचारों को मौन भाव से सहन करता रहा। लेकिन कालांतर में समय ने करवट ली और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इस वर्ग के लिए एक नए युग का सूत्रपात हुआ। भारत के संविधान में इस वर्ग के लिए कई विशेष व्यवस्थाएं की गईं। सर्वप्रथम अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का अंत किया गया। अनुच्छेद 15 में यह कहा गया कि किसी भी व्यक्ति के साथ मात्र धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 16 में लोक नियोजन में सभी वर्गों के लिए अवसर की समता का उपबंध किया गया। "समान कार्य समान वेतन" की व्यवस्था की गई। बाबूलाल बनाम नई दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस पर अपनी पुष्टि की मुहर लगाई और तो और पदोन्नति के संबंध में भी इस वर्ग के लिए अनुच्छेद 16(4क) में विशेष प्रावधान किए गए हैं। सुपरिंटेंडेंट इंजीनियर, पब्लिक हेल्थ, यूनियन टेरीटरी, चंडीगढ़ बनाम कुलदीप सिंह के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह कहा गया कि पदोन्नति हेतु अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित स्थान को इस जाति का उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध न होने पर इसे अनुसूचित जाति के अन्य व्यक्ति से भरा जा सकता है। इस प्रकार समाज का यह वर्ग अब संवैधानिक दृष्टि से पूर्णतया संरक्षित है।

यहां यह भी उल्लेख करना उचित है कि समाज के इस वर्ग की अब सत्ता में भागीदारी भी सुनिश्चित कर दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 243–घ में इस वर्ग के लिए पंचायती राज संस्थाओं में जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित किए गए हैं। इन स्थानों में से 1/3 स्थान इस वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं। अभी हाल ही में सरस्वती देवी बनाम श्रीमती शांति देवी के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस व्यवस्था की पुष्टि की गई है।

टिप्पणी

(3) निःशक्तता किसी भी व्यक्ति के लिए अभिशाप है। भारत का संविधान देश के सभी नागरिकों के मूल अधिकारों की गारंटी देता है। ये मूल अधिकार सभी के लिए हैं जिनमें विकलांग या निःशक्त व्यक्ति भी सम्मिलित हैं, राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 41 राज्य को निदेश देता है कि, "वह अपनी सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता और अन्य अभाव की दशाओं में लोक सहायता प्राप्त करने का प्रभावी उपबंध करेगा।"

(4) निःशक्त व्यक्ति : बीजिंग में (1–5 दिसंबर) 1992 में, एशिया और प्रशांत क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक आयोग के तत्वावधान में, "निःशक्त व्यक्तियों के लिए एशियन और प्रशांत दशक" प्रारंभ करने के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप 'एशियन और प्रशांत क्षेत्र में निःशक्ल व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी और समानता' के लिए एक अधि–घोषणा जारी की गई। भारत इस अधि–घोषणा का हस्ताक्षरकर्ता राज्य है। अतः इस अधि–घोषणा को क्रियान्वित करने के लिए निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1996 पारित किया गया।

'निःशक्तता' शब्द को परिभाषित करते हुए अधिनियम में कहा गया है कि इससे अभिप्रेत है– अंधापन, निम्न दृष्टि, अभिसाधित कोढ़ (Leprosy-cured), बहरापन, गति विषयक निःशक्तता, मानसिक मंदता तथा मानसिक बीमारी।

'निःशक्त व्यक्ति' से कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित किसी निःशक्तता के चालीस प्रतिशत से कम भाग से ग्रस्त न हो। अधिनियम की धारा 2(क) के अनुसार 'पुनर्वास' से वह कार्यवाही विनिर्दिष्ट है जो निःशक्त को उसकी शारीरिक, सांवेदिक (Sensory), बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक अथवा सामाजिक कार्य करने के स्तर प्राप्त करने और उसे बनाए रखने के उद्देश्य से अभिप्रेत हैं।

अधिनियम द्वारा एक केंद्रीय समन्वय समिति के गठन के लिए उपबंध किया गया है। अधिनियम की धारा 3 के अनुसार यह समिति इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे समनुदिष्ट (Assigned) कृत्यों का पालन करने के लिए गठित होगी।

अधिनियम में समिति के गठन का विस्तार से उल्लेख किया गया है और उसके कृत्यों को भी विहित किया गया है। केंद्रीय समन्वय समिति के निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के गठन के लिए भी अधिनियम में उपबंध किया गया है।

(5) अल्पसंख्यक : वर्तमान समय में अल्पसंख्यकों की बहुत सारी समस्याएं हैं। वहीं भारत का संविधान अल्पसंख्यक को परिभाषित नहीं करता। यह केवल अल्पसंख्यक की सामान्य जानकारी देता है। भारत में मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी, बौद्ध, सिक्ख और जैन अल्पसंख्यकों में शामिल किए जाते हैं। जम्मू और कश्मीर, मिजोरम, मेघालय और लक्ष्यद्वीप में हिंदुओं को धार्मिक अल्पसंख्यकों में गिना जाता है।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान में कई प्रावधान हैं। संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार दिए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 अल्पसंख्यकों के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार कई नीतियां एवं

टिप्पणी

कार्यक्रम लाती हैं। अनुच्छेद 29—(1) भाषा से संबंधित है। अनुच्छेद 25 सिक्खों के पगड़ी पहनने और कृपाण रखने से संबंधित है। अल्पसंख्यक शैक्षणिक संख्याओं द्वारा शासन से अनुदान प्राप्त करने से संबंधित अनुच्छेद 32(2) है। इसी प्रकार अनुच्छेद 3457, अनुच्छेद 350 A, अनुच्छेद 350 B. अनुच्छेद 3(1) आदि अल्पसंख्यकों से संबंधित हैं।

सन् 1992 में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम बनाया गया। सन 1993 में अल्पसंख्यक आयोग बनाया गया, जो अल्पसंख्यकों के हितों के लिए कार्य करता है। सन 2006 में भारत सरकार ने अल्पसंख्यक मंत्रालय की स्थापना की। यह मंत्रालय अल्पसंख्यकों से संबंधित मामलों में ध्यान देता है। नीति, योजना, संयोजन विकास आदि अल्पसंख्यक हित पर ध्यान रखना इस मंत्रालय की जिम्मेदारी है। यह भी उल्लेखनीय है कि बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यक वर्गों के हितों को ध्यान में रखे।

(6) विस्थापित लोग : वर्तमान समय में विस्थापितों की संख्या एक प्रमुख समस्या है। वास्तव में विस्थापित लोग वे हैं, जो आपदा या अन्य किसी कारण से अपना निवास स्थान छोड़ने पर मजबूर हुए हैं। इन्हें अंदरूनी विस्थापित लोग भी कहा जाता है। उन्हें शरणार्थी के अंतर्गत नहीं रखा जाता है। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक अंदरूनी विस्थापित लोग, वे लोग या लोगों का समूह है, जिन्हें किसी संघर्ष, हिंसा, मानव अधिकारों के उल्लंघन, प्राकृतिक या मानवीय आपदा के कारण अपना घर छोड़ना पड़ा और उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय राज्य सीमा को पार न किया हो।

(7) अभिक्षणीय उल्लंघन : भारतीय जेलें भीड़ भरी हैं। जेलों में क्षमता से अधिक कैदियों एवं बंदियों को रखा जाता है। जेलों में समुचित सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। कैदियों एवं बंदियों को यातनाएं दी जाती हैं। उन्हें परिजनों से मिलने का अवसर नहीं दिया जाता। उनके स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दिया जाता और तो और, बाल अपराधियों को कुख्यात अपराधियों के साथ रखा जाता है। न्यायालय ने इस स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए जेलों में सुधार के लिए कतिपय दिशा—निर्देश जारी किए—

1. सभी जेलों में 'शिकायत पेटियां' रखी जाएं ताकि बंदी एवं कैदी अपनी व्यथा उच्चाधिकारियों तक पहुंचा सकें।
2. खुली जेलों का निर्माण किया जाए।
3. बंदियों एवं कैदियों को कामकाजी प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर जीवन जीने योग्य बन सकें।
4. उन्हें काम के बदले मजदूरी दी जाए।
5. कैदियों एवं बंदियों को पैरोल पर छोड़ने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाए।
6. कैदियों एवं बंदियों को परिजनों से मिलने की सुविधा प्रदान की जाए।
7. संपूर्ण देश के लिए एक आदर्श जेल संहिता तैयार की जाए।
8. जेलों में भीड़ को रोका जाए।
9. बाल अपराधियों को कुख्यात अपराधियों के साथ न रखा जाए।
10. जेलों में भोजन, वस्त्र, पानी, बिजली, चिकित्सा आदि की समुचित सुविधाएं जुटाई जाएं।

टिप्पणी

11. विचाराधीन बंदियों को समय–समय पर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाए।
12. जेलों में पठन–पाठन तथा लेखन की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं।
13. जेलों में कैदियों एवं बंदियों को हथकड़ियों एवं बेड़ियों में नहीं रखा जाए।
14. कैदियों एवं बंदियों को अपने अधिवक्ता से परामर्श करने का अवसर प्रदान किया जाए।
15. जेलों में कैदियों एवं बंदियों को शारीरिक एवं मानसिक यातनाएं नहीं दी जाएं।

उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय निःसंदेह जेल सुधार की दिशा में एक 'मील का पत्थर' है। इससे जेल में जीवन बिता रहे कैदियों एवं बंदियों को सम्मानूपर्वक जीवन जीने का अवसर उपलब्ध होगा। उनके मानवाधिकारों का संरक्षण होगा तथा वे पुनः समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकेंगे।

मानवाधिकार एवं जेल प्रशासन से जुड़ा एक और उद्धरणीय मामला आर.डी. उपाध्याय बनाम स्टेट ऑफ आंध्र प्रदेश का है। इसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि– जहां जेल में महिला के साथ कोई बालक भी हो तो ऐसे बालक के हितों को सुरक्षा प्रदान किया जाना जेल प्रशासन का दायित्व है। बालक के भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा आदि की व्यवस्था किया जाना अपेक्षित है। ये सारी सुविधाएं बाल अधिकारों में सम्मिलित हैं।

(8) शरणार्थी मानव अधिकारों से वंचित हो जाते हैं। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके ऊपर उनके राज्य का संरक्षण नहीं रह जाता। शरणार्थियों से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जिन्होंने अपने राज्य को अत्याचारों से अथवा सैन्य कार्यवाही से बचने के लिए छोड़ दिया हो जिनमें वे स्थायी रूप से निवास करते रहे हों। शरणार्थियों की प्रस्थिति से संबंधित 1951 के अभिसमय में यह कहा गया है कि शरणार्थी वह व्यक्ति होता है जो अपने मूल देश से राजनीतिक अथवा अन्य प्रकार के अत्याचारों के कारण दूसरे राज्य में भाग जाता है और देश के संरक्षण को प्राप्त करने में असमर्थ या अनिच्छुक रहता है और इस प्रकार से अपनी राष्ट्रीयता खो देता है।

उपर्युक्त परिभाषा यह अधिकथन करती है कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को शरणार्थी माना जाएगा जिन्हें साधारण प्रवासियों अथवा आर्थिक शरणार्थियों के विपरीत राजनीतिक शरणार्थी कहा जाता है। परिभाषा में सबसे महत्वपूर्ण शब्द यह है कि 'उत्पीड़ित किए जाने का सुस्थापित भय' (well founded fear of being persecuted) जिसमें शरणार्थियों की ओर से व्यक्तिनिष्ठ (भय) शामिल हैं और उस देश के प्रति वस्तुनिष्ठ तथ्य शामिल होते हैं जहां से शरणार्थी भाग रहा होता है। इस प्रकार वे राजनीतिक उत्पीड़न से भागने वाले केवल वे व्यक्ति शरणार्थी की प्रस्थिति के लिए प्रभावी रूप से अर्ह होंगे क्योंकि उत्पीड़न मानव अधिकारों का प्रत्याख्यान होता है। कोई व्यक्ति अपना देश इसलिए छोड़ देता है क्योंकि उसे मूलभूत मानव अधिकारों के उपभोग से वंचित कर दिया जाता है। एक दूसरे राज्य में भागने वाले किसी व्यक्ति को आर्थिक प्रवासी समझा जाएगा यदि वह आर्थिक प्रतिफलों से अभिप्रेरित होता है।

फिर भी कतिपय अवसरों पर आर्थिक कारणों से भागने वाले किसी व्यक्ति को भी शरणार्थी कहा जा सकता है यदि उसके आर्थिक प्रतिफलों का संबंध उसके राज्य के राजनीतिक प्रतिफलों से मिश्रित है। राज्य की राजनीतिक–आर्थिक प्रणाली (Political-economic system) का परिणाम किसी व्यक्ति को अपने स्वयं के राज्य से

टिप्पणी

भाग जाना हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी राज्य में किसी निश्चित जातीय अल्पसंख्यक को सरकार की नीति के कारण जो किसी जाति समूह को निष्कासित करने की हो (उदाहरण के लिए यूगांडा में एशियाई) और व्यापार एवं आर्थिक अधिकारों से मना कर दिया जाता है, और वे अन्य राज्यों में भाग जाते हैं क्योंकि उनके पास रोजी–रोटी का उपयुक्त साधन नहीं रह जाता है, तो उन्हें राजनीतिक, आर्थिक प्रवासी माना जा सकता है। इस तरह के मामले में, नीति यद्यपि आर्थिक होती है, वे पूर्ण रूप से राजनीतिक उद्देश्यों से निर्धारित की जाती है और केवल किसी निश्चित जातीय समूह के सदस्यों के लिए ही निर्देशित होती है। इस प्रकार के व्यक्ति 1951 के अभिसमय के अनुसार विशुद्ध राजनीतिक शरणार्थी होते हैं और उन्हें प्रास्थिति इस बात से बिना कोई संबंध रखे हुए प्रदान की जा सकती है कि उनका प्रस्थान सहसा था या पूर्वानुमानित।

शरणार्थी आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्तियों से भिन्न हैं जो अपने देश की सीमा के अंतर्गत नागरिक अशांति या ऐसी अशांति के भय के अधिकार पर एक अन्य क्षेत्र से विस्थापित किए गए हैं। विधितः वे अपनी सरकार की संप्रुभता के अधीन आते हैं, यद्यपि वह सरकार उनकी रक्षा करने की इच्छुक या समर्थ नहीं हो सकेगी। 2008 के अंत तक संपूर्ण विश्व में शरणार्थी के रूप में या आई.डी.पी. के रूप में रह रहे संघर्ष एवं उत्पीड़न के पीड़ितों की संख्या कुछ 42 मिलियन थी।

भारत न तो 1951 के शरणार्थी अभिसमय का पक्षकार है और न ही 1967 के नयाचार का पक्षकार है। इसने इस तथ्य के विरुद्ध शरणार्थियों से संबंधित कोई राष्ट्रीय विधि अधिनियमित नहीं की है कि उसने तिब्बत, बंगलादेश, श्रीलंका और अफगानिस्तान से भागने वाले अधिकतम लोगों को शरण प्रदान की है। किसी भी विधि के अभाव में यह स्पष्ट नहीं है कि शरणार्थी को कौन–सी विधिक स्थिति या अधिकार प्राप्त है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि कैसे शरणार्थियों की उचित रूप से शिनाख्त की जाएगी। लेकिन भारतीय संविधान प्रावधान करता है कि संविधान के भाग तीन के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकारों में से कुछ सभी व्यक्तियों को उपलब्ध होंगे और परिणामस्वरूप वे शरणार्थियों को भी उपलब्ध हैं। इस प्रकार अनुच्छेद 14 के अधीन प्रत्याभूत विधि के समान संरक्षण का अधिकार, अनुच्छेद 20 के अधीन अपराधों से दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण, अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्याभूत प्राण और स्वतंत्रता का अधिकार और अनुच्छेद 22 के अधीन उपबंधित मनमानीपूर्ण गिरफ्तारी और निरोध के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार शरणार्थियों को उपलब्ध है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. आधुनिक मानवाधिकार कानून संबंधी व्यवस्थाएं किससे संबंधित हैं?
   (क) धार्मिक पृष्ठभूमि (ख) समसामयिक इतिहास
   (ग) परंपरा (घ) अपराध नियंत्रण
2. अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत हैं–
   (क) संधियां (ख) संविधान
   (ग) अर्थव्यवस्था संबंधी स्थितियां (घ) इनमें से कोई नहीं

5.3 स्वैच्छिक संगठन एवं समाज कार्य

स्वैच्छिक संगठन की अर्थवत्ता एवं इनकी समाज कार्य संदर्भित भूमिका को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है—

5.3.1 स्वैच्छिक संगठनों की अवधारणा

स्वैच्छिक संगठन से तात्पर्य लोगों के एक ऐसे समूह से है जो संगठित हों, गैर—सरकारी हों, औपचारिक हों एवं स्वचलित हों अर्थात संगठन के सदस्य इसे संचालित करने के लिए नियम व नीतियां बनाते हों। ऐसे संगठन समुदाय में कल्याकणरी एवं विकासात्मक कार्य करते हैं। ये अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित करके स्व—प्रेरणा से समुदाय में सकारात्मक बदलाव के लिए कार्य करते हैं। ऐसे संगठनों के अपने आदर्श एवं मूल्य होते हैं तथा ये सकारात्मक बदलाव से होने वाले लाभ को समुदाय के बीच बांटते हैं।

भारत में गैर—सरकारी संगठनों को स्वैच्छिक संगठन, अलाभकारी संगठन, परोपकारी संगठन, परमार्थ संगठन, नगर समाज संगठन के नाम से जाना जाता है। गैर—सरकारी संगठनों का पंजीकरण विभिन्न अधिनियम यथा सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट 1860, इंडियन ट्रस्ट एक्ल 1882, पब्लिक ट्रस्ट एक्ट 1950, कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 8, रिलिजियस इंडोमेंट एक्ट 1863, चैरिटेबुल एंड रिलिजियस ट्रस्ट एक्ट 1920, मुसलमान वक्फ एक्ट 1973, वक्फ एक्ट 1954, पब्लिक वक्फ एक्ट 1959 के अंतर्गत किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने अपने 52वें अधिवेशन में वर्ष 2001 को अंतर्राष्ट्रीय स्वयंसेवक वर्ष घोषित किया।

गैर—सरकारी संगठन वे सभी संगठन हैं जो सीधे सरकारी विभाग या उसकी कोई इकाई नहीं है (वेस्ग्राड 1997)। गैर—सरकारी संगठनों को स्वैच्छिक संगठन, नागरिक समाज संगठन, स्वयंसेवी संगठन के नाम से भी जाना जाता है।

विश्व बैंक के अनुसार, "ऐसे सभी समूह एवं संस्थाएं पूर्णतः स्वतंत्रतापूर्वक अपने कार्यों, कार्यक्रमों एवं वित्त का संचालन करते हैं एवं जिनका प्राथमिक उद्देश्य आर्थिक लाभ प्राप्त करना न होकर सामुदायिक परोपकार होता है गैर—सरकारी संगठन कहलाता है। इसके अंतर्गत वे सभी परोपकारी एवं धार्मिक संस्थाएं भी आती हैं जो निजी पूंजी के द्वारा विकास के लिए अपनी सेवाएं प्रदान कर सामुदायिक संगठन को प्रोत्साहित करती हैं।"

सामान्यतः गैर—सरकारी संगठनों का अर्थ निम्न रूप से रेखांकित किया जा सकता है—

- अलाभकारी, स्वयंसेवी प्रदाता, विकासोन्मुखी संगठन जो अपने सदस्यों या कार्यक्षेत्र की जनता के लिए स्वयंसेवी स्वरूप में सेवा प्रदाता का कार्य अलाभकारी दृष्टिकोण से करता है गैर—सरकारी संगठन कहलाता है।
- यह कुछ लोगों का ऐसा संगठन है जो मूलभूत सामाजिक सिद्धांतों पर विश्वास करता है और समुदाय के विकास के लिए गतिविधियों का निर्धारण कर उसे क्रियान्वित कर सेवा प्रदान करता है।

टिप्पणी

- लोगों का ऐसा संगठित समूह जो बिना किसी बाहरी नियंत्रण के स्वतंत्रतापूर्वक अपने लक्ष्य एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करता है ताकि निर्दिष्ट क्षेत्र के जनसमूह में वांछित परिवर्तन सुनिश्चित कर सके गैर–सरकारी संगठन कहलाता है।
- लोगों का ऐसा स्वतंत्र, प्रजातांत्रिक समूह जो आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग को मजबूती प्रदान करने के लिए कार्य करता है, गैर–सरकारी संगठन कहलाता है।
- ऐसे समाज जो राजनीतिक दलों से संबद्धता न रखते हुए समुदाय के विकास, कल्याण एवं सेवा का कार्य करते हैं, गैर–सरकारी संगठन कहलाते हैं।
- सामान्य जन समुदाय को बिना किसी स्वार्थ/लाभ के सेवाएं प्रदान करने वाले प्रजातांत्रिक व अपेक्षाकृत सरल समूह को गैर–सरकारी संगठन कहते हैं।
- ऐसी संस्था जो समुदाय और व्यक्तियों के बीच बदलाव की पहल और विशिष्ट मुद्दों के प्रत्यक्ष कार्यान्वयन के जरिए कार्य करती है स्वयंसेवी संस्था या गैर–सरकारी संस्था कहलाती है।

योजनाओं में कुछ लाभार्थी, उपभोक्ता बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋण का दुरुपयोग करते हैं। स्वैच्छिक संगठन ऐसे लाभार्थियों को ऋण का प्रभावी और उत्तम उपयोग करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। ये संगठन सतत प्रयास, वृद्धि, चातुर्य और नवीन कार्य करके ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। ग्रामीण समुदायों को अपने ही विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित, जागरूक एवं समर्थ बना सकते हैं।

स्वैच्छिक संगठन भारत में अनेक प्रकार की गतिविधियां चलाते हैं, जिससे लोगों को लाभ होता है, क्योंकि मूल रूप से वे बिना किसी व्यावसायिक हित अथवा लाभ के काम करते हैं। इन संगठनों का उद्देश्य निर्धनता अथवा किसी प्राकृतिक आपदा के कारण कष्ट सह रहे लोगों की सेवा करना है। हालांकि स्वैच्छिक संगठनों पर प्रायः सार्वजनिक धन के दुरुपयोग का आरोप लगता रहा है, परंतु वे इनका प्रतिकार सामाजिक समस्याओं का योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन कर उनका समाधान ढूंढ़ने की कोशिशों से करते रहे हैं। चूंकि भारत में स्वैच्छिक संगठन इकट्ठा की गई राशि से ही काम करते हैं, वे बहुत सोच–समझकर अपनी योजना तैयार करते हैं ताकि उनका किफायती कार्य हो जाए।

स्वैच्छिक संगठनों के अनेक लाभ हैं। भारत एक विशाल देश है और इसकी जनसंख्या भी काफी अधिक है। ऐसे में सरकार के लिए सभी गतिविधियों की देखभाल करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। अतः देश की सभी गतिविधियों की देखभाल के लिए स्वैच्छिक संगठनों की सहायता की आवश्यकता है।

लोगों के जीवनस्तर में सुधार की आवश्यकता को देखते हुए भारतीय स्वैच्छिक संगठन विभिन्न परियोजनाओं पर काम कर रहे हैं। इससे लोगों की जीवनशैली में सुधार में निश्चित ही मदद मिलेगी। स्थानीय स्वैच्दिक संगठन क्षेत्र के विकास में बेहतर मदद कर सकते हैं क्योंकि वे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी कार्यप्रणाली में लचीलापन ला सकते हैं और इस प्रकार विकास की एकीकृत परियोजनाएं

टिप्पणी

अपना सकते हैं। लोगों के साथ सीधा संपर्क होने के कारण वे स्थानीय गरीबों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, अच्छी मदद कर सकते हैं। वे बिना किसी झंझट के विशेषज्ञों और अनुप्रेरित कर्मचारियों को सरकार की अपेक्षा आसानी से काम पर रख सकते हैं। सामाजिक गतिविधियों में स्वैच्छिक संगठनों के सक्रिय हस्तक्षेप से नेतृत्व का गुण भी विकसित होता है। स्वैच्छिक संगठन शिक्षा और इसी प्रकार की अन्य गतिविधियां चलाते हैं। इस देश में स्वैच्छिक संगठन वास्तव में आशा की एक किरण के रूप में उभरे हैं।

5.3.2 गैर–सरकारी संगठनों की क्षमता, चुनौतियां, पारंपरिकता एवं विशिष्टता

गैर–सरकारी संगठनों ने देश में कई रूप में कल्याण और विकास का कार्य किया है चाहे शिक्षा, प्रशिक्षण, रोजगार का क्षेत्र हो या फिर स्वास्थ्य, कृषि या अन्य क्षेत्र। दसवीं पंचवर्षीय योजना की स्टीयरिंग समिति ने गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका पर लिखा– "सामाजिक मोबिलाइजेशन और समुदाय के द्वारा शुरू किए गए कार्य का विकास बिना स्वैच्छिक संगठनों के सक्रिय सहयोग के नहीं प्राप्त किया जा सकता है। यह देखने में आ रहा है कि स्वैच्छिक क्षेत्र की क्षमता वृद्धि की आवश्यकता है जिससे वे राज्य और बाजार संस्थाओं के बीच सामंजस्य बनाने का कार्य कर सकें। स्वैच्छिक संगठनों, निजी संस्थाओं एवं पंचायतीराज संस्थाओं के बीच ज्यादा साझेदारी की आवश्यकता है। गैर–सरकारी संगठनों के योगदान को सुनिश्चित करने के लिए मंत्रालयों के दिशा–निर्देश एवं विधि को और सरलीकृत किया जाए जिससे अच्छे संगठन ज्यादा योगदान दे सकें।"

भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री समेत कई गणमान्य लोग गैर–सरकारी संगठनों में जाते रहे हैं जैसे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी रामकृष्ण मिशन गए। देश के कई उद्योग घरानों एवं कंपनियों ने गैर–सरकारी संगठनों के साथ कल्याण और विकास कार्यक्रमों में क्रियान्वयन में सहयोग लिया है।

देश में स्वैच्छिक संगठन अपनी क्षमता के अनुसार प्रशिक्षण शिक्षा, सामाजिक सुधार, महिला एवं बाल कल्याण, ग्रामीण विकास, जल संरक्षण आजीविका, संवर्धन, स्वच्छता, साक्षरता इत्यादि कार्यों में संलग्न हैं तथा राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे रहे हैं।

स्वैच्छिक संगठनों की चुनौतियां

वैश्वीकरण एवं निजीकरण के इस युग में एक तरफ जहां स्वैच्छिक संगठनों के लिए अपार अवसर हैं, तो दूसरी ओर इनके लिए गंभीर चुनौतियां भी हैं।

पिछले पांच वर्षों में केंद्रीय सरकार द्वारा स्वैच्छिक संगठनों के बारे में प्रतिकूल टिप्पणी की गई है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों विशेषकर ग्रीन पीस और फोर्ड फाउंडेशन को कड़े पहरे में रखा गया। भारतीय स्वैच्छिक संगठनों को विदेशी अनुदान का वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत न करने पर उनके पंजीकरण का नवीनीकरण नहीं किया गया।

यद्यपि सी.एस.आर. नियम 2014 के क्रियान्वयन से स्वैच्छिक संगठनों के लिए साझेदारी का नया अवसर प्राप्त हुआ है किंतु बहुत सी कंपनियों द्वारा अपने ट्रस्ट,

सोसाइटी या फाउंडेशन बताने से उनके सामने वित्तीय सहायता प्राप्त करने की चुनौती भी आ गई है।

टिप्पणी

स्वैच्छिक क्षेत्र की राष्ट्रीय नीति 2007 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि स्वैच्छिक संगठन के प्रतिनिधि अधिक दक्ष नहीं हैं और उनको प्रशिक्षण इत्यादि की व्यवस्था होनी चाहिए। वास्तव में अधिकांश स्वैच्छिक संगठन के प्रतिनिधि व्यावसायिक दक्षता एवं निपुणता में कमजोर होते हैं। दूसरी ओर उनके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं आयोजित किए जाते हैं।

स्वैच्छिक संगठनों के समक्ष चुनौतियां भी कुछ कम नहीं हैं। बढ़ती संख्या और विस्तृत होते कार्यक्षेत्र के बीच मूल्यहीनता एवं दिशाहीनता के आधार पर संस्थाओं की आलोचना बढ़ती जा रही है।

देश में स्वैच्छिकता

भारत के आजादी पाने के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जमीन से जुड़े अनेक संगठनों के प्रेरणा स्रोत बन गए। तब उन्हें गांधीवादी संगठन कहा जाता था। आजादी मिलने के बाद महात्मा गांधी ने आह्वान किया कि हमें सिर्फ राजनीतिक आजादी मिली है और भूख गरीबी एवं वंचना से आजादी पाना अभी बाकी है। इसीलिए उन्होंने अनेक स्वतंत्रता सेनानियों को जो राजनीतिक साधनों के जरिये उपलब्धियां प्राप्त करना चाहते थे, सलाह दी कि वे चुनावी राजनीति में चले जाएं और अन्य लोगों को सामाजिक सेवा में शामिल होने की सलाह दी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने देश के दूर–दराज के इलाकों तक इन बुनियादी सेवाओं को उपलब्ध कराने का एक बहुत बड़ा काम शुरू किया। इसके अंतर्गत विनाशकारी अकाल और देश विभाजन की त्रासदी से राहत दिलाने के प्रयास किए जाते थे। यह एक जटिल काम था और इसके लिए जरूरी वित्तीय और मानवीय संसाधनों तथा राजकीय सहायता का अभाव था।

समय की आवश्यकता को देखते हुए स्वैच्छिक संगठनों ने देश के दुर्गम इलाकों तक फैलकर अपना कामकाज ही नहीं किया, नए–नए तरीके भी निकाले जिनके जरिये वे वंचित और गरीब लोगों तक अपनी सेवाएं पहुंचा पाते थे। इनमें से अनेक सरकार के संसाधनों को आगे बढ़ाने वाले साधन बन गए। जैसे–जैसे स्थिति बदलती गई, इन स्वैच्छिक संगठनों की प्रकृति, स्वरूप और कार्य भी बदलते गए। अगर हम आज की स्थिति का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि स्वैच्छिक संगठनों के सामने नए अवसर ही नहीं बल्कि बहुत बड़ी और गंभीर चुनौतियां भी मौजूद हैं।

पारस्परिक सहयोग मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है– ऐसा समाज शास्त्रियों, मानव शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है। इसी सहज प्रवृत्ति से ही मनुष्य एक–दूसरे की सहायता करते आए हैं। सामाजिक जीवन के नियमन के लिए जो आचार–संहिता बनी है उसे धर्म की संज्ञा दी गई है और कालांतर में इस धर्म का संबंध एक काल्पनिक परंतु अनुभूत दैवी शक्ति से ही हुआ और प्राणी की सेवा व सहायता धर्म का एक अभिन्न अंग माना जाना लगा। यह धर्म चाहे यूनानवासियों या रोमवासियों का रहा हो या फिर वैदिक परंपरा हो या बौद्ध दर्शन, प्राणी सेवा सहायता धर्म का आधार रहा है।

मानव समाज के जन्म के साथ ही समाज सेवा का उदय हुआ। आदिकाल में जब मनुष्य वन–प्राणी की अवस्था में था उस युग की सभ्यता के अनुसार अपनी इच्छा,

टिप्पणी

विचार एवं आवश्यकता के अनुकूल ही वह अपनी सुरक्षा का अधिक ध्यान देता था। उस समय समाज सेवा नहीं थी। वास्तविकता तो यह थी कि हमें ज्ञात ही नहीं था कि प्राचीन आदिवासी सभ्यता क्या थी? परंतु इतिहासकारों ने प्राचीन सभ्यता का वर्णन कथाओं की भांति किया है। उस समय व्यक्ति समूहों में रहता था, आखेट करता था और कंद–मूल ही उसका भोजन था। विपत्तियों का सामना वे सामूहिक रूप से करते थे। हम–तुम का भेद–भाव नहीं था। व्यक्तिगत जीवन न होकर समस्त जीवन की भावना थी अर्थात प्राचीन युग एकत्रीकरण का युग था। सभी एक साथ मिल–जुल कर सामूहिक रूप से अपनी परिस्थितियों में अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के उद्देश्य से समूह तोड़कर भाग जाते थे। फिर भी मिल–जुल कर रहने से सहयोग की मनोवृत्ति उपस्थित रहती थी।

भारत में समाज कार्य अथवा समाज सेवा को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत करके अध्ययन किया जा सकता है–

1. दान का युग (व्यक्तिगत)
2. मानवतावादी युग
3. राजकीय सुरक्षा गृह युग

प्रारंभ में लोग दान के विचार से व्यक्तिग रूप से दान दक्षिण देकर व समस्याओं का समाधान करके सेवा कार्य करते थे।

पूर्व वैदिक काल

वैदिक काल के पूर्व का इतिहास लिखित नहीं है परंतु कुछ स्थानों पर प्राप्त अवशेषों और खुदाई में प्राप्त खंडहरों से पता चलता है कि उस समय लोग सभ्य थे और सामाजिक सभ्यता उत्तम थी, 5000 से 7000 वर्ष पूर्व की सभ्यता की जानकारी प्रदान करता है। विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि ये छोटे–छोटे नगर आर्यों के आने के पूर्व के हैं जब यहां द्रविड़ शासक शासन करते थे। द्रविड़ों की सभ्यता रोम व यूनान जैसे नगरों की सभ्यता जैसी थी। उस समय व्यवस्थित ढंग से नगरों का संगठन किया जाता था। उस समय की द्रविड़ों की सभ्यता सामूहिक स्नानगृह व व्यक्तिगत सन गृहों के स्पष्ट चिह्न मिलते हैं। सामूहिक रूप से बैठने के स्थान बनाए जाते थे। एक स्थान पर आटा पीसने की चक्की और भंडार पाए गए जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय मानव जीवनयापन शैली सामूहिक अथवा संगठित होती थी जिससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि पूर्व वैदिक काल में सामूहिक रूप से जीवन व्यतीत करने तथा एक–दूसरे की सहायता करना मानवीय परंपरा तथा अनाथों, निःसहायों के लिए भोजन व आवास की व्यवस्था उपलब्ध रही होगी।

वैदिक काल

समाज सेवा का अध्ययन वैदिक काल से प्रारंभ होता है। इस काल का ग्रंथ ऋग्वेद है जो अन्य सभी ग्रंथों से प्राचीन माना जाता है। ऋग्वेद के दशम अध्याय में दान की बड़ी महिमा की गई है। ऋग्वेद में निर्धन व भूखों को अन्न द्वारा सहायता प्रदान करने की बात है। इसके पहले श्लोक में कहा गया है कि जो अनाज आदि से किसी भूखे की सहायता करके उनकी ज्वाला शांत करता है वह धन्य है। वैदिक काल में भूखों की सहायता करना ही मुख्य दान था। विधवाओं तथा अनाथों की समस्या कम थी। सबसे गंभीर समस्या अनाज, आश्रय तथा भोजन की समस्या थी, दान देना सामाजिक व

टिप्पणी

आर्थिक कर्तव्य बताया गया है, जिस संबंध में यह विश्वास था कि इसका फल प्राप्त होगा तथा समाज में मान–सम्मान भी मिलेगा जिससे सुख और शांति भी मिलेगी। संपूर्ण दान व्यवस्था को दो स्वरूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसे हम व्यक्तिगत दान के रूप में समझ सकते हैं।

1. **समाजीकृत दान** : इसके अंतर्गत वे सभी दान सम्मिलित किए जा सकते हैं जो संन्यासियों एवं विद्यार्थियों आदि को दिए जाते थे। सामान्यतः सामाजिक व धार्मिक संगठनों को दान देना अधिक उचित व महत्वपूर्ण समझा जाता था।
2. **माताग्रहित दान** : प्राचीन एवं परंपरागत भावनाओं से प्रेरित होकर ही दान देने की प्रथा है साथ ही दान देने के लिए यह विश्वास भी प्रेरित करता है कि यदि आज हम दान देंगे तो भविष्य में इससे कहीं अधिक प्रतिफल प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त पाप व पुण्य की भावना के आधार पर दान दिया जाता है।

जैन एवं बौद्ध परंपराएं

इतिहास साक्षी है कि बौद्धों एवं जैनियों ने समाज सेवा का स्वरूप निर्धनों की सेवा की प्रेरणा से हमारे समक्ष उपस्थित किया है। उनकी साधना का उद्देश्य सेवा था। रोगियों, वृद्धों एवं निर्धनों की सेवा करना ही वास्तविक साधना समझी जाती थी। मठ तथा विहार इसके प्रमुख स्रोत थे। बुद्ध के समय में संस्थागत सेवाओं की परंपरा भी पाई जाती है। समाज सेवा में धार्मिक का विचार समाज कल्याण के उद्देश्य से ही किया गया था। सेवा व्यक्ति का वस्तुगत धर्म माना जाता था। बौद्ध धर्मावलंबियों के अनुसार मानव सेवा, व्यक्तिगत सुख तथा निर्वाण के लिए धर्म के रूप में स्वीकार की जा सकती है। आर्यों से लेकर बुद्ध तक लगभग 2500 वर्षों का इतिहास, हिंदू धर्म में समाज सेवा का साक्षी माना जाता है। इस अवधि में की जाने वाली दान व्यवस्था को निम्नलिखित स्वरूपों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. प्रणाली दान
2. सामाजिक दान
3. व्यक्ति खोज एवं दान
4. माताग्राही दान
5. संगठित सामाजिक दान (बौद्धिक सिद्धांतानुसार)
6. राजकीय संगठित दान

इस्लाम धर्म में मानवीय सहायता और समाज सेवा की उत्तम व्यवस्था की गई है। अनाथों, निर्धनों, वृद्धों, विधवाओं व निराश्रितों की सहायता की उचित व्यवस्था देखी जाती है। रहम (Mercy) तथा दूसरों के प्रति प्रेम व सहानुभूति की भावना रखना इस्लाम धर्म के प्रमुख तत्व माने जाते हैं। इस्लाम धर्म की आधारशिला आसमानी पुस्तक कुरानशरीफ में दान देने के संबंध में विस्तृत व स्पष्ट उल्लेख किया गया है, जो निम्नांकित रूप में है–

1. इस्लाम धर्म में यह माना गया है कि किसी गुलाम (बंधुआ–सेवक) को छुड़ाने व स्वतंत्र करवाने के लिए मालिक को धन देना उत्तम कार्य है।
2. अकाल व अन्य प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ित निराश्रितों को धन व अनाज आदि देना उत्तम माना गया है।

3. समाज के सबसे निकृष्ट व्यक्ति की आवश्यकतानुसार सहायता करना इस धर्म के अंतर्गत उत्तम कार्य बताया गया है। इस धर्म में सेवा कार्य को अत्यधिक महत्व दिया गया है, कहा गया है कि धार्मिक व्यक्ति यह नहीं है जो मात्र पश्चिम की ओर मुंह करके आराधना पूजा (नमाज) करता है वरन महान वह है जो मानव सेवा कार्य करता है।

इस्लाम धर्म में भावनाओं पर अधिक बल दिया गया है। इस धर्म में यह भी कहा गया है कि दान उदार भाव से देना चाहिए तथा इस प्रकार से गुप्त रूप से दें कि दूसरों को पता न चल सके। इस संबंध में यहां तक कहा गया है कि दान इस सीमा तक गुप्त रूप से देना चाहिए कि एक हाथ से दे तो दूसरे हाथ को मालूम न हो। गेजाली ने मोहम्मद रसूलअल्लाह के बारे में लिखा है कि मोहम्मद साहब अपने कारोबार की प्रतिदिन की पूरी आय में से केवल अपने आवश्यक खर्च भर बचा कर बाकी सारा धन गरीबों में बांट देते थे और उसके बाद ही भोजन करते थे। वे दयावान थे और खुद से प्रार्थना किया करते थे कि 'ऐ खुदा! मुझे विचार और व्यवहार से अच्छा बना'।

स्वैच्छिक संगठनों को विभिन्न प्रकार में विभिक्त किया जा सकता है–

1. **गतिविधियों के आधार पर :** स्वैच्छिक संगठनों को उनकी गतिविधि के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण, आदिवासी विकास इत्यादि।
2. **कार्यक्षेत्र के आधार पर :** कुछ स्वैच्छिक संगठन राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हैं और कई प्रांत में इनके कार्य संचालित होते हैं, जैसे दीनदयाल शोध संस्थान एक राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाला स्वैच्छिक संगठन है जिसका कार्य वीड (महाराष्ट्र), रांची (झारखंड), मझगवां (मध्य प्रदेश), गोंडा, चित्रकूट एवं गनीवां (उत्तर प्रदेश) इत्यादि में संचालित है। कुछ स्वैच्छिक संगठन अपने कार्य को मात्र एक क्षेत्र तक रखते हैं।
3. **विशेषज्ञता के आधार पर :** किसी विशिष्ट उद्देश्य पर कार्य में लगे रहने के कारण एक स्वैच्छिक संगठन अपनी विशेषज्ञता प्राप्त कर लेता है और समाज में उसकी पहचान उसी विशेषज्ञता के आधार पर होती है, जैसे– सद्गुरु सेवा संघ ट्रस्ट का जानकीकुंड अस्पताल नेत्र चिकित्सालय के रूप में उत्तर भारत में विख्यात है।
4. **वैधानिक पंजीयन के आधार पर :** कुछ संगठन ऐसे होते हैं जो किसी भी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत न होकर एक स्वतंत्र एवं स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करते हैं। कुछ संगठन सोसाइटी के रूप में तो कुछ संगठन ट्रस्ट के रूप में कार्य करते हैं। कुछ संगठन विदेशी अनुदान लेकर कार्य करते हैं जबकि कुछ संगठन राष्ट्रीय एजेंसी की सहायता से कार्य करते हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में गैर–सरकारी संगठन

प्रथम पंचवर्षीय योजना में गैर–सरकारी संगठनों का उल्लेख है कि इन संगठनों के द्वारा किए जा रहे कार्य के फलस्वरूप किसी भी योजना में आर्थिक एवं सामाजिक पुनरुत्थान के लिए इन संगठनों की सहायता ली जाए तथा इनके प्रयास को मजबूत करने में राज्य अत्यधिक सहयोग करेंगे। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में जन सहयोग पर बल दिया गया।

टिप्पणी

1953 में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने गैर–सरकारी संगठनों को 'लोकतंत्र की तीसरी आंख' से संबोधित किया। बोर्ड की तत्कालीन सदस्या इंदिरा गांधी ने बोर्ड की बैठक में कहा, "वर्तमान सामाजिक कल्याण संस्थाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने, नई संस्थाएं खोलने और इन सभी संस्थाओं को एक–दूसरे से जोड़ने के लिए बोर्ड ने एक विशेष कार्यक्रम बनाया है।"

स्वैच्छिक संगठन की विशेषताएं

विकास में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने में संस्थाएं प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं को ग्रामीण विकास के लिए उत्प्रेरक अभिकर्ता माना जाता है, क्योंकि ये गरीबी उन्मूलन में विविध भूमिकाएं अदा कर सकते हैं–

- लाभ न मिल पाने वाले समूहों को सामाजिक न्याय दिला सकते हैं। उनमें अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता पैदा कर सकते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं में प्रगति को बढ़ावा दे सकते हैं।
- सरकारी लोगों की अपेक्षा ये संगठन लोगों से अधिक नजदीकी संबंध स्थापित कर पाते हैं, क्योंकि ये संगठन नियमों/उपनियमों और पद्धतियों से बंधे हुए नहीं होते हैं।
- ग्रामीण गरीबों को विकास प्रक्रिया में भागीदारी के लिए संगठित कर सकते हैं।
- प्रत्येक योजना, उसके उद्देश्य, अपेक्षित लाभ, कार्य प्रणाली आदि के बारे में बेहतर ढंग से समझा सकते हैं।
- गलत धन प्रवाह को रोकने एवं भ्रष्टाचार निवारण में सहायक हो सकते हैं।
- लोगों का परंपरागत कौशल बढ़ाने तथा उनमें प्रबंधकीय विशेषज्ञता विकसित करने में सहायक हो सकते हैं।
- राजकीय अधिकारी तथा वर्ग के साथ बैठकर अनेक समस्याओं को बातचीत द्वारा सुलझाने में संगठन कारगर भूमिका निभाते हैं।
- यह संगठन स्थानीय वित्तीय संसाधन इकट्ठा करके लोगों को आत्मनिर्भर बना सकते हैं।

5.3.3 भारत में स्वैच्छिक सेवाओं का प्रचलन

तमाम विषमताओं के बावजूद भारत सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था का देश है। गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण जैसी सामाजिक–आर्थिक समस्याएं अभी भी प्रायः सभी क्षेत्रों में विद्यमान हैं। इन समस्याओं के समाधान में गैर–सरकारी संगठन वर्षों से सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। गैर–सरकारी संगठन क्षेत्र सामाजिक उन्नयन और आर्थिक विकास में योगदान देने वाली शक्ति के रूप में स्थापित हो रहा है। भारत में लगभग 33 लाख पंजीकृत गैर–सरकारी संगठन हैं (योजना, नवंबर, 2011)। वे सहभागी लोकतंत्र के क्रियान्वयन और उसको ठोस रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। उनकी भूमिका समाज में उनकी रचनात्मक और उत्तरदायी भूमिका पर निर्भर

टिप्पणी

है। वे दूर–दराज के क्षेत्रों में जमीनी स्तर पर जन साधारण के लिए कार्य करते हैं तथा उनकी पहुंच व्यापक होती है।

यदि हम भारत के लिखित इतिहास पर ध्यान दें तो पाएंगे कि मानव जीवन को गरिमा प्रदान करने की जिम्मेदारी राज्य और जनता के अनौपचारिक समूहों में हमेशा बंटी रही। मंदिर एवं अन्य धर्म स्थल हमेशा शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने के काम में राज्य संगठनों के साथ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। स्वैच्छिक संगठनों का सुसंगठित रूप तब अस्तित्व में आया जब 1860 में सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट बनाया गया।

स्वैच्छिक संगठनों का उदय मानव सभ्यता के विकसित होने के साथ–साथ हुआ। भोजन के इकट्ठा करने, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता को पूरी करने हेतु मानव समूह या संगठन विकसित हुए। जैसे–जैसे यह समूह भोजन, आवास इत्यादि के लिए घूमता वैसे–वैसे इनमें अपनी रुचि के लोग एक होते गए। तब आदिम समूह एक जगह स्थिर हुए तो समाज का निर्माण हुआ। सामाजिक संबद्धता इन समूहों का प्रमुख आधार थी। राजनीतिक अर्थव्यवस्था ने स्व–समूहों को आगे बढ़ाने का अवसर प्रदान किया। धीरे–धीरे अपने वर्ग के लोगों तथा राज्य की सीमा के प्रति लोग ज्यादा सतर्क हुए। इस समय मानव सेवा आर्थिक गतिविधि तथा सामाजिक सुरक्षा के ज्यादा समीप थी।

जैसे–जैसे आर्थिक संसाधनों पर राज्य का नियंत्रण बढ़ने लगा मानव सेवा राज्य के प्रति उत्तरदायी होने लगी। संसाधन की प्रतिस्पर्धा में सभी के प्रति सभी का युद्ध शुरू हुआ जिसके परिणामस्वरूप ताकतवर का आकार बढ़ा जबकि कमजोर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने लगे। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में राज्य के कल्याणकारी होने के प्रमाण मिलते हैं। चाणक्य ने राजा के अपनी जनता के प्रति किए जाने वाले कल्याणकारी कार्यों का विस्तृत वर्णन किया। हिंदू धर्म के विभिन्न वेद, वेदांग, श्रुति, महाभारत, रामायण इत्यादि में राज्य के कल्याणकारी कार्य का उल्लेख मिलता है। बौद्ध एवं जैन धर्म में भी मानव सेवा तथा कमजोर एवं कष्ट में रह रहे लोगों की सेवा के प्रति नैतिक दायित्व का वर्णन मिलता है। धर्म के सेवा का माध्यम इसी काल में बताया गया। अशोक के समय वृक्षारोपण, कुएं, बावली का निर्माण जन–सहयोग से किया गया।

स्वैच्छिक कार्य की आधारशिला आजादी पूर्व रखी गई जो प्रमुखतः समाज सुधार, शैक्षणिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से संबंधित थी। इसाई मिशनरियों ने अस्पताल, विद्यालय और कल्याणकारी संस्थाएं बनाईं। आजादी–पूर्व पूरे देश में ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रयोग किए गए।

महान कवि रविंद्रनाथ टैगोर ने ग्रामीण पुनर्रचना का कार्य 1908 में सिलाइदहा में तथा 1921 में श्रीनिकेतन में प्रारंभ किया। स्पेंसर हैच ने निर्धन विकास परियोजना की शुरुआत वाई.एम.सी.ए. के तत्वावधान में मार्तडम के आस–पास की। महात्मा गांधी ने सामाजिक–आर्थिक जीवन में बदलाव के लिए अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वर्ष 1931 में वर्धा से शुरुआत की। जुगतराम दुबे ने पुनर्रचना का कार्य स्वराज्य आश्रम वेडची में 1922 से शुरू किया।

अंतर्राष्ट्रीय स्वैच्छिक संगठनों का इतिहास 1839 से प्रारंभ होता है। अनुमान है कि 1914 तक विश्वभर में 1,083 स्वैच्छिक संगठन थे जो दासता, महिलाओं के मताधिकार,

टिप्पणी

निरस्त्रीकरण आदि जैसे क्षेत्रों में काम कर रहे थे। परंतु 1945 में संयुक्त राष्ट्र संगठन (यूएनओ) के अस्तित्व में आने के बाद विश्वभर में स्वैच्छिक संगठनों की संख्या में बाढ़–सी आ गई। स्वैच्छिक संगठनों की संख्या में हुई वृद्धि के प्रमुख कारण हैं– आर्थिक मंदी, शीतयुद्ध की समाप्ति, निजीकरण, बढ़ती मांग आदि। बीसवीं सदी में वैश्वीकरण के प्रादुर्भाव के कारण भी गैर–सरकारी संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

भारत में दान और सेवा की धारणा पर आधारित नगर समाज (सिविल सोसाइटी) का लंबा इतिहास रहा है। मध्यकालीन युग में ही सांस्कृतिक संवर्द्धन, शिक्षा, स्वास्थ्य और प्राकृतिक आपदाओं के दौरान राहत पहुंचाने वाले अनेक स्वयंसेवी संगठन सक्रिय थे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय चेतना का विस्तार भारत के कोने–कोने में जा पहुंचा और सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों में स्वयंसेवा के माध्यम से अपने को स्थापित करने का रास्ता अपनाया। इस प्रकार के प्रयासों के कुछ प्रमुख प्रारंभिक उदाहरण हैं– फ्रेंड इन नीड सोसाइटी (1858), प्रार्थना समाज (1864), सत्यशोधन समाज (1873), आर्य समाज (1875), नेशनल काउंसिल फॉर वीमेन इन इंडिया (1875), दि इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस (1887) आदि। स्वैच्छिक संगठनों की बढ़ती संख्या को देखते हुए उन्हें वैधानिक स्थिति प्रदान करने के लिए 1860 में समिति पंजीकरण विधेयक को अनुमोदित किया गया।

1980 के दशक में, स्वैच्छिक संगठनों के स्वरूप में काफी विशिष्टता आने लगी और स्वैच्छिक सेवा का आंदोलन तीन प्रमुख समूहों में विभाजित हो गया।

पहले समूह में वे पारंपरिक विकासमूलक स्वैच्छिक संगठन आते हैं जो किसी एक गांव या गांवों के समूह को जाकर साक्षरता कार्यक्रम चलाते हैं, किसानों को फसलों के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करते हैं, पशुधन की उन प्रजातियों को पालने के लिए ग्रामीणों को तैयार करते हैं जो अधिक लाभ दे सकते हैं, बुनकरों और अन्य ग्रामीण शिल्पकारों को अपना उत्पाद बाजार में बेचने के लिए ले जाने को प्रेरित करने जैसे अन्य कार्य करते हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो ये संगठन अपने चुनिंदा क्षेत्रों में उसी समुदाय का हिस्सा बन जाते हैं। मध्य भारत में बाबा आमटे द्वारा कुष्ठ रोगियों के लिए शुरू किया गया संगठन इस प्रकार के स्वैच्छिक संगठनों का उत्तम उदाहरण है।

स्वैच्छिक संगठनों का दूसरा समूह उन संगठनों को कहा जा सकता है, जिन्होंने किसी विषय विशेष में गहन अनुसंधान किया और फिर सरकार पर प्रभाव डालकर अथवा न्यायालयों में याचिका दायर कर लोगों के जीवन में सुधार लाने का काम किया। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट इस प्रकार के स्वैच्छिक संगठनों का उत्तम उदाहरण है।

तीसरा समूह उन स्वयंसेवकों का है जो अपने आपको अन्य स्वैच्छिक संगठनों की अपेक्षा सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देखते हैं। स्पष्ट है कि इस वर्ग के स्वैच्छिक संगठन कुछ सीमा तक आंदोलन जैसी गतिविधियों में सक्रिय रहते हैं।

भारत ही विश्व का एक ऐसा देश है जहां गैर–सरकारी और लाभ के लिए काम नहीं करने वाले सक्रिय संगठनों की संख्या सबसे अधिक है। पिछले दशक में भारत में नए स्वैच्छिक संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1970 तक देश में केवल 1.44 लाख समितियां पंजीकृत थीं। पंजीकरण की संख्या में अधिकतम वृद्धि वर्ष 2000 के बाद हुई। सरकार द्वारा कराए गए एक अध्ययन के अनुसार भारत में 2009 के अंत तक लगभग 30 लाख 30 हजार स्वैच्छिक संगठन

टिप्पणी

थे। इसका अर्थ हुआ कि औसतन लगभग 400 भारतीयों के पीछे एक स्वैच्छिक संगठन। यह विशाल संख्या भी वास्तविकता में, देश में सक्रिय स्वैच्छिक संगठनों की संख्या से कम ही होगी। ऐसा इसलिए कि 2008 में कराए गए अध्ययन में केवल उन संगठनों की गिनती की गई थी जो 1860 के सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन कानून अथवा मुंबई सार्वजनिक ट्रस्ट या अन्य राज्यों में उसके समकक्ष कानूनों के अंतर्गत पंजीकृत थे।

सबसे अधिक सरकारी संगठन महाराष्ट्र में पंजीकृत हैं। उसके बाद आंध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश का स्थान आता है। भारत में राज्यावार स्वैच्छिक संगठनों की संख्या निम्नानुसार है–

महाराष्ट्र (4.8 लाख), आंध्र प्रदेश (4.6 लाख), उत्तर प्रदेश (4.3 लाख), केरल (3.3 लाख), कर्नाटक (1.9 लाख), गुजरात (1.7 लाख), पं. बंगाल (1.7 लाख), तमिलनाडु (1.4 लाख), ओडिशा (1.3 लाख), राजस्थान (1 लाख)।

इन आंकड़ों से पता चलता है कि केवल 10 राज्यों में ही 80 प्रतिशत से अधिक संगठनों का पंजीकरण हुआ है। इसी प्रकार वित्तपोषण के मामले में, सरकार का योगदान सबसे अधिक रहा है। ग्यारहवीं योजना में सामाजिक क्षेत्र के लिए 80 अरब रुपये अलग से निर्धारित किए गए थे। इसके बाद विदेशों से प्राप्त होने वाली सहायता का स्थान आता है। व्यक्तिगत दानदाता स्वैच्छिक संगठनों के लिए सबसे बड़े और महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभर रहे हैं (मैथ्यू एवं वर्गीज 2011)।

अधिकांश स्वैच्छिक संगठन छोटे संगठन हैं। सभी स्वैच्छिक संगठनों की तीन–चौथाई संख्या को समग्र रूप से केवल कार्यकर्ता ही चला रहे हैं। लगभग 13 प्रतिशत स्वैच्छिक संगठनों में 2 से 5 कर्मचारी हैं, लगभग 5 प्रतिशत स्वैच्छिक संगठनों में 6 से 10 कर्मचारी हैं और केवल 8.5 प्रतिशत संगठनों में ही 10 से अधिक कर्मचारी काम करते हैं। सोसाइटी फॉर पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (पीआरआईए) द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार 73.4 प्रतिशत स्वैच्छिक संगठनों में केवल एक या एक भी वैतनिक कर्मचारी नहीं हैं, यद्यपि देश भर में 1 करोड़ 90 लाख से अधिक लोग स्वैच्छिक संगठनों में या तो स्वयंसेवक या वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में काम करते हैं। स्वैच्छिक संगठनों का पंजीकरण प्रायः भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के तहत ट्रस्ट, सोसाइटी (समिति) अथवा लाभ के लिए काम नहीं करने वाली निजी कंपनी के रूप में होता है। उन्हें आयकर में छूट का लाभ भी मिलता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की 40वीं आम सभा 1985 में 5 दिसंबर को स्वैच्छिक दिवस (वालंटरी डे) घोषित किया गया।

5.3.4 गैर–सरकारी संगठन

गैर–सरकारी संगठनों ने विकास, सामाजिक कल्याण, अधिकार इत्यादि कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। संक्षेप में इनकी निम्न भूमिका महत्वपूर्ण है–

अधोसंरचना का विकास गैर–सरकारी संगठनों द्वारा किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण घटक है। इसके अंतर्गत भूमि का अधिग्रहण एवं उसका विकास करना, भवनों का निर्माण कार्य करना, भवनों का रख–रखाव, इनकी मरम्मत करना, अपशिष्ट प्रबंधन हेतु संरचनाएं बनाना, भूमि, जल संवर्धन एवं संरक्षण हेतु संरचनाओं का निर्माण करना, सामुदायिक कुओं, तालाबों, शौचालयों का निर्माण एवं रख–रखाव आदि। इसके साथ ही भवन निर्माण सामग्री की आपूर्ति हेतु सामुदायिक स्तर पर रोजगारोन्मुखी क्रियाकलापों को प्रोत्साहित करना भी सम्मिलित है। कुछ ऐसे भी गैर–सरकारी

टिप्पणी

संगठन हैं जो सरकार को अधोसंरचना विकास हेतु तकनीकी मार्गदर्शन भी प्रदान कर सहयोग देते हैं।

नवोन्मेषी प्रदर्शन एवं अग्रगामी परियोजनाएं

गैर–सरकारी संगठनों द्वारा किसी क्षेत्र विशेष की परिस्थिति के अनुरूप नवोन्मुखी अर्थात नवीन परिवर्तनों हेतु परियोजना कार्य का संचालन व क्रियान्वयन किया जाता है। इसी प्रकार प्रदर्शन आधारित क्रियाकलाप भी संपादित किए जाते हैं ताकि जन समुदाय के वांछित परिवर्तन हेतु मॉडल रूप में करके दिखाया जा सके। वास्तव में उक्त दोनों ही माध्यम मुख्यतः सरकारी अनुदान आधारित परियोजनाओं द्वारा किए जा रहे हैं। सामाजिक समस्याओं के निराकरण एवं आर्थिक सशक्तिकरण हेतु नवीन समाधान पर आधारित कार्यक्रम अग्रगामी परियोजनाओं के अंतर्गत तैयार किए जाते हैं। ऐसी अनेक अग्रगामी परियोजनाएं हैं जिन्हें मुख्यतः गैर–सरकारी संगठनों द्वारा ही सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। अनेक सरकारी परियोजनाएं ऐसी हैं जिनमें गैर–सरकारी संगठनों की उपस्थिति अनिवार्य कर दी गई है क्योंकि ये संगठन शासन की तुलना में अधिक प्रभावी क्रियान्वयन, निर्धारित समय सीमा से पूर्ण करने की क्षमता को स्पष्ट कर चुके हैं।

संवाद/संचार

गैर–सरकारी संगठन का जनसमुदाय के साथ जीवंत एवं परस्पर मधुर संवाद होता है। इसी कारण से ये संगठन आम जनता का विश्वास प्राप्त करने में सफल होते हैं। यही विशाल परस्पर सहयोग के द्वारा विकास कार्यों को गतिशील एवं टिकाऊ बनाता है। गैर–सरकारी संगठन स्थानीय समस्याओं एवं उनके समाधान हेतु वांछित सुझाव नीचे से ऊपर की ओर पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वास्तविक परिस्थितियों एवं जन भावनाओं को स्पष्ट रूप से शासन स्तर के नीति निर्माताओं तक पहुंचाने में इन संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जनता की आवाज को शासन तक पहुंचाने का कार्य भी ये संगठन कुशलतापूर्वक पूर्ण करते हैं।

तकनीकी सहयोग एवं प्रशिक्षण

गैर–सरकारी संगठन वांछित सकारात्मक परिवर्तन हेतु तकनीकी सहयोग एवं प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य संपादित करते हैं। कौशल संवर्धन/दक्षता संवर्धन एवं जानकारी को संप्रेषित करने हेतु प्रशिक्षण आयोजित कर सहयोग देते हैं। कुछ गैर–सरकारी संगठन शासन स्तर से जुड़े कर्मचारियों/अधिकारियों को भी तकनीकी मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण देने का कार्य करते हैं।

गैर–सरकारी संगठनों द्वारा अनुसंधान से जुड़े कार्यों को भी संचालित किया जाता है। वर्तमान परिवेश में जन भागीदारी आधारित अनुसंधान परियोजनाओं का गैर–सरकारी संगठनों द्वारा कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन एवं मार्गदर्शन किया जा रहा है। इसके अलावा विकासोन्मुखी परियोजनाओं की वस्तुस्थिति को देखना, मार्गदर्शन करना एवं मूल्यांकन का कार्य भी इन संगठनों द्वारा किया जा रहा है।

गरीबों के साथ गरीबों के लिए समर्थन

गैर–सरकारी संगठन की आरंभिक अवस्था से अभी तक एक विशेष झुकाव गरीब जन समुदाय की ओर अधिक दृष्टिगत होता है। अधिकांश कार्यक्रम एवं परियोजनाएं भी

इन्हीं गरीब परिवारों को केंद्र में रखकर तैयार की गई एवं क्रियान्वित की गई हैं। वस्तुतः सरकारी परियोजनाओं का वास्तविक लाभ गरीबों को कम ही मिल पाता था क्योंकि निर्धन गरीब लोग जहां एक ओर अशिक्षा के कारण आगे नहीं आ पाते थे वहीं दूसरी ओर इन्हें स्थानीय सशक्त लोग अपने समकक्ष आने या अधिकार दिलाने से दूर रखते थे। गैर–सरकारी संगठनों ने वास्तविक जरूरतमंद की पहचान कर शासकीय योजनाओं का लाभ गरीब परिवारों को प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। गरीबों की आवाज, उनके कष्ट, हालात एवं परिस्थितियों को शासन तक पहुंचाने, शासकीय योजनाओं के लाभ को गरीबों तक ले जाने में गैर–सरकारी संगठनों ने सेतु का प्रभावी कार्य किया है।

पंचवर्षीय योजनाओं में गैर–सरकारी संगठन

प्रथम पंचवर्षीय योजना में गैर–सरकारी संगठनों का उल्लेख है कि इन संगठनों के द्वारा किए जा रहे कार्य के फलस्वरूप किसी भी योजना में आर्थिक एवं सामाजिक पुनरुत्थान के लिए इन संगठनों की सहायता ली जाए तथा इनके प्रयास को मजबूत करने में राज्य अत्यधिक सहयोग करेंगे। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में जन सहयोग पर बल दिया गया।

1953 में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने गैर–सरकारी संगठनों को 'लोकतंत्र की तीसरी आंख' से संबोधित किया। बोर्ड की तत्कालीन सदस्या इंदिरा गांधी ने बोर्ड की बैठक में कहा "वर्तमान सामाजिक कल्याण संस्थाओं के वित्तीय स्थिति में सुधार लाने, नई संस्थाएं खोलने और इन सभी संस्थाओं को एक–दूसरे से जोड़ने के लिए बोर्ड ने एक विशेष कार्यक्रम बनाया है। इन संस्थाओं को आर्थिक रूप से मजबूत करने के लिए करीब 28 लाख रुपये की मदद जारी की गई है। वर्तमान और नई संस्थाओं को एक–दूसरे से जोड़कर बोर्ड के विभिन्न कार्यक्रम सुचारू ढंग से चलाए जाएंगे।" (दैनिक जागरण, 13 नवंबर, 1954)

प्रथम पंचवर्षीय योजना में 'स्वैच्छिक संगठनों के लिए सहायता' हेतु 4.00 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई क्योंकि इन्हें सामाजिक समस्या के समाधान हेतु सक्षम माना गया जिसे राज्य नहीं कर सकते।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के सफल क्रियान्वयन में स्वैच्छिक संगठनों को लोकतांत्रिक मूल्यों के उद्देश्य को प्राप्त करने में रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए जन सहभागिता आधारित कार्यक्रम लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का उत्तरदायित्व दिया गया। स्वैच्छिक संगठनों पर जन–सहयोग हेतु बृहद रूप से संगठनात्मक जिम्मेदारी पर बल दिया गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1975–80) में गैर–सरकारी संगठनों को गरीबी निवारण हेतु संचालित योजनाओं जैसे एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में संलग्न किया गया और यह माना गया कि ये संगठन जमीनी स्तर पर कार्यक्रम का सफल क्रियान्वयन कर सकते हैं।

छठी पंचवर्षीय योजना में जन संगठनों की सहभागिता के परिणामों का उल्लेख करते हुए सेवा, बाएफ (भारत एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन) के पशु चिकित्सा कार्य का

वर्णन किया गया और यह उम्मीद की गई कि देश में स्वैच्छिक कार्य के और उदाहरण प्रस्तुत होंगे।

सातवीं पंचवर्षी योजना में विकास कार्यों में स्वैच्छिक संगठनों का सहयोग लेने और शासकीय प्रयास में उनको सहयोगी के रूप में स्वीकार किया गया जिससे गरीब को विकास के अवसर प्राप्त हो सकें।

नौंवी पंचवर्षीय योजना में स्वैच्छिक संगठनों को पंचायतीराज संस्थाओं, स्वयं सहायता समूह इत्यादि के गठन, प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व सौंपा गया। स्वैच्छिक संगठनों को देश में सहभागी विकास में सहयोगी बनने का वर्णन है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में देश में स्वैच्छिक संगठनों के लिए राष्ट्रीय नीति बननी शुरू हुई जो बारहवीं योजना के प्रारंभ में वर्ष 2007 में योजना आयोग ने अनुमोदित की। इस नीति के माध्यम से सृजनात्मक, स्वतंत्र एवं प्रभावी स्वैच्छिक क्षेत्र का प्रोत्साहन एवं उत्थान करना था।

गैर–सरकारी संगठनों का वर्गीकरण

गैर–सरकारी संगठनों के कार्यों को मोटे तौर पर निम्नलिखित क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- राहत और सहायता।
- विकास।
- गतिशीलता और संगठन।
- राजनीति।
- राजनीतिक शिक्षा।

संगठन वर्गीकरण निम्न प्रकार है–

- विकास और सहायता समूह।
- कार्य समूह मुख्यतया किसी स्पष्ट राजनीतिक सापेक्ष महत्व के बिना या कभी राजनीतिक विरोध के बिना दलितों में जागरूकता और चेतना उत्पन्न करने की प्रक्रियाओं में लगे रहते हैं।
- राजनीतिक महत्व और लक्ष्यों सहित राजनीतिक दल।
- धीरे–धीरे राजनीतिक दल बनाने के प्रयोजन से पार्टी बनाने से पहले राजनीतिक गठन।
- सहायता समूह जो पत्र–पत्रिकाएं निकालने, प्रलेखन और संसाधन केंद्र, अधिवक्ता मंच आदि के विशेषज्ञ कार्यों को करते हैं।

यह विस्तृत वर्गीकरण नहीं है क्योंकि अन्य परिवर्ती या मिश्रित समूह भी हो सकते हैं। स्वैच्छिक संगठन के लिए प्रेरणा के स्रोत गांधीवाद, समाजवाद या मार्क्सवाद या नव मार्क्सवाद रहे हैं। यद्यपि गांधीवादी प्रेरणा स्वतंत्रता संघर्ष के अनुभव पर रहा है या ग्रामीण जनसमुदाय की आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उनकी सहायता करने की ओर उन्मुख था। राम मनोहर लोहिया ने समाजवादी विचारधारा को प्रेरित किया और जय प्रकाश नारायण भी राज्य और विकास के नेहरू मॉडल के प्रति ऐतिहासिक रूप से सक्रिय और शंकालु रहे हैं।

टिप्पणी

मार्क्सवादी और नव मार्क्सवादी विचारधारा ने कुछ वैचारिक ढांचे से स्वैच्छिक संगठन स्थापित करने के लिए वामपंथी दलों को प्रेरित किया। गैर–सरकारी संगठनों और राजनीतिक दलों के बीच संबंध एक समान नहीं थे। कुछ मार्क्सवादी गैर–सरकारी संगठनों को साम्राज्यवादियों के एजेंट के रूप में देखते थे। महाराष्ट्र में दहानु के जनजातियों में काश्तकारी संगठन का सुदृढ़ ग्रामीण आधार था, बंबई का उत्तरी भाग सी.पी.एम. कैडर का लक्ष्य था, उन्होंने अनुभव किया कि वामपंथी क्षेत्र में संगठन द्वारा प्रवेश करने का खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार उत्तरी आंध्र प्रदेश में एक अन्य संगठन समता को पी.डब्ल्यू.जी. द्वारा लक्ष्य बनाया गया था और गैर–सरकारी संगठनों के संगठनकर्ताओं को पहले पूर्वी गोदावरी में, तब विशाखापट्टनम जिले में अपने कार्य बंद करने पड़े। यह ठीक उसके बाद हुआ जब स्थानीय समुदाय की इच्छाओं के विरुद्ध विद्यमान कानूनों की अनदेखी करके उद्योगपति और सरकार वाणिज्यिक परिसर स्थापित करना चाहते थे। संगठन ने इसके विरुद्ध अपने संघर्ष में जनजाति समुदायों के लिए बहुचर्चित विजय प्राप्त की।

पहले की अपेक्षा प्रायः अब विकास और विकासपरक कार्य में गैर–सरकारी संगठनों (Non-Government Organisations) को अधिक सम्बद्ध किया जाता है। 1970 के दशक से आगे विकासपरक गैर–सरकारी संगठनों का प्रसार यह संकेत देता है कि विकास संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देने और सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में उनका महत्व है। तथापि यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि गैर–सरकारी संगठनों को अनिवार्यतः सदा अकेले ही ऐसे कार्यों में नहीं सम्मिलित किया जाता है और राष्ट्रीय स्तर पर स्वैच्छिक संगठनों के रूप में उनका अपना इतिहास है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की वृद्धि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के औपचारिक और भौतिक अस्तित्व सहित उनके नियमन की अभिव्यक्ति है। यद्यपि इनका अधिक भाग राज्यों के अंदर समूह पर निर्भर रहता है, फिर भी ये उनसे पृथक होते हैं। इन संगठनों के लिए चिंता के क्षेत्र की सीमा शांति और सुरक्षा से मानव अधिकार और विकास तक होती है।

जब प्रकाश नारायण के नेतृत्व में पूर्ण क्रांति के लिए आंदोलन ने इंदिरा गांधी की सरकार गिराई और 1977 में आपात काल की समाप्ति पर पहली बार गैर–कांग्रेसी सरकार आई। गौण पहचानों के समर्थन के फलस्वरूप नया सामाजिक– दलित, जनजाति और महिला आंदोलन शुरू हुआ। इसने अपनी मांगों को ऐसी भाषा में उजागर किया जो उदारवादी और मार्क्सवादी दोनों विचारधाराओं तथा राजनीति दलों के लिए संकटपूर्ण था जबकि कुछ महत्वपूर्ण आंदोलन, जैसे चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन और राष्ट्रीय मछुआरा मंच जारी रहे। सामाजिक आंदोलनों के संरचनात्मक परिवर्तन के लिए मांग को अभी मूर्त रूप लेना है।

1960 और 1970 के दशकों के उत्तरार्द्ध की सदलीय राजनीति प्रक्रिया, दक्षिणी और पश्चिमी भारत में ईसाई संगठनों से आमूल रूप से परिवर्तित युवकों, छात्र समूहों के इर्द–गिर्द केंद्रित रही। मुक्ति थिऑलॉजी द्वारा प्रभावित जो लैटिन अमेरिका में उत्पन्न हुआ था, इन ईसाई समूहों ने छात्र यूनियनों, एन एस एस आदि के साथ मिलकर कार्य समूह (Action Groups) बनाए जिन्हें समुदाय कार्य समूहों या सामाजिक कार्य समूहों के रूप में जाना जाता है। यह पहले की संस्थाओं, जैसे मिशनों, ट्रेड यूनियनों और जन संगठनों के रूप में अधिक समय तक कार्यरत नहीं रह सके। उन्हें फंड प्राप्त करने के लिए कानूनी पहचान की भी आवश्यकता थी। संस्थाओं के चुने गए मंच को

टिप्पणी

सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अधीन सोसाइटी या एसोसिएशन बनाया गया था। इनकी पहचान कानूनी तौर पर पिछले कल्याणकारी और धर्मार्थ संस्थाओं से हुई थीं। इन संगठनों में से कुछ, जैसे महाराष्ट्र में VISTAS और तमिलनाडु में ग्रामीण गरीबों के लिए एसोसिएशन ने (पॉलो फ्रेयरे, ब्राजी के शिक्षाविद् द्वारा विकसित, उत्पीड़न के लिए राजनीतिक जागरुकता उत्पन्न करने का तरीका) "Conscientisation" कार्यक्रम आरंभ किया। आंध्र प्रदेश में नक्सलवादी आंदोलन ने हैदराबाद में CROSS जैसे कुछ गैर–सरकारी संगठनों द्वारा अपनाए गए 'संगम' की अवधारणा तैयार की।

यद्यपि गैर–सरकारी संगठनों की कोई सार्वदेशिक परिभाषा और प्रकार नहीं है, फिर भी परंपरागत रूप से इस शब्द का उल्लेख लाइंस क्लब या रोटरी क्लब सहित सामाजिक कल्याण संगठनों के लिए किया गया है। बाद में, इस शब्द में कार्य समूह शामिल हुए जिसे अपने फंडों की व्यवस्था करने के लिए औपचारिक संरचना की आवश्यकता थी और इसलिए सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट या पब्लिक ट्रस्ट एक्ट के अधीन पंजीकृत किए गए। इससे वे विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दानदाताओं से फंड प्राप्त करने के पात्र हो सके। 1980 के दशक में इन समूहों के पास धनराशि आई, इसलिए सरकार ने विदेशी अभिदान विनियमन अधिनियम प्राख्यापित किया। 1980 के दशक के मध्य से सरकार ने विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए इन संगठनों का प्रयोग करना शुरू किया, पहले कापार्ट (CAPART) के माध्यम से और फिर सामाजिक कल्याण मंत्रालय के माध्यम से। शब्द 'गैर सरकारी संगठन' (NGO) लगातार अधिकाधिक 'विकास कार्यक्रमों में पड़ने वाले' संगठनों से जुड़ गया और मूर्त रूप में छोटे–छोटे समूह गठित हुए। परिणाम आज गैर–सरकारी संगठन क्षेत्र का आविर्भाव है।

विकास एजेंसियों के रूप में गैर–सरकारी संगठन

अधिकांश विकासशील देशों और भारत में, विशेष रूप से गैर–सरकारी संगठन विकास प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। नव उदारवादी ढांचे के अंदर विश्व की अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण ने विश्वव्यापी बाजार के युग में प्रवेश किया और संगठन– विश्व व्यापार संगठन का निर्माण किया। इस संगठन को भूमंडलीय व्यापार और वाणिज्य नए नियम बनाने और विनियम करना है। विकास के प्रति नए महत्वपूर्ण दृष्टि में फोकस अब संरचना राज्य के स्थान पर अभिकर्ताओं (नागरिक समाज) पर है। ऊपर से नीचे दृष्टिकोण को नीचे–ऊपर समुदाय सहभागिता दृष्टिकोण से बदल दिया है। माइक्रोस्तर के अभिकर्ताओं और परियोजनाएं जो जनता के 'शक्तिकरण' के लिए थे, अर्थात लोगों को अपने विकासपरक प्रयासों में सुविधा देना, अब यह दैनिक व्यवस्था है। इन प्रयासों में गैर–सरकारी संगठन मध्यस्थ बन गए हैं। राज्य जिन्हें अब 'समर्थकारी राज्य' के रूप में देखा जाता है, अर्थात राज्य जो अब अर्थव्यवस्था की मार्केटिंग को आसान बनाएंगे, और राज्य स्वयं हट जाएगा या सीमित भूमिका निभाएगा। गैर–सरकारी संगठन अब नागरिक समाज के भाग के रूप में महत्वपूर्ण भाग हैं, और जनता की ओर से वैध वार्ताकार भी हैं। विकास पर विश्व बैंक की रिपोर्टों ने नागरिक सोसाइटी के भाग के रूप में और विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर गैर–सरकारी संगठनों को स्वीकार किया है।

टिप्पणी

भारत में 1190 के दशक के प्रारंभ में घोषित नई आर्थिक नीतियां विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका स्वीकार करती हैं। आंध्र प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों, जैसे शहरी गरीबी उन्मूलन, गंदी बस्तियों का सुधार, महिलाओं को आजीविका मुहैया करना आदि में गैर–सरकारी संगठन मुख्य रूप से कार्य करते हैं। राज्य ने स्वयं 'शहरी गरीबी उन्मूलन सोसाइटी' आदि विश्व बैंक द्वारा दिए गए फंड से बनाई हैं।

1990 के दशक के बाद भूमंडलीकरण की प्रक्रियाओं के साथ गैर–सरकारी संगठन विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण अभिकर्ता के रूप में देखे जाते हैं। निजीकरण की नीतियों और अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों से राज्य के हटने से राज्य विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए गैर–सरकारी संगठनों पर आश्रित हो गए हैं। गैर–सरकारी संगठन अब संरचनाओं और संगठनों सहित ऐसे व्यावसायिक और प्रबंधकीय निकाय बन गए हैं जिन्हें सत्ता, राजनीति और राज्य से कोई चिंता नहीं है बल्कि संरचनात्मक समायोजन के लिए 'वितरण प्रणाली' से है। गैर–सरकारी संगठनों पर उत्तरदायित्व और पारदर्शिता के अभाव के आरोप लगाए जाते हैं। बाहर से फंड प्राप्तकर्ताओं के रूप में प्रायः उनका उत्तरदायित्व दानदाता एजेंसियों के प्रति होता है। बहुत बड़े विशाल गैर–सरकारी संगठन न तो सरकार के और न ही जन प्रतिनिधि के प्रति उत्तरदायी होते हैं। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड एक उदाहरण है। बड़े गैर–सरकारी संगठनों द्वारा शुरू की गई केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति न केवल विशाल मात्रा में डेयरी के लिए दिखाई गई है बल्कि अधिकाधिक क्षेत्रों के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवेश के लिए भी की गई है। यहां तक कि वन के बहुत बड़े दुर्गम क्षेत्रों, शुष्क भूमि खेती, अकृष्ट भूमि विकास और भारत के बहुत अंदर की विशाल ग्रामीण भूमि में तथा जनजाति भूमि को आबाद करने के नए तरीके के लिए भी की गई है।

इस उद्देश्य के लिए, फोर्ड फाउंडेशन और केंद्रीय सरकार के सहयोग से 1982 में अकृष्ट भूमि सुधार सोसाइटी (Society for Promotion of astelands Development–SPWD) बनाई गई थी। इस प्रकार सरकार गैर–सरकारी संगठन या सरकारी संगठन– गैर–सरकारी संगठन (GO-NGO) नई वितरण प्रणाली के साधन बने। दानदाता एजेंसी की प्रेरणा से ऐसे गैर–सरकारी संगठनों का एक अन्य उदाहरण विश्व बैंक के फंड से जल विभाजक विकास और संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम (Joint Forest Management Programme–JFM) है।

आज यह आलोचना होती है कि संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम की कोटि में ह्रास हुआ है, यह वन संरक्षण समिति (Van Samrakshan Samithis–VSS) के सदस्यों के वन विभाग के कार्य के लिए मजदूरी ठेकेदार के रूप में रह गया है। आज अधिकांश 'उत्तर' दानदाता एजेंसियों ने अपना ध्यान सामाजिक न्याय और समानता, और ज्वलंत समस्याएं– बाल श्रम, उत्तरी पर्यावरण समस्याएं, एड्स और मानव अधिकार, लोकतंत्रीकरण तथा शासन में बदल दिया है।

वर्तमान गैर–सरकारी संगठन विकासात्मक, सामाजिक–राजनीतिक दृश्य के तथ्य हैं। 1960 के दशक के प्रारंभ में जब वे भ्रष्ट और सत्तावादी राज्य को चुनौती देने के लिए पर्याप्त उग्र थे, धीरे–धीरे कमजोर हो गए। आज कई गैर–सरकारी संगठन सरकारी

टिप्पणी

परियोजनाओं का क्रियान्वयन कर रहे हैं और सरकारों तथा राज्य तेजी से अपनी स्वायत्तता खो रहे हैं। आंध्र प्रदेश उत्कृष्ट उदाहरण है, जहां विश्व बैंक प्रेरित कार्यक्रम सरकार द्वारा किए गए जो गैर–सरकारी संगठनों को उपठेके में दिए जाते हैं। शहरी गरीबी उन्मूलन सोसाइटी के अधीन ग्रामीण गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम सरकार, अंतर्राष्ट्रीय वित्तदाताओं और गैर–सरकारी संगठनों के सहयोग के प्रतिपादन हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. स्वैच्छिक संगठन कैसा नहीं होता?
   (क) स्वचालित (ख) औपचारिक
   (ग) जन प्रेरित (घ) सरकारी
4. समिति पंजीकरण विधेयक कब अनुमोदित किया गया?
   (क) 1860 में (ख) 1890 में
   (ग) 1947 में (घ) 1950 में

5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (घ)
4. (क)

5.5 सारांश

मानव अधिकार वे मौलिक तथा अन्यसंक्राम्य (inalienable) अधिकार हैं जो मनुष्यों के जीवन के लिए आवश्यक हैं। मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव के हैं क्योंकि वह मानव है, चाहे वह किसी भी राष्ट्रीयता, प्रजाति या नस्ल, धर्म, लिंग का हो। अतः मानव अधिकार वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है तथा जिनके बिना हम मानवों की भांति जीवित नहीं रह सकते हैं।

प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत आधुनिक मानवीय अधिकारों से निकट रूप से संबंध है। इसके मुख्य प्रर्वतक जान लॉक (John Locke) थे। उनके अनुसार, जब मनुष्य प्राकृतिक दशा में था जहां महिलाएं एवं पुरुष स्वतंत्र स्थिति में थे तथा अपने कृत्यों को निर्धारित करने के लिये योग्य थे तथा समानता की दशा में थे। लॉक ने यह भी कल्पना की कि ऐसी प्राकृतिक दशा में कोई भी किसी अन्य की इच्छा या प्राधिकार के अधीन नहीं था। तत्पश्चात् प्राकृतिक दशा में जोखिमों एवं असुविधाओं से बचने के लिये उन्होंने एक समुदाय तथा राजनीतिक निकाय स्थापित किए। परन्तु उन्होंने कुछ प्राकृतिक अधिकार जैसे जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार तथा सम्पत्ति का अधिकार अपने पास रखे।

टिप्पणी

वास्तविक अर्थों में मानव अधिकार का सार्वभौमीकरण द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने पर प्रारम्भ हुआ। मानवीय स्वतंत्रता के प्रति विश्व समुदाय अन्तर्चेतना द्वितीय विश्व के दौरान पर प्रारम्भ हुआ। मानवीय स्वतंत्रता के प्रति विश्व समुदाय अन्तर्चेतना द्वितीय विश्व के दौरान जग गई। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने सभी लोगों के मानवाधिकार और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर को मान्यता प्रदान की। यह माना गया कि कोई भी यहाँ तक कि न्यूनतम अर्थों में, हिंसा और हिंसा की धमकी भी सुरक्षित नहीं है जब तक कि सभी लोग सुरक्षित न हों।" आज विधिवेत्ताओं, दार्शनिकों और नैतिकतावादियों की एक बड़ी संख्या, अपनी सांस्कृतिक और सभ्यतागत भिन्नताओं के बावजूद इस बात से सहमत हैं।

रूढ़ियां तथा संधियां अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य नियमों की तरह अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार विधि के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। मानवाधिकार विधि राज्यों के ऊपर मुख्य रूप में इसलिए बाध्यकारी है क्योंकि वे संधि रूप में अथवा रूढ़ि विधि से निगमित होती हैं। यद्यपि मानवाधिकार विधि का बाध्यकारी स्रोत रूढ़ि और संधि हैं, किंतु इस पर मानव की नैतिकता, न्याय और गरिमा का विशेष प्रभाव होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि मानवाधिकार के स्रोतों की उपर्युक्त सूची किसी भी प्रकार से परिपूर्ण नहीं है। बहुत–सी अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संस्थाएं जो मुख्य रूप से अन्य विषयों से संबंधित हैं वे भी मानव अधिकारों के संरक्षण में योगदान करती हैं।

स्वैच्छिक संगठन भारत में अनेक प्रकार की गतिविधियां चलाते हैं, जिससे लोगों को लाभ होता है, क्योंकि मूल रूप से वे बिना किसी व्यावसायिक हित अथवा लाभ के काम करते हैं। इन संगठनों का उद्देश्य निर्धनता अथवा किसी प्राकृतिक आपदा के कारण कष्ट सह रहे लोगों की सेवा करना है। हालांकि स्वैच्छिक संगठनों पर प्रायः सार्वजनिक धन के दुरुपयोग का आरोप लगता रहा है, परंतु वे इनका प्रतिकार सामाजिक समस्याओं का योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन कर उनका समाधान ढूंढ़ने की कोशिशों से करते रहे हैं।

गैर–सरकारी संगठनों की कोई सार्वदेशिक परिभाषा और प्रकार नहीं है, फिर भी परंपरागत रूप से इस शब्द का उल्लेख लाइंस क्लब या रोटरी क्लब सहित सामाजिक कल्याण संगठनों के लिए किया गया है। बाद में, इस शब्द में कार्य समूह शामिल हुए जिसे अपने फंडों की व्यवस्था करने के लिए औपचारिक संरचना की आवश्यकता थी और इसलिए सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट या पब्लिक ट्रस्ट एक्ट के अधीन पंजीकृत किए गए। इससे वे विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दानदाताओं से फंड प्राप्त करने के पात्र हो सके। 1980 के दशक में इन समूहों के पास धनराशि आई, इसलिए सरकार ने विदेशी अभिदान विनियमन अधिनियम प्राख्यापित किया।

5.6 मुख्य शब्दावली

- **सांस्कृतिक** : संस्कृति से संबंधित।
- **नैसर्गिक** : प्राकृतिक/स्वाभाविक।
- **प्रजातंत्र** : जनता द्वारा, जनता के लिए निर्मित जनता की सरकार।

- **मताधिकार** : मत देने का अधिकार।
- **अविधिमान्य** : विधि रहित होने पर अमान्य करना।
- **प्रणाली** : प्रविधि / प्रक्रिया / व्यवस्था।

टिप्पणी

5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मानवाधिकार से क्या आशय है?
2. व्यक्ति के अधिकार संबंधी मार्क्स का सिद्धांत क्या है?
3. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन क्या है?
4. रूढ़ि से आप क्या समझते हैं?
5. स्वैच्छिक संगठन से क्या तात्पर्य है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मानवाधिकार की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हुए इसके सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
2. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का विवरण दीजिए।
3. मानव अधिकारों की अविभाज्यता और अन्योन्याश्रयता का विश्लेषण कीजिए।
4. भारत में मानवाधिकार के प्रमुख मुद्दों का रेखांकन कीजिए।
5. स्वैच्छिक संगठन एवं समाज कार्य पर सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।

5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: Routledge Falmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.